सेठ भोलाराम सेकसरिया-स्मारक-ग्रन्थमाला—५

आचार्य भिखारीदास

लेखक
डॉ० नारायण दास खन्ना
बी०ए० (आनर्स), एम०ए०, एल-एल०बी, डी०पी०ए०, पी-एच०डी०
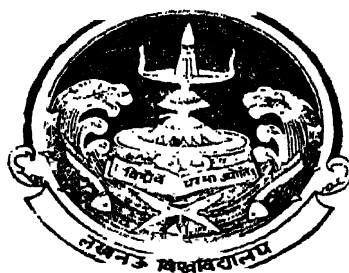
प्रकाशक
लखनऊ विश्वविद्यालय
सम्वत् २०१२ वि०

प्रकाशक
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

मुद्रक
नव ज्योति प्रेस,
पानदरीबा, लखनऊ

उपद्‌घात

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों तथा आलोचकों ने रीतिकालीन हिन्दी-साहित्य को बहुधा हीनता की दृष्टि से देखा है। भक्तिकाल की धार्मिक शुचिता तो रीतिकाल में नहीं है परन्तु हिन्दी-काव्य और हिन्दी-भाषा की समृद्धि इस काल में भक्तिकाल से कम नहीं हुई। काव्यकला, कल्पना-सौष्ठव और चमत्कारिक रमणीयता की दृष्टि से रीतिकालीन काव्य, वास्तव में, सुन्दर है। शृंगार एवं भावपूर्ण सांसारिक रूपों और मानव-स्वभाव के कलात्मक और विनोदकारी चित्रों से रीतिकालीन हिन्दी-साहित्य भरा पड़ा है। उस समय के हिन्दी कवियों ने आचार्य-कर्म और कवि-कर्म, दोनों, साथ साथ किये हैं। कलात्मक गुणों की प्रियता उस समय इतनी अधिक थी कि काव्य-विवेकी और काव्य-प्रेमी दोनों के लिये कवि-परिपाटी के साधारण नियमों का जानना आवश्यक था। इसी से काव्य के लक्षण और उन लक्षणों के उदाहरण लिखने की परिपाटी वेग से प्रचलित हुई। फलतः इस काल में काव्यशास्त्र पर रस, अलंकार, नायिका भेद, शब्दशक्ति, काव्य गुण आदि विषयों से युक्त अनेक ग्रन्थ, संस्कृत के साहित्य शास्त्र के आधार से, लिखे गये। रीतिकालीन आचार्य कवियों में भिखारीदास का एक उच्च स्थान है। उन्होंने काव्य के विविध अंगों का विस्तार से विवेचन किया है। काव्य-निर्णय, शृंगार-निर्णय, रस-सारांश, छन्दार्णव-पिंगल, नाम-प्रकाश और विष्णु-पुराण भाषा. ये उनके प्रमुख ग्रंथ हैं। इन ग्रंथों में कवि की उत्कृष्ट कवित्व-शक्ति और आचार्यत्व दोनों का परिचय मिलता है। भिखारीदास अवधी क्षेत्र के निवासी थे परन्तु ब्रजभाषा पर उनका विलक्षण अधिकार था। उनकी भाषा में सरसता के साथ सबलता है। उनको अनेक भाषाओं का ज्ञान था इसी से उनकी भाषा प्रौढ़ है। उन्होंने अपने ग्रंथों में उस समय की कवि-परिपाटी के अनुसार स्वरचित उदाहरण दिये हैं।

हिन्दी में ऐसे आचार्य और कवि की रचनाओं के विवेचनात्मक अध्ययन की मुझे आवश्यकता जान पड़ी। इसी से मैंने इस कवि पर खोज पूर्ण कार्य कराने का विचार किया। डा० नारायण दास खन्ना ने इस विषय पर कार्य करने की उत्सुकता प्रकट की और मैंने यह कार्य उनको दे दिया। प्रस्तुत ग्रंथ उन्होंने पी-एच० डी० उपाधि के लिए मेरी देखरेख में लिखा और मुझे प्रसन्नता है कि इसके आधार पर उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि लखनऊ विश्वविद्यालय से प्राप्त हुई। डाक्टर खन्ना मेरे पुराने शिष्य हैं और सुयोग्य लेखक हैं और वे मेरी बधाई के पात्र हैं। डा० खन्ना ने भिखारीदास के प्रकाशित तथा अप्रकाशित सभी ग्रंथों का संकलन किया है जिनका वे सम्पादन कर रहे हैं। इस पुस्तक को लखनऊ विश्वविद्यालय से प्रकाशित करा कर मुझे बड़ा हर्ष है। डा० खन्ना की लेखनी से इससे अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रस्तुत हों, यह मेरी मंगल कामना है।

दीन दयालु गुप्त

डा० दीन दयालु गुप्त,
एम०ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्०,
प्रोफ़ेसर तथा अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् श्री सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्व-विद्यालय की रजत-जयन्ती के अवसर पर बिसवाँ शुगर फैक्ट्री की ओर से बीस सहस्र रुपये का दान देकर हिन्दी विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिन्दी-अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिन्दी में उच्चकोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रंथों के प्रकाशन के लिए किया जा रहा है, जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रंथमाला' में संग्रथित होंगे। हमें आशा है कि यह ग्रंथमाला हिन्दी-साहित्य के भण्डार को समृद्ध करके ज्ञानवृद्धि में सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीन दयालु गुप्त
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय।

प्राक्कथन

मानव के अन्तस् में उठने वाले अनेक सरस भावों का चित्रण हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में अत्यन्त कलात्मक रूप में हुआ है। भावों की सुकुमारता, कल्पना की उड़ान, प्रेम और सौंदर्य की वास्तविक अनुभूति, नारी के रमणी रूप के आह्लादकर एवं मुग्धकारी चित्रणों से इस काल की काव्य रचनाएं भरी पड़ी हैं। पद्यबद्ध भाषा में संस्कृत के आधार पर किया गया काव्यशास्त्र के विविध अङ्गों का विवेचन भी इसी काल के आचार्य-कवियों की विशेषता रही है।

आचार्य भिखारीदास संस्कृत के पण्डित, हिन्दी के कवि और काव्यशास्त्र के विद्वान थे इसमें लेखक को तनिक भी सन्देह नहीं। फिर भी हिन्दी साहित्य का दुर्भाग्य रहा कि अभी तक इतने बड़े आचार्य कवि की उपेक्षा ही हुई और उनकी रचनाएं, काव्याङ्ग विषयक उनकी प्रौढ़ विवेचन-शैली तथा उनके द्वारा विवेचित विषयों का सरल स्पष्टीकरण प्रकाश में न आ सका।

तथ्य तो यह है कि साहित्य सदा बेठनों में बँधा हुआ नहीं रह सकता। कालान्तर में विद्वानों को भिखारीदास के काव्यगुणों को जानने की उत्सुकता हुई और उनके विषय में खोज की चर्चा होने लगी। इस उत्सुकता तथा भिखारीदास की काव्यकला विषयक महत्ता को ध्यान में रखकर ही लेखक ने उनके सम्बन्ध में लगभग ४ वर्षों तक खोज-कार्य किया। प्रस्तुत ग्रन्थ उसी खोज का परिणाम है तथा सन् १९५३ ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध है।

इस प्रबन्ध के मूल में लेखक की यही मनोवृत्ति निरन्तर कार्य करती रही थी कि हिन्दी साहित्य को अपनी आचार्यत्व कला से समृद्ध करने वाले महाकवि 'दास' हिन्दी साहित्य के समक्ष कवि एवं आचार्य के वास्तविक स्वरूप में प्रकट हों, उनका निष्पक्ष ढंग से मूल्याङ्कन किया जाय और उनमें आचार्यत्व की प्रतिभा कहां तक है इस का पता चलाया जाय। उनके जीवन तथा ग्रन्थों के सम्बन्ध में विश्वस्त सामग्री उपलब्ध हो सके इस दिशा में भी लेखक ने प्रयास किया है। जहां तक लेखक को ज्ञात है, डॉ० माताप्रसाद गुप्त की एक रेडियो वार्ता तथा एक दो छुटपुट छोटे छोटे लेखों को छोड़ कर कहीं भी भिखारीदास का मूल्याङ्कन करने का प्रयास नहीं किया गया। मिश्रबन्धुओं के 'विनोद' तथा डॉ० भगीरथ मिश्र के "हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास" ग्रन्थों को छोड़कर—इन दो ग्रन्थों में भी दास विषयक सम्पूर्ण

विवेचन १०, १२ पृष्ठों में ही हुआ है—अन्य ग्रन्थों में तो दास के सम्बन्ध में ३, ४ पंक्तियों से लेकर ३, ४ पृष्ठ तक की ही सामग्री मिलती है जिसमें एक दूसरे के पिष्टपोषण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। भिखारीदास के सम्बन्ध में स्वतंत्र रूप से लिखा गया आलोचनात्मक अथवा परिचयात्मक एक भी प्रकाशित ग्रन्थ लेखक के देखने में नहीं आया। हां, भिखारीदास के जीवनवृत्त तथा ग्रन्थों आदि के सम्बन्ध में मिश्रबन्धु विनोद में थोड़ी सी सामग्री अवश्य मिलती है परन्तु संक्षेप में होने के कारण उसमें कोई विशेषता प्रतीत नहीं होती। इस सामग्री में भी भ्रामकता है। भिखारीदास के जीवन के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों द्वारा तथा नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में अनेक स्थलों पर कहा गया है कि वे बुन्देलखंड के रहने वाले थे। खोज रिपोर्टों में उन्हें पन्ना नरेश किन्हीं हिन्दूपति का भी आश्रित बताया गया है। कुछ लोगों का कथन है कि वे काशी नरेश के भी आश्रित थे। ये सभी बातें भ्रमपूर्ण एवं कपोलकल्पित हैं यह प्रस्तुत प्रबन्ध में सिद्ध किया गया है। दास जी के जीवन के सम्बन्ध में कुछ विश्वस्त जानकारी प्राप्त कराने में प्रताप सोमवंशावली नामक ग्रन्थ, जिसकी एक प्रति लेखक को प्रतापगढ़ दुर्ग में स्थित महाराजा प्रतापगढ़ के पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी, बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। इस ग्रन्थ में प्रतापगढ़ राज्य के सभी नरेशों तथा उनके प्रमुख कर्मचारियों एवं आश्रित कवियों के सम्बन्ध में प्रभूत सामग्री मिलती है। दास के सम्बन्ध में वर्तमान इतिहासों तथा अन्य ग्रन्थों में पायी जाने वाली अविश्वसनीय सामग्री को देखते हुए लेखक ने दास के जन्म एवं निवास स्थान ट्यौङ्गा जाकर ही उनके सगे सम्बन्धियों से प्रामाणिक तथ्यों का पता लगाना उचित समझा और इस कार्य में लेखक को सफलता मिली। लेखक का विश्वास है कि उसके द्वारा दिये गये अधिकांश तथ्य अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं। फलतः दास जी के जीवन के सम्बन्ध में स्थलीय जांच पड़ताल के आधार पर प्राप्त सूचनाएं लेखक द्वारा संग्रहीत उसकी मौलिक सूचनाएं हैं।

जहां तक दास जी के ग्रन्थों का सम्बन्ध है लेखक का विश्वास है कि उनके काव्य-निर्णय, शृंगार निर्णय तथा छंदोर्णव पिंगल को छोड़कर अन्य ग्रन्थ अधिकांश विद्वानों के देखने में नहीं आये। उनके नाम प्रकाश तथा रस सारांश की प्रतियां लेखक को लीथो प्रणाली पर छपी हुई देखने को मिली थीं जिनमें त्रुटियों की भरमार थी। फलतः विवेचन के उद्देश्य से लेखक को प्रतापगढ़ नरेश के पुस्तकालय से प्राप्त 'रस सारांश' की एक हस्तलिखित प्रति पर निर्भर रहना पड़ा। अन्य ग्रन्थों जैसे तेरिज काव्य निर्णय तथा तेरिज रस सारांश की तो हस्तलिखित प्रतियां ही लेखक के देखने में आयी थीं। दास के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा की प्रकाशित तथा अप्रकाशित खोज रिपोर्टों, मिश्रबन्धु विनोद तथा हिन्दी साहित्य के अन्य सभी इतिहासों में उल्लिखित 'छन्द प्रकाश' नाम की एक हस्तलिखित प्रति लेखक ने रामनगर (बनारस) के पुस्तकालय में देखी थी, परन्तु यह तो निश्चय ही दास की कृति नहीं है और इस सम्बन्ध में अभी तक हिन्दी के सभी इतिहासकार भ्रम में रहे हैं। लेखक ने अपने विवेचन में इसे पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है। फलतः लेखक ने दास जी के

ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी जो तथ्य संग्रह किये हैं वे मौलिक हैं। जहां किसी बात की सत्यता प्रमाणित नहीं हो गयी है वहां लेखक ने इस बात को स्पष्ट कह दिया है। लेखक का विश्वास है कि उसने भिखारीदास के सम्बन्ध में सभी उपलब्ध सामग्री का उपयोग कर लिया है और जहां जहां से एतद्विषयक कुछ भी सूचनाएं प्राप्त हुई हैं उनका यथास्थान उल्लेख कर दिया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध चार खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में कवि के जीवनवृत्त का विवेचन है। इस सम्बन्ध में अन्तः साक्ष्य, बहिःसाक्ष्य तथा जनश्रुतियों का आधार लिया गया है। बहिःसाक्ष्य के अन्तर्गत प्रमुखतया प्रतापसोमवंशावली, शिवसिंह सरोज, मिश्रबन्धु विनोद, भिखारीदास की पुस्तकों पर भूमिका रूप में संकलनकर्ताओं के मत, नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों तथा हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख आधुनिक इतिहासों की सहायता ली गयी है। प्रस्तुत प्रबन्ध में भिखारीदास के जीवन के सम्बन्ध में दी गयी जनश्रुतियां अब तक अन्य किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं हैं। उन्हें लेखक ने निजी प्रयास से एकत्र किया है। ये जनश्रुतियां लेखक को भिखारीदास के ग्राम ट्यौङ्गा से प्राप्त हुई थीं। अतः ये लेखक की मौलिक सूचनाएं हैं। लेखक ने उपर्युक्त सभी आधारों तथा ट्यौङ्गा के कायस्थ समाज की कृपा से प्राप्त भिखारीदास के वंशवृक्ष और वहाँ के बड़े-बूढ़ों से सुनी हुई बातों तथा स्थलीय जांच-पड़ताल के आधार पर एक प्रामाणिक जीवनवृत्त प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। परन्तु लेखक को यह स्वीकार करने में तनिक भी सङ्कोच नहीं कि सारे प्रयासों के होते हुए भी न तो दास जी का जन्म-सम्वत् ही ज्ञात हो सका और न यही पता चला कि उनकी मृत्यु कब हुई थी। इस सम्बन्ध में केवल अनुमानों से काम लिया गया है।

द्वितीय खण्ड में दास की साहित्यिक रचनाओं के सम्बन्ध में विवेचन है। इस खण्ड के पूर्वार्द्ध में उन सभी परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है जो कवि के काल में विद्यमान थीं। इस दृष्टिकोण से ऐतिहासिक, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक तथा साहित्यिक परिस्थितियों का विवेचन किया गया है और यह देखने का प्रयास किया गया है कि कवि के समय तक संस्कृत तथा हिन्दी के ग्रन्थों में काव्यशास्त्र सम्बन्धी तथा काव्यविषयक कितना विवेचन हो चुका था, कवि के काव्य क्षेत्र में प्रवेश करने तक संस्कृत काव्यशास्त्र में किन किन सिद्धान्तों की स्थापना हो चुकी थी और इन सिद्धान्तों का हिन्दी साहित्य में किन किन कवियों ने प्रयोग किया था। दास के तथा अन्य काव्य ग्रन्थों के आधार पर रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन करने की भी चेष्टा की गयी है और यह जानने का प्रयत्न किया गया है कि दास जी इन प्रवृत्तियों से कहां तक प्रभावित हुए हैं। इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि कवियों में आचार्यत्व कला का प्रदर्शन करने तथा इस गुण को अपने में पैदा करने की प्रवृत्ति कहां तक थी और उन्होंने उससे कितना लाभ उठाया। संक्षेप में इस भाग में कवि को काव्य रचना की ओर प्रवृत्त करने तथा काव्याङ्गों का विवेचन करने के निमित्त प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देने वाली विविध परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय खण्ड के उत्तरार्द्ध में दास के ग्रंथों तथा उनकी प्रामाणिकता का विवेचन है। विषय-विवेचन की सुविधा के लिए इस भाग को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है—(१) सूत्रों का विवेचन, (२) ग्रन्थों की प्रामाणिकता तथा (३) प्रामाणिक ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय। सूत्रों के विवेचन के सम्बन्ध में इतना कहना पर्याप्त है कि जिन जिन प्रमुख ग्रन्थों में दास के ग्रन्थों के सम्बन्ध में थोड़ा या बहुत विवेचन मिलता है उन सभी का उपयोग किया गया है। इन सूत्रों में प्रायः सभी प्रमुख इतिहास, विविध ग्रन्थ और नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टें आ जाती हैं। खोज रिपोर्टों के सम्बन्ध में इतना कहना आवश्यक है कि प्रकाशित खोज रिपोर्टों में, जो सन् १९२९ ई० तक की हैं, दास के ग्रन्थों के सम्बन्ध में बहुत कम सूचनाएं प्राप्त होती हैं। अतः लेखक को सन् १९४९ ई० तक संकलित अप्रकाशित खोज रिपोर्टों का भी, जो नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं, अध्ययन करना पड़ा। इनसे दास की रचनाओं की ३४ हस्तलिखित प्रतियों का पता चला, जिनमें से अनेक को लेखक ने भी देखा है। ग्रन्थों की प्रामाणिकता की जांच करने के लिए लेखक ने कुछ ऐसी समान विशेषताओं का पता चलाया है जो दास के प्रत्येक ग्रन्थ में उपलब्ध होती हैं। इस खण्ड के अन्त में निष्कर्ष-स्वरूप लेखक ने तीन सूचियां दी हैं—(१) प्रामाणिक ग्रन्थों की सूची, (२) संदिग्ध ग्रन्थों की सूची तथा (३) अप्रामाणिक ग्रन्थों की सूची।

तृतीय खण्ड में दास की काव्यकला, भक्तिभावना तथा सामाजिक नीति का विवेचन है। सुविधा की दृष्टि से यह खण्ड तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में लेखक ने दास की रचनाओं का मूल्याङ्कन करने का प्रयास किया है। इस भाग के पूर्वार्द्ध में दास के काव्य के भावपक्ष का विवेचन करते हुए लेखक ने यह देखने का प्रयत्न किया है कि दास की रचनाओं में भाव-व्यञ्जना, कल्पना की उड़ान, परम्परागत वर्णन, प्रकृति-चित्रण आदि किस कोटि का हुआ है और काव्यकला के क्षेत्र में भिखारीदास का क्या स्थान है? इस भाग के उत्तरार्द्ध में शैली-पक्ष का विवेचन है जिसमें मुख्यतया व्रजभाषा सम्बन्धी संक्षिप्त प्रवृत्तियों के साथ यह देखने का भी प्रयत्न है कि दास के ग्रन्थों में भाषा विषयक ये प्रवृत्तियां कहां तक उपलब्ध हैं। इसी भाग में दास की भाषा सम्बन्धी अन्य विशेषताओं जैसे उनकी भाषा में मिलने वाली अवधी, कन्नौजी, बुन्देली आदि बोलियों के रूप, अरबी फारसी के रूप, व्याकरण सम्बन्धी दोष तथा काव्य-दोष आदि का भी विवेचन है।

तृतीय खण्ड के अन्तिम दो भागों में दास की भक्ति-भावना का उल्लेख किया गया है, जिसके अन्तर्गत भक्ति विषयक अनेक बातें जैसे राम नाम महिमा के लाभ, आत्म-शरण-सौन्दर्य का वर्णन, शिव, गंगा, गणेश आदि की स्तुति, तुलसी की भांति का आत्मदोष निवेदन, भगवान से अपने उद्धार के लिए दीनता भरी प्रार्थनाएं, ईश्वर की अनन्य भक्ति तथा पारलौकिक सुख प्राप्त करने के साधनों आदि के उद्धरण दास की रचनाओं में दिये गये हैं। ये रचनाएं भक्तों में मनःतृप्ति एवं आत्मतुष्टि की भावनाएं भर देने के लिए सक्षम हैं ऐसा लेखक का विश्वास है। कदाचित् मनुष्य को सामाजिक व्यवहारों से अवगत करने के लिए दास ने नीति

के पद भी लिखे हैं जिनकी संख्या बहुत अधिक है। इस प्रकार के अनेक पद इसी भाग में संकलित किये गये हैं।

चतुर्थ खण्ड के तीसरे भाग में दास जी की आचार्यत्व कला का विवेचन हुआ है। इस खण्ड के पूर्वार्द्ध में लेखक ने दास के आचार्य रूप के दर्शन करने का प्रयत्न किया है, और काव्यशास्त्र के विविध अङ्गों जैसे काव्य-प्रयोजन, गुण, पदार्थ, ध्वनि, तुक, काव्य-दोष, छन्द-निरूपण; रस तथा अलंकार के सम्बन्ध में दास के क्या विचार थे, उनमें उनकी कौन कौन सी नवीनता, विशेषता अथवा मौलिक उद्भावनाएं दिखलायी पड़ती हैं तथा उनके विचार संस्कृत तथा हिन्दी के काव्यशास्त्रियों से कहां तक मेल खाते हैं आदि बातों का विशद विवेचन किया गया है। लेखक के विचार से दास के नायिका-भेद के सुन्दर एवं ललित चित्रण ने उनके आचार्यत्व की प्रतिभा को अधिक निखारा है। अतः लेखक ने दास द्वारा प्रस्तुत नायिका भेद का कुछ विस्तार के साथ विवेचन किया है।

प्रबन्ध के अन्त में उपसंहार के रूप में लेखक ने प्रथमतः दास द्वारा की गयी श्रीपति के काव्य-सरोज की तथाकथित चोरी के उस आक्षेप का निराकरण किया गया है जो उन पर मिश्रबन्धुओं ने किया था। तत्पश्चात् यह देखने का प्रयत्न किया गया है कि दास पर उनके पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं का कहां तक प्रभाव पड़ा है और उनमें तथा उनके पूर्ववर्ती कवियों में कहां तक भावसाम्य है। एतदर्थ रसखान, केशव, रहीम, बिहारी, मतिराम और देव आदि प्रतिष्ठित कवियों को ही लिया गया है। इस भाग की कुछ सामग्री पं० कृष्णबिहारी मिश्र के 'देव और बिहारी' नामक ग्रन्थ से तथा शेष लेखक की मौलिक खोज एवं अध्ययन के परिणामस्वरूप प्राप्त हुई हैं। उपसंहार के अन्त में दास की विशिष्ट साहित्यिक स्थिति आदि का भी अनुमान लगाने का प्रयत्न किया गया है।

लेखक को जिन जिन विद्वानों ने अपना अमूल्य परामर्श एवं सहयोग दिया है उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना लेखक अपना धर्म समझता है। सर्वप्रथम लेखक अपने गुरु तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफेसर श्रद्धेय डा० दीनदयालु गुप्त का विशेष आभार मानता है जिनके पाण्डित्यपूर्ण निरीक्षण और जिनकी सतत प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से ही यह प्रबन्ध इस रूप में प्रस्तुत हो सका है। लेखक आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डॉ० रामकुमार वर्मा, पं० कृष्णबिहारी मिश्र, डा० भगीरथ मिश्र, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, श्री प्रभुदयाल मीतल, वर्तमान महाराज प्रतापगढ़—राजा अजीतप्रताप सिंह जी, उनके मैनेजर पंडित रसिक बिहारी जी मिश्र तथा महाराजा बनारस के निजी सचिव श्री रमेशचन्द्र दे का भी आभारी है, जिन्होंने समय समय पर अपना परामर्श देकर तथा सम्बन्धित सामग्री प्रदान करके लेखक के कार्य को सुलभ बनाया। लेखक टयौङ्गा स्थित श्री भिखारीदास पुस्तकालय, बनारस के नागरी प्रचारिणी सभा तथा क्वीन्स कालेज के पुस्तकालयों, इलाहाबाद के हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भारती भवन तथा विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों के

अधिकारियों का भी अनुगृहीत है जिन्होंने लेखक को इस प्रबन्ध से सम्बद्ध सामग्री का उपयोग करने की स्वीकृति दी थी।

इस पुस्तक में कुछ तो इस कारण कि भूल मनुष्य से ही होती है और कुछ 'मुद्रा-राक्षसों' की कृपा से कतिपय अशुद्धियाँ रह गयी हैं जिनके लिए लेखक सहृदय पाठकों का क्षमाप्रार्थी है। लेखक को विश्वास है कि पाठक ऐसे स्थलों पर उन अशुद्धियों को सुधार लेंगे।

विशेषाधिकारी (अनुवाद)
विधायिका विभाग,
उत्तर प्रदेश सरकार
लखनऊ।

नारायण दास खन्ना

दीपमालिका
कार्तिक कृष्ण १४, सं० २०१२ वि०।

प्रबन्ध में प्रयुक्त सङ्केतों की सूची

सङ्केत	पूर्ण शब्द
१. अनु०	अनुवादक
२. ई०	ईसवी
३. का० नि०	काव्य निर्णय
४. का० प्र०	काव्य प्रकाश
५. कुब०	कुवलयानन्द
६. क्र० चि०	क्रम चिह्न
७. खो० रि०	खोज रिपोर्ट
८. गी० प्रे०	गीता प्रेस
९. चं० लो०	चन्द्रालोक
१०. छं० पि०	छन्दोर्णव पिंगल
११. टी०	टीकाकार
१२. डा०	डाक्टर
१३. दास	भिखारीदास
१४. ध्व०	ध्वन्यालोक
१५. ना० प्र० स०	नागरी प्रचारिणी सभा
१६. पं०	पंडित
१७. पृ० सं०	पृष्ठ संख्या
१८. बि० स०	बिहारी सतसई
१९. भि० दा०	भिखारीदास
२०. र० च०	रस चन्द्रिका
२१. र० मं०	रस मंजरी
२२. र० सा०	रस सारांश
२३. र० सु०	रसार्णव सुधाकर
२४. सा० द०	साहित्य दर्पण
२५. शृं० नि०	शृंगार निर्णय
२६. वि०	विक्रमीय
२७. वि० पु०	विष्णु पुराण
२८. N. P. S.	Nagri Pracharini Sabha
२९. PP.	Pages

विषय सूची

खण्ड १

जीवन-वृत्त (१–४१)

१. अन्तः साक्ष्य ३ – ९

(१) वंश परिचय–३, (२) विद्वत्ता एवं अध्ययन–४, (३) आश्रयदाता–५, (४) काल निर्णय–७।

२. बहिःसाक्ष्य ९—२२

(१) प्रताप सोमवंशावली (सोमवंशियों का इतिहास)–१०, (२) शिवसिंह सरोज–१५, (३) मिश्रबन्धु विनोद–१५, (४) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण–१८, (५) भारत जीवन प्रेस, बनारस द्वारा मुद्रित काव्यनिर्णय–१९, (६) बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा मुद्रित काव्य-निर्णय–१९, (७) नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में प्राप्त जीवनवृत्त–२०, (८) आधुनिक इतिहासों में भिखारीदास का इतिवृत्त–२१।

३. जनश्रुतियां २३

प्रामाणिक जीवनवृत्त २४—२९

जन्म एवं मृत्यु–२५, वंश-परिचय–२६, आश्रयदाता–२७, वैयक्तिक जीवन–२८।

अनुवाद-क्षमता २८—३९

दास का व्यक्तित्व ३९

साहित्य रचना के लिए दास की साधना ४०

खण्ड २

साहित्य रचना (४२–१०२)

(क) रीतिकाल का आरंभ ४२—५२

(१) ऐतिहासिक पूर्व-पीठिका–४३, (२) धार्मिक परिस्थितियां–४७, (३) आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियां–४८, (४) साहित्यिक परिस्थितियां–५१।

(ख) रीतिकाव्य का शास्त्रीय आधार ५२—६२

(१) रस वर्ग–५४, (२) अलंकार वर्ग–५६, (३) रीति वर्ग–५७, (४) वक्रोक्ति वर्ग–५९, (५) ध्वनिवर्ग–६०।

(ग) हिन्दी में रीति-ग्रन्थों की परम्परा ६२—६५

(घ) रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां ६५—७२

(अ) शृंगारिकता ६६

(१) नायिका भेद–६७, (२) नखशिख वर्णन–६८, (३) षट्ऋतु एवं प्रकृति वर्णन–६८, (४) राधाकृष्ण चित्रण–६९, (५) ब्रजभाषा–६९।

(आ) आचार्यत्व ७०

(ङ) भिखारीदास के ग्रन्थ और उनकी प्रामाणिकता ७२—१०२

(१) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण–७६, (२) प्रताप सोमवंशावली–७६, (३) नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में प्राप्त विवरण–८०, काव्यनिर्णय ८१, छन्दार्णव पिंगल–८३, शृंगार निर्णय–८४, रस सारांश–८५, नाम प्रकाश अर्थात् अमरकोश अथवा अमर तिलक–८५, विष्णुपुराण भाषा–८६, तेरिज काव्य निर्णय–८७, तेरिज रस सारांश–८८, शतरंज शतिका–८९, छन्द-प्रकाश–९०।

ग्रन्थों की प्रामाणिकता ९०

छन्द प्रकाश–९५, (१) राग निर्णय–९८, (२) ब्रजमाहात्म चन्द्रिका–९८, (३) पन्थ पारख्या–९९, (४) वर्णनिर्णय–९९।

(१) 'दास' के प्रामाणिक ग्रन्थ–१००, (२) 'दास' के संदिग्ध ग्रन्थ–१००, (३) 'दास' के नाम से प्राप्त होने वाले अप्रामाणिक ग्रन्थ–१००।

प्रामाणिक ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय १००

खण्ड ३

काव्य कला (१०३–१५९)

(१) भाव पक्ष १०३—१२३

भिखारीदास का काव्यादर्श–१०३, काव्य का स्वरूप–१०३, कवियों के गुण–१०३, काव्याधार—ब्रजभाषा–१०४, काव्य रस के अधिकारी–१०४, रसिकों की व्याख्या–१०५, कवि की सफलता–१०५।

कवि परीक्षा–१०५-(१)प्रतिभा–१०६,(२)काव्यरीतियों का अध्ययन–१०६, (३)लोकव्यवहार पटुता अथवा लोकानुभव–१०७।

मनोवैज्ञानिकता के आधार पर शृंगार रस का सूक्ष्म विवेचन १०९

दास के शृंगार वर्णन में मनोवैज्ञानिक क्रम–११०, (१) मर्यादित शृंगार चित्रण–११२, (२) अमर्यादित शृंगार–११३।

भाव व्यंजना ११४

सौंदर्य चित्रण–११४, विरह वर्णन–११५, अश्लील शृंगार वर्णन–११७, भाव-व्यंजना के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण–११८, अनुभावों द्वारा भाव-व्यंजना–११९, कल्पनानत्व–११९, परम्परा-गत वर्णन–१२१, प्रकृति वर्णन–१२१।

(२) शैली पक्ष १२३—१४४

भाषा विवेचन १२४

ब्रजभाषा की व्यापकता–१२४, ब्रजभाषा का आरम्भिक रूप–१२५, ब्रजभाषा का माधुर्य एवं सौष्ठव–१२५, ब्रजभाषा की प्रकृति–१२६, उच्चारण–१२७ ।

कारक और विभक्तियां १२७

सर्वनाम १२७

उत्तम पुरुष–१२७, मध्यम पुरुष–१२८, अन्य पुरुष–१२८, अन्य रूप–१२८ ।

क्रिया १२८

वर्तमानकाल–१२८, भूतकाल–१२९, भविष्यत्काल–१२९, आज्ञा, विधि, प्रार्थना आदि–१२९, कृदन्त–१३० ।

अनुनासिकता १३०

सर्वनाम–१३०, क्रिया–१३१,–वर्तमानकाल–१३१, भूतकाल–१३२, भविष्यत्काल–१३२ ।

दास की भाषा संबंधी कुछ अन्य विशेषताएं १३३

(१) 'क्ष' के स्थान पर 'छ' अथवा 'च्छ'–१३३, (२) शब्दों की आवृत्ति–१३३, (३) संधियोग अथवा संधिविग्रह द्वारा समान योजना–१३४, (४) समोच्चरित शब्द योजना–१३४ ।

भाषा की विविधता १३५

(१) संस्कृत–१३६, (२) तत्सम तथा तद्भव रूप–१३६, प्राकृत के शब्दों के प्रयोग–१३६ ।

अन्य बोलियों के शब्द १३७

अवधी–३७, कन्नौजी–१३७, बुन्देली–१३७, देशज शब्दों के प्रयोग–१३८, खड़ी बोली–१३८, अरबी–१३९, फारसी–१३९ ।

मुहावरों का प्रयोग १४०

दास की कविता में भाषा तथा काव्य संबंधी दोष १४०

लिंग तथा वचन दोष–१४०, वाक्य रचना दोष–१४१, व्याकरण में असम्मत रूप–१४१, अर्थदोष–१४२, अप्रचलित रूपों का प्रयोग–१४२, स्थानच्युतत्व दोष–१४३ ।

(३) भक्ति भावना तथा नीति १४४—१५६

राम नाम महिमा–१४५, बालकृष्ण वर्णन–१४६, शिववर्णन–१४७, गंगा वर्णन- १४७, गणेश स्तुति–१४७, पौराणिक भक्तों के उल्लेख तथा आत्मदोष निवेदन–१४८, उपालंभ भरी प्रार्थनाएं–१४९, विश्वास–१५०, अनन्यता–१५१, दीनता–१५१, संतोष–१५२ ।

तात्विक विचार १५२

(१) संसार का रूप–१५२, (२) मन की अहंकारमयी प्रकृति और उसको

प्रबोध-१५२, (३) जीवन लाभ-१५३, (४) संतमहिमा-१५३, (५) कवि कामना-१५३।

सामाजिक नीति १५४

नीतिशास्त्र की व्यापकता १५४

नीतिशास्त्र की उपयोगिता १५५।

नीतिवाक्य १५५

खण्ड ४

आचार्यत्व (१६०--३३३)

आचार्यत्व की व्याख्या १६१

काव्याङ्ग, काव्य प्रयोजन तथा काव्य के कारण १६२--१६४

काव्यांग-१६२, काव्य का प्रयोजन-१६३, काव्य के कारण-१६४।

गुण निर्णय १६४—१७४

माधुर्य-१६७, ओज-१६७, प्रसाद-१६७, समता-१६८, कान्ति-१६८, उदाहरण-१६८, अर्थव्यक्ति-१६८, समाधि-१६९, वाक्य-१६९, पुनरुक्ति प्रकाश-१७०।

गुण और रस का संबंध १७०

गुण, रस तथा अलंकार १७२

गुण, अनुप्रास तथा वृत्तियां १७३

निष्कर्ष १७४

पदार्थ निर्णय १७५—१८६

(१) वाचक पद (अभिधा) १७५

(२) लक्षणा १७६

(क) शुद्धा-लक्षणा १७९

(१) उपादान लक्षणा-१७९, (२) लक्षित लक्षणा-१७९,

(३) सारोपा-१८०, (४) साध्यवसाना-१८०।

(ख) गौणी लक्षणा १८१

(१) सारोपा गौणी- १८१, साध्यवसाना गौणी-१८१।

(३) व्यंजना १८२

(क) अभिधामूलक व्यंग्य-१८३, (ख) लक्षणामूलक व्यंग्य-१८३।

दसव्यंजक वर्णन १८४

व्यक्ति विशेष-१८४, वाच्य विशेष-१८५, अन्यसन्निधि विशेष-१८५, देश विशेष-१८५, चेष्टाविशेष-१८५।

निष्कर्ष १८६

ध्वनि विवेचन १८७-२०२

ध्वनि के भेद — १८७

१. अविवक्षित वाच्य — १८८

(१) अर्थान्तरसंक्रमित–१८८, (२) अत्यंत तिरस्कृत वाच्य–१८८।

२. विवक्षित वाच्य ध्वनि — १८९

(१) असंलक्ष्यक्रम–१९०, (२) लक्ष्यक्रम–१९०।
(१) शब्दशक्ति–१९०, (२) अर्थ शक्ति–१९१.
(३) शब्दार्थ शक्ति–१९३।

पद प्रकाशित व्यंग्य — १९३

प्रबन्ध ध्वनि—१९५, स्वयंलक्षित व्यंग्य–१९५।

गुणीभूत व्यंग्य — १९७

(१) अगूढ़–१९८, (२) अपरांग–१९८, (३) तुल्य प्रधान–१९८.
(४) अस्फुट–१९९, (५) काक्वाक्षिप्त–१९९, (६) [illegible]–१९९.
(७) संदिग्ध प्रधान–२००, (८) असुंदर–२००।

अवर काव्य — २०१

निष्कर्ष — २०२

तुक वर्णन — २०२-२०५

समसरि–२०२, विषमसरि–२०३, कष्टसरि–२०३।

मध्यम तुक — २०३

असंयोगमिलित–२०३, स्वरमिलित–२०४।

अधम तुक — २०४

अमिल–सुमिल–२०४।

निष्कर्ष — २०५

छन्द निरूपण — २०५—२०८

काव्यदोष — २०९—२३०

१. शब्ददोष — २१०—२१६

(१) श्रुतिकटु–२११, (२) भाषाहीन–२११, (३) अप्रयुक्त–२११,
(४) असमर्थ–२१२, (५) निहितार्थ–२१२, (६) अनुचितार्थ–२१२,
(७) निरर्थक–२१३, (८) अवाचक–२१३ (९) अश्लील–२१[illegible]
(१०) ग्राम्य–२१४, (११) संदिग्ध–२१४, (१२) अप्रतीत–२१[illegible]
(१३) नेयार्थ–२१५, (१४) क्लिष्ट–२१५ (१५) अविमृष्ट विधेयांश–२१५,
(१६) विरुद्धमति–२१[illegible]।

२. वाक्यदोष — २१६—२२१

(१) प्रतिकूलाक्षर–२१[illegible], (२) हतवृत्त–२१[illegible], (३) [illegible]–२१[illegible].
(४) (५) (६) (७) न्यून, अधिक, पुनरुक्त तथा [illegible]–२१८.
(८) समाप्तपुनरात्त–२१८, (९) [illegible]–२१८, (१०) अभि-

अभिमतयोग–२१६, (११) अकथित कथनीय–२१६, (१२) अस्थानस्थपद–२१६, (१३) संकीर्ण–२१६, (१४) गर्भित–२२०, (१५) अमतपरार्थ–२२०, (१६) प्रकरणभंग–२२०, (१७) प्रसिद्धहत–२२१ ।

३. अर्थदोष २२१––२२९

(१) अपुष्टार्थ–२२२, (२) कष्टार्थ–२२२, (३) व्याहत–२२२, (४) पुनरुक्ति–२२३, (५) दुष्क्रम–२२३, (६) ग्राम्य–२२३, (७) संदिग्ध–२२३, (८) निर्हेतु–२२४, (९) अनवीकृत–२२४, (१०), (११) नियम अनियम परिवृत्त–२२४, (१२), (१३) विशेष परिवृत्त तथा सामान्य परिवृत्त–२२४, (१४) साकांक्ष्य–२२५, (१५), (१६) विधि अयुक्त तथा अनुवाद अयुक्त–२२६, (१७), (१८) प्रसिद्ध तथा विद्याविरुद्ध–२२६, (१९) प्रकाशित विरुद्ध–२२६, (२०) सहचर भिन्न–२२६, (२१) अश्लीलार्थ–२२७, (२२) त्यक्त पुनःस्वीकृत–२२७ ।

दोषोद्धार वर्णन २२७–२३०

रसदोष वर्णन––२२८, प्रकृति विपर्यय दोष––२२९ ।

निष्कर्ष २३०

रस विवेचन (२३१-२५७)

शृंगार रस वर्णन २३४

वियोग शृंगार २३४

अभिलाष–२३५, स्वप्नदर्शन–२३५, श्रुतिदर्शन–२३५, प्रवास विप्रलम्भ–२३६, लालसा, चिन्ता, स्मृति–२३६, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण–२३७ ।

संयोग शृंगार २३८

नायिका भेद वर्णन २३८-२५८

नायिका भेद का वर्गीकरण २३९

(१) जात्यनुसार २३९

पद्मिनी, चित्रिनी, शंखिनी, तथा हस्तिनी–२३९ ।

(२) धर्मानुसार नायिकाएं २३९

१. साधारणा–२४०, २. स्वकीया–२४० ३. परकीया २४३ ।

'रस सारांश' के अनुसार परकीया के भेदोपभेद २४३–२४६

(१) असाध्या २४४

गुरुजनभीता, दूतीवर्जिता, धर्मभीता, खलवेष्टिता–२४४ ।

(२) साध्या २४४

(१) गुप्ता–२४५, (२) विदग्धा–२४५––(क) वचन-विदग्धा, (ख) क्रिया-विदग्धा–२४५, (३) कुलटा, (४) मुदिता, (५) लक्षिता, (६) अनुशयना–२४५

श्रृंगार निर्णय के अनुसार परकीया के भेदोपभेद — २४६

अनूढ़ा ऊढ़ा–२४६, असाध्या ऊढ़ा–२४७, दुखसाध्या–२४८।

प्रकृति के अनुसार परकीया के भेद — २४८

(१) विदग्धा–२४८, (२) लक्षिता, मुदिता, अनुशयना–२४९।

दास द्वारा निर्दिष्ट प्रकृत्यनुसार नायिकाओं का वैज्ञानिक विवेचन — २५२

वय के अनुसार नायिकाओं के भेद — २५४

(१) मुग्धा — २५४

(अ) अज्ञात यौवना–२५५, (आ) ज्ञात यौवना–२५५।

(२) मध्या — २५५

(३) प्रौढ़ा — २५६

रति संयोग से नायिकाओं के प्रकार — २५६

(१) प्रगल्भवचना–२५७ (२) धीरादि भेद (धीरा, अधीरा, धीराधीरा)–२५७।

वय-क्रमानुसार निर्दिष्ट नायिकाओं का वैज्ञानिक विवेचन — २५८

दशानुसार नायिकाएं — २५९

अवस्थानुसार नायिकाएं — २६०

संयोग श्रृंगार — २६०

१. स्वाधीनपतिका–२६१, २. वासकसज्जा–२६२, ३. अभिसारिका–२६३।

वियोग श्रृंगार — २६४

१. उत्कंठिता–२६४, २. खंडिता–२६४ –धीरादि भेद–२६५, धीरा–२६५, अधीरा–२६५, धीराधीरा–२६५, ३. मानिनी–२६६, ४. कलहांतरिता–२६७, ५. विप्रलब्धा–२६७ ६. प्रोषितभर्तृका–२६८, प्रवत्स्यत प्रेयसी, प्रोषितपतिका, आगच्छतपतिका, आगतपतिका–२६८–२६९।

गुणानुसार नायिकाएं — २७०

अवस्थानुसार नायिकाओं के क्रम का वैज्ञानिक विवेचन — २७०

संयोग श्रृंगार — २७१

वियोग श्रृंगार — २७२

नायकभेद — २७५-२७८

(१) अनुकूल–२७५, (२) दक्षिण–२७६, (३) शठ–२७६, (४) धृष्ट–२७७।

नायक सखा वर्णन — २७७

पीठमर्द, विट, चेटक, विदूषक–२७८।

उद्दीपन विभाव — २७९-२८२

सखी–२७९, संघट्टन कर्म–२८१, विनय कर्म–२८१।

अन्य प्रकार के उद्दीपन विभाव — २८१

हाव–२८१, हेला–२८२।

दास के ग्रन्थों में अन्य रसों का विवेचन तथा चित्रण २८२-२८४

हास्य–२८२, वीर–२८३, करुणा–२८३, शांत–२८४ ।

व्यभिचारी भाव वर्णन २८४

भावाभास वर्णन २८५

अपरांग वर्णन २८६

प्रेयस् अलंकार–२८७, ऊर्जस्वि अलंकार–२८७,

समाहितालंकार–२८८, भावसंधिवत्, भावोदयवत्, भावसबलवत्–२८८ ।

अलंकार विवेचन (२८९-३३३)

उपमादि वर्ग २८९

उपमा–२९१, दृष्टान्त–२९१, अर्थान्तरन्यास–२९२, निदर्शना–२९२, तुल्य योगिता–२९३, प्रतिवस्तूपमा–२९३ ।

उत्प्रेक्षादि वर्ग २९४

अपह्नुति–२९६, स्मरण–२९७ ।

व्यतिरेक रूपक वर्ग २९७

रूपक–२९९, उल्लेख अलंकार–३०० ।

अतिशयोक्ति आदि वर्ग ३०१

अतिशयोक्ति–३०१, उदात्त–३०१ ।

अन्योक्त्यादि वर्ग ३०२

समासोक्ति–३०३, व्याजस्तुति–३०४ ।

विरुद्धादि वर्ग ३०५

विभावना–३०६, असंगति–३०७, विषम–३०७ ।

उल्लासादि वर्ग ३०९

विचित्र, अतद्गुण, पूर्वरूप–३१०, अनुगुण–३११, मीलित उन्मीलित, विशेषक–३११ ।

समालंकारादि वर्ग ३११

समालंकार, समाधि–३१२, परिवृत्ति, असम्भव, सम्भव–३१३ सहोक्ति, विनोक्ति, प्रतिषेध, विधि काव्यार्थापत्ति–३१४ ।

सूक्ष्मादि अलंकार वर्ग ३१५

पिहितालंकार, युक्ति और व्याजोक्ति–३१६, गूढ़ोत्तर–३१७, ललित–३१८, परिकर तथा परिकरांकुर–३१८ ।

स्वभावोक्ति आदि वर्ग ३१९

स्वभावोक्ति, हेतु, प्रमाण, काव्यलिंग–३१९, प्रश्नोत्तर–३२० ।

यथासंख्य तथा दीपकादि वर्ग ३२१

यथासंख्य–३२१, उत्तरोत्तर, रसनोपमा, रत्नावली, पर्याय-३२२, संकोच, विकास, दीपक–३२३ ।

काव्य गुण विवेचन के अन्तर्गत वर्णित अलंकार वर्ग ३२३

अनुप्रास–३२३, वीप्सा, यमक, सिंहावलोकन–३२४।

शब्दालंकार वर्ग ३२६

विरोधाभास–३२७, मुद्रालंकार–३२७, वक्रोक्ति, पुनरुक्तिवदाभास–३२८।

चित्र-काव्य वर्णन ३२८

प्रश्नोत्तर–३२६, वाणीचित्र, लेखनी चित्र–३३०।

अलंकार संख्या ३३१

अलंकारों के वर्गीकरण पर मत ३३२

अलंकार तालिका ३३३

उपसंहार (३३४–३५८)

दास पर निराधार दोषारोपण ३३४

दास तथा श्रीपति का काल-निर्धारण एवं तत्सम्बन्धी अन्य विचार ३३८

दास तथा उनके पूर्ववर्ती कवियों में भावसाम्य ३४०

रसखान और दास–३४१, केशव और दास–३४२, रहीम और दास–३४२, सेनापति और दास–३४३, दास और बिहारी–३४५, मतिराम और दास–३४६, देव और दास, ३५०।

दास की मौलिकता ३५३

१. मान्य आचार्यों के मतों के प्रतिकूल स्वतन्त्र मत की स्थापना–३५३, २. वर्गीकरण द्वारा वैज्ञानिक विवेचन–३५४, ३. मान्य नामों के स्थान पर नये नामों का प्रयोग–३५५, नवीन उद्भावनाएं ३५६।

दास की विशिष्ट साहित्यिक स्थिति ३५६

सहायक-ग्रन्थ-सूची ३५६

ग्रन्थ–निदेश ३६३

चित्र-सूची (पृ० २४–२५)

१. ग्राम टयौङ्गा।

२. प्रतापगढ़ का प्राचीन दुर्ग।

३. श्री भिखारीदास जूनियर हाई स्कूल, टयौङ्गा।

४. श्री भिखारीदास पुस्तकालय, टयौङ्गा।

५. श्री सरस्वती मन्दिर।

६. भिखारी चबूतरा।

७. 'भिखारी मेला' क्षेत्र।

८. कुछ टयौङ्गा वासी।

खण्ड १

जीवन-वृत्त

नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभः।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभः।

(साहित्यदर्पण)

"प्रथम तो संसार में मनुष्य योनि पाना दुर्लभ, फिर उसमें विद्या का होना दुर्लभ, कवित्व वृत्ति का होना तो और भी दुर्लभ है तथा उसमें शक्ति का होना तो अत्यन्त दुर्लभ है" और जिसे ये सर्व गुण सुलभ हों वह कवि है। कवि हमारे अन्तस् के भावजगत को आलोड़ित-प्रलोड़ित करता हुआ उसमें आनन्द का उद्रेक और अलौकिक भावनाओं की अपूर्व सृष्टि करता है। "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आयी है उसे कविता कहते हैं[1]।" काव्य-रसिक पाठक का हृदय सदा से कवि-प्रसूत भावों का यथावत् ग्रहण करता तथा अपने अन्तस् में कल्पना-लोक का वैभव बिखेरता आया है। वास्तविकता यह है कि रसिक पाठक का मन कविता में तभी आनन्द विभोर हो उठता है जब वह कवि के भाव लोक से निसृत प्रत्येक शब्द, अर्थ, अभिव्यक्ति आदि का ठीक उसी दशा में ग्रहण करे जिस दशा म कवि ने उसका अनुभव और चित्रण किया हो, जब वह कवि की उस परिस्थिति के साथ अपना सामञ्जस्य स्थापित कर सके जिस में कवि के हृदय से कविता की निर्झरिणी फूटी हो, जब वह कवि के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं की पृष्ठभूमि में लिखे गये प्रत्येक शब्द का वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ अथवा व्यंग्यार्थ ठीक ठीक समझने में पूर्ण सक्षम हो। अतः स्वभावतया पाठक कवि के जीवन की प्रायः सभी प्रमुख घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में जानने के लिए उत्सुक रहता है और जब तक उसकी इस जिज्ञासा की तुष्टि नहीं होती उसे काव्य का वास्तविक आनन्द, जिसे ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है, नहीं प्राप्त होता।

हिन्दी साहित्य को काव्य का अक्षय वरदान देने वाले हमारे अनेक कवियों का जीवन-वृत्त प्रायः सन्दिग्ध ही रहा है, क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने विषय में कुछ नहीं लिखा। इसका कारण चाहे उनका अहम् का निराकरण तथा दैन्य का प्रदर्शन रहा हो अथवा 'स्वान्तः सुखाय' कविता करने की वह प्रवृत्ति जो भौतिक यश और वैभव से दूर रह कर उसकी

१. रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि (पहला भाग), पृ० १९२–१९३।

श्री-समृद्धि में अपना योग देती है, अथवा और कुछ, इससे यह हानि तो अवश्य हुई कि हम अपने अनेक कवियों के जीवन-वृत्त से प्रायः अनभिज्ञ रह गये । अनुमानों के आधार पर उनके विषय में हम थोड़ा बहुत ही जान पाते हैं । भिखारीदास का जीवन चरित्र तथा उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख किसी एक स्थान पर नहीं मिलता । अतः इसके लिए विशेष छानबीन की आवश्यकता है । कवि के जीवन की घटनाओं के विषय में जानने के लिए प्रायः निम्नलिखित आधार लिये जाते हैं ।

१. **अन्तःसाक्ष्य**—कवि-रचित ग्रंथों के उन स्थलों के आधार पर कवि के जीवन तथा उसके जीवन-काल में घटित घटनाओं पर प्रकाश डाला जा सकता है जहाँ स्वयं कवि ने अपने अथवा अपने पूर्वजों के विषय में लिखा है । इन अंशों के अध्ययन से जिन तथ्यों का स्पष्टीकरण होता है वे अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक होते हैं । इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल में हमारे कवियों में आत्मचरित लिखने अथवा स्वप्रशंसा एवं स्वगुणगान की प्रथा, जैसी आजकल पाश्चात्य प्रभाव के कारण दृष्टिगोचर होती है, न थी । अतः अन्तःसाक्ष्य के आधार पर कवियों के जीवन पर जो कुछ प्रकाश पड़ता है वह अत्यन्त अल्पमात्रा में ही, क्योंकि ऐसे स्थल प्रसङ्गवश आ जाने के कारण अधिक विश्लेषणात्मक एवं व्यापक नहीं होते ।

२. **बहिःसाक्ष्य**—कवि के समकालीन तथा परवर्ती लेखकों के ग्रन्थों में वर्णित कवि के जीवन-चरित और उसके जीवन में घटित प्रमुख घटनाओं आदि के विवरणों के आधार पर कवि के जीवन के विषय में कुछ अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है । इसमें सन्देह नहीं कि अन्तःसाक्ष्य के कम रहने तथा उसके नितान्त अभाव की स्थिति में एकमात्र बहिःसाक्ष्य के आधार पर ही किसी कवि विशेष का जीवन-चरित कुछ प्रामाणिकता के साथ जाना जा सकता है । बहिःसाक्ष्य के आधार पर किसी कवि के जीवन-वृत्त को जानने में कभी कभी कुछ कठिनाइयां भी प्रस्तुत हो जाती हैं । यह तो स्पष्ट ही है कि किसी कवि के विषय में कोई अन्य व्यक्ति तभी लिखेगा जब वह उस कवि की कला से विशेष प्रभावित हुआ हो अथवा उसके जीवन-काल में उस कवि विशेष को पर्याप्त प्रसिद्धि अथवा ख्याति प्राप्त हुई हो और कवि के जीवन-वृत्त का प्रकाश में लाना जनहित में उपयोगी समझा गया हो । इनमें से किसी भी कारण से प्रेरित होकर यदि कोई व्यक्ति अपने किसी प्रिय कवि के विषय में कुछ लिखने बैठता है तो उसमें उस कवि के लिए श्रद्धा का पुट अवश्य होता है । इस परिस्थिति में इस बात की भी सम्भावना हो सकती है कि लेखक भावों में बह कर वृत्तान्त में अतिरंजना कर गया हो । फलतः बहिःसाक्ष्य के आधार पर जीवन में घटित घटनाओं के सत्य का निरूपण करने में विशेष सावधानी की अपेक्षा होती है ।

३. **जनश्रुति**—वे बातें जनश्रुति हैं जो कवि विशेष के सम्बन्ध में जनसमुदाय और विशेषकर उस क्षेत्र में, जहाँ कवि का जन्म हुआ है अथवा जहां उसका अधिकांश जीवन व्यतीत हुआ है, मौखिक रूप से प्रचलित हों । जनश्रुतियों से कवि के जीवन-वृत्त को जानने समझने में सहायता मिलती है परन्तु उनमें प्रामाणिकता की अधिक मात्रा नहीं रहती ।

इसका प्रमुख कारण यह है कि जनश्रुतियाँ मौखिक रूप से चली आने के कारण सदा एक सी नहीं रहतीं । अधिकतर तो ऐसा होता है कि जब ऐसी जनश्रुतियाँ किसी श्रद्धालु के कान में पड़ती हैं तो वह उनमें अपने मनोनुकूल कुछ सूक्ष्म परिवर्तन कर लेता है और तब जनश्रुति का रूप बहुत कुछ परिवर्तित हो जाता है । कालान्तर में परिवर्तन की इस मात्रा में विशेष वृद्धि हो जाती है यहाँ तक कि कभी कभी तथ्य बहुत दूर रह जाते हैं और हमारे सामने जनश्रुतियों द्वारा एक ऐसा चित्र खड़ा हो जाता है जिसमें वास्तविकता के दर्शन तक नहीं होते ।

उपर्युक्त आधारों पर ही कवियों का जीवन-वृत्त जाना जा सकता है । अतः इन्हीं आधारों पर भिखारीदास के जीवन चरित का अध्ययन करना समीचीन होगा ।

(१) अन्तःसाक्ष्य

भिखारीदास के प्रमुख एवं प्रामाणिक ग्रन्थ ये हैं : काव्य निर्णय, शृङ्गार निर्णय, रस सारांश तथा छन्दोर्णव पिंगल । इनके अतिरिक्त इन्होंने नाम प्रकाश, विष्णुपुराण भाषा तथा शतरंज शतिका नामक ग्रन्थों की भी रचना की जिनकी प्रामाणिकता में कोई सन्देह नहीं ।[1] 'दास' ने अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ संकेत 'काव्यनिर्णय' तथा 'छन्दोर्णव पिंगल' में विशेष रूप से किये हैं, जिनके आधार पर निम्नलिखित तथ्यों का पता चलता है ।

१. वंश परिचय

छन्दोर्णव पिंगल[2] तथा काव्यनिर्णय[3] में 'दास' ने निम्नलिखित पंक्तियों में अपना वंश परिचय दिया है :

अभिलाषा करी सदा ऐसनिका होय ब्रित्थ सब ठौर दिन सब याही सेवा चरचानि ।
लोभा लई नीचै ज्ञान हलाहल ही को अंशु अंत है क्रिया पाताल निंदा रस ही को खानि ।
सेनापति देवी केर शोभा गनती को भूप पन्ना मोती हीरा हेम सौदा हास ही को जानि ।
होय पर देव पर बदे यश रटै नाउं खगासन नगधर सीतानाथ कोलापानि ।

उपर्युक्त कवित्त 'दास' ने अपना वंश परिचय देने की दृष्टि से ही लिखा है । इस कवित्त से उनका वंश परिचय किस प्रकार प्राप्त हो सकता है उसके लिए उन्होंने निम्नलिखित दोहा दे दिया है—

या कवित्त अंतरवरण लै तुकंत द्वै छंडि ।
दास नाम कुल ग्राम कहि नाम भगति रस मंडि ।[4]

यदि उपर्युक्त कवित्त के अंतरवर्णों (अर्थात् बीच में एक एक वर्ण छोड़ कर) को अलग लिख लिया जाय तो 'दास' के नाम, उनके वंश परिचय और उनके निवास स्थान का पता चल सकता है । दोहे के अनुसार वंश परिचय जानने के लिए तुकांत के दो वर्णों को छोड़ना पड़ेगा अन्यथा कुल कवित्त निरर्थक हो जायगा ।

---

१. देखिये खण्ड २ का उत्तरार्द्ध
२. छन्दोर्णव पिंगल, पृ० ४ ।
३. काव्य निर्णय, पृ० २४४ ।
४. छन्दोर्णव पिंगल, पृ० ४ ।

उपर्युक्त निर्देशानुसार पढ़ने से कवि का 'नाम कुल ग्राम' परिचय इस प्रकार ठहरता है :—

भिखारीदास कायत्थ, बरन बहीवार, भाई चैनलाल को, शुत (सुत) कृपाल दास को, नाति वीरभान को, पन्नाती रामदास को, यरवर देश, टैउंगा नगर ताथला।

कवि का नाम भिखारी दास कायस्थ तथा वर्ण बहीवार था। इनके भाई का नाम चयनलाल (अथवा चैनलाल), पिता का कृपालदास, पितामह का वीरभानु तथा प्रपितामह का रामदास था। ये अरवर प्रदेश में ट्यौङ्गा ग्राम के निवासी थे।

२. विद्वत्ता एवं अध्ययन

भिखारीदास अपने समय के आचार्य माने जाते हैं क्योंकि इन्होंने न केवल अनेक ग्रन्थों की ही रचना की अपितु हिन्दी साहित्य में परम्परा से चली आती हुई काव्य परिपाटी को भी परिष्कृत किया तथा काव्याङ्गों के विवेचन एवं विश्लेषण द्वारा अपने आचार्यत्व की अभिव्यक्ति की। इनका अध्ययन गम्भीर एवं विशाल था। इन्होंने जिन अनेक ग्रन्थों की रचना की उनमें इन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्र संबंधी ग्रन्थों की सहायता ली है और स्वयं इसे स्वीकार भी किया है।

बूझि सुचन्द्रालोक अरु काव्य प्रकासहु ग्रन्थ।
समुझि सुरुचि भाषा कियो लै औरौ कवि पन्थ।[1]

इससे स्पष्ट है कि उन्होंने काव्यनिर्णय की रचना करते समय 'चन्द्रालोक' तथा काव्य प्रकाश' की सहायता ली, साथ ही अन्य कवियों के भावों को भी ग्रहण किया। 'छन्दोर्णव पिङ्गल' ग्रंथ की रचना करते समय भी उन्होंने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने प्राकृत, भाषा तथा संस्कृत के अनेकानेक पिङ्गल ग्रन्थों का अध्ययन करने के पश्चात् ही 'भाषा' में 'छन्दोर्णव' की रचना की :

प्राकृत भाषा संस्कृत लखि बहु छन्दो ग्रंथ।
दास कियो छन्दोरणव भाषा रचि शुभ पंथ।[2]

भिखारीदास ने अनेक प्राचीन तथा समकालीन कवियों एवं आचार्यों की रचनाओं का विशेष रूप से अध्ययन किया था और उनका विचार था कि इन्हीं की प्रेरणा से वे कवि-मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। उन्होंने इन कवियों की पदवन्दना भी की है क्योंकि उन्होंने उनसे बहुत कुछ सीखा था :

बन्दौं सुकविन के चरन अरु सुकविन के ग्रंथ।
जातें कछु हौंहू लह्यो कविताई को पंथ।[3]

'दास' का मत था कि कविता उन्हीं के लिए आनन्ददायिनी होती है जो बुद्धिमान है, रसिक हैं :

दास कवित्तन की चरचा बुधिवन्तन को सुख दै सब ठाईं।[4]

१. काव्य निर्णय, पृ० २। २. छन्दोर्णव पिंगल, पृ० ४।
३. शृंगार निर्णय, पृ० २। ४. काव्य निर्णय, पृ० ४।

'रस सारांश' आरम्भ करते समय तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि जो संक्षेप में 'रस' के विषय में जानना चाहते हैं मैंने उन्हीं रसिकों के लिए 'रस सारांश' की रचना की है :

चाहत जानि जु थोर ही रस कवित्त को बंश।
तिन रसिकन के हेत यह कीन्हों रस सारंश।[1]

क्योंकि यदि पाठक रसिक न हुए, बुद्धिमान न हुए, तो वे कविता में आनन्द न प्राप्त कर सकेंगे। वे तो अर्थ का अनर्थ कर डालेंगे :

कुमति कुदूषन लाइहैं सुधरो वर्ण बिगारि।
सुमति समुझि सुख पाइहैं बिगरो वर्ण सुधारि।[2]

अपने पूर्ववर्ती आचार्यों तथा समकालीन कवियों के ज्ञान-भण्डार का अवलोकन कर तथा विविध प्रकार की भाषा पर अधिकार रखते हुए भी वे अपने सम्बन्ध में दृढ़तापूर्वक यह नहीं कह सकते थे कि वे कवि कोटि में आते भी हैं या नहीं, क्योंकि वे विश्वास ही कैसे कर सकते थे कि उनकी कविता भविष्य में कवियों पर प्रभाव डालेगी या नहीं ? यदि उनकी कविता कवियों को प्रसन्न कर सकी तब तो वह वास्तविक कविता है अन्यथा वे समझ लेंगे कि इसी बहाने उन्होंने राधाकृष्ण का स्मरण कर लिया है :

आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई न तु, राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।[3]

३. आश्रयदाता

अन्तःसाक्ष्य के आधार पर भिखारीदास के आश्रयदाता के संबंध में विशेष विवरण नहीं प्राप्त होता। इतना अवश्य पता चलता है कि वे 'अरवर' प्रदेश के राजा पृथ्वीपति के भ्राता हिन्दूपति के आश्रित थे। 'दास' ने अपने अधिकतर ग्रन्थों की रचना अपने आश्रय-दाता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से ही की थी।

जगत विदित उदयाद्रि सों अरवर देस अनूप।
रवि लौं पृथ्वीपति उदित तहाँ सोमकुल भूप।
सोदर तिनके ज्ञाननिधि हिन्दूपति सुभ नाम।
जिनकी सेवा में लह्यो दास सकल सुख धाम।[4]

इस दोहे से पता चलता है कि इनके आश्रयदाता हिन्दूपति 'काव्य निर्णय' की रचना के समय तक स्वयं राजा न थे अपितु केवल अरवरपति के सहोदर थे। भिखारीदास ने अधिकांश ग्रन्थों की रचना अपने इन्हीं आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए की थी :

श्री हिन्दूपति रीझि हित समुझि ग्रन्थ प्राचीन।
दास कियो शृंगार कौ निरनय सुनो प्रवीन।[5]

'रस सारांश' में तो वे ग्रन्थ-रचना के स्थान का ही सङ्केत करते हैं।

अरवर देश प्रतापगढ़ भयो ग्रंथ अवतार।[6]

१. रस सारांश, पृ० ३। २. रस सारांश, पृ० १३०।
३. काव्य निर्णय, पृ० ३। ४. काव्य निर्णय, पृ० २।
५. शृंगार निर्णय, पृ० २। ६. रस सारांश, पृ० १३०।

भिखारीदास

'नाम प्रकाश' के अन्त में भिखारीदास ने अपने आश्रयदाता का नाम देते हुए बताया है कि वे महाराजा छत्रधारीसिंह के आतमज थे ।

> इति श्री भिखारीदास कृते सोमवंशावतंश श्री १०८ महाराज
> छत्रधारी सिंहात्मज श्री बाबू हिन्दूपति सम्मते अमर तिलके
> नाम प्रकाशे तृतीय काण्डे अनेकार्थ वर्ग सम्पुर्णम् ।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दूपति अरवर देश के राजा पृथ्वीपति के सहोदर तथा सोमवंशावतंश श्री १०८ महाराजा छत्रधारीसिंह के आत्मज थे । वे ज्ञाननिधि थे और भिखारीदास को उनकी सेवा करने में सन्तोष एवं सुख का अनुभव होता था । ऐसा प्रतीत होता है कि भिखारीदास ने अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए ही अपने ग्रन्थों की रचना की । अन्तःसाक्ष्य के आधार पर हिन्दूपति का विस्तृत विवरण नहीं मिलता । उनकी वीरता के विषय में भिखारीदास ने कुछ कवित्त अवश्य लिखे हैं । निम्नलिखित पंक्तियों से सिद्ध होता है कि हिन्दूपति यवनों के कट्टर शत्रु थे और उनका वध कर डालने में संकोच नहीं करते थे :

मच्छ ह्वै के वेद काढ्यो कच्छ ह्वै रतन गाढ्यो, कोल ह्वै कुगोल रद राख्यो सबिलास है ।
बावन ह्वै इन्द्र ह्वै नृसिंह प्रह्लाद राख्यो, कीनो ह्वै द्विजेस जानें छिति छत्र नास है ।
राम ह्वै दसास्य बंस कान्ह ह्वै संहार्यो कंस, बौध ह्वै के कीनो जिन स्रावक प्रकास है ।
कलकी ह्वै राखे रहें हिन्दूपति पति, देत म्लेच्छ हति मोक्ष गति दास ताको दास है ।[2]

हिन्दूपति की वीरता तथा उनकी पानीदार तलवार का वर्णन भिखारीदास ने निम्नलिखित छंद में किया है—

> **श्री हिन्दूपति तेग तुअ, पानिप भरी सदाहि ।**
> **अचरज याकी आंच सों अरिगन जरि जरि जाहिं ।[3]**

निम्नलिखित पंक्तियों में उन्होंने पुनः हिन्दूपति का गुणगान किया है ।

साज सब जाको बिन मांगे करतार देत, परम अधीन सब भूमि धन देखियें ।
दासी दास केते करि लेत सब्रम तें, सलच्छन सहिम्मति सहर्व अवरेखियें ।
सील तन सिर ताज सखन बढ़ाये, ज्यों सकल आसि सांझ मे जगत जस पेखियें ।
हिन्दूपति गुन में जे गाये मैं सकारे, ताको बैरिन में क्रम तें नकारे करि लेखियें ।[4]

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में भिखारीदास के नाम से एक 'छन्द प्रकाश' ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है, जिसके आरंभ में यह विवरण प्राप्त होता है :

> **श्री महराजनि मुकुट मनि उदित नरायन भूप ।**
> **संभुपुरी काशी सुथल ताको राज अनूप ।**

१. नाम प्रकाश, पृ० ३५६ । २. शृंगार निर्णय, पृ० १, २ ।
३. काव्य निर्णय, पृ० १, २ । ४. काव्य निर्णय, पृ० २२० ।

रहत जासु दरबार सात दीप के अवनिपति।
रच्यो ताहि करतार तिन्ह मधि उदित दिनेस सो।
रज सत दाया दान मैं रथ मैं राजित वीर।
जग पालक घालक बलनि महाराज रनधीर।
सुकवि भिखारीदास कियो ग्रंथ छन्दारनौ।
तिन छंदनि को प्रकास भो महाराज पसंद हित।

इस विवरण से यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि भिखारीदास कभी काशीराज महाराज उदितनारायण सिंह के आश्रित रहे होंगे और उन्होंने महाराजा को प्रसन्न करने के लिए अपने ग्रंथ 'छन्दोर्णव पिंगल' के प्रस्तार, मात्रा आदि का विवरण 'छन्द प्रकाश' नामक ग्रन्थ में दिया होगा। परन्तु हमारी खोज से यह बात पूर्णतया सिद्ध है कि 'छन्द प्रकाश' की रचना भिखारीदास ने नहीं की। इस बात का विवेचन हम अगले खण्ड में विस्तारपूर्वक करेंगे।

४. काल निर्णय

अन्तः साक्ष्य के आधार पर भिखारीदास के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु तक क काल का क्रमबद्ध रूप से कोई पता नहीं चलता। उन्होंने अपनी रचनाओं में अपने जीवनक्रम तथा जीवन में घटित प्रमुख घटनाओं का भी कोई उल्लेख नहीं किया है। इतना अवश्य है कि उन्होंने, सभी ग्रंथों में तो नहीं, अपने अधिकांश ग्रंथों में ग्रंथ रचनाकाल दे दिया है और उसके आधार पर उनके कवि-काल का पता चल सकता है। हम निम्नलिखित पंक्तियों में क्रमिक रूप से उनके ग्रन्थों के रचना-काल का उल्लेख करेंगे तथा उनके आधार पर उनके कवि-काल का निरूपण करने का प्रयत्न करेंगे। क्रमिक रूप से उन्होंने अपने ग्रन्थों का रचनाकाल इस प्रकार दिया है:

रस सारांश—यह ग्रन्थ सम्वत् १७९१ वि० की श्रावण सुदी छठ को पूर्ण हुआ।

सत्रह सै इक्यानवे नभ सुदि छठि बुधवार।
अरवर देश प्रतापगढ़ भयो ग्रन्थ अवतार।[१]

इस ग्रन्थ में भिखारीदास के आश्रयदाता हिन्दूपति के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं है। इससे केवल इतना ही ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना 'अरवर देश प्रतापगढ़' में हुई। इन्होंने जितने भी ग्रन्थ लिखे हैं उनमें से दो एक को छोड़ कर प्रायः सभी में रचना काल का उल्लेख कर दिया है। ग्रन्थों में दिये हुए काल क्रमानुसार ग्रन्थों का अध्ययन करने से 'रस सारांश' उनकी प्रथम पुस्तक ठहरती है। अतः यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक होगा कि जिस समय इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की थी उस समय ये किसी के आश्रित नहीं थे। इस ग्रन्थ में यह भी उल्लेख है कि 'रस सारांश' की रचना किसी राजा महाराजा को नहीं उन रसिकों को प्रसन्न करने के लिए की गयी है जो रस और कवित्व का संक्षिप्त ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं।

१. रस सारांश, पृ० १३०।

यहां एक बात और भी उल्लेखनीय है। इनके 'विष्णुपुराण भाषा' नामक ग्रन्थ की, जो संस्कृत के 'विष्णुपुराण' का अनुवाद है, कविता इनके अन्य ग्रन्थों की तुलना में सबसे शिथिल है। अतः यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि यह 'दास' जी की सब से प्रथम कृति है और 'रस सारांश' से भी पहले लिखी गयी थी। इस ग्रन्थ में भी कहीं हिन्दूपति का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः यह उस समय लिखा गया होगा जब वे किसी के आश्रित न रहे होंगे।

हमारा तो अनुमान है कि भिखारीदास ने अपने 'विष्णुपुराण भाषा' और 'रस सारांश' ग्रन्थ किसी के आश्रय में नहीं अपितु स्वतंत्र रूप से अपने ग्राम ट्योंगा में लिखे हैं और जब इन दोनों ग्रन्थों ने उन्हें कवि के रूप में दूर दूर तक प्रसिद्ध कर दिया होगा तो काव्य प्रेमी हिन्दूपति का ध्यान भी उधर आकृष्ट हुआ होगा और उन्होंने भिखारीदास को संवत् १७९१ वि० के पश्चात् किसी समय अपने पास बुला लिया होगा।

नाम प्रकाश—काल क्रमानुसार इस ग्रन्थ का स्थान दूसरा है। इस ग्रन्थ की रचना सं० १७९५ वि० में हुई थी जैसा कि नीचे के दोहे से ज्ञात होता है—

सत्रह सै पंचानव अगहन को शित पक्ष।
तेरसि मंगल को भयो नाम प्रकाश प्रत्यक्ष।[1]

एक स्थान पर इसमें यह लिखा है कि इस ग्रंथ की रचना महाराज छत्रधारी सिंह के आत्मज बाबू हिन्दूपतिसिंह की सम्मति से हुई :—

'इति श्री भिखारीदास कृते सोमवंशावतंश श्री १०८ महाराज छत्रधारीसिंहात्मज श्री बाबू हिन्दूपति सम्मते अमर तिलके नाम प्रकाशे तृतीय कांडे अनेकार्थ वर्ग सम्पुर्णम्।'[2]

उक्त 'सम्मते' शब्द से इस बात का पता चलता है कि भिखारीदास के इस ग्रन्थ के निर्माण के कारण हिन्दूपति ही रहे होंगे। यदि वे इस ग्रन्थ निर्माण के लिए सम्मति न देते अथवा आग्रह न करते तो भिखारीदास इस ग्रन्थ को संभवतः न लिखते। इससे हिन्दूपति का संस्कृत प्रेम तथा भिखारीदास के विशद पांडित्य का पता चलता है।

छन्दोर्णव पिंगल—यह कालक्रमानुसार दास का तीसरा ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल मधु (चैत्र) बदी ९, संवत् १७९९ वि० दिया हुआ है।

सत्रह सै निन्यानवे मधु वदि नवैक बिंदु।
दास कियो छंदार्णव सुमिरि सांवरे इंदु।[3]

यद्यपि इस ग्रन्थ में किसी आश्रयदाता का नामोल्लेख नहीं है तथापि यह स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ की रचना उन्होंने हिन्दूपति के आश्रय में ही की है क्योंकि इससे पूर्व तथा इसके बाद जो ग्रन्थ उन्होंने लिखे उनमें हिन्दूपति का नाम पाया जाता है। अतः इस ग्रन्थ की रचना काल में उनके आश्रयदाता हिन्दूपति ही रहे होंगे।

१. नाम प्रकाश, पृ० ३।
२. नाम प्रकाश, पृ० ३५६।
३. छन्दोर्णव पिंगल, पृ० १२२।

काव्य निर्णय—यह काल क्रमानुसार दास का चौथा ग्रंथ है जिसका आरम्भ संवत् १८०३ वि०, मास आश्विन, विजय दशमी को हुआ था :

अट्ठारह सै तीनि को सम्बत आस्विन मास।
ग्रन्थ काव्य निरनय रच्यो विजय दसमि दिन दास।[1]

इस ग्रन्थ में भी इन्होंने अपने आश्रयदाता हिन्दूपति के नाम का उल्लख किया है और स्वीकार किया है कि इन्हीं हिन्दूपति की सेवा करके उन्हें सब सुखों की प्राप्ति हुई।[2]

शृंगार निर्णय—कालक्रमानुसार भिखारीदास का यह पाँचवाँ ग्रन्थ है जिसका आरम्भ संवत् १८०७ वि०, माधव (बैसाख) सुदी १३, दिन गुरुवार, को हुआ था :

संवत् विक्रम भूप को अट्ठारह सै सात।
माधव सुदि तेरस गुरौ अरवर थल विख्यात।[3]

इस ग्रन्थ में भी हिन्दूपति का नाम आया है।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय तक इन्होंने अपने आश्रयदाता को अपनी काव्यकला से बहुत कुछ प्रसन्न कर लिया था और हिन्दूपति भी इनकी विद्वत्ता का लोहा मानने लगे थे क्योंकि दोनों के बीच कोई दुराव न रह गया था।

यह उल्लेखनीय है कि रीतिकालीन दरबारी कवि बहुधा अपने आश्रयदाताओं की रुचि देखकर ही समयानुकूल लेखनी उठाते थे। पूर्व पृष्ठों में कहा जा चुका है कि दास ने शृङ्गार निर्णय की रचना हिन्दूपति को रिझाने के लिए की थी। अतः आश्चर्य नहीं कि जब वे अपने आश्रयदाता का विश्वास प्राप्त कर चुके हों और उनके अन्तरङ्ग मित्र हो गये हों तो उन्होंने उन्हें 'कनक कामिनी' का नग्न दर्शन कराने के लिए ही शृङ्गार से ओतप्रोत विविध नायक-नायिकाओं का वर्णन कर उनकी वासनाओं को गति देने के निमित्त शृङ्गार निर्णय की रचना की हो।

इन तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे संवत् १८०७ वि० (सन् १७५० ई०) तक अपने आश्रयदाता हिन्दूपति के साथ अवश्य रहे। 'विष्णुपुराण भाषानुवाद' उनकी सबसे शिथिल अतः प्रथम रचना है[5] जिसका आरम्भ सं० १७८५ वि० के लगभग हुआ होगा। अतः उक्त विवरणों के अनुसार दास का कवि काल सं० १७८५ वि० से सं० १८०७ वि० तक ठहरता है।

(२) बहिःसाक्ष्य

कुछ विद्वानों ने अनुमानों के आधार पर भिखारीदास की संक्षिप्त जीवनी लिखने का प्रयास किया है जो भ्रामक अधिक है। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों के आधार

१. काव्य निर्णय, पृ० १।
२. देखिये पृ० ५।
३. शृंगार निर्णय, पृ० २।
४. देखिये पृ० ५।
५. देखिये पृष्ठ ८।

पर भिखारीदास का जो थोड़ा-बहुत जीवनवृत्त मिलता है उसमें भी भ्रामकता कम नहीं है। आगे के पृष्ठों में हम उन सभी सूत्रों पर विचार करेंगे जिनसे भिखारीदास का जीवनवृत्त प्राप्त होने में सहायता मिली है।

(१) प्रताप सोमवंशावली (सोमवंशियों का इतिहास)

इस पुस्तक में उल्लेख मिलता है कि "श्री राजा प्रतापबहादुर सिंह जू देव जिला प्रतापगढ़ अवध के विद्यमान समय अनेक पुराण ग्रन्थों से देखा सुना वृत्तान्त राजनीति, धर्म-फलप्रद दासापुर बल्देवनगर निवासी पण्डित द्विजबलदेव जी ने वर्णन किया।"[1] इस पुस्तक का प्रकाशन अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में सन् १९१५ ई० में हुआ था। वस्तुतः इस ग्रन्थ में प्रताप-गढ़ के प्रायः सभी राजाओं का सविस्तर विवरण मिलता है। ग्रन्थ-रचयिता ने सोमवंशियों के इतिहास के साथ 'भिखारीदास' का भी नामोल्लेख किया है। इनके बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए इनके आश्रयदाता के विषय में भी जान लेना आवश्यक है।

उक्त सोमवंशियों के इतिहास में कहा गया है कि "जब राजा पृथ्वीसिंह का कपट से बध कर डाला गया तो इस घटना से सभी पुरजनों तथा परिजनों को दुःख और क्षोभ हुआ। इसी बीच अवध के नवाब सफ़दरजङ्ग ने सेना लेकर प्रतापगढ़ पर आक्रमण कर दिया जिसका फल यह हुआ कि जब रानियों ने यह देखा कि उनकी रक्षा करने वाला यहाँ पर कोई नहीं है तो वे कुछ योद्धाओं के साथ अपने पिता के यहाँ रीवां भाग गयीं और वहीं रहने लगीं। रानी के बड़े पुत्र दुनियापति तथा अन्य दो पुत्र बहादुरसिंह तथा मोहकमसिंह भी साथ गये। इसी बीच नवाब सफ़दरजङ्ग ने यह फर्मान जारी कर दिया कि प्रतापगढ़ राज्य में कोई भी राजा नहीं रह गया है और फिर उसने प्रतापगढ़ की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली। राजा पृथ्वीपतिसिंह के एक भाई का नाम दलथम्भनसिंह था। उनके कोई पुत्र न था। इसी समय उनका भी देहान्त हो गया और चारों ओर से विपत्ति के बादल मँडराने लगे। पृथ्वीपतिसिंह के एक छोटे भाई हिन्दूपतिसिंह थे जो कि बुद्धिमान होने के कारण दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे और लोग उनका आदर करते थे। वे विद्वान तो थे ही साथ ही कवि भी थे तथा उन्होंने बहुत से ग्रन्थों का अवलोकन किया था। भिखारीदास की इन हिन्दूपति से प्रगाढ़ मैत्री थी और वे इनका आदर तथा इनसे प्रेम करते थे। भिखारीदास राजा के दीवान थे। वे कविता करने में बड़े निपुण थे। इन्होंने अनेक प्रकार से हिन्दूपति का यश वर्णन किया।"[1]

भिखारीदास ने अपने 'काव्य निर्णय' और 'शृङ्गार निर्णय' ग्रन्थों में हिन्दूपति का यश वर्णन किया है तथा सुमति लोगों को आनंद प्रदान करने के निमित्त इन्होंने अगणित छन्दोर्णव, विष्णु पुराण, रस सारांश, अमरकोष और शतरंजशतिका की रचना की। इन पुस्तकों की राजा प्रतापबहादुरसिंह ने खोज करायी और उन्हें प्रकाशित करवाया। (ऐसा प्रतीत होता है कि राजा साहब ने इन ग्रंथों की खोज सन् १८८६ ई० के पश्चात् ही करायी

१. प्रताप सोमवंशावली, आवरण पृष्ठ १।

२. हिन्दूपति के वंशवृक्ष के लिए देखिये पृष्ठ १७।

होगी क्योंकि इस वर्ष दिसम्बर मास में वे गद्दी पर बैठे थे[1])। राजा साहब ने भिखारीदास कृत 'अमर कोष' का संशोधन करके उसे दूसरी बार प्रकाशित कराया। ये ग्रन्थ बुद्धि का विकास करने वाले तथा संसार का उपकार करने वाले थे। उनके ग्रन्थ काव्य निर्णय, रस सारांश, शृङ्गार निर्णय, विष्णु पुराण भाषा, नाम कोष तो चित्त को प्रफुल्लित करने वाले ग्रन्थ हैं। छन्दोर्णव की सहायता से तो कितने ही कवियों ने छन्दों की रचना करके उनसे यथेष्ट लाभ उठाया है। टेउङ्गा निवासी कायस्थ कुल कमल रवि श्री भिखारीदास ने इन ग्रन्थों की रचना की है।"[2]

---

१. उदित प्रताप बहादुर सिंह नृप गद्दी बैठे जबहीं।
सन् अट्ठारह सौ नौवासी मास दिसम्बर तबहीं।

प्रताप सोमवंशावली, पृ० २६१।

२. अङ्कित कथा पूर्व चित चीन्हो। घात पाय नृप को बध कीन्हो॥
समाचार नृप दल जब जाना। सबके हृदय क्रोध दुख साना॥
करत विलाप विविध मन माही। आये ते प्रतापगढ़ काही॥
तब नवाब बहु दल सरसायो। तहँ प्रतापगढ़ घेरि दबायो॥
रह गढ़ में लघु दल सो जान्यो। समरहु ते कल्याण न मान्यो॥

देख्यो रानी इत कोऊ, रक्षक नाहिं देखाय।
संग सुभट लै कछुक सो, रीवां गई पराय॥
महाराज रीवांधिपति, रानी के पितु जौन।
थिर ह्वै तित निवसत भई, इत महरानी तौन॥
ज्येष्ठ सुवन याको रह्यो, दुनियापति अस जौन।
द्वितिय बहादुरसिंह अरु, मोहकमसिंह संग गवन॥

कियो नवाब पत्र यह जारी। है प्रतापगढ़ बिनु अधिकारी॥
रह्यो न कोऊ इत नृप बाकी। सम्पति राज हरी सब ताकी॥
भ्राता नृप को सुत बिनु जानो। नाम तासु दलथम्भन मानो॥
भई मृत्यु तिनहूँ की तबहीं। चहुँधा विपति परी इमि जबहीं॥
लघु भ्राता हिन्दूपति नामा। बहुविधि मान लह्यो बुधि धामा॥
रहे विदुष अरु सुकवि विशेखा। विपुल ग्रंथ पुनि इन कर देखा॥
कवि कुल कुमुद इन्दु छवि छाये। सुकवि भिखारीदास सुभाये॥
नृप दिवान कायथ बुधि सागर। सोइ इन को यश कियौ उजागर॥

ये कविता में अति निपुण, दुहुन परस्पर प्रेम।
गायो हिन्दूपति सुयश, रुचि निज राखि अनेम।

इनके रचे ग्रंथ जो ये हैं। अंकित हिन्दूपति यश सोहैं॥
प्रथम काव्य निर्णय को जानो। पुनि शृंगार निर्णय तहँ ठानो॥

(शेषांश पृ० १२ पर)

इसके पश्चात् 'प्रताप सोमवंशावली' के रचयिता ने 'दास' की मृत्यु के संबंध में भी अपने कुछ निष्कर्ष निकाले हैं जो बहुत भ्रामक प्रतीत होते हैं। उन्होंने कहा है :—"उस अवसर पर राजा पृथ्वीपति जीवित थे तथा उन्होंने संसार में ऐसे अनेक काम किये जो कि लोगों को सुख देने वाले थे। भिखारीदास ने इनका कुछ भी हाल नहीं लिखा जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि राजा से पहले ही भिखारीदास का स्वर्गवास होगया था। यदि वे जीवित होते तो अपने ग्रंथों में राजा पृथ्वीपति का कुछ तो उल्लेख करते। हां उन्होंने सर्वप्रथम हिन्दूपति का चरित्र अपने ग्रंथों में वर्णन किया। उन्होंने हिन्दूपति के अनेक गुणों का वर्णन किया। किन्तु हिन्दूपति में एक दोष भी था जिसके कारण उन्होंने संसार में अनुचित कार्य किये और वे बदनाम भी हुए। वे इतने बड़े विषयी थे कि उन्हें अपने इस व्यसन के कारण शरीर, सम्पत्ति तथा धर्म सभी का परित्याग करना पड़ा।[1]"

(पृ० ११ का शेषांश)

छन्दोर्णव अरु विष्णुपुराना। रस सारांस ग्रंथ जग जाना॥
अमरकोष अरु सतरंज सतिका। रच्यो लहन हित मोद सुमतिका॥
नृपति अजीतसिंह खोजवाई। संचित कियो अमित सुख पाई॥
नृपति प्रतापबहादुरसिंह अब। अति मतिमान नीतिरत बहु फब॥
ये इन ग्रन्थन कहँ जब पायो। बहु धन खरचि तिनहिं छपवायो॥
इन कृत अमरकोषहू पायो। द्वितिय बार संशोधि छपायो॥

जग उपकारक बुद्धिप्रद, निर्मित भे जे ग्रंथ।
तिनहिं देख कवि सुख लहहिं, विविध काव्य के पंथ॥

काव्य निर्णय, रस सारांस, शृंगार, विष्णुपुराण को भाषा नाम कोष लिख दीन्हों है।
छन्दआरणव द्विज बलदेव देखि देखि केते कवि छन्द रचि ताको लाभ लीन्हों है॥
संचित कै नृपति प्रताप बहादुरसिंह तिन्हें छपवाय पुनि देश सुख दीन्हों है।
कायथ कमल कुल रवि श्री भिखारीदास दास नाम टेउंगा वास ये ते ग्रंथ कीन्हों है॥

प्रताप सोमवंशावली, पृ० १११—११५।

१. त्यहि अवसर पृथ्वीपति राजा। सुखप्रद जग कीन्हे बहु काजा॥
लिखो नहीं इनको कछु हाला। विदित होत ताते यह चाला॥
नृप ते प्रथम भिखारीदासा। तनु तजि कीन्हों सुरपुर वासा॥
होते कवि तौ नृप गुण गाथा। लिखते कछू ग्रंथ के साथा॥
हिन्दूपति तब शुभ मति राखा। प्रथम चरित ग्रंथन में भाखा॥
वरणो विविध भाँति गुण जिनमें। पै यह बढ्यो दोष एक तिनमें॥
तासो कियो अनौचित कामा। भये विश्व में अति बदनामा॥
ऐसे महा विषयवश होई। तन धन धर्म दियो सब खोई॥

प्रताप सोमवंशावली, पृ० ११५।

यहाँ पर प्रताप सोमवंशावली में दिये गये इस विवरण पर कि संभवतः भिखारीदास पृथ्वीपति सिंह की मृत्यु के पूर्व ही मर गये थे विचार कर लेना असंगत न होगा। पृथ्वीपति सिंह को गद्दी सन् १७३५ ई० में मिली थी जिसकी पुष्टि प्रताप सोमवंशावली तथा 'हिस्ट्री आफ दी सोमवंशी राज' से होती है।[१] इन राजा पृथ्वीपति सिंह की मृत्यु सन् १७५० या सन् १७५१ ई० में हुई थी जैसा कि "हिस्ट्री आफ दी सोमवंशी राज एंड स्टेट आफ प्रतापगढ़ इन अवध" के निम्नलिखित वृत्तान्त से ज्ञात होता है।

"जैसे ही राजा की मृत्यु का समाचार उसके उन अनुगामियों को मिला जो कि नवाब के डेरे से थोड़ी ही दूर पर थे वैसे ही उनमें घबड़ाहट फैल गई। वे प्रतापगढ़ भाग गये और वहाँ उन्होंने इस दुखदायी समाचार को सुनाया। तुरन्त ही नवाब ने अपनी फौजें प्रतापगढ़ भेजीं और किले पर अधिकार कर लिया। वहाँ पर जो थोड़े बहुत सैनिक थे भी वे कुछ भी कर सकने में असमर्थ थे। पृथ्वीपति सिंह की रानियाँ रीवाँ भाग गयीं। तब नवाब सफदर जंग ने यह फर्मान जारी किया कि प्रतापगढ़ का अब कोई राजा नहीं रह गया है और कुल राज्य को जब्त किया जाता है। हिन्दूपतिसिंह, जो कत्ल किये गये राजा के छोटे भाई थे, लखनऊ चले गये और वहाँ पर उन्होंने इसलाम धर्म स्वीकार कर लिया। उनका नाम बदल कर सरफराज अली खाँ रखा गया और उन्हें इस धर्म परिवर्तन के पुरस्कार-स्वरूप 'सबन्सा' का राज्य मिला। यह राज्य पट्टी परगना में स्थित था और प्रतापगढ़ वंश को दहेज में दलीपपुर से मिला था। मगर सोमवंशियों ने इस धर्म परिवर्तन के अपराध में उनकी हत्या कर डाली।

प्रतापगढ़ का राज्य नवाब द्वारा ३ या ४ वर्षों तक खाम तहसील के रूप में रखा गया किंतु परगना के सोमवंशियों के विरोध के कारण वहाँ का शासन खराब होगया और सफदर जंग राजा पृथ्वीपति के सबसे बड़े पुत्र दुनियापति सिंह के साथ, जो अपनी पैतृक सम्पत्ति के इर्द गिर्द चक्कर लगाया करता था, समझौता करने को बाध्य होगया। राजा दुनियापतिसिंह को अपनी पैतृक सम्पत्ति सन् १७५४ ई० में मिल गई।"[२] प्रायः यही विवरण "प्रताप सोम-

१. **सन् सत्रह सै पैंतिस, स्वर्गवास नृप कीन्ह।**
निज कर पृथ्वीपति सुवन, राज काज तब लीन्ह।

प्रताप सोमवंशावली, पृ० १०० ।

Raja Chhatradhari Singh succeded his father in 1719...... He died in 1735. Pirthipat Singh, the eldest son of Chhatradhari, ascended the Guddi on the death of his father.

Pt. Bishambhar Nath Tholal—History of the Sombansi Raj & Estate of Pratabgarh in Oudh, *pp.* 38 & 39.

२. Pt. Bishambhar Nath Tholal—History of the Sombansi Raj and Estate of Partabgarh in Oudh. pp. 43-45.

वंशावली" से भी प्राप्त होता है।[1] इसके आधार पर पता चलता है कि जब राजा दुनिया-पतिसिंह को सन् १७५४ ई० में प्रतापगढ़ का राज्य मिला था और उसके ३ या ४ वर्ष पहले तक प्रतापगढ़ का राज्य खाम तहसील घोषित किया जा चुका था तो इसके स्पष्ट अर्थ यह हुए कि राजा पृथ्वीपतिसिंह की हत्या सन् १७५० या १७५१ ई० में हुई होगी। अब यदि राजा साहब की सन् १७५० या १७५१ में मृत्यु हुई तो निश्चय है कि उस समय भिखारीदास जीवित थे क्योंकि इसी समय के लगभग (संवत् १८०७ वि० अर्थात् सन् १७५१ ई०) उन्होंने 'शृंगार निर्णय' की रचना आरम्भ की थी। अतः यह प्रमाणित है कि भिखारीदास कम से कम पृथ्वीपतिसिंह के जीवनकाल तक तो जीवित थे ही।

१. राज के लोभ नवाब के भौन गये मन में तितही यह आई।
प्याला पियौ यमनौ कर ता क्षण बुद्धि विवेक रह्यो नहि राई॥
प्याला पियौ नवाब केर करि दियो धर्म निज दूरी।
सर्फराज खां नाम कियौ तिन अली सहित कृत कूरी॥
सबते बड़ो नाम मम होई सब प्रतापगढ़ पाई।
ईश्वर गति को जानि न पायो रही नहीं सुधि राई॥
तालुक इन्हें सवन्सा दीन्हो तब नवाब इन काहो।
वत्सगोत्र सो मिल्यो पृथीपति भूप ब्याह के माही॥
उदितसिंह जो यमनी के सुत तिनको शिक्षा दीन्हो।
हिन्दू धर्म पालियो अस कहि स्वर्ग पयानो कीन्हो॥
कोउ कोउ वरणत कथा विविध थल या विधि सो सुनि पाई।
हिन्दूपति को सहित पुत्र तक हिन्दू रीति सोहाई॥
ये तब बसे सवन्सा माही करि हिन्दू की रीती।
सोमवंश अपने को भाखत यथा उचित करि प्रीती॥

किमपिवदन्ती कथा और या विधि सुनि पाई।
हिन्दूपति अरु पुत्र यमन हिन्दूगति भाई॥
क्षत्रिन में त्यहि ब्याह करन चित सो अति चाहा।
कियो न कोऊ तौन अमित उपजो उर दाहा॥

सोमवंश कुल बैर बढ़ो अतिशय दुख सोई।
कुल को कोई वध्यो तिन्हे यह ज्ञात न होई॥
कब्र बनी तिन केर ताल कटरा ढिग जोई।
मारेगे कोउ कहत स्वतह मरिगे कह कोई॥
यह सब कथा विचारि चित्त में कछु भ्रम आवै।
ह्वै न सकत ह्वै सकत दुहूँ मत दृढ़ दरशावै॥
हैं समाधि में चिह्न यवन की तासो जानो।
यवनै की कृति भई और मन में नहि मानो॥

प्रताप सोमवंशावली पृ० ११५-११७।

भिखारीदास के ग्रन्थों से स्पष्ट है कि उन्होंने पृथ्वीपति सिंह का कहीं उल्लेख नहीं किया। सम्भव है इसका कारण यह रहा हो कि वे पृथ्वीपति सिंह को इस योग्य ही न समझते हों अथवा उनसे उन्हें द्रव्य आदि के रूप में कभी कोई लाभ न हुआ हो। यह भी सदा आवश्यक नहीं कि जो राजा हो वह काव्य प्रेमी हो ही। इतिहास से ज्ञात होता है कि भिखारीदास हिन्दूपति से ही प्रेम करते थे और दोनों की प्रगाढ़ मैत्री थी क्योंकि एक कवि था तो दूसरा कविता प्रेमी। पृथ्वीपति सिंह न कवि थे न कविता प्रेमी। वस्तुतः वे एक वीर राजा थे जिनका ध्येय सम्पत्ति प्राप्त करना तथा अपने राज्य का विस्तार करना था। अतः इस आधार पर कि भिखारीदास ने पृथ्वीपति सिंह का कोई उल्लेख नहीं किया यदि यह अनुमान लगाया जाय कि भिखारीदास की मृत्यु पृथ्वीपति सिंह की मृत्यु के पूर्व अर्थात् सन् १७५० ई० या १७५१ ई० के पहले हो गई थी तो, हमारे विचार से, यह धारणा ठीक नहीं। कम से कम यह तर्क युक्तियुक्त नहीं है। उनकी मृत्यु सन् १७५० या १७५१ ई० अथवा इसके पूर्व नहीं इसके बाद ही हुई होगी यह बात प्रमाणित है।

(२) शिवसिंह सरोज

सरोजकार ने भिखारीदास के सम्बन्ध में निम्नलिखित वृत्त दिया है :

"दास : भिखारीदास कायस्त, अरवल, बुन्देलखंडी। सं० १७८० में उ० ये महाकवि भाषा साहित्य के आचार्य गिने जाते हैं।

छन्दोर्णव नाम पिंगल १, रस सारांश २, काव्य निर्णय ३, शृंगार निर्णय ४, बाग बहार ५, ये पांच ग्रंथ इनके बनाए हुए अति उत्तम काव्य हैं।"[१]

(३) मिश्रबन्धु विनोद

'विनोद' में मिश्रबन्धुओं ने भिखारीदास का जो जीवन-चरित लिखा है उसके प्रमुख अंश नीचे दिये जा रहे हैं :

"जन्मकाल अनुमान से संवत १७५५ वि०।......दास जी के विषय म ठाकुर शिवसिंह ने लिखा है कि ये बुंदेलखंड के रहने वाले थे। परन्तु स्वयं दास जी ने अपने को अरवर देश प्रतापगढ़ का रहने वाला लिखा था सो हमें संदेह हुआ कि कहीं यह अवध का जिला प्रतापगढ़ न होकर राजपूताना का हो। अतः हमने राजा प्रतापबहादुर सिंह, सी० आई० ई० को पत्र द्वारा इस विषय में अपनी शंका सूचित की तो उन्होंने कृपा करके दास कृत 'विष्णुपुराण' और 'नाम प्रकाश' नामक दो ग्रंथ भी हमारे पास भेजे और उनके कुटुम्बियों से पूछ कर हाल भी लिख भेजा। राजा साहब के लेखानुसार दास जी श्रीवास्तव कायस्थ थे। वे परगना प्रतापगढ़ उपनाम अरवर के ट्योंगा ग्राम में रहते थे। यह स्थान प्रतापगढ़ दुर्ग से एक मील पर है। दासजी के पिता कृपालदास, पितामह वीरभानु, प्रपितामह रायरामदास और वृद्ध प्रपितामह राय नरोत्तमदास थे। नरोत्तमदास के पिता राय प्रीतमदास थे। दास जी के पुत्र

१. शिवसिंह सरोज, पृ० ४११।

अवधेशलाल और पौत्र गौरीशंकर थे जो अपुत्र मर गये और दास जी का वंश समाप्त होगया। उनकी बिरादरी के लोग अब तक ट्योंगा में रहते हैं। इस वंशावली में राजा साहब ने वीरभानु का नाम न लिख कर राय रामदास को दासजी का पितामह माना है परन्तु स्वयं दासजी ने वीरभानु को अपना पितामह और रायरामदास को प्रपितामह लिखा है। अतः हमने राजा साहब के कथन में इतना अन्तर कर दिया।[1]"

इस संबंध में इतना कह देना असंगत न होगा कि उक्त उद्धरण में राजा प्रताप-बहादुरसिंह का जो मत दिया गया है वह निश्चय ही भ्रामक है क्योंकि वह भिखारीदास द्वारा 'छन्दोर्णव पिंगल' में दिये गये उनके वंश परिचय से मेल नहीं खाता। एक बात और है। हमारे ट्योंगा प्रवास के समय हमें वहाँ के कायस्थ समाज द्वारा एक वंशवृक्ष प्राप्त हुआ था जो बहुत पुराना है और जिसका आरंभ राय प्रीतमशाह से होता है। उसका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है :
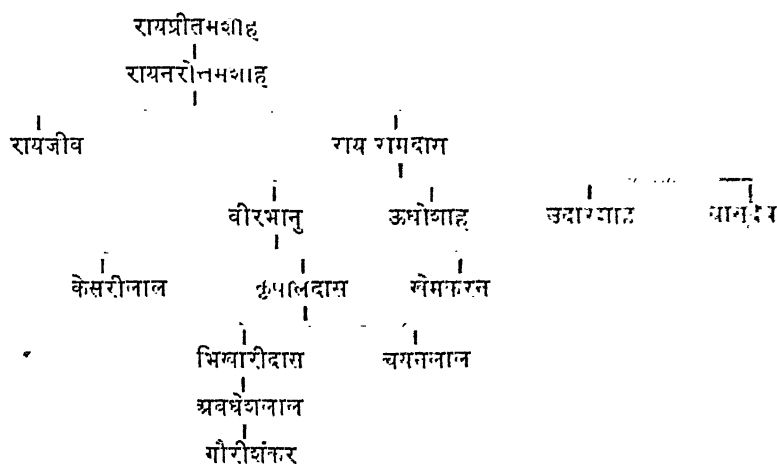
इस वंशवृक्ष से मिश्रबन्धुओं का उपर्युक्त मत तथा अन्तः साक्ष्य के आधार पर 'भिखारीदास' का उल्लेख पूर्ण रूप से मिल जाता है और उनके वंशजों के विषय में किसी प्रकार का भ्रम नहीं रह जाता। वंशवृक्ष से यह भी पता चलता है कि भिखारीदास के एक पुत्र हुआ अवधेशलाल और अवधेशलाल के एक पुत्र हुआ गौरीशंकर। गौरीशंकर की मृत्यु के पश्चात् भिखारीदास का वंश समाप्त होगया। हाँ, उनके भाई चयनलाल का वंश आज भी चला आ रहा है।

मिश्रबन्धु अपने 'विनोद' में आगे लिखते हैं :

"दासजी ने काव्य निर्णय में लिखा है कि सोमवंशी राजा पृथ्वीपति के भाई बाबू हिन्दूपतिसिंह उनके आश्रयदाता थे। दास जी ने इन्हीं हिन्दूपतिसिंह के नाम पर अपने

१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २), पृ० ६३१, ६३२।

सब ग्रंथ बनाये। केवल विष्णुपुराण में किसी आश्रयदाता का नाम नहीं दिया। पूर्वोक्त राजा साहब ने सोमवंशियों का इतिहास भी भेजने की कृपा की है जिससे विदित होता है कि राजा छत्रधारीसिंह के पुत्रों में पृथ्वीपतिसिंह और हिन्दूपतिसिंह भी थे। इन दोनों की माता रीवाँ नरेश की पुत्री रानी सुजानकुंवरि थीं। राजा पृथ्वीपतिसिंह संवत् १७९१ वि० में गद्दी पर बैठे और संवत् १८०७ वि० में अहमदखां बंगश का पक्ष लेकर युद्ध करने के कारण दिल्ली के वज़ीर सफदरजंग ने छल से इनका बध किया और प्रतापगढ़ का राज्य कुछ दिनों के वास्ते ज़ब्त होगया। इस समय इस राज्य में बड़ा विप्लव रहा और न जाने क्यों इस संवत् के पीछे दासजी ने कोई ग्रंथ नहीं बनाया। शायद इसी गड़बड़ में ये भी मार डाले गये हों।

"'छन्दोर्णव पिंगल के अतिरिक्त इनके सब ग्रंथ सबसे प्रथम प्रतापगढ़ के राजा अजीतसिंह और प्रतापबहादुरसिंह जी ने ही छपवाये। दास जी ने केवल 'विष्णुपुराण' हिन्दूपतिसिंह को अर्पित नहीं की है और केवल इसी के बनने का संवत् भी नहीं दिया है। इसकी कविता इनके सब ग्रथों से शिथिल है। अतः जान पड़ता है कि यह इनका प्रथम ग्रंथ है और ऐसे समय बना था जब तक कि ये हिन्दूपति के यहाँ नहीं गये थे। यह ग्रंथ संस्कृत के विष्णु-पुराण का अनुवाद है। इन्होंने अमरकोष का भी उल्था किया है। अतएव जान पड़ता है कि ये महाशय संस्कृत के अच्छे पंडित थे। तब इनकी अवस्था विष्णुपुराण बनाते समय तीस वर्ष से कम न होगी। अनुमान से जान पड़ता है कि यह ग्रंथ संवत् १७८५ के लगभग बना होगा। सो इस हिसाब से दास जी का जन्मकाल संवत् १७५५ के इधर उधर होगा"।[1]

ऊपर मिश्रबन्धुओं ने दास जी के आश्रयदाता हिन्दूपति के भाई, पिता तथा माता आदि का जो उल्लेख किया है उसका आधार, जैसा स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है, प्रताप सोमवंशावली है, जिसके सम्बन्ध में हम पिछले पृष्ठों में बहुत कुछ लिख चुके हैं। किन्तु राजा पृथ्वीपतिसिंह सं० १७९१ वि० में नहीं संवत् १७९२ (सन् १७३५ ई०) में गद्दी पर बैठे।[2]

भिखारीदास के आश्रयदाता के वंशजों का एक पूरा वंशवृक्ष भी हमें महाराजा प्रतापगढ़ के किले से प्राप्त हुआ था जिसका आवश्यक अंश नीचे दिया जा रहा है। इससे उक्त कथन और भी स्पष्ट हो जायगा।
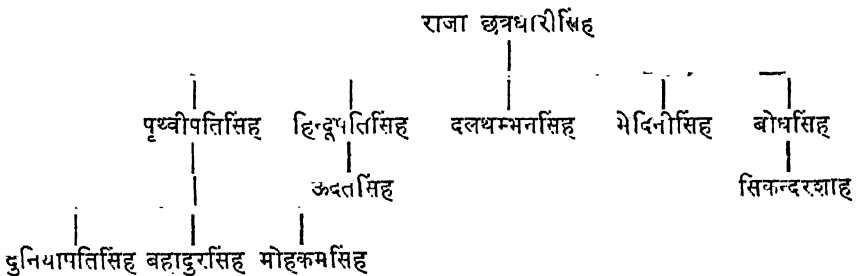
१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २), पृ० ६३२।

२. देखिये प्रताप सोमवंशावली, पृ० १००।

जहाँ तक पृथ्वीपतिसिंह की हत्या का सम्बन्ध है इसकी पुष्टि "हिस्ट्री आफ़ दी सोमवंशी राज्य" से भी हो जाती है ।[1]

(४) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण—सं० श्यामसुन्दरदास।

भिखारीदास : उपनाम दास । हिन्दी के बहुत बड़े कवि । जाति के कायस्थ । बुन्देलखण्ड निवासी । सं० १७९९ के लगभग वर्तमान । पहले ये बुन्देलखण्ड के कुंवर हिन्दू पति के और पश्चात् काशी नरेश महाराज उदितनारायण सिंह के आश्रित थे······

भिखारीदास : प्रतापगढ़ (अवध) निवासी । जाति के कायस्थ । सं० १७९१ के लगभग वर्तमान[2] ।

पिछले पृष्ठों में यह निर्विवाद रूप से सिद्ध किया जा चुका है कि भिखारीदास अरवर (प्रतापगढ़) के ही रहने वाले थे । इस सम्बन्ध में नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में से भी नीचे एक उद्धरण दिया जा रहा है जिससे इस विषय पर कुछ प्रकाश पड़ता है :

"रिपोर्ट से जाना जाता है कि भिखारीदास दो हुए हैं । एक प्रतापगढ़ सं० १७९१ तक वर्तमान और दूसरा बुन्देलखण्ड हिन्दूपति के आश्रित और दोनों जाति के कायस्थ हैं । केवल ७ वर्ष का अन्तर है । परन्तु यह ठीक नहीं है । कुंवर हिन्दूपति प्रतापगढ़ के राजा हुए । भिखारीदास जी बुन्देलखण्ड के नहीं बल्कि प्रतापगढ़ के ही थे जैसा कि उन्होंने काव्य निर्णय और शृंगार निर्णय में साफ़ लिख दिया है—अरवर देश प्रतापगढ़ । प्रतापगढ़ के दो विभाग थे: अरवर और बेलखर । जिन भिखारीदास का घर ट्यौंगा है, अरवर कहलाता था ।

रिपोर्ट में दो भिखारीदास का होना अशुद्ध है । वास्तव में एक होना चाहिए ।"[3]

---

१. In 1750–51 when Ahmad Khan Bangash, the Nawab of Farrukhabad, sent his forces under Kale Khan and Usman Khan to attach the fort of Allahabad, then in possession of Safdarjung the Nawab of Oudh, Pirthipat, who bore no goodwill to the Nawab of Oudh, went and joined the invaders with his forces from Partabgarh and greatly distinguished himself. When the siege was going on the Rohillas were defeated by Safdarjung near Farukhabad. Hearing of this defeat Raja Pirthipat withdrew his forces and returned to Partapgarh. Safdarjung could not put up with this open act of hostility on the part of one whom he considered his subject and soon adopted a plan of revenge.

......In the deadly grapple that ensued Ali Beg quick as tough took out the dagger and stabbed him to the heart. The Raja biting his face with his teeth fell back a corpse.

Pt. Bishambhar Nath Tholal—History of Sombansi Raj and Estate of Pratabgarh in Oudh. pp. 39–41.

२. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, पृ० १११ ।

३. ना० प्र० स० की खोज रिपोर्ट (अप्रकाशित), क्र० वि० ६१ आई ।

उक्त रिपोर्ट में एक भ्रामक बात और है। हिन्दूपति केवल प्रतापगढ़ के राजा पृथ्वीपति के भाई थे, उन्हें प्रतापगढ़ का राज्य कभी नहीं मिला था। इन सब तथ्यों का विवेचन पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।

खोज रिपोर्ट में एक अन्य स्थल पर भी उक्त भ्रम के निवारण का प्रयत्न किया गया है। इसमें यह उल्लेख मिलता है कि "हिन्दूपति ने बहुत से विद्वानों को भ्रम में डाल रखा है। पूर्व खोजकों ने भिखारीदास को बुन्देलखण्ड का निवासी बताया है जहाँ पर पन्ना के एक राजा का नाम हिन्दूपति था। भिखारीदास कायस्थ थे और उपनाम के स्थान पर 'दास' का प्रयोग करते थे। वे १८वीं शताब्दी के मध्य में हुए।"[1]

(५) भारत जीवन प्रेस, बनारस द्वारा मुद्रित काव्य निर्णय

काव्य निर्णय की भूमिका में श्री रामकृष्ण वर्मा ने भिखारीदास का वृत्त दिया है। इस भूमिका में दिये हुए वृत्तान्त से ज्ञात होता है कि भूमिका लेखक महोदय ने वास्तविक तथ्यों की खोज अथवा छानबीन का कोई प्रयास नहीं किया। उनकी 'अरवर' की कल्पना तथ्य से बिल्कुल दूर और कोरी मनगढ़न्त है तथा निराधार सूचनाओं पर आधारित है। भूमिका में हिन्दूपति को उक्त ग्राम का सरदार तथा चन्द्रवंशी कहा गया है। फिर पुस्तक प्रकाशन की अनुमति तत्कालीन प्रतापगढ़ नरेश महाराजा प्रतापबहादुर सिंह, के० सी० आई० ई० ने दी होगी न कि प्रतापनारायणसिंह बहादुर ने, जैसा कि भूमिका में कहा गया है।

(६) बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग द्वारा मुद्रित काव्य निर्णय

इस पुस्तक की भूमिका में संकलनकर्ता पं० महावीरप्रसाद मालवीय ने तथ्यों को जानने का प्रयत्न अवश्य किया है क्योंकि प्रस्तावना के अन्तर्गत उन्होंने स्पष्ट यह लिख दिया है कि "ठाकुर शिवसिंह और बाबू रामकृष्ण वर्मा के लेखानुसार मैं समझता था कि दास कवि का जन्मस्थान बुंदेलखंड प्रदेश में है परन्तु लछिराम से विदित हुआ कि उनकी जन्म भूमि अवध के प्रतापगढ़ जिले में है। विशेष परिचय प्राप्त करने के लिए उन्होंने कहा कि आप राजा प्रतापबहादुर सिंह, के० सी० आई० ई० की सेवा में पत्र द्वारा अपना अभीष्ट प्रकट करें तो दृढ़ आशा है कि वहाँ से सन्तोषजनक उत्तर मिलेगा जिससे जिज्ञासा की बहुत कुछ निवृत्ति हो जायगी। घर आने पर मैंने राजा साहब की सेवा में पत्र प्रेषित किया। उन्होंने प्रतापगढ़ के एक लेथो प्रेस की छपी काव्य निर्णय, रस सारांश और शृंगार निर्णय की एक एक प्रतियाँ भेजने की कृपा की और दास जी के संबंध में बहुत सी ज्ञातव्य बातें लिख भेजीं।[2]"

---

१. Hindupati has misled many scholars and previous search reporters have put down Bhikharidas as a native of Bundelkhand where one of the Rajas of Panna bore that name. Bhikharidas was a Kayastha and used Das as his nom-de-guerra. He flourished in the middle of the 18th century.

Nagri Pracharini Sabha Search Report (Unpublished).

२. काव्य निर्णय, प्रस्तावना भाग, पृ० १।

परन्तु उक्त ग्रंथ की भूमिका में भिखारीदास का जो जीवनचरित्र लिखा गया है वह एक प्रकार से वही है जैसा कि मिश्रबन्धुओं ने अपने 'विनोद' में लिखा है। उस विवरण को यहाँ देना पुनरुक्ति मात्र होगा।

(७) नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में प्राप्त जीवनवृत्त

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में से सन् १९२९ ई० तक की खोज रिपोर्टें तो प्रकाशित हो चुकी हैं किन्तु उसके बाद सन् १९४६ ई० तक जो भी खोज कार्य हुए हैं उनका हस्तलिखित विवरण नागरी प्रचारिणी सभा के कार्यालय में मौजूद है। प्रकाशित खोज रिपोर्टों में भिखारीदास के जीवन पर बहुत ही कम और अप्रकाशित रिपोर्टों में अपेक्षाकृत कुछ अधिक प्रकाश डाला गया है। इस संबंध में यहाँ यह उल्लेखनीय है कि खोजकों ने भिखारीदास के जीवन के विषय में जो कुछ भी लिखा उसका आधार प्रायः उनके ग्रंथ ही थे, कोई मौलिक खोज नहीं। फिर भी उपर्युक्त जीवन-वृत्तों की अपेक्षा खोज रिपोर्टों में प्राप्त जीवनवृत्त अधिक प्रामाणिक हैं :

(१) दास (भिखारीदास) अवध में प्रतापगढ़ जिले के एक कायस्थ थे जो सन् १७२३ ई० में वर्तमान थे। जैसा कि शिवसिंह और डा० ग्रियर्सन ने कहा है, ये बुंदेलखंड के रहने वाले न थे। उनके दो ग्रंथों शतरंज शतिका और विष्णुपुराण का पता चला है जो क्रमशः १० और ४०० पृष्ठों के हैं। विष्णुपुराण के विषय में तो पहले भी सुना गया था किन्तु शतरंज शतिका तो बिलकुल ही अज्ञात थी।[१]

(२) भिखारीदास जी अरवर परगना प्रतापगढ़ मौजा ट्योंगा के रहने वाले थे। इनके कोई सन्तान न थी। जाति के कायस्थ थे। संस्कृत के विद्वान और अच्छे आधार पर कई पुस्तकें लिखीं।[२]

(३) संक्षिप्त विवरण के पृ० १११ पर प्रस्तुत ग्रंथ (छंदोर्णव) बुंदेलखंड निवासी भिखारीदास बुंदेलखंडी का रचा हुआ बताया गया है। वर्तमान ग्रंथ में दास द्वारा लिखे गये छंद से इस मत का खंडन होता है और सिद्ध होता है कि वह ट्योंगा के ही दास की रचना है, अन्य की नहीं। सम्भव है कि भ्रमवश ये समकालीन दो दास पृथक पृथक मान गये हों और वास्तव में हों एक ही[३]।

---

१. 'Das' (Bhikharidas) a Kayastha of the Partabgarh District in Oudh flourished in 1723 and does not certainly belong to Bundelkhand as mentioned by Siva Singh and Dr. Grierson. His two works have been noticed namely Shatranja Shatika and Vishnu Purana Bhasha, which cover 10 and 400 pages respectively. The latter had been heard of before but the former was quite unknown.

N. P. S. Search Reports, (1909-1911), p. 11.

२. ना० प्र० स० खो० रि० (अप्रकाशित), क्र० वि० ६१ आई।

३. ना० प्र० स० की खोजरिपोर्ट (अप्रकाशित) क्र० वि० ६१ बी।

(४) भिखारीदास एक ख्यातिप्राप्त कवि हैं जिनका पता पिछली रिपोर्टों में कई वार चल चुका है...वे पिंगलशास्त्र (Prosody) और काव्य शास्त्र (Rhetorics) के आचार्य थे। वे जाति के कायस्थ थे तथा १८ वीं शताब्दी में हुए [१]।

(५) श्रृंगार निर्णय से भिखारीदास जी का सं० १८०७ तक वर्तमान रहना पाया जाता है और जब सं० १८०७ में श्रृंगार निर्णय सरीखे काव्य की रचना करने की शक्ति थी इससे जान पड़ता है कि अभी और अधिक समय तक जीवित रहे और प्रौढ़ कविता करने की शक्ति थी। नव रिपोर्टों में १७९९ तक वर्तमान रहना ठीक नहीं [२]।

उपर्युक्त रिपोर्टों में से एक में कहा गया है कि इनके कोई सन्तान न थी। यह बात ठीक नहीं। इनके पुत्र का नाम अवधेशलाल तथा पौत्र का गौरीशंकर था।

(६) खोज रिपोर्टों में 'दास' उपनाम से कविता करने वाले तीन कवियों का पता और चला है जिन्होंने क्रमशः राग निर्णय, व्रज माहात्म्य चंद्रिका तथा पंथपारख्या की रचना की। ये ट्यौंगा निवासी दास से सर्वथा भिन्न थे।

(८) आधुनिक इतिहासों में भिखारीदास का इतिवृत्त

आधुनिक इतिहासों में भिखारीदास के जीवनवृत्त का अत्यंत संक्षेप में उल्लेख तो अवश्य मिलता है किन्तु उनमें कोई नवीनता नहीं मिलती। ऐसा प्रतीत होता है कि इन इतिहासकारों ने भिखारीदास के जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक तथ्य एकत्र करने का कोई प्रयास नहीं किया और उन्होंने प्रायः एक ही बात, जिसका 'मिश्रबन्धुओं' ने अपने 'विनोद' में उल्लेख किया है, अपने-अपने शब्दों में लिखी है। अनेक इतिहासकारों ने तो उनके अधिकांश ग्रंथ भी नहीं देखे। फलतः उन्होंने जन्म मृत्यु, आश्रयदाता, ग्रंथ रचनाकाल आदि के संबंध में अपने निष्कर्षों का आधार 'मिश्रबन्धु विनोद' ही रखा है। हिन्दी साहित्य के निम्नलिखित प्रमुख इतिहास इस बात के साक्षी हैं :

(१) हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल।

इस ग्रंथ में दास जी के जीवनवृत्त के विषय में इनका वंश परिचय, जैसा दास जी ने स्वयं अपने छन्दोर्णव पिंगल में दिया है, तथा इनके आश्रयदाता हिन्दूपति का नाम दिया गया है। आगे शुक्ल जी लिखते हैं "राजा पृथ्वीपति सिंह संवत् १७९१ वि० में गद्दी पर बैठे थे और सं० १८०७ वि० में दिल्ली के वज़ीर सफदर द्वारा छल से मारे गये थे। ऐसा जान पड़ता है कि संवत् १८०७ के वाद उन्होंने कोई ग्रंथ नहीं लिखा। अतः इनका कविता काल संवत् १७८५ से लेकर संवत् १८०७ तक माना जा सकता है"। [३] शुक्ल

१. Bhikharidas is a well known poet who has been noticed several times in previous reports. This author is the authority on prosody and rhetorics. He was Kayastha by caste and flourished in the 18th century.

N. P. S. Search Reports (1923), p. 34.

२. ना० प्र० स०, खो० रि० (अप्रकाशित), क० वि० ६१ आई।

३. पृ० २४०, २४१।

जी ने नाम प्रकाश तथा अमरप्रकाश दो भिन्न-भिन्न ग्रंथ माने हैं। वस्तुतः अमर प्रकाश नाम का उन्होंने कोई ग्रंथ नहीं लिखा और यदि शुक्ल जी का अभिप्राय 'अमरकोष भाषानुवाद' से है तो वह और 'नाम प्रकाश' एक ही पुस्तक है, जैसा पूर्व पृष्ठों में बताया ही जा चुका है।

(२) हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास : अयोध्यासिंह उपाध्याय।

इस इतिहास में भिखारीदास के जीवन-वृत्त के विषय में कुछ नहीं मिलता। 'हरिऔध' जी का कथन है कि "अब तक इनके ९ ग्रंथों का पता लग चुका है"[1], किन्तु उन्होंने इन पुस्तकों के नाम नहीं दिये।

(३) हिन्दी साहित्य : श्यामसुन्दरदास।

इस इतिहास-ग्रन्थ में कहा गया है कि "टोंगा, प्रतापगढ़ (अवध) के रहने वाले कायस्थ कवि भिखारीदास की रचनाओं में काव्यांगों का विवेचन अच्छे विस्तार से किया गया है. दास जी के आश्रयदाता प्रतापगढ़ के अधिपति पृथ्वीजीतसिंह के भाई हिन्दूपति सिंह थे।"[2]

उक्त उद्धरण में दो बातें भ्रमपूर्ण हैं—प्रथम तो टोंगा के स्थान पर ट्योंगा होना चाहिए था और दूसरे हिन्दूपति प्रतापगढ़ के अधिपति पृथ्वीपतिसिंह के भाई थे न कि पृथ्वीजीतसिंह के।

(४) हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास : सूर्यकान्त शास्त्री।

इस पुस्तक में भिखारीदास के विषय में बहुत अल्पवृत्त है। शास्त्री जी का कहना है कि वे "प्रतापगढ़ (बुन्देलखण्ड) के रहने वाले थे"[3] जो पूर्णतया गलत है।

(५) हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास : आचार्य चतुरसेन।

इसमें जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में केवल यही बात दी गयी है कि "वे प्रतापगढ़ (अवध) के निवासी थे।"[4] आचार्य जी ने भिखारीदास रचित ९ ग्रंथों का उल्लेख किया है और भ्रमवश वे भी नाम प्रकाश तथा अमरकोष को दो अलग-अलग ग्रंथ मानते हैं।

(६) हिन्दी साहित्य का इतिहास : रसाल एम० ए०।

इस ग्रंथ में छन्दोर्णव पिङ्गल के आधार पर भिखारीदास जी का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसमें कोई नयी बात नहीं है। रसाल जी दास जी के 'नाम प्रकाश' तथा 'अमर प्रकाश' दो अलग-अलग ग्रंथ मानते हैं[5]। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने भी दास जी के ग्रंथों का पता लगाने का कोई प्रयत्न नहीं किया और जो अन्य साहित्यकारों ने लिख दिया उसी का अनुकरण कर दिया।

१. पृ० ३५८।
२. पृ० २६५।
३. पृ० २२१, २२२।
४. पृ० ३८५।
५. पृ० ४५०।

(३) जनश्रुतियाँ

भिखारीदास के विषय में, और विशेष रूप से उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली, कुछ जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। इनका पता हमें अपने ट्यौंगा प्रवास काल में चला था। संक्षेप में ये जनश्रुतियां नीचे दी जा रही हैं :

(१) जब भिखारीदास छोटे ही थे और किसी पाठशाला में पढ़ने जाया करते थे तब उनमें बालसुलभ शैतानी की मात्रा अधिक थी। एक दिन अपनी शैतानी के कारण वे पाठशाला में पीटे गये और लज्जा तथा संकोच के कारण घर लौट कर नहीं आए। वे सीधे अपने चाचा के मकान के समीप स्थित एक नाले में रात बिताने के लिए पड़ रहे। उनके चाचा ट्यौंगा ग्राम में पांचो सिद्धों पर रहते थे। अभी भी वहाँ पर कायस्थों के पाँच महुए के पेड़ तथा एक मन्दिर है। जिस नाले में वे लेटे हुए थे वह बड़ा भयानक था और ग्राम के प्रकाशहीन वातावरण में तो और भी भयानक लग रहा था। मगर बालक भिखारीदास को वहाँ पर नींद आ गई। कुछ रात बीतने पर सरस्वती जी ने उन्हें दर्शन दिये। प्रातःकाल ४ बजे जब उनकी आँख खुली तो उन्होंने देखा कि उनके पास सरस्वती जी लट बिखेरे स्वयं विराजमान हैं। सरस्वती जी ने उनसे वरदान माँगने के लिए कहा। उन्होंने इस अवसर पर विद्या का वरदान माँगा और कहा जाता है वे तभी से अर्थात् ७ वर्ष की अवस्था से कवि हुए। ट्यौंगा निवासियों का तो यह कहना है कि इस घटना के बाद से उन्होंने अपने संबंध म बहुत कुछ लिखा है। मगर यदि उन्होंने अपने संबंध में विशेष रूप से कुछ लिखा होता तो वह प्रकाश में तो आता ही।

(२) जिस समय प्रतापगढ़ में उथल-पुथल मची हुई थी, राजा पृथ्वीपतिसिंह मारे जा चुके थे और प्रतापगढ़ को सफ़दरजंग द्वारा खास तहसील घोषित कर दिया गया था, उस समय भिखारीदास बैरागी के रूप में बुन्देलखण्ड की अलवर रियासत में चले गये थे। कुछ लोगों का यह भी मत है कि वे अपने आश्रयदाता हिन्दूपति के धर्मपरिवर्तन के कारण तथा राज्य के छिन्न-भिन्न हो जाने के कारण ही अलवर गये होंगे। अलवर जाने के पूर्व उन्होंने निम्नलिखित कवित्त की रचना की थी और कहा जाता है कि यह कवित्त पढ़ कर ही वे अलवर चले गये :

> **प्रान विहीन के पाइं पलोटचो अकेले ह्वै जाइ घने बन रोयो।**
> **आरसी अंध के आगे धरचो, हिरौ सों मतो करि उत्तर जोयो।**
> **ऊसर में बरस्यो बहु वारि पखान के ऊपर पंकज बोयो।**
> **दास वृथा जिन साहब सूम की सेवन में अपने दिन खोयो।**[1]

(३) जनश्रुति है कि एक बार पन्ना के महाराजा ने अपने आश्रित कवि बोधा को इस कारण निर्वासित कर दिया था कि वह एक वेश्या से प्रेम करता था। इस पर बोधा कवि भिखारीदास की शरण में आये और उनसे काव्यशास्त्र सीखा। अपनी प्रखर प्रतिभा के कारण वे काव्यकला में प्रवीण हो गए और तब भिखारीदास जी बहुत प्रसन्न होकर उन्हें अपने साथ लेकर पन्ना नरेश के दरबार में पहुँचे। महाराज ने बोधा की कवित्व शक्ति से खुश होकर उन्हें फिर अपने दरबार में यथोचित स्थान दिया।

---

१. काव्य निर्णय, पृ० ८२, ८३।

प्रामाणिक जीवनवृत्त

भिखारीदास प्रतापगढ़ प्रदेश के अन्तर्गत अरवर इलाके में ट्यौंगा ग्राम के निवासी थे [१]। ट्यौंगा के निवासियों से पता चला कि अरवर, जिसे वहाँ के निवासी 'अरउर' कहते हैं, ट्यौंगा सम्पूर्ण को कहा जाता है। अरउर अथवा ट्यौंगा सम्पूर्ण में ट्यौंगा खास तथा अन्य छोटे-छोटे पुरवे जैसे बाग बाबू, पूरे चकई बिदुआ (मालिक, राजा अजीतप्रताप), पूरे चकई बिदुआ (मालिक कामतासिंह), पटखौली, सराय रामसहाय, पूरे शेख अबुल तालिब और पूरे शुकाल सम्मिलित हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण अरउर प्रदेश का अलग-अलग क्षेत्रफल नीचे दिया जा रहा हैं :—

	अरउर	बीघा	बिस्वा	बिस्वांसी
१.	ट्यौंगा खास	३११	४	१०
२.	ट्यौंगा फुलवारी तथा सराय खांडेराय	३१८	१९	४
३.	बाग बाबू	२८	३	११
४.	पूरे चकई बिदुआ (मालिक अजीतप्रताप)	९७	१५	९
५.	पूरे चकई बिदुआ (मालिक कामतासिंह)	१४३	२	८
६.	पटखौली	५९	१३	१७
७.	पूरे शेख अबुल तालिब	१७३	११	२
८.	पूरे शुकाल	९०	६	९

'अरउर' का यह प्रदेश किसी न किसी रूप में राजा प्रतापगढ़ के अधीन रहा है। ट्यौंगा खास, जहाँ भिखारीदास रहते थे, प्रतापगढ़ दुर्ग से लगभग डेढ़ मील पर है और यहाँ के निवासी प्रायः दुर्ग तक आते जाते रहते हैं।

ट्यौंगा खास में प्रायः कायस्थ ही रहते हैं और यहाँ पर कायस्थों के इस समय ४५ घर हैं। यहाँ का बच्चा-बच्चा अपने प्राचीन कवि भिखारीदास के नाम से परिचित है। अनेक वृद्ध लोगों ने तो भिखारीदास की कविताओं को कण्ठस्थ कर लिया है। वे भिखारीदास का नाम बड़े गर्व से लेते हैं और अपने को उनका वंशज होना बड़े भाग्य की बात कहते हैं। यह अवश्य आश्चर्य की बात है कि ट्यौंगा के निवासी भिखारीदास के जीवनवृत्त से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। वे समझते हैं कि भिखारीदास ने केवल एक ही पुस्तक अर्थात् काव्य-निर्णय की रचना की है। यहाँ के निवासियों ने भिखारीदास के नाम पर सन् १९४७ ई० में एक स्कूल की स्थापना की थी, जिसका नाम श्री भिखारीदास जूनियर हाई स्कूल है। इसी समय के आसपास उन्होंने श्री भिखारीदास पुस्तकालय की भी स्थापना की। उन्होंने भिखारीदास के नाम को दूर-दूर तक पहुँचाने के लिए ट्यौंगा ही में सन् १९५० ई० में एक कला प्रदर्शनी का आयोजन किया था। इस प्रदर्शनी का नाम भी उन्होंने श्री भिखारीदास कला प्रदर्शनी रखा था। यहाँ के निवासी जिस स्थान के संबंध में यह विश्वास करते हैं

१. हमने ट्यौंगा जाकर अरवर के विषय में विशेष रूप से जानकारी प्राप्त की थी। कारण यह था कि कुछ ग्रंथकारों ने अरवर (प्रतापगढ़) और अलवर (बुंदेलखण्ड) के बीच कुछ शब्द साम्य होने के कारण एक विवाद खड़ा कर दिया था, जिसका उल्लेख हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं।

कि वहाँ पर सरस्वती जी ने प्रकट होकर भिखारीदास को विद्या का वरदान दिया था, उस स्थान पर वे एक सुन्दर तथा लगभग दो फीट ऊँचा चबूतरा बनवाने का विचार कर रहे हैं। इस समय उस स्थान का कुछ क्षेत्र एक फुट ऊँची ईंटों की पंक्तियों से घेर दिया गया है। इस स्थान को ट्यौंगा निवासी 'भिखारी चबूतरा' के नाम से वर्षों से पुकारते आये हैं। वहाँ के निवासियों का कहना है कि भिखारीदास का जन्म बैसाख सुदी तेरस को हुआ था। इसी कारण वे प्रति वर्ष वहाँ पर बैसाख सुदी तेरस को "भिखारी मेला" का आयोजन करते हैं। इस मेले में पास पड़ोस के लोग भिखारीदास का गुणगान करते तथा उनकी कविताओं का पाठ करते हैं। वहीं से यह भी पता चला कि भिखारीदास आरा जिला मानभूमि (बिहार) के समीप भभुआ में मरे थे। आरा में भिखारीदास के नाम पर एक मंदिर भी बना है जिसका नाम "दास मंदिर" है। यह मंदिर अब भी विद्यमान है। यहाँ पर भी प्रति वर्ष बैसाख सुदी तेरस को उत्सव होता है और भिखारीदास की कविताओं का पाठ किया जाता है। अतः यह प्रायः निश्चित सा जान पड़ता है कि उनका जन्म ट्यौंगा (प्रतापगढ़) और मृत्यु आरा के निकट भभुआ में हुई थी।

जन्म एवं मृत्यु—मिश्रबन्धुओं ने दास जी के जन्म का संवत् १७५५ के इधर-उधर माना है जैसा हम पूर्व पृष्ठों में कह चुके है :—

हमारा मत मिश्रबन्धुओं से कुछ भिन्न है। यदि हम इनके ग्रंथों के रचना काल पर विचार करें जो इस प्रकार हैं :—

नाम	संवत्	सन्
रस सारांश	१७९१	१७३४
नाम प्रकाश	१७९५	१७३८
छन्दोर्णव पिंगल	१७९९	१७४२
काव्यनिर्णय	१८०३	१७४६
शृंगार निर्णय	१८०७	१७५०

तो स्पष्ट पता चल जायगा कि उनकी सभी पुस्तकें चार-चार वर्षों के अन्तर पर लिखी गयीं। अतः यह अनुमान लगाना बहुत कुछ स्वाभाविक है कि उन्होंने चार-चार वर्षों के अन्तर पर ग्रंथ रचने का कोई नियम ही बना लिया था। विष्णुपुराण की भाषा आदि को देखते हुए हमारा अनुमान है कि यह ग्रंथ सम्भवतः सं० १७८७ वि० में ही बनकर तयार हुआ होगा। ग्रंथ रायल अठपेजी के ३४५ पृष्ठों में है। अतः इसका आरंभ सम्भवतः सं० १७८५ वि० में किया गया होगा और ग्रंथारम्भ के समय भिखारीदास की अवस्था २५ वर्ष तो रही ही होगी। किसी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति के लिए, जिसने अपने जीवन काल में अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की हो, ग्रंथ लेखन के निमित्त २५ वर्ष की अवस्था काफी परिपक्व अवस्था होती है। अतः इस हिसाब से उनका जन्मकाल संवत् १७६० वि० (सन् १७०३ ई०) माना जा सकता है।

भिखारीदास की मृत्यु किस संवत् में हुई इसका कोई प्रामाणिक आधार हमें नहीं मिलता। मिश्रबन्धुओं ने अपने अनुमान के आधार पर प्रतापगढ़ राज्य की जब्ती तथा

गड़बड़ी के दिनों में भिखारीदास का मारा जाना लिखा है। परन्तु जब तक कोई ठोस और पुष्ट प्रमाण न मिल जाय तब तक हम प्रामाणिक रूप से उनकी मृत्यु का संवत् नहीं बता सकते। हाँ इतना निश्चित है कि कवि के रूप में उनका साहित्यिक जीवन सं० १८०७ वि० में समाप्त हो चुका था क्योंकि उसके बाद की उनकी कोई रचना हमें नहीं मिलती। इस काल के बाद प्रतापगढ़ में विप्लव एवं गड़बड़ी अवश्य थी। सम्भव है कि वे उस स्थान को छोड़ कर अन्यत्र चले गये हों। हो सकता है कि मिश्रबन्धुओं का ही अनुमान ठीक हो। पर यह निर्विवाद है कि सं० १८०७ वि० के बाद उनकी साहित्यिक मृत्यु हो चुकी थी।

वंश परिचय—भिखारीदास का वंशपरिचय, जैसा कि उन्होंने छंदार्णव पिंगल में दिया है, ठीक है। उनके पिता का नाम कृपालदास, पितामह का वीरभानु, प्रपितामह का राय रामदास, वृद्ध प्रपितामह का राय नरोत्तमदास तथा नरोत्तमदास के पिता का नाम राय प्रीतमशाह था। उनके भाई का नाम चयन लाल था। वे बहीवार वर्णीय कायस्थ थे। आज भी कायस्थों की एक शाखा बहीवारों के नाम से प्रसिद्ध है।

भिखारीदास के एक पुत्र हुआ था जिसका नाम अवधेशलाल था। अवधेशलाल के भी एक पुत्र हुआ गौरीशंकर, और गौरीशंकर संतानहीन मर गए। इस प्रकार भिखारीदास जी का वंश तो बहुत पहले ही समाप्त हो गया। हां, उनके भाई चयनलाल का वंश आज भी अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है और चयनलाल के वंशज आज भी ट्यौंगा ग्राम में रहते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों की वास्तविकता का पता हमें ट्यौंगा के कायस्थ समाज द्वारा तैयार किये गये एक वंशवृक्ष से चला। वंशवृक्ष सम्पूर्ण नीचे दिया जा रहा है। मूल वंशवृक्ष अब भी ट्यौंगा के कायस्थ समाज के पास सुरक्षित है।

ट्यौंगा के कायस्थ समाज द्वारा तैयार किया गया वंशवृक्ष
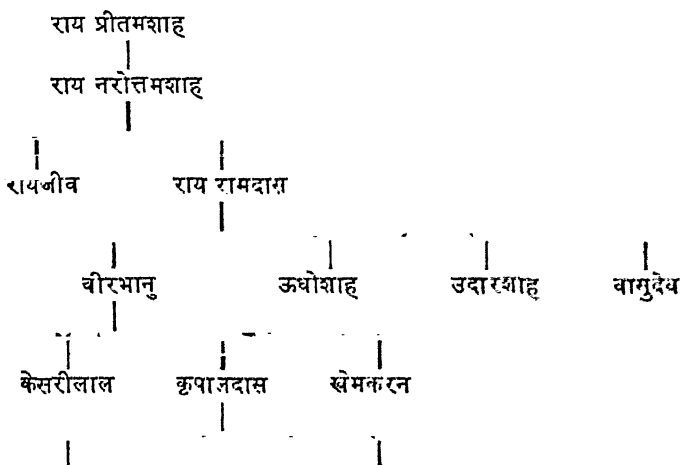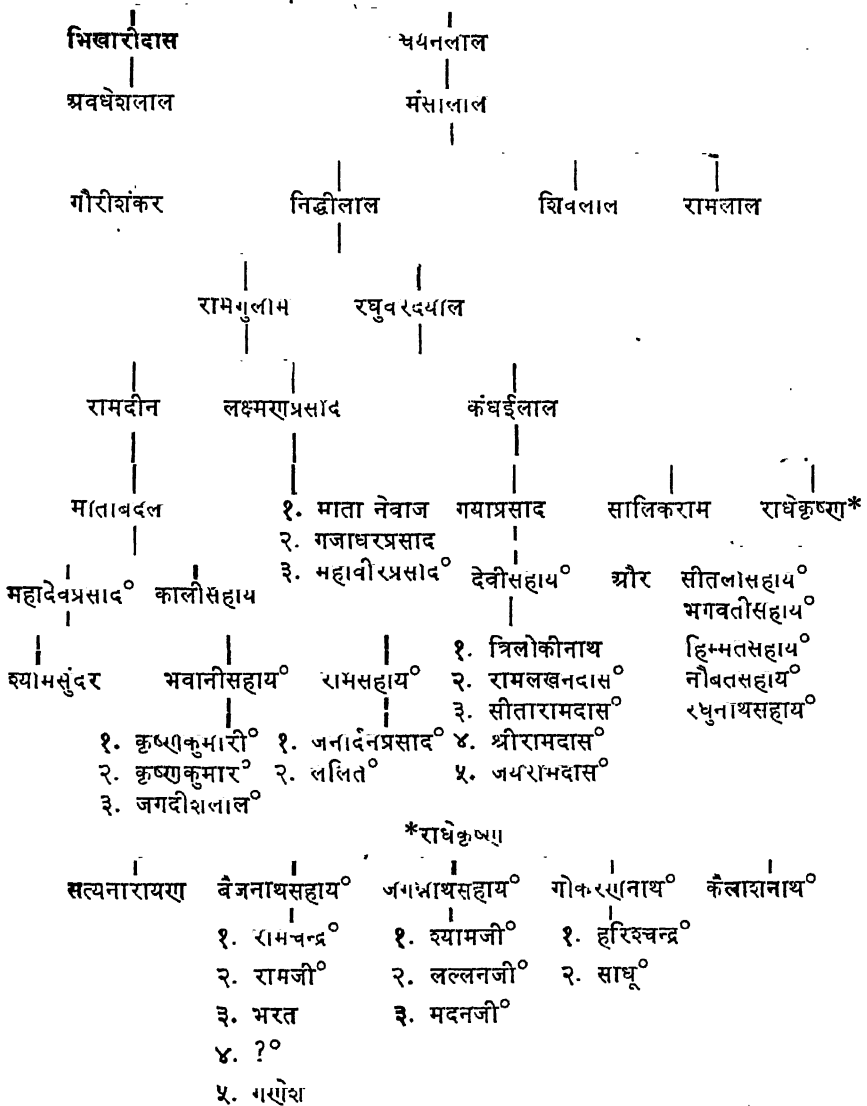
नोट—शून्यांकित (°) व्यक्ति अभी जीवित हैं।

आश्रयदाता—भिखारीदास का जो कुछ भी जीवनवृत्त उपलब्ध होता है उससे पता चलता है कि वे अध्ययनशील प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों तथा प्रसिद्ध भाषा कवियों द्वारा प्रणीत ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया था। उनके व्यापक अध्ययन तथा कवित्व-शक्ति ने तत्कालीन प्रतापगढ़ अधिपति श्री पृथ्वीपतिसिंह के ज्ञानी एवं काव्यकला प्रेमी भाई हिन्दूपतिसिंह का ध्यान आकृष्ट किया और उन्होंने सं० १७६१ वि० के पश्चात्

भिखारीदास को अपने यहाँ बुला लिया। 'दास' जी सं० १८०७ वि० तक हिन्दूपति के आश्रय में रहे।

वैयक्तिक जीवन—उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर पता चलता है कि भिखारीदास धर्मभीरु एवं ईश्वर-भक्त थे तथा ईश्वर के साकार एवं निराकार दोनों ही रूपों पर उनकी श्रद्धा थी। उनका दृढ़ विश्वास था कि ईश्वर पर श्रद्धा एवं विश्वास से संसार के सभी कार्य बड़े सरल हो जाते हैं और सभी पापों का प्रक्षालन हो जाता है। हां यह भक्ति सच्ची एवं हृदय से होनी चाहिए। इसी धर्मभीरुता एवं ईश्वरभक्ति के कारण अथवा रीतिकालीन परम्परा का पिष्टपोषण करने के लिए ही उन्होंने अपने सभी ग्रन्थों का श्रीगणेश गणेशस्तुति से ही किया है।

अनुवाद क्षमता

भिखारीदास संस्कृत के अच्छे पंडित थे। उनका काव्य निर्णय ग्रन्थ उनके पांडित्य तथा काव्यशास्त्री होने का सुप्रमाण है। उनके संस्कृत के पंडित होने का एक प्रमाण यह भी है कि उन्होंने अपने ग्रन्थों में संस्कृत के अनेकानेक श्लोकों का अनुवाद किया है जो निश्चय ही सुन्दर और उत्कृष्ट बन पड़ा है। हम नीचे कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करेंगे जो संस्कृत ग्रन्थों, विशेषकर काव्यप्रकाश अथवा चंद्रालोक (क्योंकि दोनों नामों का स्पष्ट उल्लेख भिखारीदास ने किया है), के श्लोकों के शाब्दिक अथवा छायिक अनुवाद हैं :—

(१) **काव्य प्रकाश—सशङ्खचक्रो हरिः अशङ्खचक्रो हरिरित्युच्यते।**[1]
काव्य निर्णय—संख चक्रजुत हरि कहे होत विष्नु को ज्ञान।[2]

जहां "मम्मट" ने शंख चक्र युक्त और रहित दोनों ही दशाओं में 'हरि' शब्द का अर्थ अच्युत (विष्णु) कहा है वहाँ 'दास' ने केवल शंख चक्र युक्त हरि को ही 'हरि' बताया है। स्पष्ट है दास जी ने मम्मट के पूर्वार्द्ध वाक्य का ही अनुवाद किया है सम्पूर्ण का नहीं।

(२) **काव्य प्रकाश—अतिपृथुलं जलकुंभं गृहीत्वा समागतास्मि सखि त्वरितम्।**
श्रमस्वेदसलिलनिश्वासनिःसहा विश्राम्यामि क्षणम्।[3]

काव्यनिर्णय—अति भारी जलकुंभ लै आई सदन उताल।
लखि श्रम सलिल उसास अलि कहा बूझती हाल।[4]

'दास' ने मम्मट के इस श्लोक का बहुत कुछ शाब्दिक अनुवाद किया है। अन्तर केवल यही है कि जहाँ मम्मट की नायिका 'विश्राम्यामिक्षणम्' (क्षण भर विश्राम करूंगी) कहती है वहाँ दास की नायका 'कहा बूझती हाल' कह कर अपनी सखी को प्रबोध देती है।

(३) **काव्य प्रकाश—औन्निद्रयं दौर्बल्यं चिन्तालसत्वं सनिःश्वसितम्।**
मम मन्दभागिन्याः कृते सखि त्वामपि अहह परिभवति।[5]

काव्यनिर्णय—चिन्ता जृम्भा नींद अरु व्याकुलता अलसानि।
लह्यो अभागिनि हौं अली तै हूँ गहो सुबानि।[6]

१. पृ० ३५। २. पृ० ८। ३. पृ० ४१। ४. पृ० १८।
५. पृ० ४२। ६. पृ० १८।

यहां पर दोनों के भावों में कोई अन्तर नहीं है। दास का अनुवाद पूर्णरूपेण शाब्दिक है।

(४) काव्य प्रकाश—नुदत्यनार्द्रमनाः श्वश्रूर्मां गृहभरे सकले।
क्षणमात्रं यदि सन्ध्यायां भवति न वा भवति विश्रामः।[1]

काव्यनिर्णय—राज करो गृह काज दिन बीतत याही मांझ।
ईठ लहौं कल एक पल नीठ निहारे सांझ।[2]

यहां मम्मट ने 'अनार्द्रमनाः श्वश्रूर्मां' (कठोर हृदय वाली सास) की कल्पना की है परन्तु दास जी ने इसका अनुवाद छोड़ दिया है। शेष भाव प्रायः एक से ही हैं।

(५) काव्य प्रकाश—अन्यत्र यूयं कुसुमावचायं कुरुध्वमत्रास्मि करोमि सख्यः।
नाहं हि दूरे भ्रमितुं समर्था प्रसीदतायं रचितोऽञ्जलिर्वः।[3]

काव्यनिर्णय—हौं असक्त ज्यों त्यों इतहि सुमन चुनौंगी चाहि।
मानि बिनय मेरी अली और ठौर तू जाहि।[4]

यहाँ मम्मट की प्रथम पंक्ति का शाब्दिक अनुवाद 'दास' ने अपनी द्वितीय पंक्ति में किया है परन्तु जहाँ मम्मट की दूसरी पंक्ति में "मैं अधिक दूर तक घूमने-फिरने में असमर्थ हूँ, अतः मुझ पर दया करो मैं हाथ जोड़ती हूँ" यह अभिप्राय व्यक्त किया गया है वहाँ 'दास' ने नायिका के अशक्त होने के कारण वहीं पर ज्यों त्यों पुष्प-चयन की बात कह दी है, जिस पर मम्मट के भावों की छाया विद्यमान है।

(६) काव्य प्रकाश—श्रूयते समागमिष्यति तव प्रियोऽद्य प्रहरमात्रेण।
एवमेव किमिति तिष्ठसि तत्सखि सज्जय करणीयम्।[5]

काव्यनिर्णय—बैरी वासर बीतते प्रीतम आवनहार।
तकै दुचित कित सुचित ह्वै साजहि उचित सिंगार।[6]

हम उपर्युक्त विवेचन में स्पष्ट कर चुके हैं कि मम्मट के श्लोकों का अनुवाद करने में 'दास' ने या तो श्लोक का सम्पूर्ण अनुवाद प्रस्तुत किया है या आंशिक। अनुवाद करते समय कहीं कहीं दास जी ने आवश्यकतानुसार मूल श्लोकों के भावों में परिवर्तन भी कर लिया है जो किसी भी आचार्य-कवि के लिए स्वाभाविक है। अब हम संस्कृत के कुछ और मूल श्लोकों तथा 'दास' कृत उनके अनुवाद को साथ-साथ प्रस्तुत करेंगे।

(७) चन्द्रालोक—मातर्गृहोपकरणमद्य खलु नास्तीति साधितं त्वया।
तद्गुण किं करणीयमेवमेव न वासरः स्थायी।[7]

काव्यनिर्णय—अम्बे फिर मोहि कहैगी कियो न तू गृहकाज।
कहै सु करि आऊँ अबै मुंदो जात दिनराज।[8]

(८) चन्द्रालोक—साधयन्ती सखि सुभगं क्षणे दूनासि मत्कृते।
सद्भावस्नेहकरणीसदृशकं तावद्विरचितं त्वया।[9]

१. पृ० ४५। २. पृ० २०। ३. पृ० ४६। ४. पृ० २०। ५. पृ० ४६।
६. पृ० २०। ७. पृ० २३४ (उद्धृत)। ८. पृ० २१। ९. पृ० २३४ (उद्धृत)।

काव्यनिर्णय—धनि धनि सखि मोहि लागि तू सहे दसन नख देह।
परम हितू है लाल सो आई राखि सनेह।[1]

(९) चंद्रालोक—पश्य निश्चलनिष्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका।
निर्मलमरतकभाजनपरिस्थिता शङ्ख शुक्तिरिव।[2]

काव्यनिर्णय—निहचल बिसनीपत्र पर उत बालक एहि भांति।
मरकत भाजन पर मनो अमल संख सुभ कांति।[3]

(१०) काव्य प्रकाश—पथिक! नात्र स्रस्तरमस्ति मनाक् प्रस्तरस्थले ग्रामे।
उन्नत पयोधरं प्रेक्ष्य यदि वससि तद्वस।[4]

काव्यनिर्णय—द्वार खरी नवला अनूपम निरखि उतरत भो पथिक तहं तन मन हारि के।
चातुरी सों कह्यो इत रह्यो हम चाहैं, नहीं जायो जात उन्नत पयोधर निहारि के।
दास तेहि उत्तर दयो है यों वचन भाखि राखि के सनेह सखी मति को निवारि के।
ह्यां तो है पखान सब मसक न देहै कल रहिये पथिक सुभ आश्रम विचारि के।[5]

(११) काव्य प्रकाश—अलसशिरोमणिधूर्तानामग्रिमः पुत्रिधनसमृद्धिमयः।
इति भणितेन नताङ्गी प्रफुल्ल विलोचना जाता।[6]

काव्यनिर्णय—सुनि सुनि प्रीतम आलसी धूर्त सूम धनवंत।
नवल बाल हिय में हरष बाढ़त जात अनंत।[7]

(१२) काव्य प्रकाश—ब्राह्मणातिक्रमत्यागो भवतामेव भूतये।
जामदग्न्यस्तथा मित्रमन्यथा दुर्मनायते।[8]

काव्यनिर्णय—मानो सिर धर लंकपति श्री भृगुपति की बात।
तुम करिहौ तो करहिंगे वेऊ द्विज उतपात।[9]

(१३) काव्य प्रकाश—ग्रामरुहास्मि ग्रामे वसामि नगरस्थितिं न जानामि।
नागरिकाणां पतीन् हरामि या भवामि सा भवामि।[10]

काव्यनिर्णय—हौं गंवारि गांवहि बसी कैसी नगर कहन्त।
पै जान्यो आधीन करि नागरीन को कन्त।[11]

(१४) काव्य प्रकाश—भ्रमिमरतिमलसहृदयतां प्रलयं मूर्च्छां तमः शरीरसादम्।
मरणं च जलदभुजगजं प्रसह्य कुरुते विषं वियोगिनीनाम्।[12]

काव्यनिर्णय—वर्षा काल न लाल गृह गवन करो केहि हेत।
व्याल बलाहक विष बरषि बिरहिन को जिय लेत।[13]

(१५) कुवलयानन्द—ईदृशैश्चरितैर्जाने सत्यं दोषाकरो भवान्।[14]

काव्यनिर्णय—दोषाकर ससि को कहैं याही दोष सुजान।[15]

(१६) चंद्रालोक—अमी दश गुणाः काव्ये पुंसि शौर्यादयो यथा।[16]

१. पृ० २२। २. पृ० २३४ (उद्धृत)। ३. पृ० २२। ४. पृ० ८४।
५. पृ० १६८। ६. पृ० ८६। ७. पृ० ५४। ८. पृ० १३६।
९. पृ० ६५। १०. पृ० ११३। ११. पृ० ६३। १२. पृ० १३४।
१३. पृ० ६७। १४. पृ० १६५। १५. पृ० १७७। १६. पृ० ८६।

काव्यनिर्णय—ज्यों सतजन हिय ते नहीं सूरतादि गुन जाय।
त्यों विदग्ध हिय में रहै दस गुन सहज स्वभाय।[1]

(१७) काव्य प्रकाश—चक्राह्वेन वियोगिना बिसलता नास्वादिता नोज्झिता।
कंठे केवलमर्गलेव निहिता जीवस्य निर्गच्छतः।[2]

काव्यनिर्णय—चोंच रही गहि आरसी सारसहीन मृनाल।
प्रान जात जनु द्वार में दियो अरगला डाल।[3]

(१८) काव्य प्रकाश—अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः।
अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला।[4]

काव्यनिर्णय—झार डार घनसार इत कहा कमल को काम।
अरी दूर करि हार यों बकति रहति नित बाम।[5]

(१९) काव्य प्रकाश—मुखं विकसितस्मितं वशितवक्रिम प्रेक्षितं।
समुच्छलित विभ्रमा गतिरपास्तसंस्था मतिः।
उरो मुकुलितस्तनं जघनमंसबन्धोद्धुरं।
बतेन्दुवदना तनौ तरुणिमोद्गमो मोदते।[6]

काव्यनिर्णय—आनन में मुसकानि सुहावनि बंकता नैनन्ह मांझ छई है।
बैन खुले मुकुले उरजात जकी बिथकी गति ठौनि ठई है।
दास प्रभा उछलै सब अंग सुरंग सुबासता फैलि गई है।
चन्दमुखी तन पाइ नवीनो भई तरुनाई अनन्दमई है।[7]

(२०) काव्य प्रकाश—शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनै,
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य प्रत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गंडस्थलीं,
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता।[8]

काव्यनिर्णय—मिस सोइबो लाल को मानि सही हरुए उठि मौन महा धरिकै।
पट टारि रसीली निहारि रही मुख की रुचि को रुचि को करिकै।
पुलकावलि पेखि कपोलनि में खिसिआइ लजाइ मुरी अरिकै।
लखि प्यारे बिनोद सों गोद गह्यो उमह्यो सुख मोद हियो भरिकै।[9]

(२१) काव्य प्रकाश—कैलासस्य प्रथम शिखरे वेणुसंमूर्च्छनाभिः
श्रुत्वा कीर्तिः विबुधरमणीगीयमानां यदीयाम्।
स्रस्तापाङ्गाः सरसबिसिनीकाण्ड सञ्जातशङ्का।
दिङ्मातङ्गाः श्रवण पुलिने हस्तमावर्तयन्ति।[10]

काव्यनिर्णय—दास के ईस जबै जस रावरो गावती देव वधू मृदु तानन।
जातो कलंक मयंक को मूंदि औ धाम ते काहू सतावतो भान न।

१. पृ० १६१। २. पृ० २८७। ३. पृ० २०४। ४. पृ० २८५। ५. पृ० २०५।
६. पृ० २८। ७. पृ० १६-१७। ८. पृ० ६६। ९. पृ० ५१। १०. पृ० ८८।

सीरो लगै सुनि चौंकि चितै दिगदन्तिन कै तिरछो दृग आनन ।
सेत सरोज लगै कै सुभाय घुमाय कै सूंड़ मलै दुहुं कानन ।[१]

श्री पद्मसिंह शर्मा ने १ नवम्बर, सन् १९१२ की 'सरस्वती' में प्रकाशित अपने एक लेख में दास जी के कुछ ऐसे पदों का संकलन किया है जो संस्कृत आचार्यों के श्लोकों के अनुवाद मात्र हैं। हम इनमें से कुछ पद तथा संस्कृत के समान भाव वाले श्लोकों को नीचे उद्धृत कर रहे हैं :—

(१) उद्भट—त्वं चेत्संचरसे वृषेण लघुता का नाम दिग्दन्तिनां,
व्यालैः कंकण कुंडलानि कुरुषे हानिर्नहेम्नः पुनः ।
मूर्ध्ना चेद्वहसे जडांशुमयशः किं नाम लोकत्रयी—
दीपस्याम्बुज बान्धवस्य जगतामीशोसि किं ब्रूमहे ।

काव्यनिर्णय—आक औ कनक पात तुम जो चबात हौ,
तौ षट्रस व्यंजन न केहू भांति लटिगो ।
भूषन बसन कीन्हो व्याल गजखाल को,
तौ साल सुबरन को न धारिबो उलटिगो ।
दास के दयाल हौ सुरीति ही उचित तुम्हें,
लीन्ही जो कुरीति तौ तिहारो ठाट ठटिगो ।
ह्वै कै जगदीस कीन्हो बाहन वृषभ को,
तौ कहा सिब साहेब गयन्दन्ह को घटिगो ।[२]

(२) उद्भट—यद्वक्तं मुहुरीक्षसे न धनिनां ब्रूषे न चाटून्मृषा,
नैषां गर्व गिरः शृणोषि न च तान्प्रत्याशया धावसि ।
काले बाल तृणानि खादसि परं निद्रासि निद्रागमे,
तन्मे ब्रूहि कुरंग ! कुत्र भवता किन्नाम तप्तं तपः ।

दास जी ने यह भाव निम्नलिखित पद में अपनाया है :—

काव्यनिर्णय—काहू धनवंत को न कबहूं निहारयो मुख,काहू के न आगे दौरिबे को नेम लियो तैं ।
काहू को न रिन करै काहू के दिये ही बिन, हरौ तिन असन बसन छोड़ि दियो तैं ।
दास निज सेवक सखा सों अति दूर रहि लूटै सुख भूरि को हरष पूरि हियो तैं ।
सोवत सुरुचि जागि जोवतो सुरुचि धन्य बन्धव कुरंग कहु कहा तप कियो तैं ।[३]

(३) भर्तृहरि—क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणादत्ताः पुरा तेऽखिलाः—
क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा ह्यात्मा कृशानौ हुतः ।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदं,
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ।

काव्यनिर्णय—दास परस्पर प्रेम लखो गुन छीर के नीर मिले सरसात है ।
नीर बेंचावत आपने मोल जहां जहां जाइके आप बिकात है ।

१. पृ० ५५। २. पृ० १४२। ३. पृ० १२५।

पावक जारन छीर लगै तब नीर जरावत आपनो गात है।
नीर की पीर निवारन कारन छीर घरीहि घरी उफनात है।[1]

(४) उद्भट—असम्मुखालोक नमामि मुख्यं निषेध एवानुमतिप्रकारः।
प्रत्युत्तरं मुद्रणमेव वाचो नवांगनानां नव एव पन्थाः।

श्रृंगारनिर्णय—रूखी ह्वै जैबो पियूख बगारिबो बंक बिलोकिबो आदरिबो है।
सौहैं दिवायबो गारी सुनायबो प्रेम प्रसंसनि उच्चरिबो है।
लातन मारिबो झारिबो बांह निसंक ह्वै अंकनि को भरिबो है।
दास नवेली को केलि समै में नहीं नहीं कीबो हं हां करिबो है।[2]

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों में 'दास' कृत छंदों तथा काव्यप्रकाश आदि के श्लोकों की तुलना करने पर इस बात का पता चलता है कि उन्होंने आचार्यों के भावों को यथावत्, अथवा न्यूनाधिक परिवर्तनों के साथ, छन्दबद्ध करके अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है। कहीं कहीं तो भावों की छाया मात्र ही मिलती है। हम दो-चार उदाहरणों से इस कथन की भी पुष्टि करेंगे।

(१) काव्य प्रकाश—उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते सुजनता प्रथिता भवता परम्।
विदधदीदृशमेव सदा सखे सुखितमास्स्व ततः शरदां शतम्।[3]

काव्यनिर्णय—सखि तू नकु न सकुच मन किये सबै मम काम।
अब आने चित सुचितई सुख पैहै परिनाम।[4]

उक्त पंक्तियों में मम्मट ने अप्रस्तुत व्यक्ति के सौजन्य की प्रशंसा की है क्योंकि उसने किसी पीड़ित व्यक्ति का बड़ा उपकार किया है। यहाँ प्रशंसा व्यंग्य रूप में है। 'दास' ने इसी की छाया लेकर नायिका द्वारा उसकी सखी की व्याजस्तुति रूप में प्रशंसा करायी है।

(२) काव्य प्रकाश—हरस्तु किञ्चित्परिवृत्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठेव्यापारयामास विलोचनानि।[5]

काव्यनिर्णय—जैसे चन्द निहारि के इक टक तकत चकोर।
त्यों मन मोहन तकि रहे तिय बिम्बाधर ओर।[6]

मम्मट के इस भाव की, कि महादेव जी बिम्बाफलके समान लाल अधरोंवाली पार्वतीजी की ओर देखने लगे, छाया 'दास' ने अपनी उपर्युक्त पंक्तियों में ग्रहण की है।

इस प्रकार मूल पदों के भावों का छायानुवाद दास जी ने अपनी रचनाओं में कई स्थलों पर किया है। सबका विवेचन स्थानाभाव के कारण संभव न होने से आचार्यों के कुछ मूल श्लोक तथा उनके 'दास' कृत छायानुवाद साथ साथ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

(३ काव्यप्रकाश—द्वारोपान्त निरन्तरे मयि तया सौन्दर्यसारश्रिया।
प्रोल्लास्योरुयुगं परस्परसमासक्तं समासादितम्।
आनीतं पुरतः शिरोंऽशुकमधः क्षिप्ते चले लोचने।
वाचस्तत्र निवारितं प्रसरणं सङ्कोचितेर्दोलते।[7]

१. पृ० १२०। २. पृ० ६१। ३. पृ० ५२। ४. पृ० ५१।
५. पृ० १३६। ६. पृ० ६८। ७. पृ० ४७।

काव्यनिर्णय—मुख मोरत नैन की सैनन्ह दै अंग अंगन्ह दास देखाइ रही।
(छायानुवाद) ललचौहैं लजौहैं हंसौहैं चितै हित सों चित चाव बढ़ाइ रही।
मुरि कै अरि कै दृग सों भरि कै जुग भौंहनि भाव बताइ रही।
कनखा करि कै पग सों परि कै पुनि सूने निकेत में जाइ रही।[1]

(४) काव्य प्रकाश—रे रे चञ्चललोचनाञ्चितरुचे चेतः प्रमुच्य स्थिर—
प्रेमाणं महिमानमेणनयनामालोक्य किं नृत्यसि।
किं मन्ये विहरिष्यसेबत हतां मुञ्चान्तराशामिमा—
मेषा कण्ठ तटे कृता खलु शिला संसारवारांनिधौ।[2]

काव्यनिर्णय—वार अंध्यारनि में भटक्यो स्वनिकारचो में नीठि सु बुद्धिनि सों घिरि।
(छायानुवाद) बूड़त आनन पानिप नीर पटीर की आड़ सों तीर लग्यो तिरि।
मो मन बावरो त्यों ही हुत्यो अधरामधु पान कै मूढ़ छक्यो फिरि।
दास भनै अब कैसे कढ़ै निज चाह सों ठोड़ी की गाड़ परचो गिरि।[3]

'दास' ने विष्णुपुराण और नाम प्रकाश नामक ग्रन्थों में क्रमशः संस्कृत के 'विष्णुपुराण' और 'नाम लिंगानुशासन' (अमर कोष) का पद्य में भाषानुवाद किया है। हम इन ग्रन्थों के कुछ स्फुट अंश ले कर संस्कृत के गद्य क्षेत्र में भी दास जी की अनुवाद-क्षमता पर दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे।

विष्णुपुराण भाषानुवाद

यद्यपि 'दास' ने इस ग्रन्थ में इस बात का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है कि यह ग्रन्थ 'विष्णुपुराण' का अनुवाद है और ग्रन्थारम्भ में इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा है कि :

बिनय विष्णु ब्रह्मादि पुनि गुरु चरणन शिर नाइ।
बातें विष्णुपुराण की भाषा कहौं बनाइ।
पुनि अध्यायनि सोरठा किय छप्पै प्रति अंश।
आठ-आठ तुक चौपई अनियम छंद प्रशंस।[4]

परन्तु 'बातें विष्णुपुराण की भाषा कहौं बनाइ' इस कथन से तथा संस्कृत के विष्णुपुराण और 'दास' कृत विष्णुपुराण भाषानुवाद की तुलना करने से पता चलता है कि दास ने विष्णुपुराण का सोरठा, छप्पय, चौपाई आदि में अनुवाद किया है।

(१) विष्णुपुराण—मैत्रेय उवाच॥ निर्गुणस्याप्रमेयस्य शुद्धस्याप्यमलात्मनः॥ कथं सर्गादिकर्तृत्वं ब्रह्मणोभ्युपगम्यते।१। श्री पराशर उवाच॥ शक्तयः सर्वभावानामचिन्त्यज्ञान-गोचराः। यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः।२। भवन्ति तपतां श्रेष्ठ पावकस्य यथोष्णता। तन्निबोध यथा सर्गे भगवान्संप्रवर्त्तते।३। नारायणाख्यो भगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः। उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वन्नित्यमेवोपचारतः।४। निजेन तस्य मानेन आयुर्वर्षशतं स्मृतम्। तत्पराख्यं तदर्द्धं च परार्द्धमभिधीयते॥५॥[4]

१. पृ० २१। २. पृ० ११४। ३. पृ० ६३। ४. विष्णुपुराण, तृतीय अध्याय, पृ० ११।

'दास' कृत पद्यानुवाद—बोले ऋषि मैत्रेय सुमति पराशर पांय परि।
जौ प्रभु अगुन अमेय तो केहि कारण जग रचत।

कहत पराशर सुनु मैत्रेया। निश्चय वह प्रभु अगम अमेया॥
जेते जीव जगत में अहहीं। सबमें शक्ति एक ह्वै रहहीं॥
शक्ति ईश्वरहि अमित करोरी। एकहि लगी सृष्टि की डोरी॥
यथा अग्नि में शक्ति तताई। सो जारे नहि अग्नि रिसाई॥
तैसे एक शक्ति प्रभु केरी। विधि ह्वै बिरचै सृष्टि घनेरी॥
आपुन जन्मै नहिं कछु जावै। निर्गुण रहै न गुण में धावै॥
तेहि विधि के विधि ही के दिन गत। आयुर्बल होत सौ सम्बत्सर॥
सो सिगरो पारुव्य कहावै। आधे को परार्द्ध जग गावै॥[1]

विष्णुपुराण (संस्कृत) के उपर्युक्त अंश का शाब्दिक पद्यानुवाद नीचे दिया जा रहा है।[2]

शाब्दिक अनुवाद—श्री मैत्रेय जी बोले! हे भगवन्, जो ब्रह्म निर्गुण, अप्रमेय, शुद्ध और निर्मलात्मा है उसका सर्गादि का कर्ता होना कैसे माना जा सकता है?

श्री पाराशर जी बोले! हे तपस्वियों में श्रेष्ठ मैत्रेय, समस्त भाव पदार्थों की शक्तियां अचिंत्य ज्ञान की विषय होती हैं। उनमें कोई युक्ति काम नहीं देती। अतः अग्नि की शक्ति उष्णता के समान ब्रह्म की भी सर्गादि रचना रूप शक्तियां स्वाभाविक हैं। अब जिस प्रकार भगवान् सृष्टि की रचना में प्रवृत्त होते हैं सो सुनो।

हे विद्वन्! नारायण नामक लोक पितामह भगवान ब्रह्मा जी सदा उपचार से ही 'उत्पन्न हुए" कहलाते हैं। उनके अपने परिमाण से उनकी आयु सौ वर्ष की कही जाती है। उस (सौ वर्ष) का नाम पर है, इसका आधा परार्द्ध कहलाता है।[3]

उपर्युक्त उद्धरणों की तुलना से स्पष्ट हो जायगा कि यहां पर 'दास' ने 'विष्णुपुराण' का शाब्दिक अनुवाद प्रस्तुत किया है। जो निश्चय ही बहुत सुन्दर बन पड़ा है।

(२) संस्कृत विष्णुपुराण—मैत्रेय उवाच। कथिता गुरुणा सम्यग्भूसमुद्रादिसंस्थितिः। सूर्यादीनां च संस्थानं ज्योतिषां चातिविस्तरात्॥ १॥ देवादीनां तथा सृष्टिर्ऋषीणां चापि वर्णिता। चातुर्वर्ण्यस्य चोत्पत्तिस्तिर्यग्योनिगतस्य च.। २। ध्रुव प्रह्लादचरितं विस्तराच्च त्वयोदितम्। मन्वंतराण्यशेषाणि श्रोतुमिच्छाम्यनुक्रमात्। ३। मन्वंतराधिपांश्चैव शक्रदेव-पुरोगमान्। भवता कथितानेताञ्छ्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो। ४। श्री पराशर उवाच। अतीतानागतानीह यानि मन्वंतराणि वै। तान्यहं भवतः सम्यक्कथयामि यथाक्रमम्। स्वायंभुवो मनुः पूर्वं पर: स्वारोचिषस्तथा। उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा। षडेते मनवातीतस्साम्प्रतं तु रवेस्सुतः। वैवस्वतोयं यस्यैतत्सप्तमं वर्ततेऽन्तरम्। स्वायंभुवं तु कथितं कल्पादावंतरं

१. विष्णुपुराण भाषानुवाद, पृ० १।
२. शाब्दिक अनुवाद गीता प्रेस से मुद्रित "विष्णुपुराण" से उद्धृत किया गया है।
३. विष्णुपुराण (गीता प्रेस), पृ० २०।

मया । देवास्सप्तर्षयश्चैव यथावत्कथिता मया । अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोस्स्वारोचिषस्य तु । मन्वंतराधिपान्सम्यग्देवर्षीस्तत्सुतांस्तथा पारावतास्सतुषिता देवास्स्वारोचिषेऽन्तरे । विपश्चित्तत्र देवेंद्रो मैत्रेयासीन्महाबलः । ऊर्ज्जः स्तंभस्तथा प्राणो वातोऽथ पृषभस्तथा । निरयश्च परीवांश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन् । चैत्र किं पुरुषाद्याश्च सुतास्स्वारोचिषस्य तु ।[1]

'दास' कृत पद्यानुवाद—गुरु सों कह मैत्रेय नाथ जो कह्यो सो मान्यों ।
सब संसार विचित्र विष्णुमय केवल जान्यों ।
नाथ कह्यो प्रति कल्प प्रकट मनु होंहि चतुर्दश ।
यकहत्तरि चौयुगी एक के वंश भरै यश ।
मनु नाम और मनु सुतन को इंद्र सप्त ऋषिदेव गन ।
गत विद्यमान भावी सहित सुनन लालसा मोंहि मन ।
कह्यो पराशर देव तात सात मनु ह्वै गये ।
पहिले तिन के भेव कहि पुनि कहों भविष्य मनु ।

स्वयंभूव स्वारोचिष जानो । सहित अउत्तिम तामस मानो ।।
रैवत चक्षुष षट मन बीते । वैवस्वत अतमान पुनीते ।।
स्वयंभूव मन्वंतर बाता । आदिहिं तुमहिं सुनायो ताता ।।
स्वारोचिष मनुसुत श्रुति वादी । भये चैत किंपुरुष अनादी ।।
नाम विपश्चित इंद्र संघाती । देव तुषित पारावत जाती ।।
तामें उर्ज तंब अरु पाना । पुनि दत्तोलि ऋषभ मति माना ।।
निश्चरयुत अर्बरी आन मुनि । ये सातौ सप्तर्षि गये गनि ।।[2]

शाब्दिक अनुवाद—श्री मैत्रेय जी बोले ! हे गुरुदेव ! आपने पृथिवी और समुद्र आदि की स्थिति तथा सूर्य आदि ग्रहगण के संस्थान का मुझसे भली प्रकार अति विस्तार-पूर्वक वर्णन किया । आपने देवता आदि और ऋषिगणों की सृष्टि तथा चातुर्वर्ण्य एवं तिर्यक्-योनि गत जीवों की उत्पत्ति का भी वर्णन किया । ध्रुव और प्रह्लाद के चरित्रों को आपने विस्तारपूर्वक सुना दिया । अतः हे गुरो ! अब मैं आपके मुखारविन्द से सम्पूर्ण मन्वन्तर तथा इन्द्र और देवताओं के सहित मन्वन्तरों के अधिपति समस्त मनुओं का वर्णन सुनना चाहता हूँ ।

श्री पराशर जी बोले ! भूतकाल में जितने मन्वन्तर हुए हैं तथा आगे भी जो-जो होंगे, उन सब का मैं तुमसे क्रमशः वर्णन करता हूँ । प्रथम मनु स्वायंभु थे । उनके अनन्तर क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष हुए । ये छः मनु पूर्व काल में हो चुके हैं । इस समय सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु हैं जिनका यह सातवां मन्वन्तर वर्तमान है ।

कल्प के आदि में जिस स्वायम्भुव मन्वन्तर के विषय में मैंने कहा है उसके देवता और सप्तर्षियों का तो मैं पहले ही यथावत् वर्णन कर चुका हूं । अब आगे मैं स्वारोचिष मनु के

१. विष्णुपुराण (संस्कृत) पृ० १२६ । १. वि० पु० भा०; पृ० १२८, १२६ ।

मन्वन्तराधिकारी देवता, ऋषि और मनुपुत्रों का वर्णन करूँगा। हे मैत्रेय, स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत और तुषितगण देवता थे, महाबली विपश्चित् देवराज इन्द्र थे। ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात, पृषभ, निरय और परीवान् ये उस समय सप्तर्षि थे तथा चैत्र और किम्पुरुष आदि स्वारोचिष मनु के पुत्र थे।[1]

मूल गद्यांश तथा 'दास' कृत पद्यानुवाद और गीताप्रेस के शाब्दिक अनुवाद की तुलना से स्पष्ट है कि 'दास' ने मैत्रेय के कथन का सार मात्र प्रस्तुत किया है, उनका सम्पूर्ण कथन नहीं। परन्तु उन्होंने पराशर के उत्तर को अपने शब्दों में यथावत् और ठीक-ठीक रखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'दास' की अन्तिम दो पंक्तियों में कुछ छपाई सम्बंधी त्रुटियाँ रह गयी हैं। इसी कारण पृषभ का ऋषभ तथा निरय और परीवान के लिए 'निश्चरयुत अर्वरीप्रान' छप गया है। हमारे विचार से यह 'दास' की गलती नहीं है।

(३) **संस्कृत विष्णुपुराणः—तद्यथा सकल जगतामादिरनादिभूतस्सऋग्यजुस्सामादिमयो भगवान् विष्णुस्तस्य ब्रह्मणो मूर्त रूपं हिरण्यगर्भो ब्रह्मांडभूतो ब्रह्मा भगवान प्रार्ग्इभूव। ब्रह्मणश्व दक्षिणाङ्गुष्ठजन्मा दक्षप्रजापतिः दक्षस्याप्यदितिरदितेर्विवस्वान् विवस्वतो मनुः। मनोरिक्ष्वाकुनृगधृष्टशर्यातिनरिष्यंतप्रांशुनाभागदिष्टकरूष पृषध्राख्या दश पुत्राबभूवुः।**[2]

'दास' कृत पद्यानुवाद—

ऋग यजु साम स्वरूप बीच याहि ब्रह्मांड कै। ब्रह्मा आदि अनूप ब्रह्म ह्वै प्रगटत भये॥
तेहि विधि के पग अंगुठा बामे। उपजे दक्ष प्रजापति नामे॥
अदिति दक्ष जाता सुकुमारा। सूरज जाते जग उजियारा॥
सूरज सुत दश इक्ष्वाकु पहीले। पुनि करूष शर्याति सुशीले॥
नरिष्यतो पृषध्र नृग धृष्टो। सहित प्रांशु नामनि ने दिष्टो॥[3]

शाब्दिक अनुवाद—उसका विवरण इस प्रकार है—सकल संसार के आदि कारण भगवान विष्णु हैं। वे अनादि तथा ऋक्-साम-यजुःस्वरूप हैं। उन ब्रह्मस्वरूप भगवान विष्णु के मूर्त्तरूप ब्रह्मांडमय हिरयण्गर्भ भगवान् ब्रह्मा जी सबसे पहले प्रकट हुए। ब्रह्मा जी के दाएं अंगूठे से दक्ष प्रजापति हुए, दक्ष से अदिति हुई तथा अदिति से विवस्वान् और विवस्वान् से मनु का जन्म हुआ। मनु के इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूष और पृषध्र नामक दश पुत्र हुए।[4]

उपर्युक्त तीनों अंशों की तुलना से स्पष्ट है कि 'दास' कृत अनुवाद में एक बड़ी अशुद्धि हो गयी है। दास ने कहा है कि दक्ष प्रजापति ब्रह्मा के बाएं पैर के अंगूठे से उत्पन्न हुए जब कि पुराण में स्पष्ट वर्णन है कि 'ब्रह्मणश्य दक्षिणाङ्गुष्ठ जन्मा दक्षप्रजापतिः' अर्थात् ब्रह्मा जी के दाएं अंगूठे से दक्ष प्रजापति का जन्म हुआ। दक्ष का अर्थ ही होता है "दाहिना"। शेष अनुवाद सुन्दर, स्पष्ट तथा व्याख्या सहित है।

१. वि० पु० (गी० प्रे०), पृ० २०५, २०६। २. विष्णुपुराण (संस्कृत), पृ० १६३।
३. विष्णुपुराण भाषानुवाद, पृ० १५६। ४. विष्णुपुराण (गी० प्रे०), पृ० २७९।

दास के उपर्युक्त अनुवादों से उनकी अनुवाद-क्षमता का पता चल सकता है। यों तो उनका सम्पूर्ण विष्णुपुराण भाषानुवाद ही संस्कृत के विष्णुपुराण का अनुवाद है और इस सम्बन्ध के सैकड़ों पद प्रस्तुत किए जा सकते हैं परन्तु दास की अनुवाद-क्षमता का अनुमान लगाने के लिए यही उदाहरण पर्याप्त हैं।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'दास' संस्कृत के पंडित थे और पुराण जैसे संस्कृत गद्य-ग्रन्थों को हिन्दी पद्य में रूपान्तरित करने में उन्हें काफी सफलता मिली है। यह बात दूसरी है कि कहीं उन्होंने मूल पाठ से कुछ छोड़ कर अपना काम चलाया है तो कहीं कुछ जोड़ कर विषय को सुस्पष्ट बनाने का प्रयास किया है। ऐसा करना प्रत्येक आचार्य अथवा अनुवादक के लिए स्वाभाविक है। कहीं-कहीं कुछ गलतियां भी हो गयी हैं परन्तु इतने बृहदाकार ग्रन्थ के अनुवाद में कतिपय त्रुटियों के आ जाने से हम 'दास' के इस स्तुत्य प्रयास की उपेक्षा नहीं कर सकते।

नाम प्रकाश अर्थात् अमरकोष का भाषानुवाद

दास जी ने नामलिंगानुशासन (अमरकोष) का भी पद्यानुवाद किया है जिसमें कोई नवीनता नहीं प्रतीत होती क्योंकि अमरकोष में किसी वस्तु के जितने भी नाम आये हैं वे सब दास जी ने क्रम विपर्यय करके रख दिये हैं। उन्हें इन नामों को पद्यबद्ध करना था फलतः इसके लिए तुक आदि को मिलाने के निमित्त उन्हें क्रम का उलटफेर करना पड़ा है।

भूमि और मिट्टी के नाम—

नामलिङ्गानुशासन—भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वंभरा स्थिरा।
धरा धरित्री धरणी क्षोणीर्ज्या काश्यपी क्षितिः।
सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुंधरा।
गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वीक्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही।
मृन्मृत्तिका प्रशस्ता तु मृत्सा मृत्स्ना च मृत्तिका।
उर्वरा सर्वसस्याढ्या स्वादूषः क्षारमृत्तिका।[1]

(१) 'दास' कृत अनुवाद—

वसुधा, सागरांबरा, काश्यपी, भू, विश्वंभरा, रसा, पृथ्वी, बसुंधरा, सर्वसहा चहिये।
अचला, अनंता, थिरा, बसुमती, गोत्रा, धरा, भूमि, ज्या रु मेदिनी, कु रत्नगर्भा लहिये।
मही, क्षमा क्षिति, क्षौनी, उर्वी, औ धरित्री, अवनि, भूतधात्री, बिपुला धरणि तीसं गहिये।
खोऊ मटिही को नाम पुनि मृत्सा और मृत्स्ना दोऊ नीको माटी कहिये।
एक उर्बरा भूमि जिहि उपजतु है सब बीजु।
ऊख क्षार मृतिका दुवौ खारी माटी लीजु।[2]

दास के अनुवाद से स्पष्ट है कि उन्होंने अमरकोष की उपर्युक्त पंक्तियों का शाब्दिक तथा यथावत् अनुवाद प्रस्तुत किया है।

१. नामलिंगानुशासन पृ० ४६। २. नामप्रकाश, पृ० ६८, ६९।

स्त्रियों के नाम—

(२) नामलिंगानुशासन—

स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः।
प्रतीपदर्शिनी बामा वनिता महिला तथा।
विशेषास्त्वंगना भीरुः कामिनी वामलोचना।
प्रमदा माननी कान्ता ललना च नितम्बिनी।
सुन्दरी रमणी रामा कोपना सैव भामिनी।
वरारोहा मत्तकाशिन्युत्तमा वरवर्णिनी।[1]

'दास' कृत अनुवाद—स्त्री योषित अबला बनिता महिला वधू प्रतीपदर्शिनी ज्वै।
सीमंतिनि, बामा, योषा, नारी, ग्यारह नाम सधारन द्वै।
रामा अरु रमनी भीरु भामिनी बाम लोचना प्रमदावै।
अंगना नितंबिनि कांता कामिनि ललना सुंदरि है दश द्वै।
पुनि कोपना भामिनी दोई। क्रोधी तिया जानै सब कोई।
मत्त कामिनी, उत्तमा वर वर्निनी बखानि।
चारि वरारोहा सहित अति सुन्दरि तिय जानि।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि 'दास' ने 'अमरकोष' के विषयों को हिन्दी पद्य में रूपान्तरित करके उन्हें अधिक सरल और बोधगम्य बनाने का प्रयास किया है।

दास का व्यक्तित्व—पूर्व पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि भिखारीदास कवि कर्म की ओर प्रवृत्त होने के पूर्व संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन कर चुके थे। उनके समक्ष काव्य विषयक तथा काव्यशास्त्र संबंधी वह सभी सामग्री उपलब्ध थी जिसकी अपेक्षा किसी भी अच्छे कवि एवं आचार्य को हो सकती है। इसमें भी सन्देह नहीं कि उनके काल में ऐसे नये-नये कवियों का उदय हो रहा था, जो कवित्व-प्रदर्शन में एक-दूसरे से बाजी मार ले जाने के लिए विशेष रूप से लालायित रहते थे। यही कारण था कि अनेक कवियों ने संस्कृत काव्य-ग्रंथों के आधार पर या तो अपनी मूल रचनाएं कीं अथवा संस्कृत साहित्य में पायी जाने वाली उत्कृष्ट काव्य रचनाओं का बिना किसी संकोच के हिन्दी में अनुवाद कर डाला। कुछ कवियों में तो मूल लिखने और अनुवाद करने दोनों ही की क्षमता थी। दास इसी द्वितीय प्रकार के कवि थे। कवि के रूप में उनसे जिन-जिन गुणों की अपेक्षा की जा सकती थी वे सभी किसी न किसी रूप में उनमें विद्यमान थे। कवि दास की मानसिक स्थिति सुलझी हुई, उनका विषय स्पष्टीकरण सुगम एवं सरल तथा उनकी सूझबूझ मौलिक थी। अपने इन्हीं गुणों के कारण तत्कालीन समाज में उनका आदर था, राजसभाओं में उनका सम्मान होता था और उनकी कविताएं राजा और प्रजा दोनों के मध्य बड़ी रुचि और श्रद्धा के साथ पढ़ी जाती थीं। वह काल ही ऐसा था जब कवि अपनी काव्य रचना द्वारा प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः दूसरों को प्रभावित कर सकने की क्षमता पैदा करने के लिए निरंतर

१. नामलिंगानुशासन, पृ० ६१, ६२। २. नामप्रकाश, पृ० १३५।

प्रयत्नशील रहा करता था। उस काल में आश्रयदाताओं की उदारता, उनका कविता प्रेम तथा कवियों को दान में अमूल्य से अमूल्य वस्तु तक दे डालने की प्रवृत्ति ने भी अच्छे दरबारी कवियों को आर्थिक दुश्चिन्ताओं से मुक्त करके उन्हें केवल काव्य रचना में दत्तचित्त किया। इन्हीं प्रवृत्तियों ने दास की काव्य-बुद्धि को भी प्रखर बना दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि दास के अन्तस् का कवि अपने चारों ओर की विविध परिस्थितियों[1] में पड़कर एक विशिष्ट विचारधारा का अनुयायी हो गया, जिसमें आध्यात्मिक ज्ञान और साधना के गम्भीर चिन्तन की न्यूनता तथा लौकिक शृंगार की बहुलता थी। इस संबंध में दास की निम्नलिखित पंक्तियां अवलोकनीय हैं :

तात यह उद्यम अकारथ न जैहै सब भांति ठहरैये भलो हौं हूं अनुमानो है।
आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

इन पंक्तियों में 'दास' का स्पष्ट मत है कि भावी कवियों द्वारा प्रशंसित होने पर ही उनकी कविता सफल मानी जायगी अन्यथा सम्पूर्ण काव्य राधाकृष्ण स्मरण के रूप में होगा। तात्पर्य यह कि दास की मानसिक स्थिति लोक में प्रवृत्त अधिक थी और ईश्वरोन्मुख अथवा आध्यात्मिक कम। इसका अर्थ यह नहीं कि उनके द्वारा विवेचित विषयों की व्यापक उपादेयता और उनकी काव्य-प्रतिभा का महत्व कम था। वस्तुतः उनकी काव्यकला और उनके द्वारा चित्रित लौकिक भावों की प्रभावात्मकता तथा सरलता उच्चकोटि की थी। उन्होंने अपने काव्य में इन गुणों का समावेश करने के लिए विशेष उद्यम भी किया था और उन्हें विश्वास था कि उनका यह उद्यम व्यर्थ न होगा तथा किसी न किसी दिन उनके काव्य की सराहना अवश्य होगी। उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि भिखारीदास निराशावादी नहीं अपितु पूर्णाशावादी एवं धर्मपरायण कवि थे। यदि उन्हें काव्यरीतिका के रूप में संस्कृत के काव्यों में निहित उत्कृष्ट भावों तथा अपने युग की एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर काव्य रचना करने की प्रतियोगितात्मक प्रवृत्ति न मिली होती, यदि उन पर अनेकानेक परिस्थितियों की क्रिया और प्रतिक्रिया का प्रभाव न पड़ा होता तो दास का व्यक्तित्व संकुचित हो कर रह गया होता और कवि के रूप में अब तक उनकी कीर्ति चिरस्थायी न रही होती।

साहित्य रचना के लिए दास की साधना—हम देख चुके हैं कि दास का रचना काल सं० १७८५ वि० से लेकर संवत् १८०७ वि० तक ठहरता है। दास ने इन २२ वर्षों में अपने कवि-कर्म-कौशल की अभिव्यक्ति में जिस पटुता एवं निपुणता का परिचय दिया है उसका अनुमान उनके अनेकानेक ग्रन्थों से लगता है। वर्ण्य विषयों के अनुसार दास के ग्रंथों की विविधता जैसे अनुवादात्मक ग्रंथ, छंदशास्त्र, रस, नायिका-भेद तथा काव्यशास्त्र संबंधी ग्रंथ और इन ग्रंथों में उदाहरण-स्वरूप आये हुए फुटकर छंद इस बात के द्योतक हैं कि 'दास' काव्य साधना के क्षेत्र में परम्परागत परिपाटी के अनुगामी थे। उनके ग्रन्थों में संस्कृत साहित्य तथा उस काल तक हिन्दी साहित्य में उपलब्ध होने वाले अनेक विषयों का समन्वय एवं विवेचन मिलता है।

१. देखिये खंड २ का पूर्वार्द्ध।

चार-चार वर्षों पर उनकी ग्रन्थ-रचना का क्रम इस बात का द्योतक है कि उन्होंने साहित्य सृजन के क्षेत्र में कभी शिथिलता न आने दी[1] और आरंभ किये गये अपने कार्य को एक निश्चित अध्ययन और परिपक्व विचारों के अनुसार ही सम्पादित किया। काव्यसाधना के क्षेत्र में इस प्रकार की नियमितता विरले कवियों में ही दिखायी पड़ती है। काव्य साधना के सम्बन्ध में उनका निश्चित मत था कि प्रतिभा, सुकवियों द्वारा प्रतिपादित काव्य रीतियों का अध्ययन तथा लोकव्यवहार-पटुता अथवा लोकानुभव इन्हीं तीन बातों के आधार पर कविता सुन्दर एवं स्थायी बनती है। यह दास का केवल सैद्धान्तिक मत ही नहीं था अपितु ये तीनों विशेषताएं उनके जीवन पर भी घटित होती थीं। हमने इन सब का विशद विवेचन आगे किया है।[2]

यहां यह उल्लेखनीय है कि काव्य-रस के आनन्द की अनुभूति कराने में न तो वे प्रभु-सम्मित कविताओं को श्रेयस्कर समझते थे, जिन में वेदों की भांति का उपदेश प्रत्यक्ष शब्दों में होता है, और न सुहृद-सम्मित कविता ही को जिसमें मित्र-मित्र का पथप्रदर्शन करता अथवा उसे उपदेश करता है। दास का तो स्पष्ट मत था कि वास्तविक काव्यानन्द की अनुभूति का साधन तो कान्ता-सम्मित वह कविता है जिस में कथन की अभिव्यक्ति संकेत रूप में उसी प्रकार की गयी हो जिस प्रकार कोई सुन्दरी स्त्री अपने मानस के अभिप्राय को संकेतों द्वारा प्रकट करती है[3]। 'दास' ने अपने इसी मत के अनुसार अधिकतर व्यंग्यात्मक तथा ध्वन्यात्मक काव्य-रचनाएं की हैं। कहीं-कहीं तो वे बहुत ही उच्चकोटि की हुई हैं। कविता में सौंदर्यपूर्ण एवं ललित वर्णनों के समावेश के लिए जिस मानसिक विशेषता, अध्ययन अथवा काव्य कौशल की अपेक्षा होती है तथा जिस काव्यसाधना की आवश्यकता होती है उसका 'दास' में अभाव न था। 'दास' की रचनाओं में हमें अनेक स्थलों पर भावात्मक कविताएं देखने को मिलती हैं। इन कविताओं की उत्कृष्टता 'दास' की काव्यप्रतिभा की ओर तो संकेत करती ही है साथ ही उनके अध्ययन तथा सूक्ष्म बुद्धि की भी द्योतक है। हमने दास की काव्य-कला का मूल्यांकन करने तथा उनमें काव्यसाधना के लिए अपेक्षित गुण कहां तक पाये जाते हैं यह देखने का प्रयास 'काव्यकला' शीर्षक खंड में किया है।

१. देखिये पृ० संख्या २५। २. देखिये खण्ड ३।

३. प्रभु ज्यों सिखवै वेद, मित्र-मित्र ज्यों सत कथा।
काव्य रसन्ह को भेद, सुख सिखदानि तिया सु ज्यों। काव्य निर्णय, पृ० ५।

खण्ड २

साहित्य रचना

कवि या साहित्यकार उस दर्पण के समान है जिसमें युग विशेष की छाया पड़ते रहने के कारण उसमें युगान्तरगत विशेषताओं का रूप देखा जा सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि कवि अपने काल की प्रायः समस्त प्रमुख घटनाओं से प्रभावित होता है चाहे वे आर्थिक क्षेत्र की हों अथवा सामाजिक, साहित्यिक या अन्य किसी क्षेत्र की। सच्चा कवि अपने काल की उन घटनाओं को दृष्टिविगत नहीं होने देता जिनका उस समय की जनता पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी तो वह न्यायाधीश की भांति ऐसी घटनाओं के फलस्वरूप पड़ने वाले सार्वभौम प्रभाव के औचित्य अथवा अनौचित्य का भी निर्णय देता है। निष्कर्ष यह कि किसी न किसी रूप में कवि के ऊपर उसके समय का प्रभाव पड़ता ही है।

कवि के विषय में पूर्ण जानकारी करने के लिए यह अनिवार्य है कि उन परिस्थितियों का भली भांति अध्ययन किया जाय जिनकी पृष्ठिभूमि में कवि ने अपने काव्य का सृजन किया। साथ ही उन साहित्यिक धाराओं का भी ज्ञान होना अपेक्षित है जिनके अध्ययन से कवि को कविता करने की प्रेरणा एवं शक्ति मिली। भिखारीदास रीतिकाल के एक सफल कवि एवं आचार्य थे। उनकी रचनाओं पर उन रीति-ग्रन्थों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है जो उनके काल तक हिन्दी अथवा संस्कृत में उपलब्ध थे। ऐसी दशा में दास की साहित्य-रचना का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करना श्रेयस्कर होगाः—

(क) रीतिकाल का आरम्भ
  १. ऐतिहासिक पूर्वपीठिका।
  २. धार्मिक परिस्थितियां।
  ३. आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियां।
  ४. साहित्यिक परिस्थितियां।
(ख) रीतिकाव्य का शास्त्रीय आधार।
(ग) हिन्दी में रीतियों की परम्परा।
(घ) रीति काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां।
(ङ) भिखारीदास के ग्रन्थ और उनकी प्रामाणिकता।

(क) रीतिकाल का आरम्भ

पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "हिन्दी रीति ग्रन्थों की अखंड परम्परा

चिंतामणि त्रिपाठी से चली। अतः रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से मानना चाहिए। उन्होंने संवत् १७०० वि० के कुछ आगे पीछे 'काव्य विवेक', 'कविकुलकल्पतरु' और 'काव्यप्रकाश' ये तीन ग्रन्थ लिखकर काव्य के सब अंगों का पूरा निरूपण किया। इसके उपरान्त तो लक्षण ग्रन्थों की भरमार सी होने लगी"।[1] रीति परम्परा के व्यावहारिक रूप का आरम्भ संवत् १७०० वि० से ही इतिहासकार मानते हैं, यद्यपि शुक्ल जी के अनुसार संवत् १५९८ वि० में कृपाराम थोड़ा बहुत रस निरूपण भी कर चुके थे। उसी समय के लगभग चरखारी के मोहनलाल मिश्र ने 'शृंगार सागर' नामक एक ग्रन्थ शृंगार सम्बन्धी लिखा। नरहरि "कवि के साथी करनेस कवि ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' नामक तीन ग्रन्थ अलंकार सम्बन्धी लिखे। इस निरूपण और अलंकार निरूपण का इस प्रकार सूत्रपात हो जाने पर केशवदास जी ने काव्य के सब अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। इसमें सन्देह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक् समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया। पर हिन्दी में रीति ग्रन्थों की अविरल और अखंडित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्रायः ५० वर्ष पीछे चला"।[2] कविप्रिया की रचना सं० १६५८ वि० में हुई थी। इस हिसाब से भी रीतिकाल का आरम्भ संवत् १७०० वि० से ही माना जा सकता है।

१. **ऐतिहासिक पूर्वपीठिका**—संवत् १७०० वि० अर्थात् सन् १६४३ ई० का काल वैभव की दृष्टि से मुगलों के लिए स्वर्णकाल कहा जा सकता है। यह काल वह था जब दिल्ली के सिंहासन पर शाहजहां का अधिकार था। जहांगीर से उत्तराधिकार में पाये हुए मुगल राज्य का शाहजहाँ ने पूर्ण रूप से विस्तार किया। अब उसके अधिकार में कन्धार का किला तथा अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा आदि की रियासतें भी आ गयीं थीं। राज कोष स्वर्ण और रत्नों से परिपूर्ण था। रुपया पानी की भाँति बहाया जाता था। सुरा और सुन्दरी का सुभोग दरबार की शान समझी जाती थी। रत्न और स्वर्णाभूषण न केवल दरबारियों तथा अमीर-उमरा द्वारा ही धारण किये जाते थे अपितु हरम की बेगमें भी बहुमूल्य हीरे-मोतियों से लदी रहतीं। पहने जाने वाले इन रत्नों के मूल्यों का अनुमान लगाना सहज न था। कहा जाता है कि प्रति वर्ष स्वयं शाहजहाँ के लिए स्वर्णजटित एक हजार बहुमूल्य पोशाकें बनती थीं और वे अल्प उपभोग के बाद अमीर-उमरावों को बाँट दी जाती थीं। कला-कौशल इतने उच्च शिखर को पहुँच चुका था कि शाहजहाँ द्वारा बनाया गया आगरे का ताजमहल आज भी विश्व का आठवां आश्चर्य माना जाता है। उस काल की बनी हुई मोती मस्जिद तथा अन्य ऐतिहासिक इमारतें आज भी अपनी तुलना नहीं रखतीं।[1] परन्तु "जहाँगीर की मस्ती और शाहजहां के अपव्यय दोनों का परिणाम अहितकर हुआ। जिस प्रकार साहित्य के इतिहास में भक्तिकाव्य के चरम वैभव के बाद सं० १७०० वि० के आस-पास से ही कविता क्षयग्रस्त होने लगी थी, ठीक उसी प्रकार राजनीतिक इतिहास में मुगल साम्राज्य

१. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २०२।
२. ,, ,, ,, ,, ,, ,, पृ० २०१।
१. देखिये अब्दुल्ला यूसुफ अली : मेकिंग आफ इंडिया, पृ० १०९।

भी अपने सम्पूर्ण यौवन को प्राप्त करने के उपरान्त ह्रासोन्मुख हो चला था"।[1] यह बात अवश्य थी कि अकबर द्वारा स्थापित दरबारों में विद्वानों का समुचित आदर सत्कार करने की परम्परा रीतिकाल म भी नष्ट नहीं हुई थी। अब भी दरबारों में मान्य विद्वानों को आदर मिलता था। छोटे-छोटे राज्यों के राजा महाराजा विद्वानों को अपने आश्रय में रखते थे और ऐसा करनी उनके दरबार की प्रतिष्ठा-वृद्धि के लिए आवश्यक भी समझा जाता था।

सितम्बर सन् १६५७ ई० में जब शाहजहाँ बीमार पड़ा तब उसके चारों पुत्रों में राज्याधिकार प्राप्त करने लिए संघर्ष हुआ। दारा को, जिसे अपने पिता का समथन प्राप्त था, शुजा को अपनी ओर मिला लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इधर औरंगजेब ने मुराद को अपनी ओर मिलाया। इस प्रकार विशालवाहिनियाँ आगरे की ओर चल पड़ीं। दारा औरंगजेब की रणचातुरी की तुलना में कब ठहर सकता था। किन्तु उसे अपनी सेना के अधिक होने तथा अपने पिता का समर्थन प्राप्त होने के कारण विजय की पूरी आशा थी। उसने अपने दोनों छोटे भाइयों पर आक्रमण कर दिया किन्तु वह जून सन् १६५८ ई० में बुरी तरह परास्त हुआ। औरंगजेब ने आगरे के किले पर अधिकार कर लिया। उसने अपने पिता को दारा का पक्ष लेने के कारण बन्दी बना लिया और तब औरंगजेब दारा का पीछा करता हुआ दिल्ली पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने अगस्त सन् १६५८ ई० में अपने बादशाह होने की घोषणा कर दी यद्यपि औपचारिक रूप से सिंहासनारोहण समारोह इसके एक वर्ष पश्चात् मनाया गया। शाहजहाँ ने अपना शेष जीवन सम्मानित बन्दी के रूप में आगरा में व्यतीत किया और जनवरी सन् १६६६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।[2]

इस प्रकार औरंगजेब ने जिस अनैतिकता एवं अनाचार के साथ सिंहासन हथियाया उसका प्रजा पर कुप्रभाव पड़ना अवश्यंभावी था। पुत्र का पिता को कैद कर लेना, उसे जीते जी उसके अधिकार से वञ्चित कर देना, भाइयों के विरुद्ध प्राणघातक आक्रमण करना तथा प्रजा को संत्रस्त करना आदि ऐसी बातें थीं जिन्होंने सदा के लिए मुगल साम्राज्य के पतन के बीज बो दिये। उसके शासन काल म नैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था भी बड़ी खराब हो गयी थी। वह कठोर शासक था फिर भी उसकी शासक बुद्धि ने अपने राज्य का बहुत कुछ विस्तार कर लिया। किन्तु वह अपने अधीनस्थ दूरस्थ गवर्नरों पर कोई नियंत्रण न रख सका, जिसका फल यह हुआ कि प्रजा पर होने वाले मनमाने अत्याचारों की मात्रा बढ़ती गयी। उसकी नीति सुनियोजित न थी। उसके राज्य में निष्पक्ष न्याय के अच्छे साधन न थे, उसकी राजपूत विरोधी चालें प्राय: प्रकाश म आ जाती थीं, उसकी सत्ता दिल्ली में केन्द्रित थी और राज्य की आय का बहुत बड़ा प्रतिशत विलासिता एवं प्रसाधनों पर खर्च हो रहा था। उसकी हिन्दू विरोधी नीति तथा उसके द्वारा मथुरा में केशवदास का तथा काशी में विश्वनाथ का मंदिर ध्वस्त कर दिये जाने से अधिकांश हिन्दू और राजपूत उसके विरोधी हो गये। उनमें चम्पत-राय तथा उनके पुत्र छत्रसाल के, जिनकी वीरता का उल्लेख 'भूषण' ने बहुत कुछ किया है,

१. डा० नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० २।
२. अब्दुल्ला यूसुफ अली : मेकिंग आफ इण्डिया पृ० ११४।

नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उसके शासनकाल में पारस्परिक अविश्वास, संघर्ष तथा असंयम की मात्रा में बहुत कुछ वृद्धि हो गयी थी। सिक्ख भी इस शासन से असंतुष्ट थे। उनके गुरु तेगबहादुर की नृशंस हत्या तथा गुरु गोविन्दसिंह के दो बच्चों को दीवाल में चुनवा दिये जाने की घटनाओं ने तो उनके रक्त में और भी उष्णता पैदा कर दी थी। हिन्दू धर्म के प्रति उसके वैमनस्य के कारण महाराष्ट्र में शिवाजी की अधीनता में मरहठे उससे मोर्चा लेने के लिए अपनी शक्ति संगठित कर रहे थे। इस समय उसके सामने जीवन-मरण तथा साम्राज्य को स्थिर रखने का प्रश्न था। इस अवसर पर औरंगज़ेब की राजनीतिमत्ता तथा हिन्दुओं की पारस्परिक फूट ने उसे अपने साम्राज्य को छिन्नभिन्न होने से बचाये रखने के लिए एक स्वर्ण अवसर प्रदान किया। परन्तु यह सब कब तक चलता? २१ फरवरी सन् १७०७ ई० को औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई और उसकी मृत्यु के बाद से उस मुगल साम्राज्य की, जो उसके दृढ़ व्यक्तित्व के कारण किसी न किसी प्रकार टिका हुआ था, चूलें हिलने लगीं और क्षण प्रतिक्षण यह विश्वास दृढ़ होता गया कि यह साम्राज्य अब गया अब गया क्योंकि अब मुगल साम्राज्य के पतन के लक्षण स्पष्ट होने लगे थे...उसमें भलाई करने की कोई शक्ति न रह गयी थी और जब सिंहासन निर्बलों और अशक्तों के हाथ में पहुँचा तो अन्ततः उसे ध्वस्त होना ही था।[1]

औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद से राज्यलोलुप उत्तराधिकारियों में सिंहासन के लिए संघर्ष हुआ। उसकी मृत्यु से लेकर ११ वर्ष तक कई शासक अर्थात् **बहादुरशाह** (सन् १७०७ से सन् १७१२ ई० तक), **जहांदारशाह** (सन् १७१२), **फरुखसियर** (सन् १७१२ से सन् १७१६ ई०), **रफीउद्दाराजात** (सन् १७१६ ई०) और **रफीउद्दौला** (सन् १७१६ ई०) दिल्ली के सिंहासन पर बैठे। ये उत्तराधिकारी निर्बल एवं अयोग्य थे और अपने राज्य को अधिक से अधिक समय तक बनाये रखने के लिए उपद्रवों तथा षडयंत्रों का सहारा लेने में जरा भी संकोच न करते थे। इसके कारण स्पष्ट थे। पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य से सभी राजनीतिक दल लाभ उठाना चाहते थे। अतः शासक इनसे भी भयभीत रहते थे[2]। मुहम्मदशाह (सन् १७१६ ई० से सन् १७४८ तक) के शासनकाल में तो असंतोष अपनी चरम-सीमा को पहुंच चुका था। इस काल में निजाम, सिख, मराठे तथा नादिरशाह ने बड़ा उपद्रव मचाया। नादिरशाह की ऐतिहासिक लूट खसोट ने तो दिल्ली का खजाना ही खाली कर

1. When at last he (Aurangzeb) closed his aged eyes in death (1707) we find that decline has unmistakably set in; the Indo-Moghal civilisation whose agent was the empire of Delhi was now a spent bullet; its life was gone; it had no power for good left in it. With a succession of weaklings and embeciles on the throne the downfall of the empire was bound to come at last.

Sir J. N. Sarkar: Fall of the Moghal Empire, pp. 2-3.

2. देखिये Abdulla Yusuf Ali : Making of India, pp. 163.

दिया ।[1] इसके बाद अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण ने मुगल साम्राज्य की रही सही शक्ति को भी जर्जर कर दिया ।

अतः औरंगजेब की मृत्यु के ४०-५० वर्ष के अन्दर ही देश में अशान्ति व्याप्त हो गयी । दिल्ली के शासकों से भय न रह जाने के कारण खाली समय में रणोच्छु राजपूत रण के घोषों के स्थान पर सुरा और कामिनी से आकृष्ट हो रहे थे । इस काल में उनका ध्यान यवनों की ओर से खिच कर पारस्परिक संघर्षों में जा लगा । इसके लिए उन्हें राजस्थान का रंगमंच भी प्राप्त हो गया जहां प्रायः वे आपसी लड़ाइयों और भोगविलासों में व्यस्त रहने लगे । मरहठों और पिंडारियों ने इस स्थिति का लाभ उठाया । मुहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात् अहमदशाह के शासनकाल (सन् १७४८ ई० से सन् १७५४ ई० तक) में तो रही-सही कमी भी पूरी हो गयी ।

इस प्रकार प्रायः सम्पूर्ण देश विप्लव एवं संघर्षों से जर्जर हो रहा था । मुगल साम्राज्य के पतन का आरम्भ हो जाने के कारण राजनैतिक ढांचा अस्त-व्यस्त हो रहा था । सिखों का धार्मिक जोश, जाटों की अराजकता तथा राजपूतों और शिवाजी की शक्ति निरन्तर बढ़ती जा रही थी । रक्तपात लूट-खसोट, आन्तरिक झगड़े तथा बाह्याक्रमण, गवर्नरों की स्वेच्छाचारिता, शासकों की निर्बलता, षड्यंत्र, जाल-फरेब, पक्षपात, स्वार्थपरता, जनहित-उपेक्षा आदि कुकृत्यों से देश त्रस्त था[2]। शासकों में अहमन्यता की भावना अपनी उच्चतम सीमा

1. It was not till long after Nadir was gone that the court awoke as if from lethargy. The view of the empire which presented itself was as full of ruin and desolation as the capital. The army was destroyed, the treasury emptied, the finances all but annihilated, the Mahrattas still threatened on the south. To these unavoidable evils the court added internal dissension.

Elphinston : History of India, pp. 720-721.

2. The political outlook in India was now most gloomy and perplexing. The strong government that had formerly maintained order throughout the greater part of the country was no more. The actual dominions of the Emperor had shrunk to the neighbourhood of the capital, and even over these the feeble and utterly discredited Mogul retained only a precarious and relaxing grasp. But to say nothing of Sikh fanaticism and Jat lawlessness, the prospect of Mahratta ascendency was by no means hopeful for the welfare of India. In the work of political destruction, marauding and financial extortion and assessment, Shivaji's people were unrivalled. But it remained very questionable whether they were capable of reconstructing regular and tolerable scheme of civil government. And failing this constant warfare, general anarchy and the extreme social misery that these involve seemed the inevitable alternative.

Owen : The fall of the Mogul Empire, pages 208-209.

को पहुंच चुकी थी। वे कामिनी सौन्दर्य (इनमें लालकुंवर, कूकी, ऊधमबाई आदि के नाम उल्लेखनीय हैं) को प्रधानता देते तथा अन्य प्रकार के ऐन्द्रिक सुखों का उपभोग करते थे। और यद्यपि उनके व्यवहार से उर्दू कविता, संगीत, चित्रकला, स्थापत्य कला आदि को प्रेरणा मिल रही थी, किन्तु शासन-सत्ता का प्रतीक नष्ट हो गया था यहां तक कि एक विदेशी सत्ता के आगमन के लिए पृष्ठभूमि तैयार हो गयी थी[1]।

इन परिस्थितियों के भँवर में पड़ कर तत्कालीन कवि वर्ग एक विशेष विचारधारा का अनुगामी हो गया। अब कवियों ने हिन्दी साहित्य को आध्यात्मिक स्तर से उतार कर लौकिक स्तर पर ला खड़ा किया और उनकी लेखनी शृंगार से ओतप्रोत कामिनियों का चित्रण करने का माध्यम बनी।

२. **धार्मिक परिस्थितियां**—मुगलों की धार्मिक कट्टरता ने हिन्दू और मुसलमान दोनों में कटुता का बीज बो दिया था। आये दिन धर्म के नाम पर रक्तपात, उपद्रव तथा झगड़े होते रहते थे। हिन्दुओं का बलात् धर्म परिवर्तन भी किया जाता था। अतः वे धार्मिक मामलों में सदा भयभीत रहते। इन परिस्थितियों में सन्त मत का उदय हुआ जिस की विशेषता यह थी कि इसमें राम और रहीम, काबा और कैलाश, कुरान और पुराण में कोई अन्तर न माना जाता तथा लोगों में यह भावना भरी जाती कि मानवता ही धर्म है। इस मत के प्रवर्तक हुए **कबीर, दादू, नानक** आदि। ये सन्त भारत के विभिन्न प्रदेशों में हुए। इन पर इस्लाम धर्म का भी प्रभाव पड़ा। उन्होंने 'ईश्वर एक है' इस सिद्धान्त का प्रचार किया[2]। इनके अतिरिक्त अन्य छोटे-छोटे सम्प्रदाय भी उठ खड़े हुए। **गरीबदासी, रामसनेही, चरणदासी, शिवनारायणी** तथा **सतनामी** इनमें से प्रमुख सम्प्रदाय थे। इन सम्प्रदायों पर

1. And amid such scenes of fratricidal warfare and economic devastation, the rulers indulged in unscrupulous egoism, preferred famale beauty for instance Lal kuar, Kuki, Udham Bai etc. and other pleasures and enjoyments and though their behaviours gave stimulus to Urdu poetry, music, painting, architecture etc. the symbol of sovereignty ended dismally until the conditions were ripe for the conquests of a foreign power.

Dr. L. S. Varshney: Thesis (Mss. Chapter '1757-1857')

2. The forces that were working for the modus vivendi were also responsible for the rise of Bhakti movement...which recognised no difference between Ram and Rahim, Kaba and Kailash, Quran and Puran and inculcated that Karma is Dharma. The preachers of this creed Ramanand, Kabir, Dadu, Ramdas, Surdas, Nanak and Chaitanya who flourished in different parts of India and preached the principle of unity of God, were immensely influenced by Islam.

S. M. Jaffar: The Mogul Empire, pp. 400.

हिन्दू तथा इस्लाम दोनों ही धर्मों का प्रभाव पड़ा। कहीं-कहीं पर इस्लाम धर्म का प्रभाव अधिक होने के कारण ये सम्प्रदाय हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों से दूर भी हो गये थे। सन्त मत अनपढ़ जनता में प्रचलित तो हुआ परन्तु वह सर्वसाधारण के समक्ष कोई आदर्श न प्रस्तुत कर सका। इसी काल में वैष्णव भक्ति का भी धार्मिक आन्दोलन चला। स्वामी रामानन्द, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, हितहरिवंश आदि आचार्यों के अतिरिक्त सूर, तुलसी, मीरा जैसे परम भक्त भी उस समय उत्पन्न हुए जिन्होंने सगुण ईश्वर के प्रेम को साधन बनाया।

इस काल में आगे चल कर सम्प्रदायों द्वारा 'गद्दी' की प्रथा भी आरम्भ की गई। वल्लभ सम्प्रदाय की भी, जो कृष्णोपासक था, गद्दियां स्थापित हो गयी थीं। अतः यह स्वाभाविक था कि जब धर्मोपदेशक स्वयं ऐश्वर्य के पंक में फंस गये थे तो भक्तों का त्राण कैसे होता, उन्हें कौन आध्यात्मिकता का उपदेश करता ? फलतः इन गद्दियों के क्रिया-कलाप आचार-व्यवहार आदि पैसे वालों और समृद्ध व्यक्तियों तक ही सीमित रह गये। इसका परिणाम यह हुआ कि धनलोलुप मठाधीशों में बाह्याडंबरों की तो वृद्धि होने लगी किन्तु उनका मानसपटल तमाच्छादित ही रहा। उनमें तत्व-चिंतन और साधना के सूक्ष्म साधनों के प्रति कोई मोह एवं आकर्षण न रह गया। वे आध्यात्मिकता से विमुख होकर ऐन्द्रिक सुख की प्राप्ति के साधन जुटाने लगे। उनमें विलासिता की वृद्धि हुई। उनके विलास के लिए भी इतने साधन एकत्र किये गये थे कि अवध के नवाब तक को उनसे ईर्ष्या हो सकती, या कुतुब-शाह भी अपने अन्तःपुर में उनका अनुसरण करना गर्व की बात समझते।

धर्म की उक्त दो धाराओं के साथ-साथ एक अन्य धारा भी प्रवाहित हो रही थी जो प्रायः अन्धविश्वासियों के मध्य पनप रही थी। ये लोग न तो निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का ही प्रयत्न करते थे और न सगुण ईश्वर की ही एकनिष्ठ भक्ति करते। ये धर्मभीरु थे और आसानी से वंचकों एवं चालबाजों के शिकार हो जाते थे। ये लोग जादू-टोने, भूत-पिशाच, कंठा-ताबीज, पीर-पैगम्बर आदि में विश्वास करते और कोई भी इन्हें उनकी इस भीरुता के कारण सरलता से ठग सकता था।

मठों, देवदासियों, राधिकापूजन आदि के प्रचलित हो जाने के कारण तो विलासिता को और भी अधिक प्रश्रय मिला, जिसके परिणामस्वरूप ऐन्द्रिक सुखों को महत्ता दी जाने लगी। धार्मिक क्षेत्र में उद्भूत उपर्युक्त अनेकानेक विचार-धाराओं के कारण तत्कालीन कवि समाज में नायिका भेद अथवा शृंगार रस के अन्य उपकरणों को लेकर भक्ति की रचनाएँ करने की प्रवृत्ति बढ़ी जिसका फल यह हुआ कि भक्ति के आवरण में कवियों ने मनुष्य की विलासात्मक वृत्तियों का चित्रण किया और कामिनी कलापों से हिन्दी का तत्कालीन साहित्य परिपूर्ण हो गया।

३. आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ—आर्थिक दृष्टि से भारत सदा से सुसम्पन्न देश रहा है। उसके वैभव की प्रसिद्धि संसार के दूर दूर देशों में थी। इसी कारण यहां दूसरे देशों से आकर यवनों ने आक्रमण आरम्भ किये। उन्होंने यहां लूट-खसोट की। वे

अरबों की सम्पत्ति उठा ले गये। मुगल काल में भी नादिरशाह जैसे कुछ लुटेरे आये और दिल्ली का खजाना खाली करके ले गये।

हमारे तत्कालीन समाज में सम्राट् का स्थान सर्वोच्च था। उसके अधीनस्थ अनेक बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारी थे जो राज्य का कार्य चलाया करते थे। सम्पूर्ण समाज दो वर्गों में विभाजित था—उत्पादक वर्ग तथा उपभोक्ता वर्ग। उत्पादक वर्ग में किसान, मजदूर, श्रमिक, व्यापारी, दूकानदार आदि थे और उपभोक्ता वर्ग में सरकारी कर्मचारी—चाहे वे सेना में कार्य करते हों चाहे सेना के बाहर—सम्राट् के परिवार वाले तथा उसके दरबारी, नौकर-चाकर, दास-दासियां आदि थे। मुगलों की प्रशासन प्रणाली के कारण आर्थिक प्रगति के ऐसे सभी अवसर प्रायः समाप्त हो गये जो नयी-नयी मंडियां खोल कर तथा व्यापार की वृद्धि करके देश की समृद्धि में सहायक हो सकते थे। इस प्रशासन प्रणाली की विशेषता यह थी कि उत्पादक वर्ग को अपने श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुओं का अधिकांश अनुत्पादक एवं उपभोक्ता वर्गों के परिपालन एवं पोषण पर बरबाद करना पड़ता, फलतः स्वयं उसके पास अपने उत्पादन का इतना नगण्य भाग बच पाता था कि उससे कठिनाई से ही उसकी गुजर हो सकती थी।[1] इसके अतिरिक्त किसानों से लगान वसूलने का ढंग भी बड़ा निकृष्ट था। लगान बड़े बड़े जागीरदारों अथवा उनके द्वारा नियुक्त एजेन्टों द्वारा वसूल किया जाता था जो किसानों पर असंख्य अत्याचार करते थे। कालान्तर में जब मुगल साम्राज्य की जड़ें हिलने लगीं तो इन जागीरदारों के अत्याचार भी बढ़ गये। किसानों की भूमि ले लेना उनसे मनमाने ढंग पर धन वसूलना, उसे सरकारी कोष में न जमा करना आदि प्रायः दैनिक कार्य थे। इस प्रकार किसानों के प्राण संकट में थे। वे सदा अपने जान-माल को बचाने की युक्ति सोचा करते। वे अपने पास के थोड़े से बचे खुचे धन को चुरा छिपा कर बचाये रखने का प्रयत्न करते। अपने उत्पादन को बढ़ाने की भी वे विशेष चिन्ता नहीं करते थे क्योंकि उन्हें जागीरदारों और उनके एजेन्टों द्वारा अधिक धन वसूल किये जाने का बराबर भय बना रहता था। व्यापारियों और शासकों में भी धन को लेकर खींच तान हुआ करती थी। ऐसी दशा में उत्पादक वर्ग को शासक वर्ग के नृशंस अत्याचारों का सदा सामना करना पड़ता था। फलतः इस संघर्ष ने ऐसी परिस्थिति को जन्म दिया कि स्वयं इतिहासकारों को भी स्वीकार

1. The producers comprised the agricultural population, the industrial workers and the traders. The consuming classes consisted of the imperial public services, civil and military, the professional and religious classes, servants and slaves...All chance of economic progress based upon the opening of new markets and growing trade was frustrated by the Moghal administrative system which left the producer barely sufficient for his subsistence and wasted most of the proceeds of his labour on unproductive persuits.

Edwardes & Garrett : Moghal Rule in India, pp. 272.

करना पड़ा कि तत्कालीन आर्थिक व्यवस्था एक प्रकार से ध्वस्त ही हो गयी थी।[1]

इस प्रकार एक ओर हमारा कृषक वर्ग आर्थिक दृष्टि से हीन हो रहा था तो दूसरी ओर अमीरों और दरबारियों के यहां सुरा और सुन्दरी के नग्न नृत्य होते रहते थे। ये लोग अति विलासी जीवन व्यतीत कर रहे थे। इनमें से अधिकांश तो धार्मिक प्रवचनों की अवहेलना करके स्वच्छन्द रूप से मदिरापान करते। उनके खान-पान, रहन-सहन, चतुर्दिक वातावरण आदि भी उच्च स्तर के थे जिनमें सात्विकता के तो दर्शन ही न होते, हां कामोद्दीपन का मसाला अवश्य रहता। विलास की अनेक सामग्रियों में से शतरंज और चौपड़ मुख्य खेल थे[2]।

एक बार तो औरंगजेब ने भी मदिरापान बन्द कर देने के आदेश दिये, वेश्यागमन को समाप्त करने के लिए वेश्याओं को विवाह करने को बाध्य किया और उसने अनाज पर से अनेक कर, यातायात शुल्क तथा पुलिस कर आदि भी उठा लिये[3]। कुछ इतिहासकार यह भी लिखते हैं कि मुगलों के शासन में जब कभी दुर्भिक्ष पड़ता था तो सरकारी अनाज-गुदामों से मुफ्त अनाज दिया जाता तथा विविध उद्योगों को भी प्रोत्साहन मिलता था।[4] मगर औरंगज़ेब के निषेध केवल आज्ञापत्रों तक ही रह गये और उनसे विशेष लाभ न हुआ।

मुगल काल में कला-कौशल को राजकीय प्रोत्साहन मिलता था और इसी कारण कला-कौशल उन्नत दशा में थे। इनका विशेष परिचय हमें तत्कालीन इमारतों में मिलता है।[5]

1. See Edwardes & Garrett : Moghal Rule in India, pp. 277.

2. Moghal Society was partial to several indoor games including Chess (Chaturang). 'In their houses' writes Edward Terry in his account of India in Jahangir's reign 'they played that most ingenious game we call chess or else at tables'. Under the Arabic name of Shatranja, the game was popular among mohamadans.

Edwards & Garrett : Moghal Rule in India, pp. 288.

3. J. N. Sarkar : History of Aurangzeb, pp. 299.

4. During the Mogul rule whenever a famine broke out the grain was supplied free from the imperial granaries. The state encouraged other industries also. Among local manufactures foreign travellers have counted six fine cotton fabrics and have recorded that silk handkerchiefs and caps embroidered with gold, painted ware, basins, cups, steel-guns, knives and scissors were all manufactured in different places in this country.

S. M. Jaffar : The Mogul Empire, pp. 405.

5. There were none whose skill and ingenuity were not rewarded. The imperial patronage raised the fine-arts to a high watermark. The splendour of the Mogul dynasty is unsurpassed and that splendour has always found its supreme expression in architecture. The Mogul craftsmen made lovely buildings because they had beautiful ideas and the technical skill to embody these ideas.

S. M. Jaffar : The Mogul Empire, pp. 385.

बहुत से मुसलमान विद्यार्थी हिन्दुओं की कला एवं उनके विज्ञान को सीखते थे। लोग अपने लिए रत्नाभूषणों को उपयोग में लाते थे। स्त्रियां तथा पुरुष विभिन्न प्रकार के गहने पहनते थे।[1] यह उल्लेखनीय है कि स्थापत्य कला का विशेष विकास औरङ्गजेब के पहले तक ही हुआ था क्योंकि उसके पूर्वज दिल्लीपतियों का कोष सदा भरा पूरा रहता था। वस्तुत: शाहजहाँ के बाद से मुगलों के कोष को क्षति पहुँची जिसके कारण स्थापत्य कला में कोई विकास न हो सका। औरङ्गजेब के काल से स्थापत्य कला की भाँति चित्रकला को भी क्षति पहुँची। मगर उसके काल में तथा उसके बाद भी व्यक्ति-चित्रों की महत्ता बनी ही रही। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अब दिल्ली दरबार से कला कूच करने लगी थी। ये कलाविज्ञ अब वहाँ से हट-कर अवध, मुर्शिदाबाद और हैदराबाद के राजाओं के पास पहुँच रहे थे। वहाँ पर चित्रकारों को विशेष सम्मान मिला और उन्होंने अपनी तूलिका से शृंगार-रसमय चित्रों का चित्रण किया। राजा और नवाबों ने विलासिता की शरण ले ही रखी थी। इसका अनिवार्य परि-णाम हिन्दी के कवियों पर भी पड़ा और उन्होंने राजा महाराजाओं की वासना को तृप्त करने के लिये उनके समक्ष घोर शृंगारिक शब्द-चित्र प्रस्तुत किये।

४. साहित्यिक परिस्थितियाँ—हिन्दी साहित्य के रीतिकाल का इतिहास बताता है कि यह काल पारस्परिक झगड़ों का काल था। अतः इस काल में गूढ़ अध्ययन तथा उच्च बौद्धिक विकास के साधन एकत्र करना प्राय: कठिन था। कविगण भी अपने आश्रयदाताओं की रुचि के अनुकूल व्यवहार करते थे। वे समरस्थल से लौटे हुए वीरों के आमोद-प्रमोद के लिए शृंगारिक कविताएं करते थे। इस काल में गंभीर चिन्तनपूर्ण एवं विवेचनशील दार्श-निक कविता क्षीण हो गयी थी। हिन्दी कविता को मराठों और सिक्खों से कोई उल्लेखनीय प्रोत्साहन नहीं मिला जिसका कारण कदाचित् यह था कि उनका राज्य कभी स्थिर नहीं रहा। भाषा के क्षेत्र में ब्रज भाषा दूर-दूर के प्रदेशों को आवृत्त किये हुए थी। ब्रज, राज-स्थानी और अवधी ही उस काल की कवि-सुलभ भाषाएं थीं और इन्हीं में प्राय: काव्य की रचना की जाती थी। वास्तविकता यह है कि शृंगार संबंधी तथा रीतिकाव्यानुकूल जितनी सुन्दर रचनाएं ब्रजभाषा में हो सकी हैं उतनी अन्य किसी माध्यम से नहीं हुई हैं। इस काल में वीरगाथा का चित्रण करने वाली रचनाएं थोड़ी ही हुईं जिनमें लाल कवि का "**छत्र-प्रकाश**" तथा जोधराज का "**हम्मीर रासो**" (सन् १७२८ ई०) ही प्रमुख थे। रस, अलंकार

1. There were many muslim scholars who studied Hindu arts and Sciences, wrote poetry and prose and encouraged their cultivation. Likewise there were several Hindus who cultivated Muslim arts and Sciences. Profuse jewellery was used for extra personal ornamentation., anklets, bracelets and armlets, rivalled necklaces, collars and girdles, the former adding ornamental splendour to feminine grace and the latter adding form to masculine vigour.

S. M. Jaffar : The Mogul Empire, pp. 392-393.

और पिंगल आदि विषयों पर कुछ ग्रन्थों की रचनाएं अवश्य हुईं परन्तु या तो उनमें मौलिकता का अभाव था अथवा उनमें से अनेक उच्च कोटि की न थीं। इन विषयों पर भी आगे चल कर कवियों को पर्याप्त सफलता मिली। रीतिकाल के प्रमुख कवि थे :[१]

देव (१६८७-१७३०), श्रीधर मुरलीधर (सन् १७०३), सुरति मिश्र (सन् १७०९-१७३७), कवीन्द्र उदयनाथ (सन् १७४७), श्रीपति (सन् १७२०), भिखारीदास (सन् १७२८-१७५०), रसलीन (सन् १७३७-१७४१), रघुनाथ कवि (सन् १७३३-१७५३), दूलह कवि (सन् १७४३-१७६८), रूपशाह (सन् १७५६), ऋषिनाथ (सन् १७३३-१७७४), घनानन्द (सन् १७२०), गुमान मिश्र (सन् १७४३-१७८३), लाल कवि (सन् १७०७), सबलसिंह चौहान (सन् १६६१-१७२४), नागरीदास (सन् १७२३-३७६२),। इनमें से प्रमुख नीति कवि 'वृन्द' सन् १७०४ के आस-पास हुए तथा हास्यरस के प्रसिद्ध हिन्दी मुसलमान कवि अलीमहीब खाँ, जिन्होंने 'खटमल बाइसी' की रचना की थी, सन् १७३० ई० में हुए। सन् १७४१ के आसपास रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योगवाशिष्ठ' की रचना करके हिन्दी में खड़ी बोली के युग को जन्म दिया था। सन् १७१२ और सन् १७१९ के बीच 'निवाज' कवि ने शकुन्तला नाटक की रचना की थी।

इस प्रकार अट्ठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक, जिसमें भिखारीदास का सम्पूर्ण जीवन आ जाता है, शृंगार रस की रचनाएं बड़ी स्वच्छंदता के साथ हुईं। वे जन हृदय का स्पर्श तो करती थीं किन्तु उनमें जनहितकारी भावना की कमी थी। उनमें कल्पना की उड़ान तो थी किन्तु आदर्श की स्थापना न थी। उनमें कलाबाजी तो थी किन्तु गम्भीर चिन्तन का पुट न था। और इन सब का कारण था। अकृत्रिम जीवन से दूर, पेट भरने के लिए अपने आश्रयदाताओं के इशारों पर नाचने वाले इन कविगण के लिए एक ही मार्ग था—कल्पना लोक का विचरण और झूठे स्वर्ग को धरातल पर उतारना। आये दिन के झगड़ों में उलझे रहने के कारण भी आश्रयदाताओं को विश्राम के क्षणों में संगीत, नृत्य, कामिनी-सौंदर्य आदि विलास के साधनों से ही संतोष होता था और कविगण इस प्रकार की कविता में पटु थे ही। इसमें संदेह नहीं कि यदि इन कवियों को स्वस्थ और व्यापक वातावरण मिला होता तो उन्होंने अपनी कविता में जीवन की गंभीर समस्याओं का विवेचन भी किया होता क्योंकि इन कवियों में से अधिकतर प्रतिभासम्पन्न कवि थे।

(ख) रीति काव्य का शास्त्रीय आधार

यह निर्विवाद है कि हिन्दी साहित्य में 'काव्य रीति' का जो चित्रण हुआ है उसका आधार संस्कृत साहित्य है। इस साहित्य के अन्तर्गत काव्य की आत्मा, काव्य-स्वरूप, काव्य-प्रयोजन, काव्य के कारण, गुण, अलंकार, रस, ध्वनि, रीति, दोष, भाषा तथा कवि-शिक्षा का विशद विवेचन है। संस्कृत काव्यशास्त्र एक अलग विषय है जिसका सम्बन्ध न तो अधिक दर्शन से है और न राजनीति से। अधिकांश आचार्यों का प्रयत्न पूर्ववर्ती आचार्यों के मत

१. देखिये लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : थीसिस (पाण्डुलिपि), अध्याय '१७५७ से १८५७'।

का विश्लेषण तथा उसका खंडन मंडन कर अपना नवीन मत स्थापित करना रहा है। कभी कभी आचार्यों ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का मंडन कर उनका स्पष्टीकरण, प्रतिपादन और विकास भी किया है।[1] इन लेखकों के उद्देश्य प्रायः दो रहे हैं, प्रथम तो यश-प्राप्ति और द्वितीय आनन्द प्रदान करना। इनके अतिरिक्त गौणरूप से और भी अनेक उद्देश्य हो सकते हैं—कर्तव्य पालन, व्यावहारिकता, प्रेम आदि।[2] इन उच्च उद्देश्यों तथा आदर्शों को लेकर संस्कृत के उद्भट विद्वान् रसिकों को काव्यानन्द की अनुभूति कराने के लिए काव्यक्षेत्र में उतरे। उन्होंने अपनी बुद्धि के अनुसार साहित्य की मर्मज्ञता का रसास्वादन कराने के निमित्त विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किये और सम्प्रदायों की स्थापना की। इन सम्प्रदायों के प्रवर्तकों के अनेक अनुगामी भी हुए जिन्होंने प्रतिपादित सिद्धान्तों को यथावत् अथवा न्यूनाधिक संशोधनों के साथ स्वीकार किया। कुछ ने तर्कसंगत ढंग पर इनका विरोध करके नये सिद्धान्तों की स्थापना भी की।

संस्कृत काव्य में काव्योपयोगी गुणों एवं सिद्धान्तों का आरम्भ किस युग में हुआ यह अभी तक विवाद का विषय बना हुआ है और इसका प्रमुख कारण यह है कि संस्कृत के अनेक प्राचीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सके हैं और यदि उपलब्ध भी हुए हैं तो उनमें से अनेक के रचयिताओं के विषय में विश्वस्त जानकारी नहीं हो सकी है।[3] संस्कृत साहित्य तो दूर रहा हिन्दी में भी आज तक हम तुलसी और सूरदास जैसे महाकवियों की विश्वस्त जीवनी का परिचय नहीं प्राप्त कर सके हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्र

१. देखिये डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० १७।

2. Indian poets and authors' all works on poetics are in substantial agreement in their views of the poets' purpose. The two great ends which appeal to them are—the winning of fame and the giving of pleasure; even after the poet has gone to heaven, Bhamah says 'His body remains on the earth pure and pleasant in the shape of the poem.' No doubt other ends may be had. Bhamah himself mentions skill in regard to duty, practical life, love...but these are merely subsidiary matters which can be gained by other means and are not therefore worthy of mention.
A. Berridale Keith: A History of Sanskrit Literature, page 338.

3. India produced no historian of her Sanskrit literature and naturally enough the appearance of great poets of the calibre of Kalidas, Bharavi and Magha so eclipsed earlier efforts that their works and even their names passed into oblivion. Natural causes helped the result, it was difficult to multiply manuscripts, difficult to preserve them, and it is not surprising that the lesser poets should have passed from recollections.
A. Berridale Keith : A History of Sanskrit Literature, pp. 30.

सम्बन्धी विवेचन ईसा पूर्व हो होने लगा था। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि चूंकि अलंकार, रस, रीति, गुणदोष, ध्वनि आदि का विवेचन अग्नि पुराण में मिलता है अतः काव्यशास्त्र का उद्गम अग्निपुराण से ही मानना चाहिए।[1] परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि अग्निपुराण तो बहुत बाद अर्थात् सातवीं शताब्दी की रचना लगती है[2] जबकि काव्यशास्त्र पर इसके सैकड़ों वर्ष पूर्व से ही ग्रन्थ-रचना आरम्भ हो गयी थी। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र से काव्यशास्त्र सम्बन्धी विवेचन प्राप्त होता है क्योंकि अनेक परवर्ती विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में नाट्यशास्त्र का उल्लेख किया है। सिद्धान्त अथवा सम्प्रदाय की दृष्टि से भरत के परवर्ती कवियों जैसे भट्टि, भामह, दंडी, उद्भट, वामन, रुद्रट, आनन्दवर्द्धन, राजशेखर, कुन्तक, धनञ्जय, मम्मट, रुय्यक, जयदेव, भानुदत्त, विश्वनाथ, केशव मिश्र, पंडितराज जगन्नाथ आदि को रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति तथा ध्वनि इन पांच वर्गों में रखा जा सकता है।

रस, अलंकार रीति, वक्रोक्ति तथा ध्वनि आदि सिद्धान्त उपर्युक्त महापंडितों के मस्तिष्क से निकलने के पश्चात् इतने लोकप्रिय हुए कि इनका प्रभाव पाली और अपभ्रंश पर तो पड़ा ही, साथ ही हिन्दी साहित्य भी इनसे विशेष प्रभावित हुआ। अतः हिन्दी साहित्य में इन विषयों का अध्ययन करने के पूर्व संस्कृत साहित्य में किये गये इनके विवेचन पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना असंगत न होगा।

१. रस वर्ग—रस सिद्धान्त का सर्वप्रथम विवेचन हमें भरत के नाट्य शास्त्र में मिलता है। इसके सम्बन्ध में भरत मुनि का यह सूत्र दर्शनीय है—

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।[3] डा० भगवानदास का मत है कि "अबुद्धिपूर्वक" अनिच्छापूर्वक, 'स्वाद' नहीं, किन्तु बुद्धिपूर्वक, इच्छापूर्वक,

---

1. The Agnipura has been frequently printed in India .. Ch. 338 speaks of the Ras together with Sthaibhavs, Anubhavs, Vyabhicharibhavs, Alamban Vibhav and Uddipan Vibhav, the various kinds of heroes and their companions and the heroines (Nayika).

P.V. Kane : History of Alankar Literature.

2. The Agnipuran is later than the 7th Century atleast and that the section on poetics was probably compiled about or a little after 900 A.D.

P.V. Kane : History of Alankar Literature, pp. VI

3. The Ras School. This school so far as the extant works go was found by the author of the Natyashastra and has reference to the dramatic art. The central pivot round which the whole system revolves is the Sutra विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति : which literally means 'Ras results from the combination of determinants, the consequents and the secondary or accessory moods (with the permanent or dominant moods, the Sthaibhavs).

P. V. Kane : The Origin and Growth of the Alankar Shastra, pp. CXLVII.

'आस्वादन' की अनुशयी चित्तवृत्ति का नाम 'रस' है। भाव (क्षोभ, संरंभ, सवेग, आवेश, उद्वेग, आवेश—अंग्रेजी में 'इमोशन') का अनुभव 'रस' नहीं है, किन्तु उस अनुभव का स्मरण, प्रति-संवेदन, 'आस्वादन', 'रसन' रस है। 'भावस्मरणं रसः' और आस्वादन का रूप यह है 'मैं क्रोधवान हूँ' (अहं क्रोधवान् अस्मि), 'मैं (अहं) करुणावान हूँ (अस्मि)', 'मैं शोकवान या अनुशोकवान हूँ', 'मैं भक्तिमान हूँ', 'मैं ईर्ष्यावान हूँ,' 'मैं बलवान हूँ,' 'मैं सुरूप हूँ' अर्थात् मैं हूँ। यही रस का सारतत्व है"।[१]

भरत के उपर्युक्त मत की टीकाएं अनेक विद्वानों ने की हैं जिनमें भट्ट लोल्लट के आरोपवाद, शंकुक के अनुमितिवाद, भट्टनायक के भुक्तिवाद तथा अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद के नाम से कुछ टीकाएं विशेष प्रसिद्ध हुईं। भट्ट लोल्लट के आरोपवाद में रस विवेचन के अन्तर्गत विभाव और रस में जिस कारण कार्य के सम्बन्ध का आरोप किया गया है उसी का खंडन शंकुक ने, भट्ट लोल्लट तथा शंकुक के मत का खंडन भट्ट नायक ने तथा इन तीनों के मतों का खंडन अभिनव गुप्त ने क्रमशः अनुमितिवाद, भुक्तिवाद तथा अभिव्यक्तिवाद के नाम से किया। अन्तिम मत अधिक मान्य हुआ जिसके अनुसार स्थायीभाव सामाजिकों के अन्तस् में सूक्ष्मतया वासनारूप में अव्यक्त स्थित रहते हैं जो काव्य पढ़ते या सुनते समय अथवा नाटक देखते समय 'व्यंजना' के अलौकिक विभावन द्वारा जागृत हो जाते हैं। इस अवस्था में स्थायीभाव के रस की अनुभूति होती है जो रस की अभिव्यक्ति कही जाती है।

इस प्रकार भरत के नाट्य शास्त्र में वर्णित रस की उपर्युक्त अनेक विभिन्न टीकाएं खंडन मंडन के साथ प्राप्त हुई हैं। इन सब टीकाओं का मूलाधार वास्तव में भरत का नाट्यशास्त्र ही है[२]। अभिनव गुप्ताचार्य का उपर्युक्त मत ही अनेक परवर्ती आचार्यों ने माना है। शास्त्रकारों ने संक्षेप में रस की व्याख्या इस प्रकार की है 'स्थायीभाव जब विभाव अनुभाव और संचारी भावों के योग से आस्वादन करने योग्य हो जाता है तब सहृदय प्रेक्षक के हृदय में रस रूप से उसका आस्वादन होता है'।[३] रसों में श्रृंगार रस अधिक ग्राह्य हुआ और अधिक सार्वभौम होने के कारण आचार्यों और कवियों ने इसी का अधिक विवेचन किया है।[४]

१. डा० भगवानदास : रसमीमांसा शीर्षक लेख (द्विवेदी अभिनंदनग्रंथ, पृ० ७)

2. The oldest known exponent of this system (Ras) is Bharat from whom spring all latter systems and theories such as we know them, and this even Anandvardhana himself in applying Ras theory to poetics names as his original authority.
S. K. De: Studies in the History of Sanskrit Literature, page 23.

३. श्यामसुन्दरदास : साहित्यालोचन, पृ० २७५

4. Of all the Rasas however Singara (or love) form the absorbing theme of Sanskrit poetry and drama in general and as this particular poetic sentiment has an almost universal appeal these writers naturally work out this important Ras in all its phases.
S. K. De : Studies in the History of Sanskrit poetics, p. 333.

भरत के नाट्य शास्त्र में रसों के नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं : शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत[1] । इसके अतिरिक्त इसमें शान्त रस का भी उल्लेख मिलता है[2] और भरत मुनि ने तो शान्त रस से ही रति आदि अन्य सभी भावों की उत्पत्ति और शान्त में ही सब का लय स्वीकार किया है।[3] कन्हैयालाल पोद्दार जी का कहना है कि 'कुछ आचार्यों का मत है कि नाट्य में शान्त रस का होना असंभव नहीं क्योंकि शान्त रस शान्ति साध्य है पर नट में शान्ति का होना संभव नहीं है, कहा है :

शान्तस्यशमसाध्यत्वान्नटे च तदसंभवात् ।
अष्टावेवरसा नाट्ये शान्तस्तत्र न युज्यते ।

किन्तु यह मत सर्वमान्य नहीं। इस विषय में वे अनेक तर्कों द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि नाट्य में भी शान्त रस का होना सिद्ध होता है और काव्य तो शान्त रस प्रधान निर्विवाद सिद्ध है जब कि महाभारतादि में शान्तरस ही प्रधान है' ।[4]

२. अलंकार वर्ग—अलंकार सिद्धान्त का प्रतिपादन करने वाले प्रमुख विद्वान हुए भामह, उद्भट, दण्डी, रुद्रट और प्रतीहारेन्दुराज । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे रस के सिद्धान्त से अनभिज्ञ थे ।[5] इन विद्वानों के अनुसार अलंकार काव्य का प्राण है । जिस प्रकार अग्नि को उष्णताहीन नहीं माना जा सकता उसी प्रकार काव्य को अलंकारहीन मानना भी अस्वाभाविक होगा ।[6] यह बात अवश्य है कि अलंकारों का विकास कालान्तर में उत्तरोत्तर ही हुआ । भरत ने केवल चार अलंकारों अर्थात् उपमा, रूपक, अनुप्रास और दीपक का ही नामोल्लेख किया है, अग्निपुराण में १६ का उल्लेख मिलता है, भामह और भट्टि के ग्रन्थों में अलंकारों की संख्या ३८ है, दण्डी, उद्भट और वामन के समय (ईसा की आठवीं शताब्दी) अलंकारों की संख्या ५२ होगई । तत्पश्चात् नवीं शताब्दी में रुद्रट से लेकर

१. शृंगार हास्यकरुणारौद्रवीरभयानकाः। वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः
(गायकवाड़ संस्करण : नाट्यशास्त्र, पृ० २६६ ।)

२. अथ शान्तो नाम... । मोक्षाध्यात्मसमुत्थ...शान्तरसो नाम सम्भवति ।...
एवं नव रसा दृष्ट्वा नाट्यज्ञैर्लक्षणान्विताः ।
(गायकवाड़ संस्करण : नाट्यशास्त्र, पृ० ३३३ से ३३६ तक)

३. स्वंस्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद्भावः प्रवर्तते । पुनर्निमित्तापायेच शान्त एवोपलीयते ।
(गायकवाड़ संस्करण : नाट्यशास्त्र, पृ० ३३६)

४. कन्हैयालाल पोद्दार : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६७, ६८ ।

५. The Alankar School : The foremost representatives of this School are Bhamah and Ubdhat. Dandi, Rudrata, and Pratiharendurj belong to this school. It is not to be supposed that they were unaware of the theory of Ras.

P. V. Kane : The Origin & Growth of the Alankar Shastra, p. CL.

६. अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती । असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ।
चंद्रालोक पृ० १० ।

महाराज भोज, आचार्य मम्मट और रुय्यक इन चारों आचार्यों के समय तक अलंकार संख्या १०३ पहुँची। इसके बाद जयदेव, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित तथा कुछ अन्यान्य लेखक और पंडितराज जगन्नाथ के समय तक (ईसा की १८ वीं शताब्दी तक) अलंकारों की संख्या यद्यपि १९१ तक पहुँच जाती है किन्तु इस संख्या में बहुत से अलंकार ऐसे भी कुछ आचार्यों ने स्वतंत्र लिख दिए हैं जिनमें विलक्षण चमत्कार न होने के कारण उनका अन्य अलंकारों के अन्तर्गत समावेश हो जाता है। इसी प्रकार कुछ अलंकार ऐसे भी हैं जिनमें चमत्कार सर्वथा न होने के कारण वे सुप्रसिद्ध आचार्यों द्वारा स्वीकार नहीं किये गये हैं। उसके बाद जयदेव के हुंकृति, अर्थानुप्रास, स्फुटानुप्रास, विश्वनाथ के पाँचों, वाग्भट के दोनों, यशस्क के आठों, भानुदत्त के दोनों, शोभाकर के ३६ में ३४ (शोभाकर के उदाहरण और असम दो अलंकार पंडितराज ने स्वीकार किये हैं) केवल इन लेखकों के ग्रन्थों तक ही सीमित रह गये। इनके परवर्ती किसी लेखक ने स्वीकार नहीं किये।[1] इस प्रकार अलंकारों की सृष्टि बराबर होती गयी। अतः दण्डी के कथनानुसार उनकी कौन गणना कर सकता है।[2]

इस प्रकार अलंकारों की सृष्टि हो जाने के पश्चात् विद्वानों ने उनके वर्ग बनाने का भी प्रयास किया :

रुद्रट ने अर्थालंकारों को चार वर्गों अर्थात् वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष में विभक्त किया है। अन्य सब अलंकार इन्हीं के भेद हैं।[3]

विद्यानाथ ने भी अलंकारों को वस्तु प्रतीति, औपम्य प्रतीति, रसभाव प्रतीति और अस्फुट प्रतीति इन चार वर्गों में विभाजित किया है।[4]

रुय्यक ने अलंकारों को सादृश्यगर्भ, विरोधगर्भ, शृंखलाबद्ध, तर्कन्यायमूल, वाक्य-न्यायमूल, लोकन्यायमूल और गूढ़ार्थप्रतीतिमूल इन सात वर्गों में विभाजित किया है। इन वर्गों में क्रमशः २८, १२, ४, २, ८, ८, और ७ अलंकार आते हैं।[5]

अतः स्पष्ट है कि इन वर्गीकरणों में आचार्यों में काफी मतभेद है। परन्तु यह निर्विवाद है कि इन आचार्यों ने अलंकारों का वर्गीकरण करके इनके वैज्ञानिक विवेचन का एक नया मार्ग खोल दिया और परवर्ती आचार्यों को इस वर्गीकरण की सहायता से विषय का यथातथ्य विवेचन करने में बड़ी सहायता मिली।[6]

३. **रीतिवर्ग**—रीति शब्द रीङ् गतौ गत्यर्थक रीङ् धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से बनता है। अतः रीति का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है मार्ग। पन्थ, वीथि, गति, प्रस्थान सब रीति

१. कन्हैयालाल पोद्दार : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १३७, १३८।
२. ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कार्त्स्न्येन वक्ष्यति। दण्डी : काव्यादर्श, पृ० ११०।
३. अर्थस्यालंकारा वास्तवमौपम्यमतिशयः श्लेषः। एषामेव विशेषाः अन्ये तु भवन्ति निःशेषाः।
रुद्रट : काव्यालंकार, पृ० ७६।
४. केचित्प्रतीयमानवस्तवः केचित्प्रतीयमानौपम्याः। केचित्प्रतीयमानरसभावादयः केचिदस्फुट प्रतीयमानाः। विद्यानाथ : प्रतापरुद्रीय, पृ० ३३७।
५. रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृष्ठ, ४३८, ४३९।
६. देखिये कन्हैयालाल पोद्दार : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १२४।

के ही पर्यायवाची शब्द हैं। रीति किसी लेखक के विशिष्ट लेखन-प्रकार को भी सूचित करती है। दूसरे शब्दों में इसे शैली, कथन, अथवा अभिव्यक्ति का ढंग कह सकते हैं। प्रत्येक साहित्यिक की विशिष्ट शैली होती है, अतः जितने कवि या लेखक हैं उतनी रीतियां कही जा सकती हैं। इसीलिए दण्डी का कथन है कि रीतियां अनन्त हैं और उनका परस्पर विभेद नितान्त सूक्ष्म है।[१] रीति सिद्धान्त की सृष्टि के प्रथम आचार्य वामन माने जाते हैं।[२] इन्होंने रीति को काव्य की आत्मा माना है और कहा है कि विशिष्ट प्रकार से पद रचना करने का ही नाम रीति है।[३] पद रचना में विशिष्टता गुण से ही आती है इसीलिए उन्होंने कहा है 'विशेषो गुणात्मा'। वामन ने शब्दगुण और अर्थगुण नाम के दो गुण माने हैं। अर्थगत ओज, माधुर्य, श्लेष तथा कान्ति गुणों के भीतर काव्य के समस्त अंगों का समावेश हो जाता है। उनके अनुसार शब्दगुणों की अपेक्षा वैदर्भी में अर्थगुण की सम्पत्ति अधिक आस्वादनीय होती है।[४] रीतियां तीन हैं—वैदर्भी, गौड़ी, तथा पांचाली। वैदर्भी में समस्त गुण रहते हैं।[५] गौड़ी में ओज और कान्ति की प्रधानता होती है।[६] पांचाली में ओज तथा कान्ति का अभाव तथा माधुर्य और सौकुमार्य का सद्भाव रहता है। अन्ततः वामन कवियों से वैदर्भी का आश्रय ग्रहण करने का ही अनुरोध करते हैं।[७]

विकास की दृष्टि से प्रथमतः उक्त तीनों रीतियों अर्थात् गौड़ी, पांचाली और वैदर्भी का भौगोलिक महत्व था अर्थात् इन इन प्रदेशों के रहने वाले वस्तुतः उसी प्रदेश की शैली में अपनी काव्य रचना करते थे जिस प्रदेश के वे निवासी थे जैसे गौड़—बंगाल-देश का निवासी कवि सचमुच समास बहुला, गाढ़बन्धसम्पन्ना गौड़ी रीति में ही अपनी कविता रचता था तथा विदर्भ का निवासी वैदर्भी में। कालान्तर में विषय की दृष्टि से सदा के लिए इन शैलियों का रूप-निर्धारण हो गया जैसे युद्ध, संघर्ष, भयानक वस्तु आदि के वर्णन के लिए गौड़ी रीति का प्रयोग सबके लिए अनिवार्य ठहरा दिया गया। इसी प्रकार शृंगार रस-संयोग तथा विप्रलंभ-,

१. बलदेव उपाध्याय : भारतीय साहित्य शास्त्र पृ० १३७।

२. Riti School. Vaman is the foremost representative of this School.
P. V. Kane : The origin and Growth of the Alankar Shastra, p. CL.

३. रीतिरात्मा काव्यस्य, विशिष्टापदरचनारीतिः, विशेषो गुणात्मा।
वामन : काव्यालंकार सूत्र, १।२। ६-८ पृ० १५, १६।

४. तस्यामर्थगुणसम्पदास्वाद्यासाऽपि वैदर्भी तात्स्थ्यात्।
वामन : काव्यालंकारसूत्र, १।२। २०, २२ पृ० २४,२५

५. समग्र गुणा वैदर्भी। वामन : काव्यालंकार सूत्र १।२। ११, पृ० १७।

६. ओजः कान्तिमयी गौड़ीया। वामन : काव्यालंकारसूत्र १।२। १२, पृ० १९।

७. माधुर्य सौकुमार्योपपन्ना पांचाली
आश्लिष्टश्लथ भावां तां पूरणच्छाययाश्रिताम्।
मधुरां सुकुमारां च पांचालीं कवयो विदुः।
वामन : काव्यालंकारसूत्र १।२। १३, पृ २१।

ऋतु, उपवन आदि सुकुमार वस्तुओं के वर्णन में वैदर्भी रीति का प्रयोग आवश्यक ठहराया गया। अन्ततः कुन्तक ने अपने 'वक्रोक्तिजीवितम्' में रीतियों के नाम से भौगोलिक सम्बन्ध को सदा के लिए दूर करने के लिए इन प्राचीन नामों के स्थान पर नये नामों की उद्भावना की है। कुन्तक ने वैदर्भी रीति के लिए 'सुकुमार मार्ग', गौड़ी के लिए 'विचित्र मार्ग' और पांचाली के लिए 'मध्यम मार्ग' नाम दिये हैं। परन्तु वस्तुतः साहित्य में ये नाम प्रसिद्ध न हो सके।[1]

इस प्रकार रीति सिद्धान्त उत्तरोत्तर विकसित हुआ। यह अवश्य है कि संस्कृत के अनेक आचार्यों जैसे रुद्रट, भोज, वाग्भट्ट, राजशेखर में रीति की संख्याएँ निर्धारित करने में मतैक्य नहीं है फिर भी रीति विवेचन द्वारा काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के निरूपण के कार्य को गति मिली और रीति विवेचन को काव्यशास्त्र का एक महत्वपूर्ण अंग समझा गया।[2]

४. **वक्रोक्ति वर्ग**—वक्रोक्ति काव्य का जीवन है, प्राण है। इसी मत की पुष्टि में कुन्तक ने 'वक्रोक्ति जीवितम्' ग्रंथ की रचना की। वस्तुतः वक्रोक्ति द्वारा हम अपने कथन या उक्ति में चमत्कार की सृष्टि करते हैं। जिस उक्ति में वक्रता नहीं, बाँकपन नहीं, वह किस प्रकार हृदय-स्पर्शी हो सकेगी? शब्द तथा अर्थ से तात्पर्य है इनका लोकोत्तर रूप से अवस्थित होना।[3] वक्रोक्ति की महत्ता पूर्वाचार्यों ने भी दृष्टिविगत नहीं की थी। अतः उन्होंने इसे शब्दालंकार के रूप में चित्रित किया है। रुद्रट ने सर्वप्रथम शब्दालंकार के रूप में वक्रोक्ति की योजना की और इसके दो भेद अर्थात् (१) श्लेष वक्रोक्ति और (२) काकु वक्रोक्ति किये। वक्रोक्ति को अलंकार के रूप में हेमचंद्र, वाग्भट्ट, जयदेव और विश्वनाथ आदि अनेक परवर्ती आचार्यों ने माना भी। भामह तथा दण्डी ने वक्रोक्ति का अतिशय उक्ति अर्थात् लोकोत्तर चमत्कार वर्णन के अर्थ में प्रयोग किया है। ये दोनों आचार्य तथा आनन्दवर्धनाचार्य और अभिनवगुप्तपादाचार्य वक्रोक्ति को सभी अलंकारों का मूल तत्व बतलाते हैं।

परन्तु कुन्तक ने इस बात का विशेष प्रयत्न किया कि वक्रोक्ति को काव्य में सर्वोच्च स्थान प्राप्त हो सके। 'यद्यपि जिस लोकोत्तर वर्णन के व्यापक उक्ति वैचित्र्य के अर्थ में भामहादिक ने वक्रोक्ति का प्रयोग किया था, उसी अर्थ में कुंतक ने भी वक्रोक्ति का प्रयोग किया है। कुंतक ने वक्रोक्ति की परिभाषा में यही कहा है:

लोकोत्तरचमत्कारकारिवैचित्र्यसिद्धये।
वक्रोक्तिरेववैदग्ध्यभंगी भणितिरुच्यते।[4]

---

१. बलदेव उपाध्याय : भारतीय साहित्यशास्त्र, पृ०, १४०,१४१।

2. "The Riti School marks a very real advance over the Alankar School".
P. V. Kane : Introduction to Sahitya Darpan, pp. CLIII.

३. शब्दस्य हि वक्रता अभिधेयस्य च वक्रता लोकोत्तीर्णेन रूपेणावस्थानमिति अयमेवासौ अलंकारस्यालंकारान्तरभावः। अभिनवगुप्त : लोचन, पृ० २०८।

२. कुन्तक : वक्रोक्ति जीवितम्, १। १०

इसकी व्यवस्था में वह स्वयं कहता है :

'वैदग्ध्यं विदग्धभावः कविकर्म कौशलं तस्यविच्छत्तिः तया भणितिः विचित्रैव अभिधा वक्रोक्तिः।'[१]

अर्थात् कवि की रचना चातुर्य से शोभित विचित्र उक्ति को वह वक्रोक्ति बताता है। केवल अलंकार और ध्वनि ही नहीं, रस भाव और ध्वनि के सम्पूर्ण भेदोपभेद काव्य के सभी विषय कुन्तक ने वक्रोक्ति के अन्तर्गत समावेश करके वक्रोक्ति की निर्मर्याद व्यापकता प्रतिपादन करने की पर्याप्त चेष्टा की है'।[२] कन्हैयालाल पोद्दार जी का मत है कि 'कुन्तक के वक्रोक्ति विषयक विवेचन को केवल एक विशेष सिद्धान्तमात्र ही कहना उपयुक्त है, वस्तुतः देखा जाय तो भामह के प्रतिपादित वक्रोक्ति के व्यापक सिद्धान्त के अन्तर्गत होने के कारण वक्रोक्ति का अलंकार सम्प्रदाय में समावेश हो सकता है न कि स्वतंत्र सम्प्रदाय में क्योंकि सम्प्रदाय की उपाधि का अधिकार तो उसी अवस्था में प्राप्त होता है जब कि कोई भी सिद्धान्त के परम्परा रूप से स्वतंत्र प्रचलित हो जाय। किन्तु कुन्तक का वक्रोक्ति सिद्धान्त केवल उसके वक्रोक्तिजीवितम् ग्रंथ में ही नाम मात्र को रह गया है'।[३] पी० वी० कणे का कथन है कि वक्रोक्ति सम्प्रदाय वस्तुतः अलंकार सम्प्रदाय की ही एक शाखा है।[४]

५. ध्वनिवर्ग—जिस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ प्रधान हो उस काव्य को ध्वनि कहते हैं। इस मत के आद्यआचार्य आनन्दवर्धन ने युक्तियों के सहारे व्यंग्य की सत्ता वाच्य से पृथक सिद्ध की है।[५] वास्तव में आनन्दवर्धनाचार्य द्वारा ही सर्वप्रथम ध्वनि सिद्धान्त का वैज्ञानिक विवेचन किया गया यद्यपि स्वयं उन्होंने ही इस बात को स्वीकार किया है कि ध्वनि विषय का निरूपण उनके पूर्व के विद्वानों ने किया है।[६] ध्वनिकारों ने तो यहाँ तक

---

१. कुन्तक : वक्रोक्तिजीवितम्, पृ० २२।

२. कन्हैयालाल पोद्दार : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १७८।

३. वही, पृ० १७६।

4. The Vakrokti School is really an offshoot of the Alankar School and need not be separately recognised.
P. V. Kane : An Introduction to Sahitya Darpan, p. CLV.

५. बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३३७।

६. काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्व
स्तस्याभाव जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये।
केचिद्वाचां स्थितमविषये तत्वमूचुस्तदीयं
तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम्॥१॥
आनन्दवर्धनाचार्य : ध्वन्यालोक, प्रथमोद्योतः, पृ० २, ३।

कहा है कि काव्य की आत्मा रीति नहीं किन्तु ध्वनि है।[1] श्री एस० के० डे के मतानुसार जब तक काव्य में ध्वनि की व्यंजना नहीं हो गयी तब तक रस की महत्ता विशेष रूप से प्रच्छन्न ही बनी रही।[2] ध्वनिकारों ने ध्वनि सिद्धान्त का वैज्ञानिक विवेचन किया। उन्होंने ध्वनि के भेदोपभेद किये तथा ध्वनिकाव्य में अपने पूर्व के प्रचलित सभी सिद्धान्तों का बड़ी विज्ञता के साथ समावेश किया। इस प्रकार वे हमारे साहित्य के क्षेत्र को व्यापक बनाने में बहुत कुछ सफल हुए।

ध्वनि-सिद्धान्त का निरूपण एवं प्रतिपादन तथा रस, रीति, अलंकार, गुण, दोष आदि का ध्वनि से संबंध—इन दोनों विषयों का आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने 'ध्वन्यालोक' ग्रन्थ में सफल विवेचन किया है।[3] फलतः उनका मत भी परवर्ती आचार्यों द्वारा मान्य हुआ। परवर्ती आचार्य मम्मट ने तो इस सिद्धान्त को ललित उदाहरणों एवं लक्षणों आदि से और भी पुष्ट बना दिया।

संस्कृत साहित्य में किये गये काव्यशास्त्र के विभिन्न अंगों के विवेचन के एक अत्यंत संक्षिप्त दिग्दर्शन से, जैसा पूर्व पृष्ठों में कराया गया है, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी में रीतिकाल के आरंभ होते-होते संस्कृत साहित्य में काव्य को उत्कृष्ट एवं हृदयग्राही बनाने के लिये अनेक सिद्धान्तों का निरूपण, प्रतिपादन एवं सोदाहरण विवेचन हो चुका था। काव्य के वर्गीकरण, भाषा, प्रवृत्ति, इत्यादि के साथ ही साथ काव्य क्या है, काव्य की आत्मा क्या है, उत्तम, मध्यम, अधम काव्य के क्या लक्षण हैं, काव्य की चारुता किस वस्तु में रहती है, काव्य के गुण दोष क्या हैं, अलंकारों का क्या महत्व है, रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति आदि का क्या स्थान है, इसके अतिरिक्त कवि के लिए क्या-क्या वस्तुएं आवश्यक हैं, कविता का क्या उद्देश्य है इत्यादि अनेक सार्वकालिक प्रश्नों पर विचार कर उत्तर पाने का प्रयत्न किया गया।[4]

संस्कृत साहित्य की यह पुष्ट पृष्ठभूमि हिन्दी के रीतिकालीन कवियों को उपलब्ध थी। इन कवियों ने अपने गहन अध्ययन एवं अपनी विवेचनाशक्ति द्वारा संस्कृत के इस

1. But the holders of doctrine of Dhvani remained unconvinced and on the basis of their theory they declared that the soul of poetry was not style, nor sentiment, but tone, Dhvani, by which they meant that an implied sense was the essence of poetry.

A. Berridale Keith : A History of Sanskrit Literature, page 388.

2. The aesthetic importance of the Rasa therefore was never realised until it was taken up and worked into poetics by Dhvanikar and his followers.

S. K. De : Studies in the History of Sanskrit poetics. pp. 136.

3. See : S. K. De : Sanskrit poetics, part 2, p. 183.

४. डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० २६।

अक्षय भण्डार को ललित उदाहिरणों की सहायता से अपनी भाषा में रूपान्तरित करने का महान् कार्य किया। हिन्दी साहित्य में भी संस्कृत साहित्य के आधार पर अनेक विद्वानों ने काव्यशास्त्र सम्बन्धी विषयों, उनके अंग प्रत्यंगों का विवेचन किया। यह ठीक है कि ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं सामाजिक आवश्यकताओं ने उन्हें एक विशिष्ट विचारधारा को लेकर, जो बाद में रीतियुक्त और रीतिमुक्त दो भागों में बँट गयी, काव्य-मार्ग का अनुसरण करने के लिये बाध्य किया किन्तु इन परिस्थितियों में उन्होंने जिस उत्कृष्ट काव्य-प्रणयन का परिचय दिया है वह उनकी अप्रतिम प्रतिभा का ही द्योतक है।

इस प्रकार काव्यांगों का विशद विवेचन संस्कृत से होता हुआ हिन्दी भाषा में भी किया जाने लगा और हिन्दी में स्वतन्त्र रीतिग्रन्थों का निर्माण हुआ। रीतिग्रन्थों के निर्माण द्वारा रीतिकालीन रीतिमुक्त एवं रीतियुक्त कविता में जो अजस्र जीवन प्रवाहित हुआ उसने इस काल की कविता को और भी समृद्ध बना दिया। अतः रीतिकालीन कविता का यथातथ्य विवेचन करने के पूर्व हिन्दी कवियों एवं आचार्यों द्वारा किये गये रीति सम्बन्धी विषयों के विवेचन पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना असंगत न होगा।

(ग) हिन्दी में रीतिग्रन्थों की परम्परा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार[1] रस सम्बन्धी कुछ विवेचन सन् १५९८ ई० में कृपाराम ने और शृंगार सम्बन्धी विवेचन इसी काल के आस-पास चरखारी के मोहनलाल मिश्र ने, जिन्होंने सं० १६१६ में तद्विषयक एक ग्रन्थ 'शृंगार सागर' की रचना की थी, किया था। यह बात हम पीछे कह चुके हैं। नरहरि कवि के साथी करनेस कवि ने अलंकार सम्बन्धी तीन ग्रन्थों 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' की रचना की थी। तदुपरान्त आचार्य केशव ने काव्यांगों का विशद विवेचन अपने रसिकप्रिया, नखशिख तथा कविप्रिया ग्रन्थों में किया। डा० रामकुमार वर्मा का मत है कि 'हिन्दी कविता में रीतिकाल की परम्परा जयदेव के गीतगोविन्द से होकर विद्यापति की कविता में आई थी। विद्यापति की पदावली में नायिका भेद, नखशिख, ऋतुवर्णन, दूतीशिक्षा, अभिसार आदि बड़े आकर्षक ढंग से वर्णित हैं। कृष्ण काव्य की यह धारा वास्तव में रीतिशास्त्र से पूर्ण है। पर भक्तिकाल में भावना की अनुभूति इतनी तीव्र थी कि सूर और मीरा ने राधाकृष्ण के शृंगारमय गीत गाकर भी उन्हें मर्यादाविहीन नहीं किया। भक्तिकाल की यही मर्यादा है कि विद्यापति की मधुर पदावली सामने रहते हुए भी किसी कवि ने उसका अनुकरण नहीं किया और विद्यापति की रीतिकालीन शृंगार-भावना लगभग तीन सौ वर्षों तक निश्चेष्ट पड़ी रही',[2] यों तो 'शुद्ध शास्त्रीय परम्परा के भीतर रखे जाने वाले ग्रन्थ सिद्ध शान्ति या रत्नाकर शान्ति (सन् १००० ई०) का छन्द शास्त्र पर लिखा 'छन्दोरत्नाकर' तथा आचार्य हेमचन्द्रसूरि (सन् १०८८ ई०) के 'प्राकृत व्याकरण' 'छन्दोनुशासन' तथा 'देशीनाममाला कोश' है।[3] 'इनके अन्तर्गत उदाहरण के रूप में आयी अपभ्रंश रचनाएं लक्षणों को स्पष्ट

१. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २०१।
२. डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ८८८।
३. राहुल सांकृत्यायन : हिन्दी काव्यधारा, पृ० ४३।

करती हैं। इनको लेकर ही धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति जाग्रत हुई कि काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में लोक भाषा के भी उदाहरण होने चाहिए और अन्त में वह समय आया जब विवेचन, लक्षण और उदाहरण सभी बोलचाल की भाषा में हों संस्कृत में नहीं, यह धारणा सर्व साधारण की हो गयी। अतः इन ग्रन्थों को हम परम्परा नहीं, तो प्रेरणा के रूप में ले ही सकते हैं'।[1]

रीतिग्रन्थों एवं रीतिकालीन कविता के निर्माण की प्रेरणा भले ही कुछ भी रही हो किन्तु तथ्य तो यह है कि इसके वास्तविक विवेचन तथा शास्त्रीय आधार पर काव्यांगों का विश्लेषण एवं उनकी स्पष्ट अभिव्यक्ति का श्रीगणेश आचार्य केशव ने किया। केशव का तो विश्वास था कि—

भूषन बिना न शोभहीं कविता, बनिता मित।[2]

अतः यह भी निश्चित है कि इन काव्याभूषणों के अनुसन्धानार्थ उन्हें काफी श्रम करना पड़ा होगा। संस्कृत तो उनकी प्रिय भाषा थी और प्रायः परिवार के सदस्यों के बीच इसी का व्यवहार प्रचलित भी था क्योंकि उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया है कि :

भाषा बोलि न जानहीं जिन के कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्द मति तेहि कुल केशवदास।[3]

अतः स्पष्ट है कि संस्कृत के ग्रन्थों के आधार पर ही केशव ने काव्यांगों का विवेचन 'भाषा' में किया। उन्होंने अपने 'रसिकप्रिया' ग्रन्थ में रस, वृत्ति और काव्यदोषों का विवेचन करते हुए श्रृंगार रस को प्रधानता दी है और अधिकांशतया श्रृंगार रस के विविधांगों का वर्णन किया है। इसमें उन्होंने भाव, विभाव, अनुभाव, स्थायी, सात्विक और व्यभिचारी भावों, काल एवं गुणानुसार नायिकाओं, मानभेद, सखि भेद आदि का वर्णन किया है। 'नखशिख' में राधा के नख से लेकर शिख तक प्रायः सभी अंग-प्रत्यंगों का वर्णन है। 'कविप्रिया' में काव्यदोष, कवि भेद, कविरीति, षोडश श्रृंगार वर्णन, काव्यालंकार तथा उनके भेदोपभेदों आदि का वर्णन है। इनके पश्चात् सुन्दर कवि कृत 'सुन्दर श्रृंगार' का उल्लेख मिलता है जिसमें श्रृंगार रस का वर्णन है। इसमें श्रृंगार के मुख्य अंग होने के कारण नायक नायिकाओं का भी वर्णन मिलता है। हिन्दी में केशवदास द्वारा चलायी गयी रीतिग्रन्थों की परम्परा अधिक वर्षों तक नहीं चली। इसका विकास सं० १७०० वि० के आसपास वास्तव में चिन्तामणि त्रिपाठी से आरम्भ हुआ। अतएव रीति परम्परा का आरम्भ चिन्तामणि से मानना युक्तियुक्त होगा। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं : कविकल्पतरु, श्रृंगारमंजरी, तथा पिंगल। इनमें से प्रथम में काव्यगुण, अलंकार, काव्यदोष, शब्दशक्ति, द्वितीय में नायिकाओं के लक्षणों का निरूपण, उनकी व्याख्या तथा उदाहरण, और नायिका भेद का वर्णन है तथा अन्तिम, जैसा उसके नाम से विदित है, पिंगलशास्त्र पर कोई ग्रन्थ रहा होगा। उनके उपर्युक्त प्रथम दो ग्रन्थ ही प्राप्त हैं।

---

१. डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ४६।
२. केशव : कविप्रिया १/५
३. केशव : कविप्रिया २/१७

चिन्तामणि के पश्चात् तोष का 'सुधानिधि' ग्रन्थ आता है जिसमें नवरसों, भावों, भावोदय, भावशान्ति, भावशबलता, रसाभास, रसदोष, वृत्ति तथा नायिकाभेद का वर्णन है। इसके बाद जयदेव के चन्द्रालोक के आधार पर तथा उसी की शैली में जसवन्तसिंह का 'भाषाभूषण' ग्रन्थ मिलता है जिसमें नायक भेद, नायिका के जाति भेद, अवस्था भेद, परकीया के छः भेद, नायिका के नौ भेद, मान, सात्विक भाव, दस हाव, विरह की दस दशाएं, रस, स्थायी भाव, उद्दीपन, आलंबन, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों का वर्णन है। इनके पश्चात् मतिराम ने काव्यशास्त्र के विविध अंगों का सुन्दर विवेचन किया और इनके एतद्विषयक ग्रन्थ हैं : रसराज, ललितललाम साहित्यसार और लक्षण शृंगार। मिश्रबंधुओं ने इनके एक और ग्रन्थ 'अलंकार पंचाशिका' का भी उल्लेख किया है। इन ग्रन्थों में नायिका भेद, हाव भाव, शृंगार के विविध अंग, अलंकार आदि का विवेचन हुआ है। इनके बाद भूषण का 'शिवराजभूषण' पाया जाता है जिसमें लक्षण और उदाहरणों की सहायता से अलंकार-वर्णन हुआ है।

आचार्य कुलपति मिश्र ने काव्यशास्त्र सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रस रहस्य' का प्रणयन सं० १७२४ वि० में किया। यह ग्रन्थ काव्य प्रकाश के आधार पर बना हुआ एक विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ है। इसमें काव्य प्रयोजन, कविता के वर्ग, शब्दशक्तियां, रस, ध्वनि, अलंकार काव्यगुण तथा काव्यदोष आदि का वर्णन है।

भूषण के पश्चात् सुखदेव मिश्र ने वृत्त-विचार, छन्द-विचार पिंगल, रसार्णव, शृंगार लता आदि ग्रन्थ (संवत् १७३० वि० के पश्चात्) लिखे। इनमें से प्रथम तीन में छन्द शास्त्र का विद्वत्तापूर्ण विवेचन हुआ है और इन्हीं के आधार पर ये पिंगलाचार्य भी माने जाते हैं। 'रसार्णव' में शृंगार रस का विशेष रूप से विवेचन हुआ है तथा नायक, नायिका, सखी, उद्दीपन, आलंबन, अनुभाव आदि का भी रोचक उदाहरणों सहित वर्णन हुआ है।

सुखदेव के बाद रामजी का नायिका भेद (सं० १७३०) और गोपालराय का 'रस सागर' और 'भूषण विलास', बलिराम का 'रसविवेक', बलवीर का 'उपमालंकार' और 'दंपतिविलास', कल्यानदास का 'रसचन्द्र' तथा श्रीनिवास का 'रस सागर' आदि ग्रन्थ भी इसी समय के आसपास की रचनाएं हैं। इनमें से सभी के ग्रन्थ प्रसिद्धि में और तथ्य में भी साधारण महत्व के हैं और इनको भी हम रीतिकालीन परम्परा निभाने वाले कवियों के अन्तर्गत रख सकते हैं। इनमें से कुछ तो काव्यात्मक गुणों से पूर्ण हैं परन्तु काव्यशास्त्र के हेतु महत्व के नहीं हैं।[1]

अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महाकवि देव ने भाव विलास, भवानी विलास, सुजान विनोद, कुशल विलास, रस विलास, काव्य रसायन, सुखसागर तरंग आदि रीति ग्रन्थों की रचना की। इनमें से अधिकांश ग्रन्थों का विषय रस और नायिका भेद है तथा कुछ में अलंकार, शब्दशक्ति, वृत्ति आदि काव्यशास्त्र के प्रायः सभी विषयों का विस्तृत विवेचन हुआ है।

१. देखिये डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृ० ६६।

इस प्रकार भिखारीदास के रचनाकाल तक उपर्युक्त कवियों ने अनेकानेक रीति ग्रन्थों का निर्माण कर लिया था। इन कवियों ने अधिकतर शृंगार रस सम्बन्धी कविताएं कीं। अपनी काव्य-प्रतिभा तथा काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के प्रणयन द्वारा इन कवियों ने राजदरबार तथा जनता दोनों ही में प्रतिष्ठा एवं सम्मान प्राप्त कर लिया था। अधिकतर कवियों ने इस काल में राज-दरबारों का आश्रय ग्रहण किया क्योंकि यहीं पर उनकी प्रतिभा को खुलकर खेलने का अवसर प्राप्त होता था। आश्रयदाता भी विलासिता के बीच शृंगार रस से ओतप्रोत कविता का ही रसास्वादन करते थे और इसी प्रकार की कविताएं उनके मनोनुकूल भी होती थीं। कुछ कवियों के आश्रयदाता वास्तव में काव्यकला के प्रेमी सिद्ध हुए, अतः उन्होंने शिथिल कविता की उपेक्षा करके कवियों को अधिक उत्कृष्ट रचनाएं करने के लिए प्रेरित किया। फलतः कवियों को रीति ग्रन्थों का अवलंब लेकर कविता करना श्रेयस्कर प्रतीत हुआ। ऐसे अवसर भी उपस्थित होते थे जब एक एक दरबार में एक से अधिक कवियों का जमाव होता था। ये कवि एक दूसरे से अधिक सुन्दर रचना करने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर इस होड़ में आगे निकल जाने के लिए कुछ उठा न रखते। अपने काव्य को उत्कृष्ट बनाने के लिए या तो इनके पास संस्कृत साहित्य का अक्षय भंडार था अथवा उनके समय तक निर्मित हो जाने वाले काव्यशास्त्र सम्बन्धी हिन्दी के ग्रन्थ। इन दोनों प्रकार के काव्य-ग्रन्थों का ये कवि अध्ययन एवं मनन करते थे। परिस्थिति ही कुछ ऐसी बन गयी थी कि कवि को अपना विषय तत्कालीन रुचि, जो शृंगार और नायिकाभेद की ओर थी, को देखते हुए चुनना पड़ता और अपने विषय का विवेचन एवं प्रतिपादन काव्यांगों, अर्थात् रस, अलंकार, नायिकाभेद, ध्वनि आदि, के वर्णन के सहारे ही करना पड़ता था।

उस काल में लक्षणग्रन्थों के निर्माण की भी एक परिपाटी सी चल पड़ी थी और वही उत्कृष्ट कवि माना जाता था जो काव्यांगों के लक्षणों आदि का अच्छा ज्ञान रखता था। प्रायः राज दरबारों में कवियों के मध्य वादविवाद चला करता था। कवि वर्णित नायिकाओं के सम्बन्ध में इसी बात पर विवाद छिड़ जाता कि यह कौन नायिका है और यदि अमुक नायिका है तो उसके लक्षण आदि मान्य सिद्धान्तों से कहाँ तक मेल खाते हैं? इस वाद-विवाद में कविता कला की सूक्ष्मताओं की भी परख हो जाती थी। ऐसी दशा में यह अनिवार्य सा था कि आश्रित (अथवा स्वतंत्र) कवि समय को देखते हुए काव्य-शास्त्र का गहन अध्ययन करके लक्षणों के उदाहरण स्वरूप कविता लिखें। समय की इस आवश्यकता ने अनेक ऐसे कवियों को जन्म दिया जिनमें प्रमुख सूरति, सोमनाथ, श्रीपति, भिखारीदास, दूलह, बैरीसाल, पद्माकर आदि हुए। इनमें से अनेक तो अपनी विद्वत्ता, दैवी प्रतिभा तथा लोकानुभाव के बल पर आचार्यों की कोटि में गिने जाने लगे और बहुत से ऐसे हुए जिनका यद्यपि आचार्यत्व तो प्रतिष्ठित न हो सका पर वे अच्छे कवि अवश्य माने जाने लगे।

(घ) रीति काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां

रीति काव्य की व्याख्या एवं परिभाषा करते हुए सेठ कन्हैयालाल पोद्दार का कथन

है कि 'जिनके अध्ययन से काव्य का स्वरूप एवं रहस्य तथा काव्य के रस, ध्वनि, अलंकार आदि भेदों का ज्ञान एवं दोष गुण के विवेचन की शक्ति उत्पन्न हो उन ग्रन्थों को रीति ग्रन्थ कहते हैं'।[1] इस दृष्टि से जिन ग्रन्थों में काव्य-लक्षण, अलंकार, पिंगल, नायक नायिका भेद, नखशिख, षट्ऋतु, रसभेद, ध्वनि और काव्य के गुणदोष आदि का विवेचन हो वही रीति ग्रन्थों की श्रेणी में आते हैं। फलतः रीति काव्य वह है जिसमें काव्यरचना सम्बन्धी नियमों का विधान हो। रीतिकालीन अनेक कवियों ने कवि रीति का अथवा काव्य रीति का इन्हीं अर्थों में प्रयोग किया है।

रीतिकालीन कवि दो वर्गों में बट गये थे, एक तो रीतिमुक्त कवि और दूसरे रीति-युक्त। इनमें से प्रत्येक के फिर दो भेद हुए—धार्मिक तथा लौकिक। रीतिमुक्त कवियों में से अधिकांश लौकिक शृंगार के चित्रक बने यद्यपि उनमें से कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने शुद्ध एवं पवित्र भावनाओं को लेकर राधाकृष्ण के भक्ति सम्बन्धी पदों की रचना की। रीति-युक्त कवियों ने संस्कृत साहित्य में वर्णित एवं विवेचित काव्यांगों का सहारा लेकर रीति ग्रन्थों का निर्माण किया। विषय विवेचन तथा तत्कालीन परिस्थितियों के दृष्टिकोण से रीतिकाल की प्रमुख प्रवृतियां इस प्रकार थीं :

(अ) शृंगारिकता—जिसके अन्तर्गत नायिका भेद, नखशिख वर्णन, षट्ऋतु एवं प्रकृति वर्णन, राधाकृष्ण चित्रण और ब्रज भाषा माधुर्य जैसे विषयों का विशेष रूप से समावेश हुआ है और

(आ) आचार्यत्व

हम क्रमशः रीतिकाल की इन्हीं प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

(अ) शृंगारिकता—रीतिकाल का प्रादुर्भाव, जैसा पहले कहा जा चुका है, मुगलों के वैभव काल से होता है। जिस प्रकार मुसलमान बादशाह और उनके प्रभावशाली अधि-कारीगण विलासिता के प्रवाह में वह रहे थे उसी प्रकार इस काल के राजे-महाराजे भी विलास-प्रिय बन रहे थे। यदि मुस्लिम दरबारों में आशिकाना मज़ामीन और शायरी का आदर था तो राज-महाराजाओं के यहां भी सरस भावों एवं विलासिता से ओतप्रोत कविताओं का सम्मान कम न था। ऐसी अवस्था में यदि शृंगार रस के साहित्य का अधिक विकास हुआ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। ज्ञान, विराग, योग इत्यादि में एक प्रकार की नीरसता सर्व-साधारण को मिलती है।[2] भक्तिकाल के राधा सौंदर्य वर्णन में जो श्रद्धा, पवित्रता, आत्मतुष्टि, आध्यात्मिक संदेश एवं आत्मशुचिता थी वह रीतिकाल में आते-आते नायिका के बाह्य सौंदर्य तक ही सीमित रह गयी। अब स्त्री अथवा नायिका गृहिणी एवं सहधर्मिणी न रह कर वासना की पूर्ति के लिए एक साधन बन गयी। उसका चित्रण कुछ इस प्रकार किया जाने लगा मानो वह सदा से यौवना रही है और सदा यौवना रहेगी। इस समय आत्मा को नहीं शरीर को प्रधानता दी गयी। इस काल के कवियों ने नारी के अन्तर में उतर कर न तो उसका दैवी स्वरूप देखा

१. कन्हैयालाल पोद्दार : संस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रथम भाग।
२. देखिये हरिऔध : हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ३४१।

और न उसका मातृहृदय, न उसमें वात्सल्य के दर्शन किये और न उसकी अद्वितीय त्यागमूर्ति के ही। स्त्री का रूप, उसका मनमोहक कलेवर मनुष्य की लिप्सा एवं भोग की वस्तु बन गया। प्रेम की पवित्रता नष्ट हो गई। सच्चे प्रेमियों के मध्य एक दूसरे के सुख दुख में आत्म-बलिदान की जो अकृत्रिम भावना होती है वह यहाँ निर्मूल हो गयी। अब सीता और सावित्री के पातिव्रत धर्म का स्थान हीन हो गया। श्रृंगारिकता के रीतियुगीन चित्रण से नारी के विषय में इतना आभास और मिलता है मानो वह नटी के समान कवियों द्वारा नचायी जान पर भी प्रसन्न है, सुखी है, उसे स्वर्ग का वैभव प्राप्त हो रहा है और सार्वजनिक उपभोक्ता बनने में उसकी अपनी सहमति है। इसीलिए उसमें श्रृंगारिकता है, प्रसाधन है, छटा है, चुलबुलाहट है और है मनमोहक गुण, केवल बाह्येन्द्रियों की तृप्ति के लिए आत्मा के परिष्कार के लिए नहीं।

रीतिकाल में जहाँ अधिकतर नारी के उक्त रूप का चित्रण हुआ है वहीं कुछ कवियों ने भारतीय संस्कृति के पोषणार्थ उसे अधिक गिरने नहीं दिया। इन कवियों ने तो उसमें मर्यादा का प्रतिबन्ध भी लगा दिया। ऐसे कवियों ने स्वकीया को ही वरीयता दी और परकीया की भर्त्सना की। कविवर देव ने कहा है कि "पात्र मुख्य सिंगार को सुद्ध स्वकीया नारि।" अतएव इस काल में श्रृंगारिकता की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है उसमें नारी के दो स्वरूप हैं—मर्यादित तथा अमर्यादित।

१. **नायिका भेद**—श्रृंगार वर्णन ने नारी को जो उपर्युक्त दो स्वरूप दिये उसके कारण रीतिकाल में नायिकाभेद विवेचन को विशेष प्रेरणा मिली और यही विषय इस काल का सर्वाधिक व्यापक विषय है। इसमें सन्देह नहीं कि रीतिकालीन कवियों ने नायिकाओं का जितना सूक्ष्म विवेचन किया उसे देखते हुए संस्कृत के आचार्य भी पीछे रह जाते हैं। संस्कृत के आचार्य नायिकाओं के चित्रण में रीतिकालीन कवियों से पीछे क्यों रह गये इसका कारण प्रभुदयाल मीतल जी ने अपने 'ब्रज भाषा साहित्य का नायिका भेद' ग्रन्थ में इस प्रकार दिया है—"नायिकाभेद का सम्बन्ध काव्य से उतना नहीं है जितना अभिनय से है और इसी सिल-सिले में उसकी उत्पत्ति भी हुई है। संस्कृत साहित्य में जहाँ इस विषय का सूत्रपात हुआ है उसका उल्लेख सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र और दशरूपक जैसे अभिनय ग्रन्थों में ही मिलता है। काव्य से इसका सम्बन्ध इतना ही हो सकता है कि उसके पात्रों के चरित्रचित्रण सम्बन्धी कोई अयुक्त, अमर्यादित और अस्वाभाविक बात न कह दी जावे किन्तु ब्रजभाषा साहित्य में कुछ ऐसी रीति चल पड़ी कि बड़े बड़े प्रतिभाशाली कवि भी प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा मुक्तक छन्दों द्वारा विभाव पक्ष का ही पोषण करते रहे। उनका ध्यान नायिकाओं के अगणित भेदोपभेदों द्वारा नारी मन के सूक्ष्म से सूक्ष्म विकारों के प्रदर्शन की ओर तो गया किन्तु यदि उन्हीं नारियों को महाकाव्य अथवा खंड काव्य की नायिकाएँ बनाकर कथा का विस्तार किया जाता तो उन कवियों की प्रतिभा और भी अधिक चमत्कृत हो जाती।"[१] इसमें सन्देह नहीं कि इस युग में नायिकाभेद के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवरणों को देख कर हृदय आनन्दविभोर हो उठता है। इस

१. प्रभुदयाल मीतल : ब्रज भाषा साहित्य का नायिकाभेद, पृ० ८१।

विषय के वर्णन में कवियों ने जिस प्रतिभा, जिस सूक्ष्मदर्शिता एवं जिस मनोविज्ञानविज्ञता का परिचय दिया है वह अद्वितीय है। यह तो तर्क का विषय है कि नायिका साहित्य के कारण हमारे समाज को लाभ पहुंचा अथवा हानि। विद्वानों ने दोनों पक्षों में अपने मत प्रकट किये हैं। परन्तु यह निर्विवाद है कि लौकिक काव्यानन्द प्रदान करने के लिए इस काव्य का विशिष्ट स्थान रहेगा। डा० रामप्रसाद त्रिपाठी ने इस विषय पर अपने निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं—

"स्त्री पुरुष की समस्या जीवन की सबसे बड़ी कड़ी पहेली है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इसी धुरे पर चक्कर लगा रहे हैं। पुरुष और प्रकृति की यह लीला नित्य और नूतन है। इसके रहस्य को समझ लेने से जीवन की और मनुष्य की सामाजिक समस्या हल हो जाती है। उस साहित्य से हमारे समाज को हानि पहुँचने की कल्पना मिथ्या और अपवादात्मक है।"[1]

२. **नखशिख वर्णन**—शृंगारिकता के अन्तर्गत नायिकाओं के अंग प्रत्यंग के वर्णन का समावेश स्वाभाविक हो जाता है। जब रीतिकालीन कवियों ने नायिकाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन कर डाला तो उनके लिए इन नायिकाओं के बाह्य सौन्दर्य का चित्रण कर सकना कुछ कठिन कार्य न था। रीतिकाल में नायिका भेद एक परिपाटी के रूप में ग्रहण हुआ था, अतः नायिकाओं का नखशिख वर्णन भी परिपाटी के रूप में गृहीत हुआ। कवियों ने नायिकाओं के केश, नासिका, कर्ण, नेत्र, ओष्ठ, कपोल, ठोड़ी, कर, कुच, नितंब आदि शरीर के प्रायः प्रत्यक बाह्य अवयव का इतने कौशल के साथ वर्णन किया है कि उसे देखकर पाठक को मंत्रमुग्ध रह जाना पड़ता है। यही नहीं कि इन बाह्यांगों का प्रसंगवश ही कहीं कहीं उल्लेख हो गया हो अपितु कतिपय कवियों ने तो एक एक अंग के वर्णन पर पूरे पूरे ग्रन्थ ही रच डाले हैं। इनके लिए 'अलक शतक' और 'तिल शतक' का नामोल्लेख किया जा सकता है।[2] नखशिख सौन्दर्य के उपरान्त कविगण प्रायः नायिकाओं के अन्य हाव भाव तथा भेदोपभेद आदि का भी विवेचन सफलतापूर्वक करते थे। जिस प्रकार शृंगारिकता की प्रवृत्ति ने कहीं कहीं नारी का रूपान्तर करके उसे उपभोग्या मात्र बना डाला था उसी प्रकार नखशिख के वर्णन में कहीं कहीं कामुकता एवं विषयासक्ति का भी समावेश हो चला था। परन्तु सौभाग्य से ऐसे स्थल कम ही हैं।

३. **षट्ऋतु एवं प्रकृति वर्णन**—उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत शृंगार भावना को गति प्रदान करने के लिए षट्ऋतु तथा प्रकृति वर्णन का समावेश हुआ है और यह तत्कालीन परिस्थितियों में स्वाभाविक था। षट्ऋतु वर्णन में रीतिकालीन कवियों ने काव्य की उत्कृष्टता का परिचय दिया है। उनका षट्ऋतु वर्णन बड़ा नैसर्गिक, हृदयग्राही एवं रोचक बन पड़ा है। षट्ऋतु वर्णन के अन्तर्गत शृंगार रस के संयोग एवं विप्रलंभ दोनों पक्षों पर उत्तम काव्य रचना सम्भव हुई है। प्रकृति के उपकरणों का तो इस काल के कवियों ने विलास के उद्दीपन के रूप में ही चित्रण किया है। प्रकृति के क्षेत्र में अप्रस्तुतरूप इन कवियों ने हंस,

---

१. ब्रज साहित्य मंडल के सभापति पद से दिया हुआ भाषण (प्रभुदयाल मीतल के 'ब्रज साहित्य का नायिका भेद', पृ० ८२ से उद्धृत)।

२. प्रभुदयाल मीतल : ब्रज साहित्य का नायिका भेद, पृ० ८० ।

कोकिल, भ्रमर, खंजन, चक्रवाक, चन्द्रमा, चांदनी, नक्षत्र, मेघ, विद्युत, यमुना, वासन्ती, लता, गुल्म, कमल आदि का उपयोग किया है। इस प्रकार इन कवियों ने अपनी काव्यप्रतिभा को लेकर प्रकृति के क्षेत्र में उतरने का तो प्रयास किया परन्तु अपने क्षेत्र एवं विषय को संकुचित (क्योंकि उसमें लौकिकता और प्रायः शृंगारिक भावनाओं का ही समावेश था) रखने के कारण वे उसे सर्वजनसुलभ एवं अधिक मर्मस्पर्शी नहीं बना पाये।

४. राधाकृष्ण चित्रण—रीतिकाल में राधाकृष्ण का चित्रण इस काल को भक्ति काल से मिलाने के लिए एक कड़ी अथवा शृंखला कहा जा सकता है। भक्ति काल में राधा और कृष्ण के सौंदर्य, उनकी क्रीड़ाओं तथा उनकी रास लीला आदि का वर्णन कवियों के 'पवित्र हृदय से निसृत होने के कारण पूत भावनाओं से समन्वित था और इस वर्णन में उन्हें तथा श्रद्धालु पाठकों को आत्मतोष का अनुभव होता था। रीतिकाल में आकर कवियों का दृष्टि-कोण जनता के आराध्य राधाकृष्ण की लौकिक क्रीड़ाओं को चित्रित करके तत्कालीन समाज की सुप्त वासनाओं को जाग्रत करने लगा। उस काल में राजदरबारों में हिन्दी कविता को अधिकाधिक आश्रय मिलने के कारण कृष्णभक्ति की कविता वासनामय उद्‌गारों में परिणत हो गयी। जनता में भी कृष्ण भक्ति के नाम पर मनमानी लीलाएँ करने की प्रवृत्ति बढ़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि राजाओं से पुरस्कार पाने तथा जनता द्वारा समादृत होने के कारण रीतिकाल की कविता शृंगार रसमयी हो गई और अन्य प्रकार की कविताएँ उसके सामने दब सी गयीं'।[1]

परन्तु उक्त कथन का यह अभिप्राय नहीं समझना चाहिए कि रीतिकाल के समस्त कवियों में राधाकृष्ण के प्रति उक्त प्रकार का दृष्टिकोण था। वास्तविकता तो यह है कि अनेक कवियों ने शुद्ध प्रेम के ऐसे सरस छन्द लिखे हैं कि 'सहसा यह विश्वास नहीं होता कि वे कवि शुद्ध आन्तरिक प्रेरणा के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य से कविता करते थे'।[2] इस काल में भी भक्ति काल की भांति ही भक्ति भावना से ओतप्रोत कविताएँ यत्र तत्र उपलब्ध होती हैं और उनमें हमें आज भी आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं।

५. ब्रजभाषा—रीतिकाल के कवियों ने अपने काव्य की रचना ब्रजभाषा में ही की। कोमलकांत पदावली को चुन-चुन कर कर्कशता का सप्रयास बहिष्कार कर तथा कितने ही अप्रयुक्त शब्दों को अपनाकर जिस भाषा परिपाटी की प्रतिष्ठा की गयी वही समस्त रीतिकाल में चलती रही और आज भी ब्रजभाषा के कवि उसका निर्वाह उसी प्रकार करते चले जाते हैं। साहित्य की ब्रजभाषा रीति की लीक पर चलने वाली भाषा है और ब्रज प्रान्त की भाषा से कुछ भिन्न है। उसका निर्माण जिस परिस्थिति में हुआ उसमें कोमलकांत पदावली की अतिशयता ही रही—टु, तिक्त, कषाय आदि के उपयुक्त महाप्राणता न आकर वह अधिकतर सुकुमार ही बनी रही। कमल, कदली, मयूर, चन्द्र, मदन आदि के लिए उसमें जितने काव्य-प्रयुक्त शब्द हैं वे सब कोमलता-समन्वित हैं। ब्रजभाषा की माधुरी आज भी देश भर में

१. श्यामसुन्दर दास : हिन्दी साहित्य, पृ० ४३३। २. वही पृ० ४३४।

प्रसिद्ध है ।[1] इन कवियों ने ब्रजभाषा में आवश्यकतानुसार अरबी, फारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के प्रचलित शब्दों का समावेश करके इसे और भी अधिक ललित एवं हृदयग्राही बनाया है । इस काल के कवियों ने ब्रजभाषा में अवधी के शब्दों का भी थोड़ा बहुत सम्मिश्रण किया ।[2]

(आ) **आचार्यत्व**—शृंगारिकता के चित्रण की प्रवृत्ति के साथ-साथ रीतिकाल में परम्परागत रीतिग्रन्थों के आधार पर अनेक कवियों ने इन (रीति) ग्रन्थों की रचना की। जैसा कहा जा चुका है, उस काल में जब तक कवि को काव्यांगों का विशद ज्ञान न होता था, तब तक न तो वह सफल कवि ही हो पाता था और न राज दरबारों अथवा जनता में उसे विशेष मान ही मिलता था । इसी कारण रीतिकालीन कवियों में से अधिकांश ने रीतिग्रन्थों की रचना करके रीति साहित्य की अभिवृद्धि की । वास्तविकता यह है कि यदि ये कवि रीतिग्रंथों का प्रणयन न करते तो काव्य से प्रेम रखने वाली अधिकांश जनता साहित्य के इस उत्कृष्ट विषय से प्रायः अनभिज्ञ रह जाती और काव्य शास्त्र का अपरिमित कोष संस्कृत के ग्रन्थों में ही बन्द रह गया होता क्योंकि इस काल में और इसके परवर्ती काल में संस्कृत केवल विद्वानों की ही भाषा रह गयी थी और जनता में इसका प्रचलन बहुत कम था ।

डा० रसाल का मत है[3] कि 'रीतिकाल में संस्कृत की भांति हिन्दी काव्यशास्त्र के क्षेत्र में कवि और आचार्य की दो श्रेणियां पृथक पृथक नहीं रहीं, अपितु एक ही साथ रहीं, अर्थात् यहां (हिन्दी काव्य शास्त्र के क्षेत्र में) कवि ही आचार्य और आचार्य ही कवि होकर काव्यशास्त्र के ग्रन्थों की रचनाएं करते रहे हैं । दोनों के भेद का यहां अभाव या लोप सा हो गया' । हिन्दी कवि आचार्यों की मौलिक उद्भावनाएं न्यून हैं । उन्होंने काव्यांगों का उचित विवेचन तथा स्पष्टीकरण भी नहीं किया और इसके कई कारण थे, एक तो संस्कृत साहित्य की जिस उत्तरकालीन परिपाटी का वे अनुकरण कर रहे थे, स्वयं उसमें ही खंडन मंडन और सूक्ष्म विवेचन की प्रणाली नहीं रह गयी थी, दूसरे जिसके लिए इन ग्रन्थों की रचना हो रही थी वह पंडितों का वर्ग न होकर केवल रसिकों का ही संप्रदाय था जिसमें अन्तर्विश्लेषण की सूक्ष्मताओं को ग्रहण करने की क्षमता और धैर्य नहीं था, जो केवल उतने ही काव्यांग परिचय की अपेक्षा करते थे जितना कि उनकी रसिकता के पोषण के लिए अनिवार्य था । इनके अतिरिक्त तीसरा प्रमुख कारण गद्य की विवेचना शैली का अभाव था, चौथा, इनमें से अनेक कवियों का अपरिपक्व शास्त्र-ज्ञान भी कहा जा सकता है ।[4] वस्तुतः इन का उद्देश्य तो अपने

---

१. श्यामसुन्दर दास : हिन्दी साहित्य, पृ० ४३५ ।

२. भाषा ब्रजभाषा रुचिर, कहैं सुकवि सब कोइ ।
मिलै संस्कृत पारसिहु, पै अति प्रकट जु होइ ।
ब्रज, मागधी मिलै, अमर, नाग, जमन भाषानि ।
सहज पारसीहू मिलै, षटविधि कवित बखानि ।
भिखारीदास : काव्यनिर्णय, पृ० ६ ।

३. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४०३ ।

४. डॉ० नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १४८ ।

आश्रयदाताओं तथा पाठकों को काव्यांगों का थोड़ा बहुत ज्ञान करा देना था। इन्होंने मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्राय: किया ही नहीं. क्योंकि यह उनका लक्ष्य ही न था। फिर भी दास, मतिराम, देव, कुलपति मिश्र, श्रीपति आदि कवियों ने इतना उत्कृष्ट काव्यांग विवेचन किया है कि उन्हें आचार्य-कवियों की श्रेणी में रखना ही युक्तियुक्त होगा। इनके काव्यों में काव्यलक्षण, काव्य प्रयोजन, अलंकार, रस, ध्वनि, नायिकाभेद, पदार्थ निर्णय, रीति, गुण, दोष, पिंगल आदि का विशद विवेचन हुआ है। कुछ आचार्य कवियों ने संस्कृत ग्रन्थों की परिभाषाओं का अनुवाद करके उन्हें ललित उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है। दोनों प्रकार के आचार्यों ने लक्षण ग्रन्थों की रचना पर विशेष बल दिया है। इन आचार्यों के काल तक संस्कृत की कुछ ऐसी प्रतिष्ठा जमी हुई थी कि वे संस्कृत के ग्रन्थों से अप्रभावित रह कर अपनी तर्क बुद्धि से स्वतंत्र विवेचना करने का साहस तक न कर सकते थे। अत: यह कहना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता कि वे प्रथम कोटि के आचार्य थे अथवा द्वितीय कोटि के व्याख्याकार परन्तु कुछ भी हो इनके विषय-विवेचन, अध्ययन के आधार पर काव्यशास्त्र सम्बन्धी सिद्धान्तों की इनकी व्याख्या तथा तत्कालीन जनरुचि की पृष्ठभूमि में इनके काव्य-निर्माण की शक्ति आदि को देख कर उन्हे आचार्य तो मानना ही होगा, भले ही वे प्रथम कोटि में न आते हों। इसमें सन्देह नहीं कि इन आचार्य कवियों में से कुछ न काव्यशास्त्र के विषयों का एक व्यवस्थित ढंग पर विवेचन किया। इस कोटि में 'दास' का नाम प्रमुख है। (दास ने समान अलंकारों के वर्ग बनाने तथा नायिकाओं आदि के विवरण समयानुकूल संशोधित करने का स्तुत्य प्रयास किया है। साथ ही उन्होंने भाषा की प्रकृति के अनुसार कुछ अलंकारों की उद्भावना तथा तुक का सर्वथा मौलिक विवेचन भी किया है।[1]) कुछ आचार्यों ने अपने गम्भीर अध्ययन के बल पर तथा हिन्दी में गम्भीर विवेचन परम्परा का प्रादुर्भाव करने के उद्देश्य से काव्य के सर्वांगीण विवेचन का प्रयास किया है। इस कोटि में प्रमुख हैं : दास, श्रीपति, कुलपति, सोमनाथ, प्रतापसाहि और रसिकगोविन्द। मुख्यतया शृंगार का सर्वांगीण विवेचन करने वालों में पद्माकर, बेनी प्रवीन, मतिराम और सुखदेव तथा अलंकार शास्त्र का गंभीर विवेचन करने वालों में जसवन्तसिंह, मतिराम, रघुनाथ, दलपतिराम आदि के नामों का उल्लेख किया जा सकता है। इन्होंने अपने-अपने विषय का अत्यन्त सरल और हृदयग्राही ढंग पर विवेचन किया है और इसमें वे बहुत हद तक सफल भी हुए हैं।

सारांश यह कि हिन्दी के रीति युग में अनेक काव्य मर्मज्ञ हुए। प्रकांड विद्वानों की भी इस काल में कमी न थी। 'परन्तु एक तो युग की रुचि ही गम्भीर नहीं रह गयी थी, लोग मीमांसा का नहीं रसिकता का आदर करते थे, इसी कारण उनकी दृष्टि संस्कृति के उत्तरकालीन अधोगत साहित्यशास्त्र से ऊपर नहीं जा पाती थी, दूसरे सबसे बड़ा अभाव गद्य का था जिसके कारण सूक्ष्म विश्लेषण सम्भव ही नहीं था। परिणाम यह हुआ कि इनका

१. आचार्यत्व के क्षेत्र में 'दास' की प्रतिभा का मूल्यांकन खण्ड ३ में किया गया है।

रीति निरूपण वर्णनात्मक ही रह गया विवेचनात्मक नहीं हो पाया'।[1]

इस प्रकार ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में शास्त्रीय पद्धति का सहारा लेकर रीतिकाल के कवियों ने जिस काव्य की रचना की उसमें शृंगारिकता के चित्रण तथा आचार्यत्व के प्रतिष्ठापन की दो प्रवृत्तियां बराबर मिलती हैं। इस काल में इन दोनों प्रवृत्तियों का इतना प्रचलन था कि प्रत्येक कवि कविता के क्षेत्र से उठकर आचार्यत्व के पद पर पहुँचने का प्रयास करता था। यह बात अवश्य थी कि बहुत से कवि कविमात्र रह गये और आचार्यत्व की कोटि में न आ सके। परन्तु इस काल में एक दूसरे से अच्छी कविता करने, वाद विवाद में एक दूसरे को परास्त करने, संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर काव्यशास्त्र के विविध अंगों का विवेचन करने और सर्वोपरि जनता तथा आश्रयदाताओं को अपनी कविता से मुग्ध करने के लिए ललित एवं सरस कविता की जो परिपाटी विकसित हुई, उसमें काव्यगुणों का तो समावेश था ही साथ ही उसमें हमें उत्कृष्ट रसानुभूति, मर्मस्पर्शी भावप्रवणता, अप्रतिम सौंदर्यानुभूति, उच्चकोटि की कल्पना तथा तन्मयता के भी दर्शन होते हैं।

(ङ) भिखारीदास के ग्रन्थ और उनकी प्रामाणिकता

भिखारीदास के ग्रन्थों के सम्बन्ध में जिन सूत्रों से न्यूनाधिक सामग्री प्राप्त हुई है उनमें कतिपय विद्वानों के ग्रन्थों तथा नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टें प्रमुख हैं। हम इन्हीं सूत्रों पर प्रकाश डालते हुए 'दास' के नाम से पाये जाने वाले ग्रन्थों की प्रामाणिकता की जांच करेंगे।

भिखारीदास के ग्रन्थों के सम्बन्ध में मिश्रबन्धुओं ने अपने 'विनोद' में (१) छन्दोर्णव पिंगल, (२) रस सारांश, (३) नाम प्रकाश, (४) विष्णुपुराण (५) काव्य निर्णय, (६) शृंगार निर्णय, (७) छन्द प्रकाश तथा (८) शतरंज शतिका का उल्लेख किया है।

'दास' के ग्रन्थ विषयक मिश्रबन्धुओं के विवरण के ही आधार पर अन्य परवर्ती इतिहासकारों ने भी इतने या इनसे एक दो कम या अधिक ग्रन्थ गिनाये हैं—जैसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में ६ ग्रन्थ[2] [रस सारांश, छन्दोर्णव, पिंगल, काव्य निर्णय, शृंगार निर्णय, नामप्रकाश, विष्णुपुराण भाषा -दोहा चौपाइयों में—, छन्द प्रकाश, शतरंज शतिका, अमर प्रकाश (संस्कृत अमरकोष हिन्दी पद्य में)], आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपने 'हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास' में ६ ग्रन्थ[3] [रस सारांश, छन्दार्णव, काव्यनिर्णय, शृंगार निर्णय, नाम प्रकाश, विष्णुपुराण भाषा, छन्द प्रकाश, शतरंज शतिका, अमर प्रकाश (अमरकोष हिन्दी पद्य में)], डा० रसाल ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में ६ ग्रन्थ[4] [काव्यनिर्णय, छन्दार्णव पिंगल, रस सारांश, शृंगार निर्णय, नाम प्रकाश (कोश ग्रन्थ), विष्णुपुराण (दोहा चौपाइयों में), शतरंज शतिका, अमर प्रकाश (संस्कृत के अमरकोष का हिन्दी भाषा में पद्यानुवाद) और छन्द प्रकाश] बताये हैं। श्याम सुन्दर दास जी ने अपने 'हिन्दी साहित्य' में लिखा है[5] कि 'उनका ('दास' का) काव्यनिर्णय ग्रन्थ अब भी

१. डॉ० नगेन्द्र : रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १६६।
२. पृ० २४०। ३. पृ० ३८५। ४. पृ० ४५०। ५. पृ० २६५।

रीति के विद्यार्थियों का प्रिय ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त उनकी रची छन्दार्णव पिंगल, रस सारांश, शृंगार निर्णय आदि अन्य पुस्तकें भी हैं'। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भिखारीदास की काव्य-कला का विवेचन करते हुए लिखा है कि 'अब तक इनके ९ ग्रन्थों का पता लग चुका है जिनमें काव्यनिर्णय और शृंगार निर्णय विशेष प्रसिद्ध हैं···इन्होंने विष्णुपुराण का भी अनुवाद किया है और अमरकोष का भी'।[1] सूर्यकान्त शास्त्री ने तो केवल इतना ही लिखा है कि 'अलंकारिक कविता के अतिरिक्त इन्होंने विष्णुपुराण का हिन्दी कविता में अनुवाद किया'।[2]

इसमें सन्देह नहीं कि भिखारीदास के काव्यनिर्णय, शृंगार निर्णय, रस सारांश तथा छन्दोर्णव पिंगल ग्रन्थ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त भी उनके कुछ ग्रन्थ हैं जिनसे हिन्दी साहित्य के अनेक इतिहास लेखक अभी तक प्रायः अपरिचित हैं और इसी कारण भिखारीदास के ग्रन्थों के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ भ्रमपूर्ण बातें कही हैं, उदाहरणार्थ जिसने भी भिखारीदास का 'नाम प्रकाश' ग्रन्थ देखा है वह यह कहने की ग़लती नहीं कर सकता कि नाम प्रकाश तथा अमर प्रकाश अथवा अमरकोष दो भिन्न-भिन्न ग्रन्थ हैं क्योंकि 'नाम प्रकाश' का मुद्रण एवं प्रकाशन अभी तक केवल एक ही प्रेस, अर्थात् गुलशन अहमद यंत्रालय, प्रतापगढ़, से हुआ है। यह ग्रन्थ नवम्बर सन् १८९९ ई० में छपा था। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में इसका नाम इस प्रकार दिया है 'नाम प्रकाश अर्थात् अमरकोष'। इस ग्रन्थ का मुद्रण 'लीथो' पर हुआ है और अब तो इसकी एक दो प्रतियां शायद ही कहीं बहुत अधिक छानबीन करने पर मिल सकें। अतः जिन इतिहास लेखकों ने यह लिखा है कि 'नाम प्रकाश' तथा अमरकोष अथवा अमर प्रकाश (वस्तुतः अमरकोष अथवा अमर प्रकाश एक ही पुस्तक है) दो भिन्न ग्रन्थ हैं, वे निश्चय ही भ्रम में हैं।

एक बात और है। ठाकुर शिवसिंह ने लिखा है कि 'छन्दोर्णव नाम पिंगल, रस सारांश, काव्यनिर्णय, शृंगार निर्णय, बाग बहार ये पांच ग्रन्थ इन (भिखारीदास) के बनाए हुए अति उत्तम काव्य हैं'।[3] इस सम्बन्ध में मिश्रबन्धुओं का कथन है—'ठाकुर शिवसिंह जी ने दास के पांच ग्रन्थ–अर्थात् रस सारांश, छन्दोर्णव पिंगल, काव्यनिर्णय, शृंगार निर्णय और बाग बहार–माने हैं परन्तु राजा साहब ने विष्णु पुराण और नाम प्रकाश नामक उनके दो और ग्रन्थ भेजे किन्तु वे कहते हैं कि बाग बहार नामक कोई ग्रन्थ 'दास' जी ने नहीं बनाया। उनका मत है कि शायद लोग नाम प्रकाश को बाग बहार कहते हों। हमने भी बाग बहार कहीं नहीं देखा और जान पड़ता है कि राजा साहब का अनुमान यथार्थ है[4]।'

यह तो वास्तव में बड़े आश्चर्य की बात है कि ठा० शिवसिंह जी 'बाग बहार' नामक यह ग्रंथ कहाँ से ले आये। प्रस्तुत लेखक के पास भी नाम प्रकाश की प्रति है जो संस्कृति के

१. पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय: हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास पृ० ३९५।
२. सूर्यकान्त शास्त्री : हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास पृ० २२२।
३. शिवसिंह सरोज, पृ० ४११।
४. मिश्रबन्धु विनोद पृ० ६३२।

अमर कोष का भाषानुवाद है। इस पुस्तक के 'अमरकोष भाषा' 'अमर तिलक' नाम तो अवश्य मिलते हैं परन्तु 'बाग बहार' नाम इसका कहीं नहीं मिलता। 'अमरकोष भाषा' नाम तो राजा प्रतापबहादुरसिंह द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ में ही मिलता है। वस्तुतः इस ग्रन्थ का नाम ही इस प्रकार लिखा है—'नाम प्रकाश' अर्थात् 'अमरकोष भाषा', और 'अमर तिलक' के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में इसका उल्लेख इस प्रकार है—

'अमर तिलक। भिखारीदास। प्राचीन देशी कागज। १३८ पृष्ठ। ११$\frac{1}{2}$×६। १३ लाइन प्रति पृष्ठ। अप्रकाशित। २५७९ अनुष्टुप छंद। अपूर्ण। प्राचीन रूप। पद्य। नागरी। महाराजा लाइब्रेरी, प्रतापगढ़'।[1]

अतः यह मानने का कोई कारण नहीं कि लोग नाम प्रकाश को ही बाग बहार कहते हों। फिर बाग बहार का नाम भी न हिन्दी की शब्दावली से मिलता है न संस्कृत की, और नाम प्रकाश का कोई अरबी, फारसी या उर्दू अनुवाद भी नहीं हुआ—कम से कम हमारी अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वानों की निगाह से तो गुजरा नहीं—जिससे यह निष्कर्ष निकलता कि लोग नाम प्रकाश को ही बाग बहार कहते रहे हों। अतः हम तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ठा० शिवसिंह ने बाग बहार का नाम देते समय निश्चय ही कोई भूल की है।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपने 'पुस्तक परिचय' नामक ग्रन्थ में 'भिखारीदास' लिखित निम्नलिखित पुस्तकों की सूची दी है। ये पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अतः पुस्तकों के नाम के सामने उनके प्रकाशकों के नाम भी दे दिये गये हैं।[2]

१. छन्दोर्णव (६ प्रा), गोपीनाथ पाठक।
२. छन्दोर्णव पिंगल, लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस, लखनऊ।
३. छन्दोर्णव पिंगल, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ।
४. कायस्थ वर्ण निर्णय, जगत नारायण, मडुवाई, इटावा।
५. रस सारांश, राजा प्रतापबहादुर सिंह, जिला प्रतापगढ़।
६. रस सारांश, गुलशने अहमदी प्रेस, प्रतापगढ़।
७. शृंगारनिर्णय, गुलशने अहमदी प्रेस, प्रतापगढ़।
८. शृंगारनिर्णय, भारत जीवन प्रेस, बनारस।
९. शृंगार निर्णय, बिहार बन्धु प्रेस, बांकीपुर।
१०. काव्य निर्णय, सं० नकछेदी तिवारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
११. काव्य निर्णय, भारत जीवन प्रेस, बनारस।

उपर्युक्त सूची को देखने से ज्ञात होगा कि डा० माताप्रसाद गुप्त ने भिखारीदास के नाम से केवल पाँच ग्रन्थों अर्थात् छन्दोर्णव पिंगल, कायस्थ वर्ण निर्णय, रस सारांश, शृंगार निर्णय और काव्य निर्णय का ही उल्लेख किया है। यद्यपि भिखारीदासकृत 'नाम प्रकाश'

१. नागरी प्रचारिणी सभा की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२६ ई० से सन् १९४६ ई० तक।
२. डा० माताप्रसाद गुप्त : हिन्दी पुस्तक साहित्य, पृ० ५३६।

तथा 'विष्णु पुराण भाषा' दोनों ही पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं (प्रथम गुलशन अहमदी प्रेस, प्रतापगढ़ से नवम्बर सन् १८६६ ई० में और दूसरी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से जनवरी सन् १८४६ ई० में) तथापि इनका डा० गुप्त ने कोई भी उल्लेख नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने 'कायस्थ वर्ण निर्णय' नामक भिखारीदास के एक नये ग्रन्थ का उल्लेख अवश्य किया है। यह उल्लेखनीय है कि डा० माताप्रसाद गुप्त के अतिरिक्त न तो इस पुस्तक का उल्लेख हिन्दी साहित्य के अन्य किसी लेखक ने ही किया और न इसका विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में ही मिलता है। हाँ, यू० पी० गजट दिनांक २६ मई सन् १६१५ ई० में मार्च सन् १६१५ ई० की तिमाही में सन् १८६७ ई० के ऐक्ट २५ के अधीन पंजीकृत तथा यू० पी में प्रकाशित होने वाली पुस्तक सूची में 'कायस्थ वर्ण निर्णय' का नाम अवश्य मिलता है। यह पुस्तक किन्हीं भिखारीदास (कायस्थ) की लिखी है। इसकी पृष्ठ संख्या ४३ तथा मूल्य २ आने है। गजट के अनुसार पुस्तक का वर्ण्य विषय कायस्थों के वर्ण का पता लगाना है। यह एक जातीय प्रकाशन है जिसमें रामायण के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि कायस्थ क्षत्रिय होता है।[1]

डा० माताप्रसाद गुप्त से पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि उन्होंने स्वयं इस पुस्तक को नहीं देखा है और भिखारीदास की पुस्तकों के अन्तर्गत इसका विवरण उपर्युक्त गजट की सूचना के आधार पर ही दिया है। इस पुस्तक की प्रति को प्राप्त करने के लिए यथा सम्भव सभी प्रयास किये गये किन्तु न तो यह पुस्तक किसी पुस्तकालय ही में मिली और न उस प्रेस से ही प्राप्त हो सकी जिसने उसे मुद्रित किया था। अतः इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है कि यह ग्रन्थ ट्योंगा (प्रतापगढ़) निवासी भिखारीदास का है अथवा अन्य किसी भिखारीदास का। परन्तु क्योंकि प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा तथा नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में भिखारीदासकृत ग्रन्थों में इस पुस्तक का उल्लेख नहीं है अतः यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि इस पुस्तक के लेखक ट्योंगा निवासी भिखारीदास नहीं, कोई और भिखारीदास होंगे। इस अनुमान का एक आधार और है। भिखारीदास ने अपने ग्रन्थों में से किसी में भी कायस्थों, उनके वर्ण अथवा उनके क्षत्रिय होने

1. Bhikhari Das (Kayastha) Varna Nirnaya (Kayastha) Varna Nirnaya. Determination of the 'Varna' (one of the four divisions of Hindus) of 'Kayasthas'. A caste publication trying to prove that Kayasthas are Kshattriya (Varna on the authority of the Ramayan) pages 1, 1, 1, 43. Published by Jagat Narain, Marnai, Etawah 1914 (10th Feb, 1915). Ist Edition. -/2/- as.

Printer and place of printing : B. L. Pawagi, Hitchintak Press, Banaras.

No. of copies 1000
Registration No. 506.

U. P. Gazette dated May 29, 1915
page 357, Sl. No. 12.

न होने के सम्बन्ध में संकेत तक नहीं किया और न वे एक संकुचित मनोवृत्ति लेकर जातीयता के पंक में ही फंसे। परन्तु कोरे अनुमानों और भावुकता से तो ग्रन्थ की प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता का निश्चय नहीं होता। अतः हम स्वयं इस कृति के दासकृत होने न होने के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कह सकते। हम समझते हैं कि इस ग्रन्थ को दास जी के संदिग्ध ग्रन्थों की सूची में स्थान देना ही युक्तियुक्त होगा।

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त भिखारीदास के ग्रन्थों का नामोल्लेख निम्नलिखित दो अन्य ग्रन्थों में भी हुआ है।

(१) हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, सम्पादक श्यामसुन्दर दास, बी० ए—भिखारीदास : उप० दास। हिन्दी के बहुत बड़े कवि। जाति के कायस्थ। बुन्देलखंड निवासी। सं० १७९९ वि० के लगभग वर्तमान। पहले ये बुन्देलखंड के कुंवर हिन्दूपति के और पश्चात् काशीनरेश महाराज उदितनारायण के आश्रित थे।

छन्दार्णव दे० (घ ३१), छन्दप्रकाश दे० (घ ३२), शृंगार निर्णय दे० (घ ४६), काव्य निर्णय दे० (घ ६१)

भिखारीदास। प्रतापगढ़ (अवध) निवासी। जाति के कायस्थ। सं० १७९१ के लगभग वर्तमान।

शतरंज शतिका दे० (ज २७ ए), विष्णुपुराण भाषा दे० (ज २७ बी), रस सारंग दे० (ड २१)।[1]

भिखारीदास के जीवनवृत्त सम्बन्धी अध्याय में हम इस बात का विवेचन कर चुके हैं कि उपर्युक्त दोनों भिखारीदास वास्तव में दो व्यक्ति नहीं एक ही हैं। 'रस सारांश' भिखारीदास के बहुत प्रसिद्ध ग्रंथों में से है। इन्होंने 'रस सारंग' नामक किसी भी ग्रन्थ की रचना नहीं की और न इसका कहीं उल्लेख ही मिलता है। अतः प्रतीत होता है कि सम्पादक महोदय श्री श्यामसुन्दर दास ने रस सारांश के ही स्थान पर 'रस सारंग' गलती से लिख दिया होगा। एक प्रमाण और है यदि श्यामसुन्दर जी भिखारीदास द्वारा लिखे हुए 'रस सारंग' को ठीक समझते तो वे अपने 'हिन्दी साहित्य' में इसका उल्लेख अवश्य करते। 'हिन्दी साहित्य' में तो उन्होंने रस सारांश का ही उल्लेख किया है 'रस सारंग' का नहीं।

(२) **प्रताप सोमवंशावली**—बलदेवनगर निवासी पंडित द्विज बलदेव जी ने प्रताप सोमवंशावली अथवा सोमवंशियों के इतिहास में भिखारीदास लिखित ये ग्रन्थ बताये हैं : काव्य निर्णय, शृंगार निर्णय, छन्दोर्णव, विष्णुपुराण, रस सारांश, अमर कोश और शतरंज शतिका।[2]

भिखारीदास का उपनाम 'दास' था और प्रायः वे इसी नाम से कविता किया करते थे। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में 'दास' के नाम से कविता करने वाले तीन

१. पृ० १११।
२. **द्विज बलदेव : प्रताप सोमवंशावली, पृ० ११३।**

अन्य कवियों का उल्लेख मिलता है, जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है। इन कवियों ने कतिपय ग्रन्थ भी लिखे हैं जिनका उल्लेख खोज रिपोर्टों में किया गया है।

(१) **दास**—'दास' कृत 'राग निर्णय' नाम से एक खंडित ग्रन्थ का पता चला है जिसमें संगीत विषयक वर्णन है। इसमें अध्यायों के स्थान पर 'प्रकासों' का प्रयोग हुआ है। इसके साथ माणिक कृत संस्कृत ग्रन्थ रागरत्न भी लिपिबद्ध है जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है :

'इति नादार्णवेहि श्री मदुपाध्याय जदुनन्दन सूनुना माणिक्येन कृतो रागरत्नः सप्तः।'

ग्रन्थ में रचनाकाल और लिपिकाल नहीं मिलते। उपर्युक्त रागरत्न के आधार पर लिपिकाल संवत् १८३५ वि० माना गया है। इसके नाम का पता बाइसवें प्रकास की पुष्पिका द्वारा चलता है।

'इति दीपक पुत्र गारा जलधर भरत अरत करत वर्णन रागनिर्णय बाइसमों प्रकासा' ।।२२।।

रचयिता का नाम के अतिरिक्त और कोई पता नहीं चलता। पिछली खोज रिपोर्टों में आए इस नाम के अन्य रचयिताओं से ये भिन्न हैं या नहीं निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।[1]

ग्रन्थ विवरण—ग्रन्थ संख्या १५४

राग निर्णय—दास कृत। देसी कागज पर लिखी। पत्र १८। आकार १०″ × ६¼″। १३ लाइन प्रति पृष्ठ। १७५ छंद। खंडित। पुराना। पद्य। नागरी। लिपिकाल सं० १८३५ वि० संभवतः। सुरक्षा का स्थान : ग्राम साहीपुर, नौलखा, पो० हंडिया, जिला इलाहाबाद।

प्रारम्भ—श्री गणेशायनम :

राग रूप भरी ताल झंपा

अरी जसोदा तेरो कान्ह हमीं सों करै लगरई।
बाट घाट मोंहि रोकत टोकत बांह गहे बरीअई।
षेलत फागु उमंग भरे पिचकारी लिये तन सारीं भिगाई।
'दास' कहे सब ही जी कै इन मोही सुधि करी पाई।

वरन चौताल

अन्त—मेरी बिनै सुनौ जौ तू अभै वरदानी।
निस वासर सोवत जागत हूँ बिसरो जिनि महरानी।
अंतर बाहिर तुमहि निहारत रहौ सदा मनमानी।
दासहि आस और नहीं दूजो सुनिए मौज निधानी।

इति दीपक पुत्र गारा जलघर भरत अरत करत वर्णत राग निर्णय बाइसमों प्रकासा ।।२२।।

काफी—एरी गरब गहेली हो तन जोबन गरब न कीजौ।
जैसे कुसुंभ रंग चटकीलौ छलक छलक छन छीजै।
ज्यों तरिवर की छांह मध्य दिन तैसे ही गुनि लीजौ।
कहत दास पिय के मिलबे बिन कैसे कै जिय जीजै। ।।३।।

अपूर्ण

विषय—संगीत का विषय वर्णन

1. ना० प्र० स० (अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२६ से १९४६ तक)

(२) **दास**—इनकी 'ब्रज माहात्म्य चंद्रिका' कृष्ण भक्ति और ब्रज माहात्म्य विषयक सुन्दर रचना है। इसमें प्रकाश नाम से ६ अध्याय हैं। रचना काल का उल्लेख नहीं। लिपि काल संवत् १८०५ वि० के हैं। ग्रन्थ की पुष्पिका से विदित होता है कि लिपि काल ही रचना काल भी है। ग्रन्थ की प्रस्तुत प्रति खंडित है।

रचयिता का और वृत्त नहीं मिलता। पिछली खोज रिपोर्टों में आए इस नाम के रचयिताओं से ये भिन्न हैं या अभिन्न इस संबंध में कुछ ज्ञात नहीं होता।[1]

ब्रज माहात्म चंद्रिका—दास। देसी कागज पर। पत्र ७३। आकार ७½"×५½"। ६ लाइन प्रति पृष्ठ। अपूर्ण। पद्य। नागरी। लिखने का संवत् १८०५। सुरक्षा का स्थान : आर्य भाषा पुस्तकालय। याज्ञिक संग्रह। काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

प्रारम्भ—नाक पीठ पै डीठि कै ईठ करौ सो ठौर।
यह साधन वह सिद्धि है सबै चलाचल और। २।

वर है विसोक एक रमा रानी जू कौ ओक, और सबै लोक सोक गिनि भरसानै में।
काल के चलाए ते चलत चहूं घातें जहाँ, तहां रहैं थिरा सब ही के थरसानै में।
काहूं कौन बाधा सुष की अगाधा राधा, मानि माधव अराधा कहैं 'दास' हरसानै में।
तरनि किरनि सी प्रकासमानो वृषभानो, कीरति बितानी राजधानी बरसानै में।

मध्य—राज काज अभिमानी राजधानी मथुरा तें दास,
लाज काज साजि ब्रज को नवायौ हौं।
कंस कूप अंध तामै पर्यौ महामद हरि,
ऐसे बंधु प्रेम सिंधु मैं न्हवायौ हौं।
मांगतु हौं सीख मोहि दीजै सीष भीष आयौ,
सषिन सिषावन कौ सीषन कौ आयौ हौं।
भरो मोह मैटन को अपनो समेटन कौं,
दै कै स्याम भेटन कौं भेट न ठायौ हौं। १३५।

अंत—लोक वेद कही भेटन अनीति कही भेटन,
कौं परी प्रीति रीति कही वास की।
ब्रज अनुराग कह्यौ जगत विराग कह्यौ,
विरह सुहाग कह्यौ जैसी रोकी रास की।
अवतार गति कही एकै हरि मति कही,
सती पति नीकी वृति कृति कही दास की।
अर्थनि सौं भरी ग्रन्थ कोठरी की कूंची,
कही सूचीपत्र करिजो प्रकासै आसै आस की।

---

१. ना० प्र० स० (अप्रकाशित खोज रिपोर्ट, सूचक चिह्न सं० १५५।)

कृष्णचन्द्र चन्द्रिका कौं कहूँ नहीं ह्यां संक।
ब्रज निसंक है अंक भरि लीनौ स्यां कलंक। ३२९।

इति श्री ब्रज महात्म चन्द्रिकयां आत्म निवेदियनो नाम षष्ट प्रकासः।

५ ० ८ १

दोहा—सिव मुख रव वसु सुधानिधि संवतसर आधार।
कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी ग्रन्थ लिष्यौ रविवार॥

श्रीकृष्ण की कुछ कथाओं को संक्षेप में वर्णन कर ब्रज का महात्म्य वर्णन किया ग्रन्थ में निम्नलिखित ६ प्रकाश हैं—

१. प्रथम प्रकाश	अनुकूल संकल्प,	पृ० ८ से १३ तक।
२. द्वितीय प्रकाश	गोपत्व वर्णन	पृ० १३ से २७ तक।
३. तृतीय प्रकाश	प्रतिकूल त्याग प्रार्थना	पृ० २७ से ३७ तक।
४. चतुर्थ प्रकाश	ब्रजवास विश्वास	पृ० ३७ से ४० तक।
५. पंचम प्रकाश	अनन्य साधन कार्य अन्य साक्षात्कारानुसंधान योग	पृ० ४७ से ७० तक।
६. षष्टम् प्रकाश	आत्मनिवेदन	पृ० ७० से ८० तक।

हस्तलेख के आरम्भ के ७ पन्ने नहीं हैं। अतः ग्रन्थ अपूर्ण है। निर्माणकाल नहीं दिया है। लिपि काल संवत् १८०५ वि० है।

रचयिता का नाम दास है। यह पता नहीं चलता कि ये कहां के रहने वाले थे। पिछली रिपोर्टों में आये 'दास' नाम के रचयिताओं से ये भिन्न हैं या अभिन्न इस सम्बन्ध में भी कुछ ज्ञात नहीं होता।

इनकी प्रस्तुत रचना साधारणतः अच्छी है।[1]

(३) दास—ये 'पंथ पारख्या' के रचयिता हैं। ग्रन्थ से इनका इतना ही पता चलता है कि ये दादू पंथी थे। ग्रन्थ में पंथ के सिद्धान्तों और नियमों का वर्णन है। रचनाकाल लिपिकाल दिये नहीं। खोज में रचयिता का प्रथम बार पता चला है।

ग्रन्थ—दास। पंथ पारख्या। देशी कागज़। ६ पत्र। प्रथम पत्र नहीं है। ३$\frac{1}{2}$"× २$\frac{3}{4}$"। १० लाइन प्रति पृष्ठ में। अपूर्ण। भव्य रूप। पद्य। नागरी। आर्य भाषा पुस्तकालय। नागरी प्रचारिणी सभा, याज्ञिक संग्रह, काशी।

आरम्भ—कोई न करियौ रिसि।४। वाणी अमृत बेलड़ी। बहुत किय बिसतार। कीरति दादूदास की। चढ़ी समंदा पार।५। दस औतार मांहि ज्यूं कृष्ण। तीन्यू देव मांहि ज्यूं विष्नु। सकल शास्त्र में गीता जानि। त्यूं दरसन में दादू का ज्ञान।६। कविन मांहि बड़े ज्ञामवन्त। ऋषिन मांहि ज्यूं नारद संत। तीरथ में ज्यूं गंगा कही। त्यूं सतगुर में दादू सही।७। सतगुरु कहूं सति की बात। जातें पावें हरि साष्यत। डिंभ पाषंड न उपरि भेष। मन मै सुमरै एक अलेष।८।

१. ना० प्र० स० की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२६ से १९४६ तक।

मध्य—माया मोह करै सब दूरि पांचनै इन्द्री राषै पूर ।२४।
भिक्षा कारण हठ न कराई ग्रण बंछया ग्रावै सो षाई ।२५।
लूषा सूखा कबहूं न कहै दादू पंथी इहि विधि रहै ।२६।
छाजन भोजन इतना लहे काया ब्रत न चहिये जे ।
संचत करै न लोभी होई दादू पंथी कहिये सोई ।

ग्रन्त—दादू जी के नांव पर वारूं पिक प्ररान ।
दास कहै हरण नहीं गुर गोबिंद की ग्रांण ।
दास कहै हरण नहीं रत है बीन ।
पौता सणि साईं राह दादू जी के चरण की सरज्यो मोकौ षेह ।
षेह सिरज्यौ या चरण की सुनि सांई ग्ररदास ।
मनसा वाचा कर्मना रहौं चरण के पासि ।४७।

इति श्री दास जी पंथ पारख्या सम्पूर्ण ।

श्री दास जी ने ग्रपने इस छोटे से ग्रन्थ में दादू के सिद्धान्तों की व्याख्या की है। इस ग्रन्थ का प्रथम पृष्ठ तो नष्ट हो गया पर उपलब्ध ग्रंश से ज्ञात होता है कि ये दादू जी के शिष्य रहे होंगे। यह ग्रन्थ तथा कवित्त रज्जब जी के हैं जिसका विवरण पहले किया जा चुका है। दोनों एक बड़े हस्तलेख में संग्रहीत हैं जिसमें दादूदयाल जी की वाणी तथा सुंदरदास के ग्रष्टक ग्रादि कई ग्रन्थ संकलित हैं।

ग्रन्थ कर्ता के विषय में वे दादू जी के शिष्य थे, इससे विशेष कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

दास नाम के इन विभिन्न कवियों के ग्रन्थों का विश्लेषणात्मक विवेचन हम ग्रागे करेंगे।

३. नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में प्राप्त विवरण—ट्यौंगा निवासी भिखारीदास के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में ३४ हस्तलिखित ग्रन्थों का पता चला है। प्रत्येक ग्रन्थ की जितनी भी हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हो सकी हैं उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

ग्रन्थ का नाम	उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों की संख्या
१. काव्य निर्णय	ε
२. छन्दोर्णव पिंगल	६
३. शृंगार निर्णय	५
४. रस सारांश	५
५. विष्णु पुराण भाषा	२
६. नाम प्रकाश, ग्रथवा ग्रमर कोष, ग्रथवा ग्रमरतिलक	३
७. तेरिज रस सारांश	१
८. तेरिज काव्य निर्णय	१
९. शतरंज शतिका	१
१०. छन्द प्रकाश	१

१. ना० प्र० स० की ग्रप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२६ से १९४६ तक।

उपर्युक्त संख्याओं पर दृष्टि डालने से इस बात का पता चलती है कि 'दास' कृत काव्यनिर्णय, छन्दोर्णव पिंगल, शृंगार निर्णय तथा रस सारांश का रसिक काव्य प्रेमियों के मध्य वड़ा आदर था। इसी कारण उन्होंने इन ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियां करा करा कर उन्हें अपने पास सुरक्षित रखा।

उपर्युक्त जितने भी ग्रन्थों की विविध हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हुई हैं उनके पाठों तथा पाठक्रम में बहुत अधिक अन्तर नहीं है। वस्तुतः वे एक ही मूल ग्रन्थ की अनेक पांडुलिपियां हैं जिनमें से अनेक विविध स्थानों पर अब भी सुरक्षित हैं। अतः हम इनमें लिखित सामग्री का विवेचन न करते हुए केवल उपलब्ध पांडुलिपियों का संक्षिप्त परिचय देने तथा उनमें यदि कोई विशेषता हुई तो उसका यथास्थान संक्षिप्त दिग्दर्शन कराने का प्रयास करेंगे।

काव्य निर्णय

क्रम चिह्न ५५ डी*—(१) पुस्तक का नाम—काव्यनिर्णय। लेखक का नाम भिखारीदास। देशी कागज पर। २६४ पृष्ठ। आकार १०½"×४½"। ६ पंक्तियां प्रति पृष्ठ। छन्द संख्या २३१६। अपूर्ण। आकृति प्राचीन। लिपि देवनागरी। रचना काल संवत् १८०३ अथवा सन् १७४६। लिपि काल संवत् १६०४ अथवा सन् १८४७। सुरक्षा स्थान—महाराजा भगवान बक्श सिंह, अमेठी, जिला सुलतानपुर।

क्रम चिह्न ६१*—(२) काव्य निर्णय। पद्य। देशी कागज पर। पृष्ठ १७१। आकार १०¾"×६¾"। प्रति पृष्ठ में १४ पंक्तियां। श्लोक संख्या २४२३। आकृति—प्राचीन। पूर्ण। लिपि देव नागरी। सुरक्षा स्थान, बनारस के महाराजा का पुस्तकालय।

नोट—ग्रन्थकर्ता का नाम अन्त में महाराजकुमार हिन्दूपति बाबू साहब लिखा हुआ है परन्तु कवित्तों में इस ग्रन्थ में दास नाम ही मिलता है। इससे यह निश्चय होता है कि यह ग्रन्थ भिखारीदास का बनाया है। समय के विषय में अन्त में केवल संवत् १८७१ है जो लिपि काल जान पड़ता है।

क्रम चिह्न ५५ ई०*—(३) पुस्तक का नाम—काव्य निर्णय। लेखक का नाम—भिखारीदास कवि। देशी कागज। पृ० १४७। आकार १०"×६"। प्रति पृष्ठ ४४ पंक्तियां। ३२३४ श्लोक। आकृति—प्राचीन। लिपि नागरी। लिपिकाल सं० १६०५ अर्थात् सन् १८४८। सुरक्षा स्थान—राजा लालता वक्स सिंह, तालुकदार ग्राम नीलगाँव, जिला सीतापुर (अवध)।

नोट—इस हस्तलिपि के अन्त में लिखा हुआ है "इति श्री सकल कलाधार वंतावतंस श्रीमन्महाराजकुमार श्री बाबू हिन्दूपति विरचितां काव्यनिर्णय ग्रन्थ समाप्त क्वार मासे शुक्ल पक्षे तिथौ चतुरदस्यां शुक्रवासरे संवत् १६०५ लिषितं गौरीनाथ पांडे। राम, राम राम—"

क्रम चिह्न ६१ ई०*—(४) काव्य निर्णय। भिखारीदास, बुंदेलखंड। देशी कागज। पृष्ठ २६०। आकार १२"×६"। १८ पंक्तियां प्रति पृष्ठ। छप गया, बनारस प्रेस में। २५११ छन्द। पूर्ण (प्रथम पृष्ठ के नीचे का अर्द्ध भाग नहीं हैं)। आकृति प्राचीन। पद्य। रचना काल १८०३ वि०। लिपि काल संवत् १८७५। सुरक्षा स्थान—

* ना० प्र० सभा की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १६२६ से १६४६ तक।

पं० शिवदत्त बाजपेयी। ग्राम व पोस्ट मोहनलालगंज, जिला लखनऊ (अवध)।

क्रम चिह्न ६१ एफ*—(५) काव्य निर्णय। लेखक का नाम दास कवि। देशी कागज। पृष्ठ संख्या १४० आकार १२"×६"। २४ पंक्तियां प्रति पृष्ठ। छंद संख्या २५२०। पूर्ण। आकृति प्राचीन। गद्य पद्य। लिपि नागरी। निर्माणकाल सं० १८०३ वि०। लिपि काल सं० १९२६। सुरक्षा का स्थान, कुंवर नरहरदत्तसिंह जी, ग्राम सड़िला, मछरेहटा, प्रान्त सीतापुर (अवध)।

नोट—इस ग्रंथ के रचयिता दास कवि थे। निर्माण काल सं० १८०३ वि० है। इस का दोहा इस प्रकार है।

अष्टादश सै तीनि तहँ संवत आश्विन मास।
ग्रंथ काव्य निर्णय रचो विजय दस्म दिन दास।

लिपि काल सं० १९२६ वि० है। यह पुस्तक पहिले नोट हो चुकी है। इसमें किसी किसी छंद का टीका भी किया गया।

क्रम चिह्न ६१ जी*—(६) काव्य निर्णय। दास कवि। देशी प्राचीन बही का कागज। पृ० २२३। आकार १० ½"×७"। पंक्ति २२ प्रति पृष्ठ। २९७३ छंद। पूर्ण। प्राचीन। पद्य। लिपि नागरी। निर्माण सं० १८३३। लिखने का संवत् १९३६। सुरक्षा स्थान—पं० कृष्ण बिहारी मिश्र, माडल हाउस, लखनऊ।

नोट—इस काव्य निर्णय ग्रंथ के रचयिता प्रसिद्ध कवि दास जी हैं। यह काव्य अलंकार पिंगल का ग्रंथ है। यह ग्रंथ संवत् १८३३ में बना है। परन्तु यह संवत् कुछ असम्भव सा प्रतीत होता है। दोहा इस प्रकार है :

अट्ठारह सै तैतीसै, सम्वत आश्विनि मास।
ग्रन्थ काव्य निर्णय रच्यो विजै दसै दिन दास।

दोहा में छंन्दोभंग है। इसके पहले चरण में बरवा की ध्वनि निकलती है। यद्यपि मात्रा १३,११ ठीक हैं। मिश्रबन्धु विनोद में इस ग्रन्थ के सम्वत् का हाल नहीं दिया है।

क्रम चिह्न ६१ एच*—(७) काव्य निर्णय। भिखारीदास। 'दास'। ट्योंगा। प्राचीन देशी कागज पर। पृ० ३९०। आकार ९"×६" । प्रति पृष्ठ १७ पंक्तियां। प्रकाशित। काशी। छंद संख्या २९०१। पूर्ण। प्राचीन। पद्य। लिपि नागरी। निर्माण संवत् १८०३। लिपि काल संवत् १९३६। सुरक्षा का स्थान—रामबहादुरसिंह बड़वा, जिला प्रतापगढ़ (अवध)।

(८) काव्य निर्णय। भिखारीदास। फुलस्केप कागज के ८० पृष्ठ। २३ पंक्ति प्रति पृष्ठ। आकार १०"×७"। ६४० छंद। आकृति नई। लिपि नागरी। रचनाकाल संवत् १८०३। लिपिकाल संवत् १९१९ अर्थात् सन् १८६२। सुरक्षा का स्थान—पं० रामशंकर डाकखाना खरगुपुरा, जिला गोंडा।[1]

क्रम चिह्न ६१ आई*—(९) काव्य निर्णय। भिखारीदास 'दास' ट्योंगा। फुलस्केप कागज। पृष्ठ २२२। आकार ८ "×६½"। पंक्ति १७ प्रति पृष्ठ। प्रकाशित

*** ना० प्र० स० की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२६ से १९४६ तक।**
१. ना० प्र० स० की खोज रिपोर्ट सन् १९२० से १९२२ तक, पृ० १६६।

भारत जीवन प्रेस, काशी। प्राचीन। गद्यपद्य। लिपि नागरी। रचनाकाल संवत् १८०३। आश्विन मास। विजयादशमी। सुरक्षा स्थान--ब्रजबहादुरलाल प्रतापगढ़ (अवध)।

छन्दार्णव पिंगल

क्रम चिह्न ६१ डी*--(१) छन्दार्णव। भिखारीदास। देशी कागज पर। पृ० ६६। आकार ८"×५½"। प्रति पृष्ठ १७ पंक्तियां। १४७५ अनुष्टुप छंद। पूर्ण। नवीन आकृति। पद्य। लिपि नागरी। रचनाकाल १७९९। हस्तलिपि काल सम्वत् १९४२। सुरक्षा स्थान--पं० लक्ष्मीकान्त तिवारी, रईस बसुआपुर, पो० लक्ष्मीकान्तगञ्ज, जिला प्रतापगढ़ (अवध)।

नोट--संक्षिप्त विवरण के पृ० १११ पर प्रस्तुत ग्रन्थ बुंदेलखण्ड निवासी भिखारीदास बुंदेलखण्डी का रचा हुआ बताया गया है। वर्तमान ग्रन्थ में दास द्वारा लिखे गये छन्द से इस मत का खंडन होता है और सिद्ध होता है कि वह ट्योंगा के ही 'दास' की रचना है अन्य की नहीं। संभव है भ्रमवश ये समकालीन दो 'दास' पृथक पृथक माने गये हों और वास्तव में हों एक ही।

(२) छंदार्णव। पद्य। देशी कागज। पृष्ठ संख्या ९७। आकार १०¾×६¾" १५ पंक्ति प्रति पृष्ठ। १४५० श्लोक। आकृति साधारण। पूर्ण। शुद्ध। लिपि देवनागरी। सुरक्षा स्थान--पुस्तकालय काशी नरेश।

नोट--इस ग्रन्थ के कर्ता कवि भिखारीदास कायस्थ हैं। ये काशिराज महाराज नारायणसिंह के आश्रित थे।[1]

क्रम चिह्न ५५ ए*--(३) छंदार्णव पिंगल। भिखारीदास कायस्थ। देशी कागज पर। १४२ पृष्ठ। आकार १०½"×४½"। ७ पंक्ति प्रति पृष्ठ। १२६७ अनुष्टुप छंद। प्राचीन। लिपि नागरी। रचनाकाल संवत् १७९९, सन् १७४२। लिपिकाल संवत् १९१४ सन् १८५७। सुरक्षा का स्थान: श्रीमान् महाराजा भगवान बख्श सिंह जी, राजा अमेठी, सुलतानपुर (अवध)।

क्रमचिह्न ५५ बी०*--(४) छंदार्णव पिंगल। भिखारीदास। देशी कागज। पृष्ठ संख्या ५९। आकार ९"×७"। प्रति पृष्ठ ५५ पंक्तियां। १३०० अनुष्टुप श्लोक। प्राचीन। लिपि नागरी। रचना काल संवत् १७९९, सन् १७४२। सुरक्षा स्थान--बाबू पद्मबख्श सिंह तालुकदार, ग्राम लवेदापुर, ज़िला बहराइच।

क्रमचिह्न ५५ सी*--(५) छंदार्णव पिंगल। भिखारीदास। देशी कागज। पृष्ठ संख्या १५२। आकार ८"×६"। १७ पंक्ति प्रति पृष्ठ। १२९० अनुष्टुप श्लोक। आकृति प्राचीन। लिपि नागरी। रचना काल संवत् १७९९ सन् १७४२। सुरक्षा स्थान--ठा० नौनिहाल सिंह सेंगर, ग्राम कंठा, ज़िला उन्नाव।

१. ना० प्र० स० की खोज रिपोर्ट सन् १९०३, पृ० ३१।

*** ना० प्रा० स० की अप्राशित खोज रिपोर्ट सन १९२६ से १९४६ तक।**

क्रमचिह्न ६१ सी*—(६) नाम पुस्तक छंदार्णव। लेखक : भिखारीदास। ट्यौंगा, प्रतापगढ़ अरवर। प्राचीन देशी कागज।

नोट : भिखारीदास जी अरगल परगना प्रतापगढ़ मौजा ट्यौंगा के रहने वाले थे। इनके कोई सन्तान न थी। जाति के कायस्थ थे। संस्कृत के विद्वान और अच्छे आधार पर कई पुस्तकें लिखी हैं।

शृंगार निर्णय

क्रमचिह्न ५५ बी०*—(१) शृंगार निर्णय। भिखारीदास। देशी कागज। पृष्ठ संख्या ६०। आकार ८"×४"। ३२ पंक्ति प्रति पृष्ठ। ६६० अनुष्टुप श्लोक। अपूर्ण। आकृति प्राचीन। लिपि नागरी। रचना काल संवत् १८०७, सन् १७५०। लिपि-काल संवत् १९३६, सन् १८७९ ई०। सुरक्षा स्थान—पं० विपिन बिहारी मिश्र, व्रजराज पुस्तकालय, ग्राम गंधौली, डाकखाना सिधौली, जिला सीतापुर।

क्रमचिह्न ५५ आई*—(२) शृंगार निर्णय। भिखारीदास। देशी कागज पर। पृष्ठ सं० २९। आकार १२½"×६"। २४ पंक्ति प्रति पृष्ठ। ९२४ अनुष्टुप श्लोक। प्राचीन। लिपि नागरी। रचना काल संवत् १८०७, सन् १७५०। सुरक्षा का स्थान—भैया सन्तवख्श सिंह, ग्राम गुठवारा, जिला बहराइच।

(३) शृंगार निर्णय। लेखक का नाम : दास। देशी बादामी कागज। ६० पृष्ठ। आकार १२"×८"। २३ पंक्ति प्रति पृष्ठ। १०३५ अनुष्टुप श्लोक। पूर्ण। नवीन। पद्य। नागरी। रचना काल संवत् १८०७। लिपि काल संवत् १९४७। सुरक्षा का स्थान—कृष्ण बिहारी जी मिश्र, माडल हाउस, लखनऊ।[1]

नोट—दास उपनाम बिहारीदास कायस्थ ने इस ग्रन्थ 'शृंगार निर्णय' को अपने कविताकाल के अन्त में बनाया है। यह प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसका विवरण दिया जा चुका है।

क्रम चिह्न ६१ एन*—(४) शृंगार निर्णय। लेखक: भिखारीदास 'दास' ट्यौंगा निवासी। प्राचीन। देशी कागज पर। पृष्ठ संख्या १२८। आकार ६½"×५"। १७ पंक्ति प्रति पृष्ठ। लखनऊ से प्रकाशित। छंद संख्या ८८४। पूर्ण। प्राचीन। पद्य। लिपि नागरी। निर्माण संवत् १८०७। सुरक्षा का स्थान—रामबहादुर सिंह, बड़वा, प्रतापगढ़ (अवध)।

क्रम चिह्न ६१ ई*—(५) शृंगार निर्णय। भिखारीदास (दास) ट्यौंगा प्रतापगढ़ (अवध)। प्राचीन देशी कागज पर। पृष्ठ संख्या ६६। आकार १ फुट २ इंच× ५ इंच। ९ पंक्ति प्रति पृष्ठ। प्रकाशित भारत जीवन प्रेस, काशी। छंद संख्या १००३। पूर्ण। प्राचीन। पद्य। नागरी अक्षर। चैत्रसुदी १३ गुरुवार। रचना काल संवत् १८०७ वि०। लिपि काल संवत् १८९७ वि०। सुरक्षा का स्थान—महाराजा लाइब्रेरी, प्रतापगढ़ (अवध)।

१. ना० प्र० स० की खोज रिपोर्ट, सन् १९०४, पृ० २४।
*** ना० प्र० स० की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट, सन् १९२६ से १९४६ तक।**

रस सारांश

क्रम चिह्न २१—(१) रस सारांश। भिखारीदास। पद्य। देशी कागज। पृष्ठ सं० ४०। आकार ८½"×४½"। २७ पंक्ति प्रति पृष्ठ। ६५० श्लोक। आकृति बहुत प्राचीन। पूर्ण। अशुद्ध। लिपि देवनागरी। सुरक्षा का स्थान—पुस्तकालय काशीनरेश।[1]

क्रम चिह्न ५५ एफ*—(२) रस सारांश। लेखक का नाम भिखारीदास। देशी कागज पर। पृष्ठ सं० १८। आकार १२"×६"। ६४ पंक्ति प्रति पृष्ठ। ८६४ अनुष्टुप श्लोक। आकृति प्राचीन। लिपि नागरी। रचना काल संवत् १७९१ सन्, १७३४। लिपि काल संवत् १८८५, सन् १७३२। सुरक्षा का स्थान—पं० बिपिन बिहारी मिश्र, ब्रजराज पुस्तकालय, ग्राम गंधौली, डा० सिधौली, जिला सीतापुर।

क्रम चिह्न ५५ जी*—(३) रस सारांश। लेखक का नाम भिखारीदास। देशी कागज पर। पृष्ठ सं० ६०। आकार ८"×६"। १६ पंक्ति प्रति पृष्ठ। १००० अनुष्टुप श्लोक। आकृति प्राचीन। लिपि नागरी। रचना–काल संवत् १७९१, सन् १७३४। सुरक्षा स्थान—ठाकुर महाबीर बख्श सिंह, तालुकदार, ग्राम तथा डाकखाना कोठारा कलां, ज़िला सुलतानपुर।

क्रम चिह्न ६१ जे*—(४) रस सारांश। भिखारीदास। पृष्ठ सं० ३२। पृष्ठ का आकार १०½"×४½"। १२ पंक्ति प्रति पृष्ठ। ११५२ श्लोक। प्रति खंडित। आकृति प्राचीन। पद्य। नागरी। संवत् १९११। रचना काल संवत् १७९१।

नोट—यह खंडित प्रति ट्यौंगा (प्रतापगढ़) निवासी श्री भिखारीदास 'दास' कृत एक रीति ग्रन्थ है। इसमें रस भेद, भावाभास, रसाभास सम्बन्धी लक्षण व उदाहरण दिये गये हैं। ग्रन्थ के आदि के २३ पृष्ठ लुप्त हो गये हैं। इसमें लिपिकर्ता का परिचय इस प्रकार दिया है।

ग्रन्थ रसनि को सार यह दास रच्यो हरषाई।
सो बाबू सतसंत कहैं लिष्यौ भीषकनि राई।

क्रम चिह्न ६१ के*—(५) रस सारांश। भिखारीदास 'दास' निवासी ट्यौंगा, प्रतापगढ़ (अवध)। प्राचीन देशी कागज पर। पृ० ४२। १२½"×७"। पंक्ति १५। प्रकाशित। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ। छंद संख्या १०२४। पूर्ण। प्राचीन। पद्य। नागरी। रचना काल संवत् १७९१ वि०। लिपि काल संवत् १९१६ वि०। सुरक्षा का स्थान–महाराजा लाइब्रेरी, प्रतापगढ़ (अवध)।

नाम प्रकाश अर्थात् अमरकोष अथवा अमर तिलक

क्रमचिह्न ६१ए*—(१) अमर तिलक। भिखारीदास। प्राचीन देशी कागज। पृष्ठ सं० १३८। आकार ११½"×६"। १३ पंक्ति प्रति पृष्ठ। अप्रकाशित। २५७९ अनुष्टुप छन्द। अपूर्ण। प्राचीन रूप। पद्य। नागरी। सुरक्षा का स्थान—

१. ना० प्र० सं० की खोज रिपोर्ट, सन् १९०४, पृ० २४।
*** ना० प्र०स की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२६ से १९४६ तक।**

महाराजा लाइब्रेरी, प्रतापगढ़।

क्रम चिह्न ६१ बी०*—(२) अमर तिलक। भिखारीदास ट्यौंगा निवासी। प्राचीन देशी कागज। पृ० सं० ३१०। आकार ८३/४"×७१/२"। १७ पंक्ति प्रति पृष्ठ। अप्रकाशित। ३०८६ अनुष्टुप छन्द। अपूर्ण। प्राचीन। पद्य। नागरी। सुरक्षा का स्थान—महाराजा लाइब्रेरी, प्रतापगढ़।

नोट—इस पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है :

कियो भिखारीदास सुभ ग्रन्थ जु नाम प्रकास।
प्रथम कांड में वारि को वर्ग दशम उल्लास।

विष्णु पुराण भाषा

क्रम चिह्न६१ आर* (१) विष्णु पुराण भाषा। दास कवि। देशी कागज पर। पृष्ठ संख्या २३७। १४"×७"। १३ पंक्ति प्रति पृष्ठ। छन्द संख्या १००००। खंडित। नवीन। पद्य। नागरी। सुरक्षा स्थान : पं० महाबीर दूबे, स्थान हसनपुर, पो० परियावां, जिला प्रतापगढ़ (अवध)।

नोट—यह विष्णुपुराण नामक ग्रन्थ संस्कृत के विष्णुपुराण का भाषा में पद्यानुवाद है। अनुवादकर्ता हैं ट्यौंगा प्रतापगढ़ निवासी भिखारीदास 'दास' नामक कायस्थ। यद्यपि इसमें कवि के सम्बन्ध की बातों की कुछ चर्चा नहीं है, तथापि अध्यायों के अन्त में कई स्थान पर भिखारीदास जी का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

अनुवादक ने इस ग्रन्थ को ब्रजभाषा में लिखा है। अतएव इसी की इसमें प्रधानता है, फिर भी इसमें अवधी भाषा के अनेक शब्दों और कहीं कहीं क्रिया तक का उल्लेख है। संभवतः इसका कारण यह होगा कि अवधी कवि की मातृभाषा थी। अतः इसका प्रभाव उनकी रचना पर भी पड़ा। जहां इस अनुवाद में संस्कृत भाषा के कठिन शब्दों का प्रयोग है वहां गौण रूप से इतस्ततः फारसी इत्यादि अन्य भाषाओं के शब्द भी खोजने पर मिल जाते हैं। निस्सन्देह इसे हम एक उत्तम अनुवाद ग्रन्थ कह सकते है। ग्रन्थ में कहीं कहीं संस्कृत के श्लोक भी दिए गए हैं।

ग्रन्थ के कुल ६ अंश हैं। प्रत्येक अंश अध्यायों में बांटा गया है। इस प्रकार के ८२ अध्याय संपूर्ण ग्रन्थ में हैं। ग्रन्थ तुलसीदास जी की शैली में दोहे और चौपाइयों में लिखा गया है। प्रत्येक अध्याय में सोरठा और प्रत्येक अंशों में छप्पै का भी प्रयोग किया गया है। चौपाइयों की आठ आठ तुकों का प्रयोग एक एक दोहे के बीच में किया गया है।

(२) विष्णुपुराण भाषा—लेखक का नाम 'दास' कवि। देशी कागज पर। पृष्ठ १९९। १० और १३ पंक्ति प्रति पृष्ठ। ५२६२ श्लोक। आकृति प्राचीन। लिपि देवनागरी। रचनाकाल नहीं दिया। लिपि काल नहीं दिया। सुरक्षा स्थान—पं० बचनेश मिश्र, कालाकांकर।

---

१. ना० प्र० स० की खोज रिपोर्ट सन् १९०९—१९११, पृ० १९।
* ना० प्र० स० की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२६ से १९४६ तक।

क्रम चिह्न ६१ क्यू*—(३) विष्णुपुराण। लेखक भिखारीदास। 'दास' कवि निवासी ट्यौंगा। प्राचीन। देशी कागज पर। पृष्ठ संख्या ८६२। १०"×६½"।१४ पंक्ति प्रति पृष्ठ। छन्द संख्या। ६०३४। पूर्ण। प्राचीन। लिपि नागरी। लिपि काल संवत् १९३३। सुरक्षा स्थान—महाराजा लाइब्रेरी, प्रतापगढ़ (अवध), प्रकाशित नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

इस प्रति के अन्त में लिपिकर्ता का इस प्रकार उल्लेख है 'लिखितमिदं पुस्तकं पंडित शंकरदत्त तिवारी, साकिन मौजा खरोई, जिला प्रतापगढ़।'

यह पोथी शंकर लिखा सबसों कहत पुकारि।
पढ़िहहु सुजन सुधारि कै मम अपराध बिसारि।

तेरिज काव्य निर्णय

क्रम चिह्न ६१ औ*—तेरिज काव्यनिर्णय। लेखक का नाम भिखारीदास 'दास'। ट्यौंगा, जिला प्रतापगढ़। प्राचीन देशी कागज। पृ० संख्या ५७। आकार १' २"×५½"। अप्रकाशित। छन्द संख्या ६४८। पूर्ण। प्राचीन। पद्य गद्य मिश्रित। नागरी। लिपि काल संवत् १९१५। सुरक्षा का स्थान—महाराजा लाइब्रेरी, प्रतापगढ़ (अवध)।

प्रारम्भ—श्री गणेशायनमः। दोहा। अथ काव्यनिर्णय कै तेरिज।

दोहा—ग्रन्थ काव्य निरणय यदि जौ समुझै करहिंगे अंग।
सदा बसहिंगी भारती ता रसना उप संग।
भाषा ब्रज भाषा रुचिर कहैं सुमति सब कोइ।
मिलै संस्कृत पारस्यौ पै अति प्रगट जु होइ।
तुलसी गंग दोऊ भये सुकविन के सरदार।
इन्ह की काव्यनि में मिली भाषा विविध प्रकार।

मध्य—अप्रस्तुत प्रसंस कारज मुख कारण को कथन।
अथ समासोक्ति लक्षण दोहा।
जहँ प्रस्तुत में पाइये अप्रस्तुत को ज्ञान।
कहुं वाचक कहुं श्लेष ले समासोक्ति पहिचान।९।
अथ व्याज स्तुति लक्षण दोहा।
अप्रस्तुत प्रशंस अरु व्याजस्तुति की बात।
कहूं भिन्न ठहरात अरु कहूं जुगल मिलि जात।१०।

अन्त—ज्यों बरनत पितु मात को नहिं सिंगार रस लोग।
त्यों सुरतादिक विश्व में बरनत लगै अयोग।
यहि विधि औरौ जानिये अनुचित बरनन चोष।
प्रकृति विपर्जय होतु है अरु सिंगरो रस दोष।

*** ना० प्र० स० की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२९ से १९४६ तक।**

इति श्री काव्यनिर्णय कै तेरिज संपूर्ण शुभमस्तु सिद्धिरस्तु । सं० १९१५ दशषत दुरगाप्रसाद कायस्थ हेतवे श्री लाल भवानी वक्श सिंह ।

तेरिज रस सारांश

क्रम चिह्न ६१ पी*—तेरिज रस सारांश । भिखारीदास । प्राचीन देशी कागज । पृ० सं० १८ । आकार ११३/४"×५३/४" । ८ पंक्ति प्रति पृष्ठ । अप्रकाशित । छन्द संख्या २३४ । पूर्ण । प्राचीन । पद्य । दोहा । नागरी अक्षर । लिपि काल सं० १९१४ । सुरक्षा का स्थान—महाराजा लाइब्रेरी, प्रतापगढ़ (अवध) ।

प्रारंभ—श्री गणेशायनमः । अथ तेरिज रस सारांश कै नौ रस नाम कथन ।

दोहा—नव रस प्रथम सिंगार पुनि हास करुण अरु वीर ।
अद्भुत रुद्र विभत्स भय शान्त सुनो कवि धीर ।

रस के विभाव अनुभाव स्थाई भाव

जासों रस उत्पन्न है सो विभाव उर आनि ।
आलंबन उद्दीपनो सो द्वै विधि पहिचानि ।२।

मध्य—संयोग ही वियोग कै वियोग ही संयोग ।
करि मिश्रित शृंगार को बरनत हैं सब लोग ।७२।

संयोग में वियोग

सौतुष सपने देखि सुनि पिय बिछुरन की बात ।
सुष ही मै दुष को उदय दंपति हूं ह्वै जात ।

वियोग मै संयोग

पत्री सगुन संदेश लखि पिय वस्तुनि को पाय ।
अनुरागनिन वियोग मै हरषोदय ह्वै जाय । ।७४।

इति मिश्रित शृंगार समाप्त ।

अंत—सबै प्रछन्न प्रकाश है छिपे प्रगट ते जानि ।
भूत भविष व्रतमान प्रति सब भेदनि में मानि ।
सब सामान्य विशेष है लक्षण सफल विशेषि ।
होइ कछुक लक्षण लिए सो समान्य अवरेषि । ।१५६।
सबके कहत उदाहरण ग्रन्थ बहुत बढ़ि जाइ ।
तातें संपूरण कियो बाल गोपालहिं ध्याइ । ।१५८।

इति श्री रस सारांश कै तेरिज संपूर्ण । सं० १९१४ मार्ग मासे कृष्ण पक्षे अमावस्यां सोमवासरे । समाप्त ।

नोट—इस नाम से कोई पुस्तक नोटिस में नहीं आई है । यह पुस्तक भिखारीदास जी के रस सारांश नामक पुस्तक की खतियौनी है । इस पुस्तक से इनके संग्रह का समय नहीं ज्ञात होता परन्तु मूल पुस्तक सं० १७९१ नभ सुदि छठि बुधवार को बनी थी । इससे यह

* ना० प्र० स० की अप्रकाशित खोज रिपोर्ट सन् १९२६ से १९४६ तक ।

निश्चय है कि इसका संग्रह उक्त तिथि के बाद किया गया है। संभवतः १८०० संवत के लगभग हो सकता है।

शतरंज शतिका

शतरंज शतिका। लेखक का नाम भिखारीदास। देशी कागज पर लिखी हुई। पृष्ठ ५। आकार १३½"×५½"। ८ पंक्ति प्रति पृष्ठ। १३० श्लोक। आकृति प्राचीन। लिपि देवनागरी। रचना काल नहीं दिया। लिपि काल नहीं दिया। सुरक्षा का स्थान—राजा साहब बहादुर, प्रतापगढ़ (अवध)।[१]

प्रारम्भ—श्री गणेशायनमः अथ पोथी सतरंज सतका लिख्यते।
राजन्ह श्री प्रद मंत्रिन्ह मंत्रद सूर सुबुद्धन को जु सहायक।
उंदुर अस्व अरु ह्वै प्यादे हूं दौरि कै दास मनोरथदायक।
चौसठ चारु कलान को लाभ बिसाति न बूझिये बंदि बिनायक।
सिंदुर आनन संकर मानत ध्यान सदा सतरंजन लायक।

उत्तर गीता छन्द

अन्त—रवु यों विहुरो राज पौरि। जु जुरौ रोब धूयौ सीधू।
पधन सिधाय सुना सिठाभव थान सीभहि लीधू।

इति श्री भिखारीदास कायस्थ कृते शतरंज शतिका सम्पूर्ण शुभमस्तु। श्री राधा-कृष्णाय।

री	वि				पी		
				पी	पी	री	
पी	पी	पी	पी	मी	सी	पी	
					पी		पी
					वा	पी	पा
पा		मा	पा		स	र	
	या						
	वा			र	पी		

१. ना० प्र० स० खोज रिपोर्ट सन् १९०९-१०, पृ० ५२

छन्द प्रकाश

छन्द प्रकाश। गद्य पद्य। देशी कागज पर। आकार १०$\frac{3}{4}$"×६$\frac{3}{4}$"। पृष्ठ ५। १५ पंक्ति प्रति पृष्ठ। ७५ श्लोक। आकृति साधारण। अपूर्ण। शुद्ध। लिपि देवनागरी। सुरक्षा स्थान: पुस्तकालय, काशी नरेश।

नोट—इस ग्रन्थ के कर्ता कवि भिखारीदास कायस्थ हैं। ये काशिराज महाराज उदितनारायण सिंह के आश्रित थे।[1]

ग्रन्थों की प्रामाणिकता

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों के उपर्युक्त अंशों को देखने से इस बात का निश्चय रूप से पता चलता है कि निम्नलिखित पुस्तकों के रचयिता ट्यौंगा निवासी कवि भिखारीदास, उप नाम 'दास', ही हैं।

१. काव्य निर्णय, २. छन्दार्णव पिंगल, ३. शृंगार निर्णय, ४. रस सारांश, ५. विष्णु पुराण भाषा, ६, नाम प्रकाश अर्थात् अमरकोष अथवा अमर तिलक, ७. तेरिज रस सारांश, ८, तेरिज काव्य निर्णय और ९. शतरंज शतिका।

ये ग्रन्थ प्रामाणिक रूप से भिखारीदास कृत हैं। इनकी प्रामाणिकता के और प्रमाण निम्नलिखित हैं:

(१) उपर्युक्त सभी ग्रन्थ गणेश स्तुति से आरम्भ होते हैं। उक्त ग्रन्थों में से ऐसा कोई भी ग्रन्थ नहीं है जिसका आरम्भ अन्य किसी देवी देवता की स्तुति से अथवा विना किसी की स्तुति के होता हो।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि भिखारीदास किसी शुभ कार्य को और विशेष रूप से ग्रन्थ निर्माण जैसे कार्य को आरम्भ करने से पूर्व गणेशजी की स्तुति करना आवश्यक समझते थे।

(२) उपर्युक्त सभी ग्रन्थों में भिखारीदास ने आदि, मध्य अथवा अन्त में अपना नाम अवश्य दे दिया है जिससे यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि ये ग्रन्थ ट्यौंगा निवासी कवि भिखारीदास द्वारा रचे गये हैं, उदाहरणार्थ—

रस सारांश[3]—अरवर देश प्रतापगढ़ भयो ग्रन्थ अवतार।
इति श्री भिखारीदास कायस्थ रचितायां रस सारांश समाप्तम्।
विष्णुपुराण भाषानुवाद—ये सबनुष्टुप छंद में दश सहस्र परिमान।
दास संस्कृत ते कियो भाषा परम ललाम।
शतरंज शतिका—दास रचै सतरंज की शतिका आनंद कंद।

'तेरिज काव्य निर्णय' और 'तेरिज रस सारांश' भी कवि भिखारीदास रचित हैं। इनका विवेचन हम आगे करेंगे।

(३) भिखारीदास ने अपने काव्यनिर्णय, शृंगार निर्णय, नामप्रकाश आदि ग्रन्थों में अपने आश्रयदाता हिन्दूपति का नाम तथा उनकी गुणग्राहकता एवं वीरता का वर्णन किया

१. ना० प्र० सभा की खोज रिपोर्ट सन् १९०३, पृ० ३२।
२. देखिये 'दास' कृत उपर्युक्त नवों ग्रन्थों का प्रथम पृष्ठ। ३. रस सारांश पृ० १३०।

है।[1] अतः प्रतीत होता है कि ये सब ग्रन्थ किन्हीं एक ही भिखारीदास के रचे हैं जो हिन्दूपति के आश्रित थे।

(४) काव्यनिर्णय, शृंगार निर्णय, छन्दोर्णव पिंगल तथा रस सारांश के भिखारीदास-कृत होने का एक सबल प्रमाण यह है कि ऐसे अनेक छन्द हैं जो इनके एक से अधिक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। हम नीचे ऐसे कुछ उदाहरणों से इस बात की पुष्टि करेंगे।

(१) काव्यनिर्णय—भौन अंधारेहु चाहि अंध्यार चमेली के कुंज के पुंज बने हैं।
बोलत मोर करें पिक सोर जहां तहं गुंजत भौंर घने हैं।
दास रच्यो अपने ही बलास कौ मैन जु हाथन्ह सो अपने हैं।
कूल कलिन्दजा के सुख मूल लतान के वृन्द वितान तने हैं।[2]

यही पद थोड़े से पाठान्तर के साथ शृंगार निर्णय में भी मिलता है। पाठान्तर का कारण संभवतः प्रकाशकों का अपनी बुद्धि के अनुसार संशोधन भी हो सकता है।

शृंगार निर्णय—भौन अंधेरेहू चाहि अंधेरे चमेली के कुंज के पुंज बने हैं।
बोलत मोर करै पिक सोर जहां तहं गुंजत भौंर घने हैं।
दास रच्यो अपने ही बिलास को मैन जू हाथन सो अपने हैं।
कूल कलिदजा के सुखमूल लतान के वृन्द बितान तने ह।[3]

(२) काव्य निर्णय—नैनन को तरसैये कहाँ लौं कहां लौं हियो बिरहागि में तैये।
एक घरी न कहूं कल पैये कहां लगि प्रानिन को कलपैये।
आवैं यही अब जी में विचार सखी चलि सौतिहू के गृह जैये।
मान घटे तें कहा घटिहै जु पै प्रान पियारे को देखन पैये।[4]

शृंगार निर्णय[5] में उपर्युक्त तीसरी पंक्ति में 'यही अब जी में' के स्थान पर 'यहै अब दास' पाठान्तर है।

(३) काव्य निर्णय—दास मनोहर आनन बाल को दीपति जाकी दिपै सब दीपै।
औन सुहाये बिराजि रहे मुकताहल संयुत ताहि समीपै।
सारी मिहीन सों लीन बिलोकि बखानत हैं कवि जे अवनी पै।
सोदर जानि ससीहि मिलो सुत संग लिये मनो सिंधु में सीपै।[6]

शृंगार निर्णय[7] में 'बखानत हैं कवि जे' के स्थान पर पाठान्तर 'विचारत हैं कवि के' हुआ है।

(४) काव्य निर्णय—बिमल अंगोछि पोछि भूषन सुधारि सिर,
आंगुरिन फोरि त्रिन तोरि तोरि डारती।
उर नखछद रद छदन में रदछद,
पेखि पेखि प्यारे को झकत झर्झकारती।
भई अनखोहीं अवलोकत लला को फेरि,
अंगन संवारती दिठौना दै निहारती।
गात की गुराई पर सहज भोराई पर,
सारी सुन्दराई पर राई लोन वारती।[8]

१. देखिये पृ० ५, ६। **२. का०, नि० पृ० १९।** **३. शृं० नि०, पृ० ६।**
४. का० नि०, पृ० ३६। **५. शृं० नि०, पृ० २५।** **६. का० नि०, पृ० ८९।**
७. शृं० नि०, पृ० १७। **८. का० नि०, पृ० १७२।**

रस सारांश[1] में उक्त कवित्त में केवल 'लला' के स्थान पर 'लली' का प्रयोग हुआ है।

(५) काव्यनिर्णय—अबहीं कि है बात हौं न्हात हुती अमते गहिरे पग जात भयो।
गहि ग्राह अथाह को लै ही चल्यो मनमोहन दूरहिं तें चितयो।
द्रुत दौरि कै पौरि कै दास मरोरि कै छोरि कै मोहि जियाइ लयो।
इन्हें भेंटि के भेटिहौं तोहि अली भयो आजु तो मो अवतार नयो।[2]

शृंगार निर्णय—अब ही की है बात हौं न्हात हुती अचका गहिरे पग जात भयो।
मोहि थाह अथाह को लैही चल्यो मनमोहन दूरिहि तें चितयो।
द्रुत दौरि कै पौरि कै दास बरोरि कै छोरि कै मोहि बचाय लयो।
इन्हें भेंटती भेटिहों तोंहि अली भयो आज तो मो अवतार नयो।[3]

(६) काव्यनिर्णय—आज चंद्रभागा चंपलतिका विशाखा को,
पठाई हरि बाग तें कलामें करि कोटि कोटि।
सांझ समै वीथिन में ठानि दृगमीचनो,
भोराई तिन्ह राधे को जुगुति कै निखोटि खोटि।
ललिता के लोचन मिचाइ चन्द्र भाषा सों,
दुराइबे को ल्याई वे तहाँई दास पोटि पोटि।
जानि जानिधरी तिय बानी लरबरी तकि,
आली तेहि घरी हंसि हंसि परी लोटि लोटि।[4]

शृंगार निर्णय[5] में कुछ पाठान्तर है। 'लरबरी तकि' के स्थान पर 'रसभरी सब' मिलता है।

(७) काव्य निर्णय—नैन नचौहैं हंसौहैं कपोल अनन्द सों अंगन अंग अमात है।
दास जू स्वेदन सोभ जगी परै प्रेम पगी सी ठगी ठहरात है।
मोहि भुलावे अटारी चढ़ी केहि कारी घटा बगपांति सोहात है।
कारी घटा बकपांति लखे एहि भांति भये कहु कौन को गात है।[6]

शृंगार निर्णय[7] में थोड़ा सा पाठान्तर है।

नैन नचौहैं हंसौहैं कपोल अनंद सों अंग न अंग अमात है।
दास जू सेदन सोभ जगी पुरै प्रेम पगी सी ठगी ठहरात है।
मोहि भुलावै अटारी चढ़ी कहि कारी घटा बकपांति सोहात है।
कारी घटा बकपांति सखी यहि भाँति भए कहि कौन को गात है।

१. र० सा०, पृ० ५२। २. का० नि०, पृ० १६६।
३. शृं० नि०, पृ० ३६। ४. का० नि०, पृ० १२७।
५. शृं० नि०, पृ० ८२। ६. का० नि०, पृ० १६८।
७. शृं० नि०, पृ० ३७।

(८) काव्यनिर्णय—एक रद है न सुभ्र साखा बढ़ि आई,
लम्बोदर में विवेक तरु जो है फल वेस को।
सुंडादंड कैतव हथ्यार है उदंड वह,
रावत न लेश अघ विघन असेस को।
मद कहै भूलि ना झरत सुधाधार यह,
ध्यान ही ते ही को दृढ़ हरन कलस को।
दास यह विजन विचार्यो तिहूं तापन को,
दूरि को करनवारो करन गनेस को।[1]

छन्दार्णव पिंगल में यह पद कुछ पाठांतर के साथ मिलता है।

एक रद हैं न शुभ्र शाखा बढ़ि आई लम्बोदर में विवेक तरु जो है शुभ्र वेश को।
शुंडादंड कै तब हथ्यारु है उदंड यह रावत न लेश अघ विघन अशेष को।
मद कहौ भूलि न झरत सुधासार यह ध्यान ही तेहि को दृढ़ हरण कलेश को।
दास गृह विजन विचारो तिहूं तापनि को दूरि करने को वारो करण गणेश को।[2]

(९) काव्यनिर्णय—अभिलाखा करी सदा ऐसनि का होय बृत्थ,
सब ठौर दिन सब याही सेवा चरचानि।
लोभा लई नीचे ज्ञान हलाहल ही को अंसु,
अंत है क्रिया पाताल निन्दा रसही को खानि।
सेनापति देवी कर शोभा गनती को भूप,
पन्ना मोती हीरा हेम सौदा हास ही को जानि।
ही अपर देव पर बदे जस रटे नाउं,
खगासन नगधर सीतानाथ कोलापानि।[3]

छन्दार्णव पिंगल[4] में यही कवित्त थोड़े अक्षरों के हेर फेर के साथ प्रायः इसी रूप में दिया हुआ है। इसी कवित्त से भिखारीदास का वंश परिचय प्राप्त होता है। छन्दार्णव पिंगल तथा काव्यनिर्णय दोनों में वंश परिचय सूचक कवित्त का होना प्रमाणित करता है कि दोनों कृतियां एक ही भिखारीदास की हैं।

(१०) काव्यनिर्णय—भावतो आवतो जानि नवेली चमेली के कुंज जो बैठत जाइकै।
दास प्रसूनन सोनजुही करै कंचन सी तन जोति मिलाइ कै।
चौंकि मनोरथहू हँसि लेन चलै पगु लाल प्रभा महि छाइ कै।
बीर करै करबीर झरै निखिलै हरखै छबि आपनी पाइ कै।[5]

शृंगार निर्णय[6] में यह सवैया कुछ पाठान्तर के साथ पाया जाता है। शृंगार निर्णय में 'झरै निखिलै' के स्थान पर 'झरैनि बलै' पाया जाता है।

१. का० नि०, पृ० ९४।
२. छं० पिं०, पृ० १।
३. का० नि०, पृ० २४४।
४. छं० पिं०, पृ० २।
५. का० नि०, पृ० १४५।
६. शृं० नि० पृ० ५४।

(११) शृंगार निर्णय— पठावत धेनु दुहावन मोहि न जाहुं तो देवि करो तुम तेहु ।
छुड़ाय गयो बछरा यह बैरि मरू करि हौं गहि ल्याई हौं गेहु ।
गई थकि दौरत दौरत दास बरोट लगे भई बिह्वल देहु ।
चुरी भई चूरि भरी भई धूरि परो ढुरि मुक्त हरो यह लेहु ।[1]

छन्दोर्णव पिंगल में यह सवैया कुछ थोड़े से पाठान्तर से पाया जाता है ।

पठावत धेनु दुहावन मोंहि न जाउं तौ देखि करौ तुम टेहु ।
छुटाइ भज्यो बछरा यह बैरी मरू करि हौं गहि ल्याई हौं गेहु ।
गई थकि दौरत दौरत दास खरोट लगे भइ बिह्वल देहु ।
चुरी गइ चूरि भरी भइ धूरि परचौ टुटि मुक्तहरा यह लेहु ।[2]

(१२) काव्यनिर्णय—पग पानिन कंचनचूरे जराउ, जरे मनि लालन शोभ धरें ।
चिकुरारि मनोहर झीन झगा पहिरे मनि आंगन में बिहरें ।
यह मूरति ध्यान में आनन को सुर सिद्ध समूहनि साधि मरें ।
बड़े भागिन गोपी मयंकमुखी अपनी अपनी दिसि अंक भरें ।[3]

रस सारांश में यह कवित्त कुछ थोड़े से पाठान्तर के साथ मिलता है :

पद पानिन कंचन चूर जराइ जरे मनि लालन शोभ धरें ।
चिकुरारी मनोहर पीत झंगा पहिरे मणि आंगन में बिहरें ।
यह सूरत ध्यानन आनन को सुर सिद्ध समूहनि साध मरें ।
बड़ भागिनि गोपि मयंकमुखी अपनी अपनी दिशि अंक भरें ।[4]

काव्यनिर्णय में एक स्थान पर निम्नलिखित दोहा मिलता है जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि रस सारांश भिखारीदास की ही रचना है ।

शृंगारादिक भेद बहु अरु व्यभिचारी भाउ ।
प्रगट्यो रस सारंस में ह्यां को करै बढ़ाउ ।[5]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि काव्यनिर्णय, रस सारांश तथा छन्दार्णव पिंगल ट्यौंगा निवासी कवि भिखारीदास, उपनाम 'दास', की रचनाएं हैं । इसमें सन्देह को कोई स्थान नहीं ।

जैसा पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है, विष्णुपुराण भाषानुवाद, नामप्रकाश तथा शतरंज शतिका भी असंदिग्ध रूप से भिखारीदास रचित ग्रन्थ ही हैं ।

जहां तक 'तेरिज काव्यनिर्णय' और 'तेरिज रस सारांश' का प्रश्न है इन पुस्तकों को क्रमशः काव्यनिर्णय और रस सारांश से मिलाने पर स्पष्ट पता चलता है कि वे एक प्रकार से इनकी प्रतिलिपि ही हैं, पर संक्षेप में । तेरिजों' में लक्षण, नियम तथा सिद्धान्त की बातों का ही समावेश है, और उदाहरणों अथवा विषय-विस्तार को प्रायः छोड़ दिया गया है ।[6] अतः

१. शृं० नि०पृ० ३५ । २. छ० पि०, पृ० ८६ । ३. का० नि० पृ० १६४ ।
४. र० सा०, पृ० १२६ । ५. का० नि०, पृ० ४१ ।
६. हमने महाराजा प्रतापगढ़ के पुस्तकालय में इन तेरिजों को देखा था और इनका मूल ग्रन्थों अर्थात् काव्यनिर्णय और रस सारांश से आद्योपांत मिलान भी किया था ।

इसमें सन्देह नहीं रह जाता कि इन पुस्तकों में वर्णित विषयों का प्रतिपादन ट्यौंगा निवासी कवि भिखारीदास द्वारा ही किया गया है अन्य किसी के द्वारा नहीं। हां, यह प्रश्न फिर भी विचारणीय रह जाता है कि काव्यनिर्णय और रस सारांश को तेरिजों का रूप स्वयं भिखारीदास ही ने दिया है अथवा अन्य किसी ने। उपलब्ध प्रतियों से इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिलता। सम्भव है कि किसी काव्य कला प्रेमी ने ही 'दास' के इन ग्रन्थों का संक्षेप कर के उनके नाम के आगे तेरिज जोड़ दिया हो। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि इन ग्रन्थों के वर्णित विषयों के प्रणेता भिखारीदास ही हैं।

छन्द प्रकाश

इस स्थल पर हम भिखारीदास के नाम से प्रसिद्ध 'छन्दप्रकाश' की विशेष रूप से चर्चा करेंगे। कारण यह है कि इस ग्रन्थ का उल्लेख न केवल नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में ही भिखारीदास के नाम से हुआ है अपितु हिन्दी साहित्य के प्रायः सभी इतिहासकारों ने इसे भिखारीदास की कृतियों के अन्तर्गत रखा है। हमें इस ग्रन्थ का मूल विवरण नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में, जिसका उल्लेख हम पीछे कर आये हैं, मिला था।[1] हमने इसे काशी नरेश के पुस्तकालय में देखा था और इसके केवल ५ पृष्ठ ही हमारे देखने में आये थे।

लोगों ने जिस आधार पर छन्द प्रकाश को भिखारीदासकृत कहा है वह इस कृति की निम्नलिखित पंक्तियां हैं।

गनपति गौरी शंभु कौ पग बंदौं एह जोई।
जासु अनुग्रह अगम ते सुगम बुद्धि को होई।
श्री महाराजनि मुकुट मनि उदित नरायन भूप।
संभुपुरी कासी सुथल ताको राज अनूप।
सोरठा—रहत जासु दरबार सात दीप के अवनिपति।
रच्यो ताहि करतार तिन मथि उदित दिनेस सो।
दोहा—रज सत दाया दान में रस में राजति बीर।
जग पालक घालक खलनि महाराज रनधीर।
सोरठा—सुकवि भिखारीदास कियो ग्रन्थ छन्दारनौ।
तिन छन्दनि परकास भो महाराज पसंद हित।

इन पंक्तियों के आधार पर लोगों ने निम्नलिखित बातें कही हैं:

१. यह ग्रन्थ भिखारीदास कृत है जैसा कि उक्त पंक्तियों में से अन्तिम दो पंक्तियों में कहा गया है।

२. इस ग्रन्थ की रचना काशी नरेश महाराजा उदित नारायण की इच्छानुसार की गयी थी क्योंकि उन्हें भिखारीदासकृत छन्दोर्णव पिंगल के छन्द बहुत प्रिय थे।

---

१. देखिये पृष्ठ संख्या ८०।

३. भिखारीदास अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अथवा प्रतापगढ़ राज्य में गड़बड़ी मचने पर महाराज काशी नरेश के आश्रय में रहे।

परन्तु इस सम्बन्ध में हमारा स्पष्ट मत है कि :

(१) 'छन्द प्रकाश' के साथ भिखारीदास का नाम इसी कारण जुड़ गया है कि लोगों ने उक्त पंक्तियों के अर्थ का अनर्थ कर डाला।

(२) भिखारीदास ने 'छन्दप्रकाश' नाम का कोई ग्रन्थ नहीं बनाया।

(३) भिखारीदास कभी भी काशी नरेश के दरबार में नहीं गये।

हम इन्हीं तीनों के सम्बन्ध में यहाँ कुछ चर्चा करेंगे :

१. भिखारीदासकृत कहे जाने वाले छन्द प्रकाश की निम्नलिखित पंक्तियां विचारणीय हैं।

सुकवि भिखारीदास कियो ग्रन्थ छन्दारनौ।
तिन छन्दनि परकास भो महाराज पसंद हित।

इन पंक्तियों का स्पष्ट अर्थ यह है कि काशी नरेश को भिखारीदास का छन्दोर्णव ग्रन्थ बहुत अच्छा लगा; फलतः वे चाहते थे कि इन छन्दों को विशेष रूप से प्रकाश में लाया जाय और इस ग्रन्थ की कविता के प्रस्तार, वृत्ति तथा छन्दसंख्या आदि के सम्बन्ध में पूरा विवेचन हो जाय। इसका वास्तविक और ठीक अर्थ यही है। यदि किसी राजा-महाराजा को कोई ग्रन्थ पसन्द आ जाय तो वह उसकी प्रतिलिपि कराता है, कभी कभी टीका या आलोचना भी करा लेता है अथवा उसका विवेचन करवाता है। इसके लिये यह आवश्यक नहीं कि जिस कवि का वह ग्रन्थ हो वही उसकी आलोचना, टीका अथवा विवेचना करे। महाराजा उदित-नारायण सिंह ने भी, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है, छन्दोर्णव पिंगल ग्रन्थ के प्रस्तार, छन्द-संख्या अथवा वृत्तियों आदि पर पूरा प्रकाश डालने के लिए अपने किसी दरबारी कवि अथवा लेखक से कहा होगा जिसके फलस्वरूप ग्रन्थ तैयार हुआ होगा। इस ग्रन्थ के केवल ५ पृष्ठ ही मिलते हैं। अतः निश्चयात्मक रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि ग्रन्थ महाराजा साहब के निर्देशानुसार पूरा बन चुका था अथवा लेखक ने उसे अधूरा ही छोड़ दिया अथवा उसके शेष पृष्ठ कालकवलित हो गये। अपूर्ण दशा में प्राप्त होने वाले किसी ग्रन्थ की एक आध पंक्तियों में कहीं पर भिखारीदास का नाम आ जाने के कारण उन्हें उस ग्रन्थ का प्रणेता मान लिया जाय यह न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता।

२. उक्त कथन से सिद्ध है कि भिखारीदास ने 'छन्दप्रकाश' की रचना नहीं की। ऐसा मानने के और भी कारण हो सकते हैं।

(क) भिखारीदास एक उच्च कोटि के कवि एवं आचार्य थे। जब उनमें छन्दोर्णव पिंगल जैसे मूल ग्रन्थ को लिखने की क्षमता थी तो वे उसकी वृत्तियों, छन्द संख्या, प्रस्तार आदि में क्यों पड़ते ? यदि उन्हें इसी में समय लगाना था तो उसी समय में वह एक सुन्दर काव्य की रचना कर सकते थे।

(ख) भिखारीदास के सभी काव्यों का श्रीगणेश गणपति स्तुति से हुआ है। 'छन्दप्रकाश'

में स्वतंत्र रूप से गणेश की स्तुति नहीं मिलती। उसमें तो गणपति, गौरी और शंभु तीनों की एक पंक्ति में वंदना करके बला सी टाली गयी है। ऐसा भिखारीदास के किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थ देखने को नहीं मिलता।

(३) अब हम इस बात को लेते हैं कि वास्तव में भिखारीदास कभी काशीनरेश के दरबार में गये या नहीं।

छन्द प्रकाश की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

श्री महाराजनि मुकुट मनि उदित नरायन भूप।
संभुपुरी काशी सुथल ताको राज अनूप।

जिनसे स्पष्ट है कि जिन काशी नरेश का 'छन्द प्रकाश' में उल्लेख हुआ है वे महाराजा उदितनारायण थे। हमने महाराजा उदितनारायण का काल भी मालूम किया है। महाराजा उदितनारायण सिंह का उल्लेख 'हिस्ट्री आफ दी प्राविंस आफ बनारस' में इस प्रकार मिलता है—

'सितम्बर सन् १७९४ ई० में राजा महीप नारायण सिंह की मृत्यु हो गयी। उनके उत्तराधिकारी हुए उनके पुत्र राजा उदितनारायण सिंह। वे उस समय अल्पवयस्क थे। अतः उनके वयस्क होने अर्थात् सन् १७९९ ई० तक राज्य का प्रबन्ध दीवान द्वारा किया जाता था'।[१]

इतिहास की इस पुस्तक में आगे कहा गया है—

'मार्च सन् १८३५ ई० में उदितनारायण के भतीजे महाराज ईश्वरीनारायणसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए।'[२]

इस वृत्तान्त से स्पष्ट है कि राजा उदितनारायण सिंह सन् १७९९ ई० में वयस्क हुए। अतः छन्द निर्माण का अनुरोध उन्होंने इसके कुछ बाद ही में किया होगा। इस समय तक भिखारीदास जीवित थे यह मानना कठिन है क्योंकि यदि वे जीवित होते तो उन्हें इस समय तक प्रतापगढ़ छोड़े लगभग ५० वर्ष हो गये होते और इतने बड़े आचार्य होकर इस पचास वर्ष के दीर्घ काल में वे एक भी रचना न करते यह कैसे सम्भव हो सकता था? यदि यह भी मान लिया जाय कि वे जीवित थे और उन्होंने वास्तव में कोई रचना नहीं की तो लगभग १०० वर्ष की अवस्था में वे छन्दप्रकाश जैसी निम्नस्तर की पुस्तिका लिखकर कवि तथा आचार्य के रूप में अपनी उपार्जित प्रतिष्ठा पर धब्बा लगा लेंगे यह बात समझ में नहीं आती।

उक्त प्रमाणों के आधार पर हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि दीर्घकाल से 'दास' के नाम से विख्यात यह पुस्तिका भिखारीदास कृत नहीं है और ये कवि काशी नरेश के दरबार में कभी नहीं गये।

१. **देखिये**—History of the Province of Banaras (Printed at the Medical Hall Press in 1882), p. 154.

२. **देखिये**—History of the Province of Banaras (Printed at the Medical Hall Press in 1882), p. 173.

अब हम पिछले पृष्ठों में 'दास' कृत कही गयी 'रागनिर्णय' 'ब्रजमाहात्म चंद्रिका' और 'पंथ पारख्या' नामक पुस्तकों की प्रामाणिकता का विवेचन करेंगे ।

१. राग निर्णय—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में 'दास' कृत कहे जाने वाले इस ग्रन्थ का विषय संगीत है और प्रायः प्रत्येक छन्द के पूर्व उसके राग अथवा ताल आदि के नाम का उल्लेख किया गया है । भिखारीदास के प्रामाणिक ग्रन्थों से इस बात का कोई परिचय नहीं मिलता कि 'दास' जी को संगीत का व्यावहारिक अथवा सैद्धान्तिक ज्ञान था या नहीं । यह अवश्य है कि वे राजदरबारों में रहे थे जिनकी शोभा ही संगीत होती है और सम्भव है कि उन्होंने संगीतज्ञों के मध्य रह कर संगीत के विवेचन भर का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो । यह भी हो सकता है कि वे संगीत की कला से भी अभिज्ञ रहे हों । हां, उनके जीवनवृत्त का अध्ययन करने से उनके संगीतज्ञ होने के विषय में कोई संकेत नहीं मिलता । एक बात यह है की इस पुस्तक की भाषा और शैली भिखारीदास के प्रामाणिक ग्रन्थों की भाषा तथा शैली से भिन्न है । पुस्तक में न तो लेखक का ही परिचय है न उसके आश्रय-दाता का ही ।

मगर कुछ तर्क ऐसे अवश्य हैं जिनसे इस कृति के भिखारीदास कृत होने का सन्देह हो सकता है :

(१) पुस्तक का प्रारम्भ गणेशायनमः से होता है। भिखारीदास के सभी प्रामाणिक ग्रन्थों में गणेश की स्तुति में पूरा पूरा छन्द मिलता है । संभव है इस ग्रन्थ में उन्होंने इस प्रकार की संक्षिप्त स्तुति ही पसन्द की हो ।

(२) ग्रन्थ रचना काल का इसमें कोई उल्लेख नहीं है किन्तु इसका लिपिकाल संभवतः संवत् १८३५ वि० है । यदि नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट का यह अनुमान, जो कि हस्तलिखित 'रागनिर्णय' के साथ संलग्न एक दूसरी हस्तलिखित पुस्तक 'रागरत्न' में दिए गए संवत् १८३५ पर आधारित है, ठीक मान लिया जाय, जैसा कि उचित जँचता भी है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि 'भिखारीदास' की मृत्यु के थोड़े ही काल के अन्दर हुई होगी जिससे यह सम्भावना हो सकती है कि यह ग्रन्थ उन्हीं का बनाया हुआ होगा ।

(३) पुस्तक का नाम है 'राग निर्णय' जो काव्य निर्णय और शृंगार निर्णय के वज़न पर है । हो सकता है कि जिस प्रकार काव्य निर्णय में काव्यांगों का और शृंगार निर्णय में शृंगार का यथातथ्य निरूपण किया गया है उसी प्रकार 'राग निर्णय' में रागादि का विवेचन करने की दृष्टि से 'दास' ने अपने उपर्युक्त दोनों प्रसिद्ध ग्रन्थों के वज़न पर उसका भी नाम रख दिया हो ।

उपर्युक्त कारणों से निश्चित रूप से यह कह सकना बहुत कठिन है कि यह ग्रन्थ भिखारीदास द्वारा ही लिखा गया है । अतः हम तो इसे उनकी संदिग्ध रचनाओं के वर्ग में ही रखना उचित समझते हैं ।

२. ब्रज माहात्म चन्द्रिका—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में इस ग्रन्थ के लेखक 'दास' कवि कहे गये हैं । यह ग्रन्थ खंडित रूप में प्राप्त हुआ है । 'ग्रन्थ की पुष्पिका

से विदित होता है कि लिपिकाल ही रचना काल भी है"[1] और लिपिकाल संवत् १८०५ वि० है; अतः इस अनुमान से रचना काल भी संवत् १८०५ वि० हुआ अर्थात् यह कृति भिखारीदास के जीवन काल में ही बनी क्योंकि इसी के दो वर्ष बाद अर्थात् सन् १८०७ ई० में उन्होंने शृंगार निर्णय की रचना की थी। इस ग्रन्थ में 'प्रकासों' का प्रयोग हुआ है जब कि दास जी के अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों में तरंग, प्रकरण, उल्लास अथवा अध्याय का उल्लेख मिलता है। ग्रन्थ में इसके रचयिता 'दास' जी का जीवन परिचय नहीं मिलता। साथ ही उनके आश्रयदाता का भी इसमें कोई उल्लेख नहीं है। यदि यह रचना ट्यौंगा निवासी भिखारीदास की होती तो इसका कोई न कोई विवरण महाराजा प्रतापगढ़ के पुस्तकालय में होता ही तथा राजा प्रतापबहादुरसिंह, जिन्होंने उनके कई ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं, इस ग्रन्थ का कहीं तो उल्लेख करते। महाराजा साहिब ने इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं किया है। इसकी पांडुलिपि भी महाराजा साहब के पुस्तकालय में नहीं है। फिर जिस काल की यह रचना कही जाती है उस काल में भिखारीदास हिन्दूपति के आश्रित थे यह तो सिद्ध ही है। अतः वे उनका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष किसी न किसी रूप में तो उल्लेख करते ही। भाषा को देखते हुए भी यह दास की रचना नहीं कही जा सकती। हमारा तो मत है कि यह कृति भिखारीदास जी की नहीं है।

३. पंथ पारख्या—नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में इस ग्रन्थ के प्रणेता का नाम 'दास' दिया गया है। 'ग्रन्थ से इनका इतना ही पता चलता है कि ये दादू पंथी थे। ग्रन्थ में पन्थ के सिद्धान्तों और नियमों का वर्णन है। रचना काल लिपिकाल नहीं दिये गये।'[2]

इस पुस्तक में, जिसके केवल ६ हस्तलिखित पृष्ठ ही उपलब्ध हुए हैं, दादू पंथ के सिद्धान्तों एवं नियमों की ही व्याख्या की गयी है। इसमें अनेक स्थानों पर दादू जी की भी प्रशंसा है। अतः स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ के लेखक दादू—धर्मावलंबी रहे होंगे। ट्यौंगा निवासी भिखारीदास निश्चय ही इस ग्रन्थ के लेखक नहीं हैं क्योंकि वे कभी भी दादू पंथी नहीं रहे और न उन्होंने अपने किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में 'दादू' का नाम ही लिया है।

४. वर्णनिर्णय—इस ग्रन्थ का थोड़ा सा विवेचन पिछले पृष्ठों में हो चुका है।[3] इस सम्बन्ध में यह और भी उल्लेखनीय है कि इस ग्रन्थ का नाम नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में कहीं नहीं मिलता। इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९१५ ई० में हुआ था। छान बीन करने पर पता चला कि उस काल में कायस्थों के वर्ण निश्चय के सम्बन्ध में कदाचित् कुछ कार्य हो रहा था और उस काल में यह असम्भव नहीं यदि किन्हीं कायस्थ महोदय ने, जिनका नाम भिखारीदास रहा हो, इस ग्रन्थ का निर्माण करके समयानुकूल कोई निष्कर्ष निकाले हों। पुस्तक न प्राप्त हो सकने तथा उसकी भाषा एवं शैली का पता न लग सकने के कारण यह अनुमान भले ही लगा लिया जाय कि यह ग्रन्थ भिखारीदास कृत नहीं है किन्तु ऐसा निश्चयपूर्वक किसी भी दशा में तब तक नहीं कहा जा सकता जब तक उसे आद्योपान्त देख न डाला जाय।

१. देखिये पृष्ठ ७८। २. देखिये पृष्ठ ७९। ३ देखिये पृष्ठ सं० ७५।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम भिखारीदास के नाम से मिलने वाले ग्रन्थों को तीन वर्गों में रख सकते हैं :

१. भिखारीदास के प्रामाणिक ग्रन्थ ।

२. भिखारीदास के संदिग्ध ग्रन्थ ।

३. 'दास' के नाम से प्राप्त होने वाले वे ग्रन्थ जिनसे इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता के वे ट्योंगा निवासी भिखारीदास कृत ही हैं ।

हमारे विचार से उपलब्ध ग्रन्थों का निम्नलिखित वर्गीकरण युक्तियुक्त है—

(१) 'दास' के प्रामाणिक ग्रन्थ

१. काव्यनिर्णय, २. छन्दोर्णव पिंगल, ३. शृंगार निर्णय. ४. रस सारांश, ५. विष्णुपुराण भाषा, ६. नाम प्रकाश, अमरकोष अथवा अमर तिलक, ७. तेरिज रस सारांश, ८. तेरिज काव्य निर्णय और ९. शतरंज शतिका ।

(२) 'दास' के संदिग्ध ग्रन्थ

१. वर्ण निर्णय, २. राग निर्णय ।

(३) 'दास' के नाम से प्राप्त होने वाले अप्रामाणिक ग्रन्थ

१. छन्द प्रकाश, २. ब्रज माहात्म चंद्रिका और ३. पंथ पारख्या ।

प्रामाणिक ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

१. काव्यनिर्णय—यह भिखारीदास का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसमें काव्यांगों जैसे पदार्थ, अलंकार, रस, ध्वनि, गुण, दोष, चित्रकाव्य आदि का विशद विवेचन हुआ है।[1] हिन्दी में काव्यशास्त्र पर लिखे गये ग्रन्थों में इसका स्थान बहुत ऊंचा है। भाषा की प्राञ्जलता, वर्णनक्रम की वैज्ञानिकता तथा विषयों का सारगर्भित विवेचन इसकी ऐसी विशेषताएं हैं जिनके कारण यह ग्रन्थ काव्य प्रेमियों का कंठहार सा हो गया है।

२. शृंगार निर्णय—यह ग्रन्थ विशेष रूप से नायिकाभेद पर लिखा गया है और इसमें शृंगार रस के संयोग और वियोग इन दोनों पक्षों का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। साथ ही इसमें नायक नायिकाओं, सखि तथा दूती आदि का भी विशद विवेचन हुआ है।

३. रस सारांश—काव्यशास्त्र के अन्तर्गत रसादि काव्यांगों का विवेचन करने वाली दास की यह पहली कृति है। इसमें रस आदि का बड़ा हृदयग्राही विवेचन हुआ है परन्तु यह विवेचन उनकी आरम्भिक कृति में होने के कारण अधिक पुष्ट नहीं बन पड़ा है।

४. छन्दोर्णव पिंगल—यह ग्रन्थ पिंगल शास्त्र के आधार पर बना हुआ दास जी का एक उत्तम ग्रन्थ है। इसमें विविध प्रकार के छन्दों का विस्तृत विवेचन हुआ है। यह ग्रन्थ १५ तरंगों में समाप्त होता है।

५. विष्णुपुराण भाषा—यह ग्रन्थ विष्णुपुराण का भाषानुवाद है। इसमें अनेक अध्यायों में निम्नलिखित विविध पौराणिक कथाओं का वर्णन है :

---

१. देखिये दास का 'आचार्यत्व' वाला खण्ड ।

मैत्रेय प्रश्न वर्णन, ईश्वर कथा वर्णन, ब्रह्म उत्पत्ति वर्णन। यज्ञ बाराह उत्पत्ति। वर्ण कर्मगुण सृष्टि वर्णन। मानस सृष्टि विस्तार वर्णन। लक्ष्मी स्तुति वर्णन। लक्ष्मी उत्पत्ति वर्णन। ध्रुव चरित्र वर्णन। ध्रुव वंशावरी राजा पृथु की जन्म कथा का वर्णन। दक्ष प्रजापति के जन्म का वर्णन। प्रह्लाद चरित्र वर्णन। दैत्यवंशावरी वर्णन। विष्णु स्वरूप वर्णन।

स्वयम्भुवमन्वन्तर वर्णन। जम्बू द्वीप विस्तार वर्णन। खंड वर्णन। सप्त द्वीप भूगोल वर्णन। भुवनखंडे अधोभुवन वर्णन। भुवनखंडे नरक लोकव्यवस्था वर्णन। ब्रह्मांड प्रमाण वर्णन। सूर्य प्रमाण गंगास्तुति वर्णन। भुवन खंडे शिशुमार चक्र वर्णन। बारहो सूर्य वर्णन। नवग्रह रक्ष शिशुमार चक्र विस्तार वर्णन। जड़ भरत तथा राजा सौबीर की कथा वर्णन।

आदित्य कथा वर्णन। भूत मनु वंशावरी वर्णन। भविष्य मनु वंशावरी वर्णन। व्यासोत्पत्ति वेदशाखा वर्णन। विष्णु भक्ति वर्णन। यमदूत संवाद। वर्णाश्रम धर्म विवेक वर्णन। नित्यनैमित्तिकी वर्णन।

रेवती विवाह वर्णन। सौभरि ऋषि वर्णन। सगर जन्म वर्णन। सूर्य वंश वंशावरी वर्णन। बिकुक्षिनिमि वंश वंशावरी वर्णन। राजा पुरूरव कथा वर्णन। कौशिकवंश वंशावरी परशुरामावतार वर्णन। काश्यपवंश वंशावरी वर्णन। क्षत्रवृद्ध वंशावरी वर्णन। राजा ययाति कथा वर्णन। स्यमंतक मणि कथा कृष्णकलंक मोक्ष वर्णन। शिशुपाल मुक्ति पावन कथा वर्णन। शिशुपाल कथा वर्णन। यदुवंशावरी वर्णन। पुरुवंशावरी वर्णन। अनुकुल वंशावरी वर्णन। मागधवंशी राज्य वर्णन। कलंकी अवतार वर्णन। ब्रह्मास्तुति वर्णन। श्री कृष्ण अवतार तथा वसुदेव देवकी वन्धन मोचन। पूतना बध वर्णन।

नागलीला वत्सासुर बध। बकासुर व अजगर रूप असुर बध। ब्रह्मा मोच मोचन वर्णन। धेनुक प्रलंब बध। गोवर्धन पूजा वर्णन। इन्द्रस्तुति वर्णन। रासलीला वर्णन। केशी-बध वर्णन। अक्रूरागमन वर्णन। श्रीकृष्ण बलदेव आगमन वर्णन। कंस चाणूर बध वर्णन। अनिरुद्ध विवाह कथा वर्णन। नरकासुर बध। पृथ्वी स्तुति वर्णन। कृष्ण इन्द्र युद्ध। कृष्ण वंशावरी वर्णन। शम्भु कृष्ण युद्ध अनिरुद्ध विवाह वर्णन। पउंड्रकासुर बध वर्णन। साम्ब विवाह वर्णन। द्विविदमर्कटबध वर्णन। यादवकुल संहार वर्णन। कृष्णावतार कथा वर्णन। कलि व्यवस्था वर्णन। कलि स्तुति वर्णन। योगाभ्यास वर्णन। ग्रन्थ समाप्ति।

६. **नाम प्रकाश**—दास की यह कृति अमरकोष अथवा अमरतिलक के नाम से भी प्रसिद्ध है। वस्तुतः यह संस्कृत के अमरकोष नामक ग्रन्थ का हिन्दी पद्यमय अनुवाद है। यह पुस्तक तीन कांडों में विभाजित है जिन में अनेक वर्गों में नीचे लिखे पौराणिक नामों आदि का वर्णन है—

१. स्वर्ग वर्ग, २. व्योम वर्ग, ३. दिक् वर्ग, ४. काल वर्ग, ५. बुद्धि वर्ग, ६. शब्दादि वर्ग, ७. नाट्य वर्ग, ८. पाताल वर्ग, ९. नरक वर्ग, १०. वारि वर्ग, ११. भूमि वर्ग, १२. पुर वर्ग, १३. शैल वर्ग, १४. वनौषधि वर्ग, १५. सिंहादि वर्ग, १६. नृ वर्ग, १७. ब्रह्म वर्ग, १८. क्षत्री वर्ग, १९. वैश्य वर्ग, २०. शूद्र वर्ग, २१. निघ्न वर्ग, २२. संकीर्न वर्ग, २३. अनेकार्थ वर्ग।

७. **तेरिज काव्य निर्णय**—इस ग्रन्थ में प्रायः उन्हीं सब काव्यांगों का विवेचन है जो

काव्य निर्णय में हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि इस पुस्तक (तेरिज) में लक्षण मात्र दिये गये हैं, उदाहरण नहीं।

८. तेरिज रस सारांश—इस ग्रन्थ में भी मूल ग्रन्थ रस सारांश के अन्तर्गत वर्णित विषयों के लक्षण दिये गये हैं, उनके उदाहरण नहीं।

९. शतरंज शतिका—इसमें शतरंज के खेल का वर्णन है। शतरंज सदा से राजा महाराजाओं का प्रिय खेल रहा है। अतः दास जी ने इस ग्रन्थ की रचना द्वारा अपनी शतरंज प्रियता का परिचय दिया है।

अन्त में हम भिखारीदास के ग्रन्थों के सम्बन्ध में एक भ्रम का निवारण और कर देना चाहते हैं। 'विष्णु पुराण भाषानुवाद' की भूमिका में प्रकाशकों की ओर से यह कहा गया है।

"कवि पंडित रसिक जनों के विनोदार्थ राजा साहब हर्ष पूर्वक प्रेषित करते हैं—पुनः भिखारीदास रचित—अमरकोष, शतरंज शतिका भाषा शिरोमनि निबन्धद्वय आरोपण कराने का विचार है—यह सूचना अग्रिम के हेतु लघु से निश्चित कर दी गई है"।[१]

इस वाक्य का अर्थ यह ध्वनित होता है कि महाराजा साहब ने अमरकोष, शतरंज शतिका, भाषा शिरोमणि तथा निबन्धद्वय भिखारीदास के ये चार ग्रन्थ प्रकाशित करने की सूचना दी है। इसका अभिप्राय यह है कि भिखारीदास ने 'भाषा शिरोमणि' तथा 'निबंधद्वय' नाम के दो ग्रन्थ और लिखे हैं। परन्तु इसका वास्तविक अर्थ यह है कि अमरकोष और शतरंज शतिका नामक दो निबन्ध जो भाषा की दृष्टि से शिरोमणि हैं आगे चलकर प्रकाशित किये जायेंगे।

यहां पर एक प्रश्न यह भी हो सकता है कि उपर्युक्त दोनों ग्रन्थ पद्य ग्रन्थ ही हैं फिर उन्हें निबन्ध क्यों कहा गया? इसका उत्तर भी उपर्युक्त भूमिका की भाषा से ही मिल जाता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उद्धरण दृष्टव्य है—

"किंच रस सारांश शृंगार, निर्णय, काव्य निर्णय इन निबन्धों का नगर प्रतापगढ़ाधिष्ठित..."[२]

बात यह है कि भूमिका की आद्योपांत भाषा ही ऐसी है कि उसमें पद्य ग्रन्थों को निबन्ध ही कहा गया है। अतएव भाषा शिरोमणि और निबन्धद्वय नाम के कोई ग्रन्थ नहीं।

१. विष्णु पुराण भाषानुवाद भूमिका, पृ० २। २. वही, पृ० १।

खण्ड ३

काव्यकला

१) भाव पक्ष

भिखारीदास का काव्यादर्श—कविता कला के सम्बन्ध में भिखारीदास का अपना विशिष्ट मत था। उनका विचार था कि काव्यचर्चा बुद्धिमानों को सभी स्थानों पर, सभी काल में सुख और आनन्द प्रदान करती है।[१]

काव्य का स्वरूप—आनन्द एवं शिक्षाप्रद कविता का स्वरूप वर्णन करते हुए दास जी ने कहा है कि कविता का शरीर रस है, उस शरीर को अलंकृत करने वाले आभूषण अलंकार हैं और रूप तथा रंग कविता के गुण हैं तथा काव्य दोष उसमें कुरूपता के तुल्य है।[२] इस प्रकार रस, अलंकार तथा गुण आदि काव्यांगों की सहायता से जिस काव्य की रचना की ओर कवि प्रवृत्त होता है उसको प्रभावशाली बनाने के लिए उस में कुछ गुणों की अपेक्षा होती है।

कवियों के गुण—दास ने कवियों के लिए अपेक्षित तीन गुणों की चर्चा की है—प्रतिभा, सुकवियों द्वारा प्रतिपादित काव्यरीतियों का अध्ययन तथा लोक व्यवहार पटुता या लोकाचार। उनका कथन है कि इनमें से किसी एक के अभाव में कविता की गाड़ी उसी प्रकार आगे नहीं बढ़ेगी जिस प्रकार एक पहिये से रथ नहीं चलता।[३] वस्तुतः ये गुण ही काव्य के कारण हैं जिनका उल्लेख न केवल भिखारीदास ने किया है अपितु संस्कृत के अन्य आचार्यों ने भी किया है।

कवि के लिए अपेक्षित अन्य गुणों की चर्चा करते हुए दास का कहना है कि जो व्यक्ति पदार्थ (वाचक, लक्षक और व्यंजक), भूषणमूल (अलंकार सार), रसांगवर्णन, अपरांगवर्णन,

१. दास कवित्तन्ह की चरचा बुधिवन्तन को सुखदै सब ठाईं। का० नि०, पृ० ४।

२. रस कविता को अंग भूषन हैं भूषन सकल।
गुन सरूप औ रंग दूषन करै कुरूपता। का० नि०, पृ० ५।

३. सक्ति कवित्त बनाइबे की जेहि जन्म नक्षत्र में दीन्हि बिधातैं।
काव्य की रीति सिखो सुकवीन्ह सों देखी सुनी बहु लोक की बातैं।
दास हैं जामे इकत्र ये तीनि बनै कविता मनरोचक तातैं।
एक बिना न चलै रथ जैसे धुरन्धर सूत की चक्र निपातैं। का० नि०, पृ० ५।

ध्वनि, काव्य के गुण, शब्दालंकार आदि का पक्का ज्ञान रखता हो, जो चित्र कविता करना जानता हो, तुक जानता हो, जो काव्यदोषों को अपने काव्य में न आने दे अर्थात् निर्दोष कविता कर सके उसी से उत्तम कविता बन सकती है और सरस्वती उसी की कीर्ति अमर करती है।[1]

काव्याधार—ब्रज भाषा—भिखारीदास का कथन है कि काव्यामृत रूपी फल अनुपम वाणी रूपी लतिका में लगते हैं।[2] वाणी की अभिव्यक्ति भाषा द्वारा होती है और सभी सुकवियों के अनुसार काव्य के लिए उत्तम और सुन्दर भाषा है ब्रजभाषा।[3] दास का भाषा विषयक दृष्टकोण संकीर्ण न था और न वे ब्रज भाषा को सीमित करके केवल ब्रज की ही भाषा बना देने के पक्षपाती थे। वे तो कहते थे कि ब्रज प्रदेश में ही बोली जाने वाली भाषा ब्रज भाषा नहीं है, अपितु जिस भाषा में सूर, केशव, मंडन, बिहारी, कालिदास, ब्रह्म, चिन्तामति, मतिराम, भूषण, लीलाधर, सेनापति नेवाज, निधि, नीलकंठ मिश्र, सुखदेव, देव, आलम, रहीम, रसखान, रसलीन, आदि विद्वान कवियों ने अपनी काव्य रचनाएं की हैं उस भाषा को भी ब्रज भाषा के अन्तर्गत स्थान देना समीचीन होगा।[4] अतः दास के अनुसार भाषा की दृष्टि से सुकविता की कसौटी विविध प्रकार की भाषाओं से समन्वित ब्रज भाषा है।

काव्य रस के अधिकारी—संस्कृत के बड़े बड़े आचार्य तक रसिकों को ही काव्य पठन या श्रवण का एक मात्र अधिकारी समझते थे। वररुचि ने तो स्वयंभू ब्रह्मा तक से यही विनम्र प्रार्थना की है कि हे चतुरानन! आप जैसे भी सैकड़ों पाप चाहे हम पर भले ही थोप दें, परन्तु अरसिकों को काव्य सुनाना मेरे भाग्य में न लिखें, न लिखें, न लिखें।[5] अभिनवभारती में भी कहा गया है कि काव्य के रसास्वादन के अधिकारी वे ही हैं जो 'विमल

---

१. जानै पदारथ भूषनमल रसांग परांगन्ह में मति छाकी।
सो धुनि अर्थन्ह वाक्यन्ह लै गुन सब्द अलंकृत सों रति पाकी।
चित्र कवित्त करै तुक जानै न दोषन्ह पंथ कहूं गति जाकी।
उत्तम ताको कवित्त बनै करै कीरति भारती यों अति ताकी। का० नि०, पृ० ७।

२. बानी लता अनूप काव्य अमृत फल रस फल्यो। र० सा०, पृ० ४।

३. भाषा ब्रज भाषा रुचिर कहैं सुकवि सब कोइ। का० नि० पृ० ६।

४. सूर, केसो, मंडन, बिहारी, कालिदास, ब्रह्म, चिन्तामनि, मतिराम, भूषन से जानिये।
लीलाधर, सेनापति निपट नेवाज, निधि, नीलकंठ मिश्र, सुकदेव, देव मानिये।
आलम, रहीम, रसखान, रसलीन और सुन्दर सुमति भये कहाँ लौं बखानिये।
ब्रजभाषा हेतु ब्रजबास ही न अनुमानो ऐसे ऐसे कबिन्ह की बानिहूं से जानिये।
का० नि०, पृ० ६।

५. इतर पापशतानि यथेच्छया वितरतानि स हे चतुरानन।
अरसिकेषु कवित्व निवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख।
पं० राम दहिन मिश्र : काव्य दर्पण से उद्धृत।

प्रतिभावान हैं' ।[१] संस्कृत के इन्हीं आचार्यों की भांति भिखारीदास का भी मत था कि काव्य रस के पान के वास्तविक अधिकारी रसिकगण होते हैं ।[२] जहां कहीं उन्होंने अपने मत की पुष्टि की आवश्यकता समझी है वहाँ 'रसिकजन' अथवा 'रसिक कवि' ऐसा कहकर उन्होंने अपने मत की पुष्टि करने का प्रयास किया है, उदाहरणार्थ—

१. ताको वाच्यारथ कहैं सज्जन सुमति समर्थ ।[३]
२. रुढ़ि लच्छना कहत हैं ताको सुमति समृद्ध ।[४]
३. ता रिस ताकी क्रियन तें जानें मति अवदात ।[५]
४. प्रगल्भवचना कहत हैं तासो सुमति अमोल ।[६]
५. सो पाठान्तर चित्र है सुनो सुमति समुदाय ।[७]

रसिकों की व्याख्या—काव्य रस का आनन्द लेने में समर्थ, जैसा ऊपर कहा गया है, रसिक जन ही होते हैं और रसिक जनों की व्याख्या करते हुए दास ने कहा है कि जो व्यक्ति 'रस की बातों' से प्रेम रखते हैं वे रसिक होते हैं ।[८] और 'रस की बातें' उन्हें कहते हैं जो रसिकों को सुख दें ।[९]

कवि की सफलता—दास के अनुसार सफल कवि वह हैं जिसकी काव्यशक्ति तथा जिसके काव्य की सराहना न केवल उसके समय के ही कवि करें अपितु आगे (भविष्य) के कवि भी करें । अपनी सफलता के विषय में भी उन्होंने यही कसौटी निर्धारित की है । उन्होंने कहा है कि यद्यपि मेरी कविता की सराहना तोष, रसराज, रसलीन तथा वासुदेव सरीखे प्रवीण कवियों ने की है किन्तु इसे कविता तो तभी कहा जा सकता है जब भविष्य के कवि भी उसकी सराहना करें और उसे पढ़कर प्रसन्न हों ।[१०]

कवि परीक्षा—अब हम स्वयं भिखारीदास द्वारा निर्दिष्ट कवियों के लिए अपेक्षित गुणों को उन्हीं पर घटित करके इस दृष्टिकोण से उनके काव्यकौशल की परीक्षा करेंगे ।

जैसा पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है, भिखारीदास ने अच्छे कवि में निम्नलिखित तीन बातों का होना आवश्यक बताया है—

१. प्रतिभा ।

---

१. विमल प्रतिभानशालि हृदयः । पं० रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० १६ से उद्धृत ।
२. रस कवित्त परिपक्वता जानै रसिक न और । र० सा०, पृष्ठ ४ ।
३. का० नि०, पृ० ८ । ४. का० नि०, पृ० ११ । ५. शृं० नि०, पृ० ६१ ।
६. र० सा०, पृ० १३ । ७. का० नि०, पृ० २१ ।
८. रसिक कहावें ते जिन्हें रस बातन ते हेत । र० सा०, पृ० ४ ।
९. रस बातें ताको कहत जो रसिकन सुख देत । र० सा०, पृष्ठ ४ ।
१०. मोसम जे ह्वैहें ते विसेष सुख पैहें पुनि हिन्दूपति साहेब के नीके मन मानो है ।
एते पर तोष रसराज रसलीन वासुदेव से प्रवीन पूरे कविन्ह बखानो है ।
तातें यह उद्यम अकारथ न जैहै सब भांति ठहरैहै भलो हौं हूं अनुमानो है ।
आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई न तु, राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है ।
का० नि०, पृ० ३ ।

२. सुकवियों द्वारा प्रतिपादित काव्यरीतियों का अध्ययन।

३. लोकव्यवहार पटुता या लोकानुभव।

आगे चलकर उन्होंने काव्यरीतियों के अन्तर्गत कवि को निम्नलिखित विषयों का भी ज्ञाता होना आवश्यक बताया है—

१. पदार्थ (वाचक, लक्षक और व्यंजक), २. भूषणमूल (अलंकार सार) ३. रसांग, ४. अपरांग, ५. ध्वनि, ६. काव्य के गुण, ७. शब्दालंकार, ८. चित्र-कविता, ९. तुक तथा, १०. काव्य दोष निरूपण।

१. प्रतिभा—किसी व्यक्ति की महत्ता का परिचय उसकी मृत्यु के उपरान्त या तो उसके लिखे ग्रन्थों से मिलता है अथवा उसके द्वारा अपने जीवन में किये गये उसके जनहित कार्यों से। जहाँ तक भिखारीदास का सम्बन्ध है हम देख चुके हैं कि उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की तथा अनेक कठिन विषयों को उठाकर अपनी योग्यतानुसार उनका विवेचन किया। प्रतिभा के अभाव में गूढ़ विषयों का विवेचन एवं स्पष्टीकरण प्रायः कठिन होता है। अतः हमें यह मानने में संकोच नहीं कि भिखारीदास में काव्य रचना के लिए प्रतिभा थी और हमें अनेक स्थलों पर उस प्रतिभा के दर्शन होते हैं (जैसा हमारे आगे के विवेचन से स्पष्ट होगा)। प्रतिभा अधिक थी या कम यह विवाद का विषय हो सकता है परन्तु इस बात से कोई भी सहृदय व्यक्ति असहमति नहीं प्रकट कर सकता कि भिखारीदास में काव्य-प्रतिभा थी जिसे उन्होंने अपने स्वाध्ययन एवं सुकवियों के सम्पर्क से और भी प्रखर बनाया। वे तुकबन्दों से बहुत चिढ़ते थे। अतः वे कभी भी उनकी गणना कवियों में करना ठीक नहीं समझते थे। उनका निम्नलिखित पद उनकी इस खीझ का द्योतक है—

जुगनू भानु के आगे भली विधि आपनी जोतिन्ह के गुन गैहे।
माखियो जाइ खगाधिप सों उड़िबे की बड़ी बड़ी बात चलैहे।
दास जबै तुक जोरनहार कबिन्द उदारन की सरि पैहे।
तौ करतारहु सों औ कुम्हार सों एक विना झगरो बनि ऐहे।[1]

उक्त पद से एक बात का और भी पता चलता है, और यह तथ्य भी है, कि उनके समय में तुकबन्दों की एक बाढ़ सी आगयी थी जिनमें प्रतिभा के तो दर्शन ही न होते थे। फिर भी दास के काल में अनेक प्रतिभाशाली कवि थे। स्वयं दास में कवि सुलभ प्रतिभा का अभाव न था।

२. काव्यरीतियों का अध्ययन—जहां तक भिखारीदास के अध्ययन का सम्बन्ध है यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने काल तक लिखे गये संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। अनेक कवियों से उनका व्यक्तिगत सम्पर्क था और उन्होंने इन कवियों से बहुत कुछ सीखा भी था जैसा कि उनके निम्नलिखित पद्यांश से विदित होगा—

बन्दौं सुकविन के चरन अरु सुकविन के ग्रन्थ।
जातें कछु हौं हूं लह्यो कवितार्ई को पन्थ।[2]

---

१. काव्य निर्णय, पृ० ८३। २. शृंगार निर्णय, पृ० २।

इससे स्पष्ट है कि उन्होंने सुकवियों से काव्यांगों का नियमित रूप से अध्ययन किया था। इस सम्बन्ध में यह अवश्य अज्ञात है कि उनके गुरू कौन थे; परन्तु यह हमारे प्रयोजन के लिए कोई महत्वपूर्ण बात नहीं।

दास ने अपने जिन ग्रन्थों की रचना की है उनमें से 'काव्यनिर्णय' तथा 'छन्दोर्णव पिंगल' क्रमशः उनके काव्यशास्त्र तथा पिंगलशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों की रचना करने में दास ने संस्कृत एवं प्राकृत भाषा तथा हिन्दी भाषा के अनेक ग्रन्थों का आधार लिया था जैसा उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है।

प्राकृत भाषा संस्कृत लखि बहु छन्दोग्रन्थ।
दास कियो छन्दोर्णव भाषा रचि शुभ पन्थ।[1]

'काव्यनिर्णय' के आरम्भ में भी उन्होंने यह स्वीकार किया है कि मैंने चन्द्रालोक तथा काव्य प्रकाश का भली भांति अध्ययन करके, उन्हें समझ कर तथा अन्य कवियों के मतों के आधार पर काव्यनिर्णय की रचना की है। परन्तु मैंने सब वही बातें, जैसी इन ग्रन्थों में हैं, नहीं कहीं हैं क्योंकि इससे तो ग्रन्थ अनुवाद मात्र (उलथा) होकर रह जाता, और न सब कुछ अपनी उक्ति से ही निर्मित किया है[2] क्योंकि यदि ऐसा करता तो अच्छी रचना होने का सन्देह बना रहता। अतः मैंने दोनों ही का अर्थात् उक्त ग्रन्थों की बातों तथा अपनी उक्तियों का अवलम्ब लिया है।

इससे स्पष्ट है कि अपनी काव्यरचना आरम्भ करने के पूर्व वे काव्यप्रकाश और चन्द्रालोक जैसे विख्यात ग्रन्थों तथा संस्कृत, प्राकृत एवं भाषा के अच्छे ग्रन्थों का अवलोकन कर चुके थे। इस प्रकार वे अपने गम्भीर अध्ययन एवं पांडित्य के बल पर ही कवि कर्म की ओर प्रवृत्त हुए। कवियों के लिए जिन विषयों (अर्थात् पदार्थ, अलंकार, रसांग आदि) का जानना दास जी ने अपेक्षित बताया है उनके विषय में उनका स्वयं कितना गहन अध्ययन था इसका परिचय हम उनके आचार्यत्व वाले खण्ड में प्राप्त करेंगे। इन विषयों के सांगोपांग विवेचन के पश्चात् इस विषय में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि वे हिन्दी काव्यशास्त्र के आचार्य थे और काव्य शास्त्र के विषयों में उनकी गहरी पैठ थी।

३. लोकव्यवहार पटुता अथवा लोकानुभव—दास के ग्रन्थ इस बात के द्योतक हैं कि उनमें सांसारिक अनुभवों की कमी न थी। उनके ये अनुभव प्रौढ़ थे जैसा हम कुछ उद्धरणों द्वारा दिखाने की चेष्टा करेंगे।

१. छन्दोर्णव पिंगल, पृ० ४।

२. बूझि सुचन्द्रालोक अरु काव्य प्रकासहु ग्रन्थ।
समुझि सुरुचि भाषा कियो लै औरौ कवि पन्थ।
वही बात सिगरी कहे उलथो होत इकंक।
निज उक्तिहि करि बरनिये रहै सुकलिपत संक।
यातें दुहुं मिश्रित सज्यो छमिहैं कवि अपराधु।
बन्यो अनबन्यो समुझि के सोधि लेहिंगे साधु। का० नि०, पृ० २, ३।

अपने काल की परिस्थितियों में उनका यह विश्वास दृढ़ हो चुका था कि गुणवन्तों (कवियों) आदि की महिमा उस समय और भी बढ़ जाती है जब दानी अपने बहुमूल्य दान से उन्हें प्रसन्न कर देता है। इस प्रकार इन दोनों को यश प्राप्त होता है। इस तथ्य के स्पष्टीकरण में उन्होंने पुनः कवि अनुभव से काम लिया है। भ्रमर मालती से अत्यन्त प्रेम करता है, इसीलिए वह रसिक के रूप में प्रसिद्ध है और भ्रमर का आदर करने के कारण मालती 'सुवास' में विख्यात है।

महिमा गुणवन्त की दास बढ़ै बकसै जब रीझि कै दान जवाहिर।
गुणवन्तहु ते पुनि दानिहूं को यश फैलत जात दिगन्त के बाहिर।
जिमि मालती सों अति नेह निबाहे ते भौंर भयो रसिकाई में जाहिर।
अरु भौंरहु को अति आदर कीन्हें सुवास में मालति यों भई माहिर।[1]

उनका विश्वास था कि पंडित पंडित को, कवि कवि को, संत संत को और गुणी गुणी को 'बखानता' है और शूर शूर को सती सती को तथा यती यती को पहचानते हैं। इसका कारण इनमें पारस्परिक प्रेम का होना है। यदि यह न होता तो ये लोग परस्पर इतने आकृष्ट न होते।

पंडित पंडित सों सुखमंडित सायर सायर के मन मानै।
संतहि संत भनंत भलो गुनवंतनि को गुनवंत बखानै।
जा पर जा कर प्रेम नहीं कहिये सु कहा तेहि की गति जानै।
सूर को सूर सती को सती अरु दास जती को जती पहिचानै।[2]

दास का विचार था कि जिन मनुष्यों में प्रेम का केवल बाह्य प्रदर्शन है परन्तु वस्तुतः उनके हृदय में कपट है, उनका अन्त में मुंह काला होता है। जो भीतर और बाहर समान हैं (अर्थात् करते वही हैं जो सोचते हैं और सोचते वही हैं जो करते हैं) वे लोग सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं।[3] उनका विचार था कि ऐसे व्यक्ति धन्य हैं जिनका स्वभाव परोपकार करना है और जो अपने प्रति किये गये उपकार के लिए कृतज्ञ होते हैं और आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राण तक न्योछावर कर देते हैं।[4] दास जी को सूम आश्रयदाताओं का कटु अनुभव

---

१. छं० पिं०, पृ० ६०। २. काव्यनिर्णय, पृ० ८१।

३. ऊपर ही अनुराग लसै जहि अन्तर को रँग है कछु न्यारो।
क्यों न तिन्हें करतार करै हरुवौ अरु गुंजनि लौं मुंह कारो।
भीतर बाहिरहू जहँ दास वहै रंग दूजो को नाहि सँचारो।
ते गुनवंत महा गरुये जग मूंगा ज्यों मोतिन संग बिहारो।
का० नि०, पृ० ७७-७८।

४. या जग में तिन्हें धन्य गनौ जे सुभाय पराये भले कहँ दौरें।
आपनो कोऊ भलो करै ताको सदा गुन मानें रहैं सब ठौरें।
दास जू ह्वै जो सकै तो करें बदले उपकार के आपु करोरें।
काज हितू के लगे तन प्रान के दान तें नेकु नहीं मन मोरें।
का० नि०, पृ० ११६।

था। यह उनका निजी एवं व्यक्तिगत अनुभव कहा जा सकता है। उनका कथन था कि ऐसे लोग अधिकतर हृदयहीन एवं मूर्ख होते हैं। इनसे व्यवहार करना अन्धे को आरसी दिखाने तथा बहरे से परामर्श कर उससे उत्तर की प्रतीक्षा करने के समान है। जो ऐसे सूमों की सेवा में अपने दिन नष्ट करके उनसे कुछ लाभ उठाने की आशा करते हैं उन्हें आशा की प्राप्ति कभी नहीं होगी।[१] उनका मत था कि ऋण लेना, किसी के आगे दौड़ दौड़ कर जाना, अपनी दीनता प्रकट करना स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए अपमानजनक है।[२]

दास के काल में, जैसा आज भी अधिकतर पाया जाता है, नज़र लगने से बचाने के लिए 'तिनका तोड़ना,' 'डिठौना देना' तथा 'राई नोन (नमक) उतारना' लाभकर समझा जाता था। अतः इसका वर्णन भी 'दास' ने यथा स्थान किया है।[३]

यह बात दूसरी है कि आज हम दास-कालीन परिस्थितियों की अपेक्षा इस परिवर्तित युग में उनके सभी अनुभवों को अपने अनुभव न मानें परन्तु इसमें तो जरा भी सन्देह नहीं कि ये अनुभव उनके जीवन की अमूल्य निधि थे और उन्होंने अपने जीवन काल में इनसे अवश्य लाभ उठाया होगा।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दास जी ने कवियों के लिए जो तीन प्रकार की योग्यताएं—प्रतिभा, काव्यशास्त्र अध्ययन तथा लोक व्यवहार पटुता एवं लोकानुभव—निर्दिष्ट की हैं उनका उन्होंने भी अपने ग्रन्थों में परिचय दिया है। अतः स्वयं उनके मतानुसार हम उनका नाम मान्य कवियों में रख सकते हैं।

मनोवैज्ञानिकता के आधार पर शृंगार रस का सूक्ष्म विवेचन

दास जी ने अपने काल के कवियों के अनुकरण पर ही काव्य क्षेत्र में शृंगार रस का

१. प्रानबिहीन के पाइ पलोट्यो अकेले ह्वै जाइ घने बन रोयो।
आरसी अन्ध के आगे धर्‌यो बहिरे सों मतो करि उत्तर जोयो।
ऊसर में बरस्यो बहु बारि पखान के ऊपर पंकज बोयो।
दास वृथा जिन साहब सूम के सेवन में अपनो दिन खोयो।
का० नि०, पृ० ८२-८३।

२. काहू धनवंत को न कबहूं निहार्‌यो मुख काहू के न आगे दौरबे को नेम लियो तैं।
काहू को न रिन करें काहू के दिये ही बिन हरो तिन असन बसन छोड़ि दियो तैं।
दास निज सेवक सखा सों अति दूर रहि लूटै सुख भूरि को हरष पूरि हियो तैं।
सोवत सुरुचि जाग जोवतो सुरुचि धन्य बन्धव कुरंग कहु कहा तप कियो तैं।
का० नि०, पृ० १२४-१२५।

३. बिमल अंगौछे पोंछि भूषन सुधारि सिर आंगुरिन फोरि त्रिन तोरि तोरि डारती।
उर नष छदरद छदनि में रद छद पेषि पेषि प्यारे को भ्रुकति झझकारती।
भई अनखौही अवलोकत लली को फेरि अंगन संवारती डिठौना दै निहारती।
गात की गोराई पर सहज भोराई पर सारी सुंदराई पर राई लोन वारती।
र० सा०, पृ० ५२।

विशद विवेचन किया है। शृंगार को रसराज माना गया है। इस रस की व्यापकता का महत्व बताते हुए स्वयं नाट्यशास्त्रकार भरत मुनि ने भी कहा है कि इस संसार में जो कुछ पवित्र, उत्तम, उज्ज्वल एवं दर्शनीय है वह शृंगार रस कहलाता है।[1] कुछ आचार्यों ने इसे 'काम' के अन्तर्गत लिया है परन्तु उन्होंने भी शृंगार को उत्तम प्रकृति से युक्त माना है।[2] हरिऔध जी का भी कथन है कि 'जो कुछ संसार में दर्शनीय अथवा सुन्दर है साथ ही जो पवित्र, उत्तम और उज्ज्वल है उसका जिसमें सरल एवं हृदयग्राही वर्णन, विकास अथवा प्रदर्शन होगा वह शृंगार रस कहला सकेगा।'[3] शृंगार रस के इन्हीं गुणों के कारण कवियों ने—और दास ने भी—इसी को अपना प्रमुख वर्ण्य विषय बनाया। दास ने प्रेमी प्रेमिका के अन्तस् में अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में प्रादुर्भूत मनोदशाओं का जितना तथ्यपूर्ण, हृदयग्राही और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है उतना सूर घनानन्द आदि बहुत थोड़े से ही कवि कर सके हैं।

दास जी ने शृंगार चित्रण में जिस सूझबूझ और सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है वह निश्चय ही सराहनीय है। यद्यपि उनके शृंगार निरूपण में प्रबन्धत्व का अभाव है फिर भी रसिकों ने अपने परितोष के लिए उसमें एक क्रमिक विकास की खोज की है और यदि ध्यान से देखा जाय तो यह क्रम मनोवैज्ञानिक भी है। संक्षेप में शृंगार वर्णन के इस मनोवैज्ञानिक क्रम का रूप इस प्रकार है।

दास के शृंगार वर्णन में मनोवैज्ञानिक क्रम

नख से शिख तक शृंगार प्रसाधनों से विभूषित किसी बाला को देख कर किस रसिक हृदय पर नियंत्रण रह सकता है[4] और जब वह अपना सम्पूर्ण सौंदर्य लिये हुए, नैसर्गिक सुवास बिखेरती तथा मुस्कराती हुई नायक के पास से निकल जाती है तो स्वाभाविक है कि नायक का हृदय प्रेमाग्नि से प्रज्वलित हो उठता है।[5] यही दशा नायिका की भी है। उसका

१. यत्किंचिल्लोके शुचिमेध्यमुज्वलं दर्शनीयं वा तच्छृंगारेणोपमीयते।
भरत नाट्यशास्त्र (प्रथम भाग), पृ० ३०१-३०२।

२. शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः। उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते।
विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, पृ० १३९।

३. हरिऔध : रस कलश: पृ० ७३।

४. पंकज पाँयनि पैजनियाँ कटि घांघरो किंकिनियाँ जरबीली।
मोतिनहार हमेल अलीन पै सारी सोहावनी कंचुकी नीली।
ठोढ़ी पै स्यामल बुंद अनूप तर्यौनन की चुनियां चटकीली।
ईंगुर की सुर कोदुर की नथ भाल में बाल की बेंदी छबीली।
का० नि०, पृ० २७८।

५. मग डारत ईंगुर पाँवड़े से सुमना सो बगारत आइ गई।
जियरे में ठगौरी सी दै कै भले हियरे बिच होरी सी लाइ गई।
नहिं जानिये को है कहाँ की है दास जू कंचन बेलि सी बाल नई।
ससि सों दरसाइ मुरी मुसुकाइ सुधा सों सुनाइ के जात भई।
का० नि०, पृ० ७४।

हृदय भी इसी प्रेमाग्नि से सुलगता है। साधारण अग्नि को तो जल से बुझाया जा सकता है पर इस अग्नि को कैसे बुझाया जाय[1] और फिर इस बाला के लिए यही तो खाने खेलने के दिन हैं।[2] इस काल में उसका विकसित होता हुआ यौवन तो और भी दुखदायी प्रतीत होता है और इस दुख से उसे केवल 'जसोमतिवारो' (नायक) ही मुक्ति दिला सकता है, केवल वही यह मंत्र जानता है।[3]

इस प्रकार कभी तो प्रकृतिवश और कभी अन्य कारणों से दो प्रेमियों में प्रेम का आरम्भ होता है। कभी यह प्रेम किसी नवयौवना में अज्ञात रूप से विवाह की इच्छा के रूप में प्रस्फुटित होता है और वह अपने पति की चेरी की चेरी बनना चाहती है[4] और कभी विवाह हो जाने पर प्रणयस्पंदन के रूप में।[5] इस प्रकार का प्रेम भारतीय मर्यादा के अन्दर

---

१. दास जू वाकी तो द्वार की सूनो कुटी जरै यातें करै दुख थोरै।
भारी दुखारी अटारी चढ़ी यहै रोवै हनै छतिया सिर फोरै।
हाइ भरै कहै लोगन देखि अरै निरदै कोऊ पानी लै दौरै।
आग लगी लखि मालिनी के लगी आग है ग्वालिन के उर औरै।
शृं० नि०, पृ० ३८।

२. दास बड़े कुल की बतियां बतियां परबीनी सो जीवन ज्वैहै।
बाहिर ह्वैहै न जाहिर और अनाहिर लोग की छाँह न छ्वैहै।
खेलन दै भरि साध सखी पुनि खेलिबे जोग येई दिन द्वै है।
फेर तो बालपनो अपनो री हमें लखनो सपनो सम ह्वैहै।
शृं० नि०, पृ० ४४।

३. भोरी किसोरी सुजानै कहा उकसौहैं उरोज भयो दुख भारो।
झारते हैं कर कुंकुम लाइकै देख्यौं मैं जाइकै कौतुक सारो।
बूझिये धौं किन मंत्र सिखायो भयो कब ते ब्रज झारनहारो।
खोटो महा यह ढोटो भयो अब छोटो न जानो जसोमति वारो।
र० सा० पृ० ६१।

४. पाय परौं जगरानी भवानी तिहारी सुनी महिमा बहुतेरी।
कीजै प्रसाद परै जिहि कैसहूं नन्दकुमार तें भांवरी मेरी।
है यह दास बड़ो अभिलाष पुरै न सकौं तो कहौं इक बेरी।
चेरी करो तो करो न करो मुहि नन्दकुमार की चेरी कि चेरी।
शृं० नि०, पृ० २९-३०।

५. सखि तेहूं हुती निसि देखत ही जिन पै वै भई हौं निछावरियां।
तिन पानि गह्यो हुतो मेरो तबै सब गाय उठीं ब्रज गांवरियां।
अँसुवा भरि आवत मेरे अजौं सुमिरे उनको पग पांवरियां।
कहि को हैं हमारे वे कौन लगैं जिनके संग खेली हौं भांवरियां।
शृं० नि० पृ० ४३।

है और इसमें भारतीय संस्कृति की महत्ता छिपी हुई है जिसके दर्शन हमें दास में स्थान स्थान पर होते हैं।

शृंगार के क्षेत्र में हमें मर्यादित तथा अमर्यादित ये दो धाराएं बराबर मिलती हैं और 'दास' जी ने अपने शृंगार-निरूपण में इन दोनों का सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है।

(१) **मर्यादित शृंगार चित्रण**—अनेक स्थलों पर दास ने नायक और नायिका के प्रेम को अक्षुण्ण रखते हुए उनके व्यवहारों तथा आचरणों को मर्यादा के अन्दर बांधने का प्रयास किया है। प्रेम की अटलता प्रेमी में ऐसे विश्वास को जन्म देती है जिसमें कृत्रिमता के लिए कोई स्थान नहीं। उसे प्रेम मार्ग से विचलित कर सकना मानो प्राकृतिक तत्वों की गति विपरीत करना है।[१] नायिका आंसू बहा लेती है, कामदेव के वाणों को सहन करती है, लाज भी धोकर पी जाती है परन्तु उसका प्रेम इतना एकनिष्ठ है कि वह अपने प्रेमी को देखना और उसी के विषय में चर्चा चलाना पसन्द करती है।[२] कभी कभी तो वह अपना अस्तित्व भी प्रेमी के अस्तित्व में विलीन कर देती है[३] परन्तु ऐसी परिस्थिति में भी उसे अपनी स्थिति का ध्यान सदा बना रहता है। वह सास देवर, पास पड़ोसी सब का डर मानती है और इसी कारण निर्लज्जता के साथ अपने प्रेमी से चार आखें नहीं कर सकती।[४] वह समझती है कि समाज ने उसकी और नायक की स्थिति में कितना अन्तर कर रक्खा है।

---

१. पूरब ते फिरि पश्चिम ओर कियो सुर आपगा धारन चाहै।
तूलन तोपि कै ह्वै मति अन्ध हुतासन दन्द प्रहारन चाहै।
दास जू देखो कलानिधि कालिमा छूरिन सों छिलि डारन चाहै।
नीति सुनाइ कै मो हिय में नन्दलाल को नेह निवारन चाहै।

का० नि० पृ० ८३।

२. भोर उठि न्हाइबे को न्हाती अँसुवान ही सो ध्याइबे को ध्यावै तुम्हें जाती बलिहारियें।
खाइबे को खाती चोट पंचबान बानन की पीयबे को लाज धोइ पीवत बिचारियें।
आंख लगवे को दास लागी रहै तुम्हहीं सों बोलवे को बोलत बिहारियें बिहारियें।
सूझबे को सूझत तिहारोई सरूप याहि बूझबे को बूझै लाल चरचा तिहारियें।

का० नि०, पृ० १८०।

३. निरखि भई मोहन मई सुधि बुधि गई हिराइ।
संगति छुटी अलीन की चली श्याम संग जाइ। र० सा०, पृ० ७५।

४. देवर की त्रासन कलेवर कँपत है न सासु डर आसिनि उसास लै सकति हौं।
बाहिर के घर के परोस नरनारिन के नैनन में कांटे सी सदा ही कसकति हौं।
दास नहिं जानो हौं बिगारो कहा सब ही को याही पीर बीर नित पेट पकरति हौं।
मोहि मनमोहन मिलाय इत देती तुम मैं तो वह ओर अवलोकति जकति हौं।

शृं० नि०, पृ० ३२।

वह उच्छ्वास भी लेती है तो लोग उसका उपहास करते हैं। ऐसा उसका अनुभव है। अतः वह नहीं चाहती कि कोई उसे किसी परपुरुष के साथ किसी गली कूचे में देखे और उस पर कीचड़ उछाले।[१] वह मर्यादित और स्थायी प्रेम की भूखी है।

(२) **अमर्यादित शृंगार**—अमर्यादित शृंगार उन नायिकाओं में होता है जिन्होंने लाज और शर्म को तिलांजलि दे रखी है। कुछ परकीया नायिकाएं समाज तथा गुरुजनों से अवश्य डरती हैं परन्तु वे अपनी चेष्टाओं से तथा गुरुजनों की आंख बचा कर अपने प्रेमी से मिलने के व्योंत भी कर लेती हैं। अपनी इच्छा की पूर्ति में गुप्त संकेत उनके बड़े सहायक होते हैं। दास जी ने नायक नायिकाओं के इन संकेतों का बड़ा विशद तथा सूक्ष्म वर्णन किया है।

संकेतों के व्यापार में मुख मोड़ना, आंखों से इशारे करना, अंग अंग का प्रदर्शन करना, मुड़ना, अड़ना, भौंह चलाना, कनखियाना, सूने निकेत में जाना आदि अनेक ऐसी बातें होती हैं जिनमें नायिकाएं पटु होती हैं।[२] नायक कम चतुर नहीं होते और पतंग आदि की सहायता से नायिका को अपने पास बुलाने में प्रायः सफल हो जाते हैं।[३] नायिका भी किसी न किसी बहाने नायक से आखें चार करने के लिए पहुंच जाती है[४] और कभी कभी तो आंखों ही आंखों में बातें भी हो जाती हैं।[५] नायिका नायक से केवल एक घड़ी के मिलन के लिए

१. नायक हौ सब लायक हौ जु करौ सो सबै तुमकों पचि जाहीं।
दास हमै तो उसास लिए उपहास करें सब या ब्रज माहीं।
आय परैगी कहूं ते कोऊ तिय गैल में छैल गहौ जिन बाहीं।
द्वै ही दिना की तिहारी है चाह गई करि जाहु निबाहिहौ नाहीं।
शृं० नि०, पृ० ३४।

२. मुख मोरत नैन की सैनन्ह दै अँग अंगन्ह दास देखाइ रही।
ललचौहें लजौहें हँसौंहे चितै हित सों चित चाव बढ़ाइ रही।
मुरिकै अरिकै दृग सों भरि कै जुग भौंहनि भाव बताइ रही।
कनखा करिकै पग सों परिकै पुनि सूने निकेत में जाइ रही।
का० नि०, पृ० २१।

३. न्यारे के सदन तें उड़ाई गुड़ी प्रानप्यारे संज्ञा जानि प्यारी मन उठी अकुलाय कै।
पावति न घात जात देख्यो सुखव्यौत बीतो रीतो कियो घरो तब नीर ढरकाय कै।
घर की रिसानी कहा कीनी तू अयानी तब तासों कै सयानी या कहत अनखाय कै।
काहे को कुबातनि सुनावति हौ मेरी बीर ढरिगो तो हौं ही भरि ल्यावति हौं जाय कै।
शृं० नि०, पृ० ४०-४१।

४. प्यारे केलि मन्दिर तें करत इसारे उत जाइबे को प्यारी हू के मन अभिलाख्यो है।
दास गुरुजन पास बासर प्रकास ते न धीरज न जात क्यौंहूं लाज डर नाख्यो है।
नैन ललचौहैं पै न क्यौंहूं निरखत बनै ओठ फरकौहें पै न जात कछु भाख्यो है।
काजन के ब्याज वाही देहरी के सामुहें ह्वै सामुहें के भौन आवागौन करि राख्यो है।
शृं० नि०, पृ० ८८।

५. तैं कछु कह्यो गोपाल सों तिरछौंही अंखियानि।
लखि लीन्ही उनमानि मैं लखि लीन्ही उनमानि र० सा०, पृ० २३।

सास और जेठानियों के क्रोध को सहन कर लेने तथा गांव में कुचर्चा का खतरा उठा लेने के लिए भी तैयार हो जाती है[1] और जब इससे भी कार्य साधन नहीं होता तो फिर दूती की सहायता ली जाती है अथवा हठ और दुराग्रह की शरण लेनी पड़ती है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि दास जी ने मर्यादित तथा अमर्यादित दोनों प्रकार के शृंगार का वर्णन सफलता के साथ किया है, जिसमें मनोवैज्ञानिकता के सहारे उनकी काव्यकला का अच्छा विकास हुआ है।

भाव व्यंजना

शृंगार के क्षेत्र में 'दास' ने सौंदर्य चित्रण, विरह वर्णन तथा कुछ स्थलों पर अश्लील शृंगार आदि के वर्णन में अपनी जिस काव्यकला का परिचय दिया है उसमें अनूठी भावाभिव्यक्ति के कारण चमत्कार सा आ गया है। हम दास जी की इस विशेषता का संक्षेप में विवेचन करेंगे।

सौंदर्य चित्रण—सौंदर्य चित्रण रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों का मुख्य विषय रहा है क्योंकि नायिका को अतीव सुन्दरी रूप में चित्रित किये विना प्रेम मार्ग प्रशस्त नहीं होता। दास जी की कविता में नायिका का सौंदर्य-चित्रण अनेक स्थलों पर मिलता है। शृंगार तथा नायिका-भेद वर्णनों के अन्तर्गत दास ने नायिका के सौंदर्य का चित्रण किया है।

एक नायिका के पैरों में नाइन महावर लगा रही थी और एक ही एड़ी में लगा पाई थी कि उसके प्रेमी के आजाने का समाचार मिला। वह भाग कर ओट में हो गयी। अब जो नाइन को फिर महावर लगाने के लिए आना पड़ा तो वह बार बार देख रही है कि किस एड़ी में महावर लगाये। दोनों ही एड़ियां तो मारे सौंदर्य के लाल हो रही हैं। अन्ततः वह हार गयी, उसकी समझ में कुछ न आया। इतमें में नायिका ने दाहिना पैर बढ़ा कर कहा कि इसी पैर में महावर लगा दे क्योंकि मुझे बांया पैर भारी मालूम पड़ रहा है, उसी में पहले तूने महावर लगाया होगा।

> **आरज आइबो आली कह्यो भजि सामुहें तें गई ओट में प्यारी।**
> **एकहि एड़ी महावर दै श्रम तें दुहुँ फैली खरी अरु नारी।**
> **दास न जानै धों कौने हैं दीबो चितै दुहुँ पायन नाइनि हारी।**
> **आपु कह्यो अरी दाहिने दै मोहि जानि परै पग बाम है भारी।[3]**

१. **इहि आननचन्द मयूखन सों अँखियान की भूख बुझैबो करौ।**
तन स्याम सरोरुह दास सदा सुखदानि भुजानि भरैबो करौ।
डर दास न सास जेठानिन को किन गांव चवाव चलैबो करौ।
मन मोहन जौ तुम एक घरी इन भांतिन सो मिलि जैबो करौ।
शृं० नि० पृ० २६।

२. **आजु तें नेह को नातो गयो तुम नेह गहौ हम नेम गहौंगी।**
दास जू भूलि न चाहिये मोहि तुम्हैं अब क्यौंहूं न हौंहूँ चहौंगी।
वा दिन मेरे प्रजंक में सोये हो हौं यह दाँव लहों पै लहौंगी।
मानो भलो कि बुरो मनमोहन सेज तिहारी मैं सोय रहौंगी।
का० नि०, पृ० १२६।

३. **काव्य निर्णय, पृ० १२१।**

महावर के रंग से नायिका को अपना पैर भारी मालूम पड़े यह नायिका सौंदर्य की सीमा ही तो है। दास की इस नायिका के सामने तो बिहारी की वह नायिका भी हेय लगती है[1] जो आभूषणों का भार इसीलिए नहीं संभाल सकती कि उसके अपने सौंदर्य के भार से आक्रान्त होकर उसके पैर सीधे नहीं पड़ रहे हैं। भावों की इतनी उत्कृष्ट व्यंजना विरले कवियों में ही दिखाई देगी।

एक नायिका मेघाच्छन्न भादों की रात्रि में अपने प्रिय से मिलने चली जा रही है। उसने अपने शरीर को श्याम पट से ढक लिया है कि कहीं उसके सौंदर्य से प्रकाश न होने लगे जिससे लोग उसके प्रिय मिलन के मार्ग में अवरोध न बन जाएं। परन्तु वह अपने को कहाँ तक छिपाये। वायु के झकोरा देने पर उसकी उपरैंनी (ओढ़नी) उड़ जाती है और जब कभी वह मुख से हट जाती है उस समय तो ऐसा प्रतीत होता है कि बिजली चमक रही है। यह सौंदर्य की चरम सीमा है।[2] नायिका के सौंदर्य से केवल मनुष्यों को ही दामिनी का धोखा नहीं होता अपितु पशु पक्षी तक भ्रमित हैं। भ्रमर नायिका के मुख को अरविंद समझ कर वहीं मंड़रा रहा है, शुक अधरों को बिंबाफल समझकर ललचा रहा है और मोर वेणी को सर्पिणी समझ कर दौड़े चले आ रहे हैं—

आनन है अरबिंद न फूले अलीगन भूले कहा मड़रात हौ।
कीर कहा तुम्हें बाय लगी भ्रम बिम्ब के ओठन को ललचात हौ।
दास जू ब्याली न बेनी बनाव है पापी कलापी कहा इतरात हौ।
बोलती बाल न बाजती बीन कहा सिगरे मृग घेरत जात हौ।[3]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि सौंदर्य चित्रण के क्षेत्र में दासजी ने जिन भावों की अभिव्यंजना की है उनसे उनका विषय सरल, बोधगम्य एवं स्पष्ट ही बन पड़ा है। नायिका के सौंदर्य का प्रभाव मनुष्यों ही पर नहीं पशु पक्षी आदि पर भी पड़ता है। दास की यह सूझ निश्चय ही प्रभावोत्पादक है।

विरह वर्णन—वियोग, शृंगार का प्रमुख अंग है। दास ने विरह का बड़ा ही उत्कृष्ट वर्णन किया है। विभिन्न परिस्थितियों में पड़ी हुई विभिन्न नायिकाओं की मनोदशाएं भी भिन्न भिन्न होती हैं। दास ने इस विभिन्नता का बड़ा हृदयग्राही चित्रण किया है। इन चित्रणों में अतिरंजना और अत्युक्ति का भी समावेश है।

---

१. **भूषन भार संभारिहैं क्यों यह तन सुकुमार।**
सूधे पांय न धरि परत सोभा ही के भार।

२. **जलधर ढारैं जलधारन की अँधिकारी निपट अँधारी भारी भादव की यामिनी।**
तामें स्याम बसन बिभूखन पहिर स्यामा स्याम पै सिवारी प्यारी मत्त गजगामिनी।
दास पौन लागे उपरैनी उड़ि उड़ि जाति तापर न क्योहूं भांति जानी जाति भामिनी।
चारु चटकीली छबि चमकि चमकि उठै लोग कहें दमकि दमकि उठै दामिनी।
शृं० नि०, पृ० ५६-५७।

३. **काव्य निर्णय, पृ० ६२-६३।**

दास की विरह विदग्धा नायिका प्राणप्यारे के प्रयाण के समाचार को सुन कर खान पान तक भूल चुकी है और समझती हैं कि प्राणप्यारे के साथ उसके प्राण भी प्रयाण कर जाएँगे—

भूख औ प्यास सबै बिसरी जब ते यह कानन बात बजी है।
आपने प्रान पयान गुनै सु जु प्यारे पयान की साज सजी है।
बेगि चलो दुरि देखो दशा यह जानि मैं लाल तुम्हैं बरजी है।
रावरे जो पगु आधे गहैं तौ राधे न जीहै न जीहै न जीहै।[1]

र० सा०, पृ० ३५।

नायिका विरह से इतनी संतप्त है कि उसके गांव के रहने वाले समझ रहे हैं कि गर्मी की ऋतु ही आ गयी। उसकी विदग्धता को कम करने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये परन्तु मारे उष्णता के कोई उस तक पहुंच ही नहीं पाता। लोग उसके पास तक जाकर भाग आते हैं। उपचारस्वरूप गुलाब जल की शीशी औंधाई गयी परन्तु इससे केवल गुलाब जल ही नहीं बीच में सूख गया अपितु शीशी तक पिघल गयी। दास की यह विरह-विदग्धा नायिका बिहारी की इसी प्रकार की विरह विदग्धा से कहीं अधिक संतप्त है और उसमें जलन की मात्रा कहीं अधिक है।

एरे निरदई दई दरस तो तेरे वह ऐसी भई देरे या बिरह ज्वाल जागि कै।
दास आस पास पुर नगर के बासी उत माहहू को जानति निदाहै रह्यो लागि कै।
लै लै सीर जतन भिगाए तन ईठि कोउ नीठि ढिग जावै तऊ आवै फिरि भागि कै।
सीसी में गुलाब जल सीसी में मगहि सूखै सीसी यों पघिलि परै अंचल सो दागि कै।[2]

दास की एक विरह-विदग्धा प्रियतम का प्रयाण सुनकर सूखती गयी। उत्तरोत्तर विरह वेदना ने उसे आधा कर डाला। परन्तु उसकी वेदना का यहीं अन्त नहीं हुआ। वह क्रमशः छड़ी के समान, सींक के समान और फिर बाल के समान कृश होती गई और अन्त में जीवित भी इस प्रकार लगती थी मानो प्राणायाम साधे हुए हो।

रावरो पयान सुनि सूखि गई पहिले ही, भई पुनि बिरह बिथा तें तन आधी सी।
दास को दयाल मास बीतबे में छिन छिन परबे को रीति राधे अवराधी सी।
साँसरी सी छरी सी ह्वै सर सी सरी सी भई, सींक सी ह्वै लीक सी ह्वै बाँधहू सो बाधी सी।
बार सी मुरार तार सी लौं तजि आवति हौं जीवत ही ह्वैहै वह प्राणायाम साधी सी।[3]

एक और विरह-विदग्धा कृशता के कारण चारपाई से लग चुकी है, न बोल सकती है, न हिल डुल सकती है और न श्वास ही ले सकती है। वह मरण दशा के बिल्कुल निकट है—

नारी न हाथ रही उहि नारि के मारनी मोहि मनोज महा की।
जीवन ढंग कहा तें रह्यो परजंक में आधे रहीं मिलि जाकी।
बात को बोलिबो गात को डोलिबो हेरै को दास उसास उथा को।
सोरी ह्वै आई तताई सिधाई कहो मरिबे में कहा रह्यो बाकी।[4]

१. र० सा०, पृ० ३५। २. शृं० नि०, पृ० १०७-१०८।
३. का० नि०, पृ० १८६-१८७। ४. शृंगार निर्णय, पृ० १०९।

एक विरहिणी के शरीर के ताप का प्रभाव उस तक अथवा उसके गांव तक ही नहीं पड़ा, उसके ताप से तो सम्पूर्ण विश्व त्रस्त हो गया है। नदी, तालाव और समुद्र सभी सूख गये हैं और स्वर्ग, पाताल तथा धरा व्याकुल हो गये हैं। कवि की कल्पना ने इस स्थिति का कारण भी ढूंढ़ निकाला है, सारा संसार कामवश हो गया है। अतः स्वभावतया शंकर जी को क्रोध आ गया है और उन्होंने कामदेव को भस्म कर डाला तथा पृथ्वी का पुनः निर्माण करने के निमित्त पावक ज्वाल को उत्पन्न किया।

> **दास कहाँ लौं कहौं में वियोगिन के तन तापन की अधिकाई।**
> **सूखि गये सरिता सर सागर स्वर्ग पताल धरा अकुलाई।**
> **काम के बस्य भयो सिगरो जग यातें भई मनो संभु रिसाई।**
> **जारि कै फेरि सँवारन को छिति के हित पावक ज्वाल बढ़ाई।**[1]

इस प्रकार के विरह वर्णन, जो एक प्रकार से अत्युक्ति की सीमा का उल्लंघन कर गये हैं, दास के ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आज के यथार्थवादी युग में इन कल्पनाओं का उपयोग नहीं परन्तु काव्य में तो इनका स्थान सदा से ही विनोदकर रहा है और रहेगा। दास ने इस प्रकार के वर्णनों को अत्यधिक भावपूर्ण बना कर उन्हें नव जीवन प्रदान किया है।

अश्लील शृंगार वर्णन—जहां रीतिकालीन काव्य में शृंगार का उत्कृष्ट वर्णन हुआ है वहां उसमें विलासितापूर्ण भावों एवं सामग्री की भी कमी नहीं है। विलासिता के चित्रण करने की इस प्रवृत्ति ने कहीं कहीं अश्लीलता का रूप भी ले लिया है। दास जी भी इस प्रवृत्ति से अछूते नहीं रहे हैं और उन्होंने शिष्ट शब्दों में रति सम्बन्धी ऐसे चित्रण प्रस्तुत किये हैं जिन्हें आज का समाज अश्लील कहने में न हिचकेगा। यहां इस प्रकार के एक दो उदाहरण ही पर्याप्त होंगे।

पुष्प चयन करती हुई नायिका की भेंट नायक से बाग में हो गयी और फिर घड़ी भर तक 'मनभायो' (समागम) हुआ जिसके फलस्वरूप नायिका की श्वास तेजी से चलने लगी, धुकधुकी बंध गई, खरोटें लग गयीं। परन्तु वह दौड़ती हुई अपने घर को गयी। दौड़ने से भी मनुष्य की यही दशा हो जाती है। अतः उसे अपनी सुरति छिपाने के लिए बहाना भी नहीं बनाना पड़ा।

> **हुती बाग में लेत प्रसून अली मन मोहन ऊं तहं आइ पर्‌यो।**
> **मनभायो घरीक भयो पुनि गेह चबाइन में मन जाय पर्‌यो।**
> **द्रुत दौरि गई गृह दास तहां न बनाइबे नेकु उपाइ पर्‌यो।**
> **धक स्वेद उसास खरोटन को कछु भेद न काहू लखाइ पर्‌यो।**[2]

'विपरीत की रीति में प्रौढ़' इस नायिका की निर्लज्जता भी दर्शनीय है जो स्वयं तो रसरंग मचाने में पटु है ही और नेत्र को नचा नचा कर कामोद्दीपन कर ही रही है साथ

१. काव्यनिर्णय, पृ० ११४। २. काव्यनिर्णय, पृ० १४७।

ही नायक को भी निर्देश सा कर रही है कि वह उसकी अंगिया को खोले और उसे अपने अंक में भर ले।

उठि आपुही आसन दै रस प्यार सों लाल सों आँगी कढ़ावति है।
पुनि ऊँचे उरोजन दै उर बीच भुजान के मध्य मढ़ावति है।
रस रंग मचाइ नचाइ कै नैनन अंग तरंग बढ़ावति है।
बिपरीत की रीति में प्रौढ़ तिया चित चौगुनो चोप चढ़ावति है।[1]

काव्यकला की दृष्टि से दास के इस प्रकार के वर्णन बड़े रोचक बन पड़े हैं। ऐसे वर्णनों में उन्होंने वर्ण्य विषय की मानसिक स्थिति के अनुकूल ही भावचित्रण किये हैं और उसी के अनुरूप शब्दावली का प्रयोग किया है जिसमें उन्हें बहुत अधिक सफलता मिली है।

भाव व्यंजना के कुछ उत्कृष्ट उदाहरण

भिखारीदास भावों को शिष्ट और सुन्दर शब्दों में राजाकर प्रस्तुत करने में विशेष रूप से पटु थे। उनका भावानुकूल शब्दचयन बड़ा ही हृदयग्राही होता था और यही कारण है कि उनके अनेक पद आज भी रसिकों के कंठहार हो रहे हैं। एक नायिका का वर्णन करते समय कवि कहता है कि उसके नेत्रों के आगे कंज कीच में गड़ गये, मीन जल तल में चली गयीं, मृग वनों को भाग गये, खंजन उड़ गये और कामदेव के तीर हल्के हो गये (शर्मा गये)। यहां नेत्रों के लिए कविसुलभ अनेक प्रमुख उपमानों कंज, मीन, मृग, खंजन, अनंग के तीर आदि का प्रयोग परम्परागत होते हुए भी सुन्दर भावों का व्यंजक है।

कंज सकोचि गड़े रहे कीच में मीनन बोरि दियो दह–नीरनि।
दास कहै मृगहू को उदास कै, बास दियो है अरण्य गँभीरनि।
आगुस में उपमा उपमेय ह्वै नैन ए निन्दत हैं कवि धीरनि।
खंजन हूं को उड़ाइ दियो हलुके करि दीन्हों अनंग के तीरनि।[2]

दास जी ने एक विरह व्यथित नायिका के मनोगत भावों के सुन्दर चित्र चित्रित किये हैं, जो प्राणप्यारे को देखने के लिए सौत तक के घर जाने और अपने सम्मान की बाजी लगाने को तैयार है क्योंकि अब उसमें तरसने और विरहाग्नि में झुलसने की शक्ति नहीं।

नैनन को तरसैये कहां लों कहाँ लौं हियो बिरहागि में तैये।
एक घरी न कहूँ कल पैये कहाँ लगि प्रानिन को कलपैये।
आवै यही अब जी में विचार सखी चलि सौतिहू के गृह जैये।
मान घटे तें कहा घटिहै जु पै प्रान पियारे को देखन पैये।[3]

दास द्वारा प्रस्तुत किसी गोपिका का यह करुण सन्देश दर्शनीय है जिसमें उसने कृष्ण के पास 'अम्ब बौर' भेज कर 'रामराम' कहलाया है। यह सन्देश बड़ा भावपूर्ण है जिसका गर्भितार्थ यही है कि कृष्ण के वियोग में गोपिका टूटे हुए आम्रबौर के समान है और इसे विकसित कर सकने में केवल कृष्ण ही समर्थ हैं। यदि कृष्ण उसकी सुधि नहीं लेते तो उसके दिन इने गिने ही हैं।

१. काव्यनिर्णय, पृ० १६१। २. का० नि०, पृ० २४५। ३. का० नि०, पृ० ३६

जाति हौं जो गोकुल गोपाल हू पै जैयो नेकु आपनी जो चेरी मोहि जानती तू सही है।
पाय परि आपु ही सों बूझियो कुशल छेम मो पै निज ओर ते न जात कछु कही है।
दास जू वसन्तहू के आगमन आयो तौ न तिनसों सँदेशन्ह की बात कहा रही है।
एतो सखी कीबी यह अम्ब बौर दीबी अरु कहिबी वा अमरैया राम राम कही है।[1]

कृष्ण के प्रेम ने गोपिकाओं की विरह व्यथा को इतनी तीव्र कर दिया है कि वे अनेकानेक दुखों में घिर सी गई हैं। नीचे के पद में दास जी की भावव्यंजना सिंहावलोकन शैली में प्रभावशालिनी है।

हारि गो वैद उपावनि को करि एकनि को बिरहागि सो बारिगो।
बारिगो एक की भूष औ प्यास कछू मृदु हाँस सो मोहनी डारिगो।
डारिगो मानो कछू गथ ते इमि व्याकुल कै इक गोप कुमारि गो।
मारिगो एक को मैन के बाननि साँवरो साननि नेकु निहारिगो।[2]

अनुभावों द्वारा भाव-व्यंजना—दास की रचनाओं में भावव्यंजना के ऐसे अनेक उदाहरण यत्र तत्र बिखरे हुए मिलेंगे जिनमें अनुभावों द्वारा भावों की बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ पर हम एक ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं :

जी बँधि ही बँधि जाति है ज्यों ज्यों सु नीबी तनीनि को बाँधति छोरति।
दास कटीले ह्वै गात कँपै विहँसौंहीं लजौहीं लसै दृग लों रति।
भौंहें मरोरति नाक सिकोरति चीर निचोरति औ चित चोरति।
प्यारे गुलाब के नीर में बोरे प्रिया पलटै रस भीर में बोरति।[3]

इस उदाहरण में नारे का बन्ध बांधना खोलना, भौंहें मरोरना, नाक सिकोड़ना, वस्त्र निचोड़ना आदि अनुभावों द्वारा नायिका की प्रेम वासना के भावों की सुन्दर व्यंजना हुई है। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण हम अमर्यादित शृंगार के वर्णन में पीछे दे आये हैं।

कल्पना तत्व

काव्य में कल्पनातत्व मन को अलौकिक आनन्द की स्थिति में लाता है। रीतिकाव्य कल्पना तत्व के आधार से सरस एवं ललित है। व्यापकदृष्टि से देखने पर प्रायः सभी वर्णनों में कल्पना का कुछ न कुछ पुट अवश्य रहता है। दास जी के काव्य में कल्पना का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है।

विरह व्यथित गोपिकाओं के आंसुओं के कारण पीड़ित सिन्धु के उन सन्देशों में कितनी करुणा है जो उसने कृष्ण को भेजे हैं। सिन्धु का यह कथन कितना मार्मिक है 'एक तो मैं इसी से जल रहा हूं कि मैंने हरि के बड़वानल को अपने अन्तर में बसाया है, दूसरे तुम्हारे वियोग में गोपिकाएं जो अश्रु प्रवाहित करती हैं, वह जब यमुना में मिल कर मुझमें गिरता है तब तो मैं और भी जल उठता हूं। जलते हुए आंसुओं से जलती हुई यमुना मुझे जलाने के लिए ही तो मुझमें गिरती है।'

१. काव्यनिर्णय, पृ० ५८-५९। २. रस सारांश, पृ० ५७।
३. काव्यनिर्णय, पृ० ३३-३४।

न्हान समै दास मेरे पायन परचो है सिंधु, तट नर रूप ह्वै निपट बेकरार में।
मैं कही तूँ को है कह्यो बूझत कृपा कै तौ सहाय कछु करो ऐसे संकट अपार में।
हौं तो बड़वानल बसायो हरि ही को मेरी, विनती सुनाजो द्वारिकेस दरबार में।
ब्रज की अहीरिनी को अँसुवा बलित आइ जमुना जरावै मोहि महानल झार में।[1]

इन पंक्तियों में सिंधु के नर रूप धारण करने, कृष्ण को सन्देश भेजने, तथा गोपिकाओं के अश्रुओं के यमुना से मिलने पर उसमें सिंधु को वाड़वाग्नि से भी अधिक जला सकने की सामर्थ्य उत्पन्न कर देने वाली कल्पनाएं दास की उत्तम सूझ बूझ की द्योतक हैं।

नीचे के पद में राधिका के अतुल सौंदर्य की कल्पना अवलोकनीय है। इसमें हमें गणितशास्त्र का आनन्द भी मिल जाता है। ब्रह्मा ने सम्पूर्ण ज्योति खंड के आधे को लेकर अकेली राधा की रचना की, और शेष के आधे से सूर्य और चन्द्रमा का निर्माण किया। अब जो शेष रहा, ब्रह्मा ने उसके दो भाग किये एक भाग से उसने तारागणों का निर्माण किया और दूसरे से तीनों लोकों की युवतियों का।

जोति के गंज में आधो बराइ बिरंचि रची बृषभान कुमारी।
आधो रह्यो फिरि ताहू में आधो लै सूरज चन्द प्रभान में डारी।
दास दुभाग किये उबरे को तरैयन में छबि एक की सारी।
एक ही भाग में तीनहूं लोक की रूपवती जुवतीन सँवारी।[2]

राधा के समान संसार में अन्य कोई युवती न ठहरे इस कारण इसकी रचना में उन्होंने सरस्वती की वाणी, दमयन्ती की चतुरता, मंजुघोषा की मधुरता, रति की प्रीति, चित्ररेखा के नेत्र, सुकेशी के सुकेश, इन्दिरा की उदारता, माद्री की मनोहरता तथा इन्दुमती की सुकुमारता इन सभी का योग किया है। कवि-कल्पना का यह सुन्दर नमूना है।

विद्यावर बानी दमयन्ती की सयानी, मंजुघोषा मधुराई प्रीति रति की मिलाई मैं।
चल चित्ररेखा के तिलोत्तमा के तिल लै सुकेसी के सुकेस सची साहिबी सोहाई मैं।
इन्दिरा उदारता औ माद्री की मनोहराई, दास इन्दुमती की लै सुकुमारताई मैं।
राधा के गुमान में समान बनिता न ताके हेतु या बिधान एक ठान ठहराई मैं।[3]

इसी प्रकार एक और वर्णन में कल्पना की गयी है कि अनेक छबीलियों की सुन्दरता को छीन कर राधिका का निर्माण हुआ है।

सोभा सुकेसी की केसन में है तिलोत्तमा की तिल बीच निसानी।
उर्बसी ही में बसी मुख की अनुहारि सो इन्दिरा में पहिचानी।
जानु को रम्भा सुजान सुजान है दास जू बानी में बानी समानी।
एती छबीलिन सों छबि छीनि कै एक रची विधि राधिका रानी।[4]

ब्रह्मा ने अपनी सम्पूर्ण कला व्यय करके राधा का निर्माण किया था। परन्तु अन्त में उसे राधा में कुछ मलिनता दिखाई दी अतः उसे और भी सुन्दर बनाने के लिए उसने

१. काव्य निर्णय, पृ० ११८-११९। २. काव्य निर्णय, पृ० ११९।
३. का० नि०, पृ० ७५। ४. का० नि०, पृ० १७६-१७७

राधा को खरादने के लिए खराद पर चढ़ाया। और उससे मलिनता का गिरा हुआ जो चूर्ण उड़ा उसने आकाश में तारों का रूप ले लिया और कहीं कहीं वह जुगनू के रूप में भी प्रकट हुआ। यह तो था मलिनता के चूर्ण का चमत्कार। 'चोखन' अर्थात् मलिनता रहित जो चूर्ण खराद के पश्चात् गिरा था उससे धूप और ज्योत्स्ना का निर्माण हुआ। इस कल्पना में खराद पर चढ़ते समय राधा जी की जो भी दशा या दुर्दशा हुई हो इतना अवश्य है कि इस कल्पना से पाठक विनोद की मुग्धता में चमत्कृत अवश्य हो जाता है।

याहि खराद्यो खराद चढ़ाय बिरंचि बिचारि कछू मलिनाई।
चूर वहै बगरयो चहुं ओर तरैयन की जू लसै छबि छाई।
दास न ये जुगनू मग फैले बहै रज सी इतहूं भरि आई।
चोखन है किये धाम अनोखो ससी न अली यह है सबिताई।[1]

परम्परागत वर्णन—हिन्दी साहित्य के रीति काल में किसी वस्तु का वर्णन करने में उपमानों की बौछार करना कवि कौशल के अन्तर्गत समझा जाता था और ये उपमान बहुधा परम्परागत होते थे। दास ने भी इस प्रकार के वर्णन किये हैं, जिन पर परम्परा का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है जैसे नायिका सौंदर्य के लिए दास जी ने चंपक माल, हेमलता, दीपशिखा की प्रभा, चन्द्रकला, मनोज की अबला (रति) आदि जिन उपमानों की योजना की है वे निश्चय ही परम्परागत हैं, इस दृष्टि से दास का निम्नलिखित पद अवलोकनीय है—

दास लला नवला छबि देखि के मो मति है उपमान तलासी।
चंपक माल सी हेम लता सी कि होय जवाहिर की लवलासी।
दीपसिखा सी मसाल प्रभा सी कहौं चपला सी की चंद कला सी।
जोति सी चित्र की पूतरी काढ़ी कि ठाढ़ी मनोजहि की अबला सी।[2]

नीचे लिखे पद में वर्णित दास की नायिका भी कितनी सौंदर्ययुक्त होगी जिसकी सेवा में कमला, विमला, चित्ररेखा, मेनका, उर्वशी, रति, रम्भा, मंजुघोषा जैसी सेविकाएं रत हों। यद्यपि इनमें से प्रायः सभी नाम पौराणिक हैं परन्तु इनका उपयोग रीतिकालीन कवियों ने भी किया है।

कमला सी चेरी है घनेरी बैठी आस पास बिमला सी आगे दरपन दरसावती।
चित्ररेखा मैनका सी चमर डोलावै लिये अंक उरबसी ऐसी बीरन खबावती।
रति ऐसी रम्भा सी सची सी मिलि ताल भरै मंजु सुर मंजुघोषा ऐसी ढिग गावती।
मध्य छबि न्यारी प्यारी बिलसै प्रजंक पर भारती निहार हारी उपमा न पावती।[3]

प्रकृति वर्णन—दास की कविता में प्रकृति वर्णनों का प्रायः अभाव है और इसका कारण रीतिकालीन परम्परा की देन ही कहा जा सकता है। उस काल में मानवप्रकृति का सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण अवश्य किया गया परन्तु प्रकृति की अधिकतर उपेक्षा की गयी। यह

१. शृंगार निर्णय, पृ० १०४-१०५। २. शृंगार निर्णय, पृ० २२।
३. रस सारांश, पृ० ६।

ठीक है कि अनेक कवियों ने प्रकृति को अन्तस् के भावों के अनुरूप सुखदुखमय चित्रित करने का प्रयास किया है, और दास जी ने भी कई स्थलों पर ऐसा किया है, परन्तु सामान्यतया प्रकृति का स्वतंत्र रूप से वर्णन रीतिकाल में हमें कम ही मिलता है। दास में भी यह वर्णन यत्र तत्र ही हुआ है।

दास जी ने बसन्त ऋतु की चांदनी का एक चित्र नीचे लिखी पंक्तियों में चित्रित किया है जिसमें उन्होंने प्रकृति के विविध रूपों का उद्दीपन विभाव रूप में चित्रण किया है।

परम उदार महाराज रितुराज आजु बिमल जहानु करिबे की रुचि ठाई है।
सेत कर रज कर जाइ पाइ ताही समै अंबर की शोभा करि उज्जल दिखाई है।
छटा जनु जानो तरु अटा अरु दिवालनि मैं व्योत करि आछी बिधि वाही सो मढ़ाई है।
चहूं ओर अवनि बिराजै अवदात देखो ऐसी अद्भुत एक चांदनी बिछाई है।[1]

नायिका चंद्रमा से उपालंभ करती है कि भले ही तुम अपनी तीक्ष्ण किरणों से मेरे शरीर को छेद डालो पर मैं मरूँगी नहीं क्योंकि जब मैं कोकी की कूक, समीर के ताप आदि के घावों का अनादर कर चुकी हूं, जलता हुआ चन्दन शरीर पर धारण करके भी जीवित रह चुकी हूं तो तू ही मेरा क्या बिगाड़ लेगा ? यहां विरह विदग्धा के लिए प्राकृतिक वस्तुएं दुखदायी प्रतीत हो रही हैं।

कोकी कूक लूकनि समीर तेज तापनि को घने घने घायनि को राख्यौ है निदरि है।
बैठि कै हुतासन से फूलन के डासन मैं बरत ही चंदन चढ़ायो धीर धरि है।
सांझ ही ते कीन्हचो है तहस नहसन सो मैं तेरियै वहस आई बाहिर निसरि है।
तीखे तीखे तीरननि छेदि क्यों न डारै तनु येरे मंद चंद मैं न तेरे मारे मरिहै।[2]

प्रिय के परदेश में रहने के कारण प्राकृतिक पदार्थ नायिका को व्याकुल कर रहे हैं—

पावस प्रबेश पिय प्यारे परदेश छायो अंदेश करि झाँके चढ़ि महल दरी दरी।
बकन की पांति इन्दुबधुन की कांति भांति भांति लखि बादर बिसूरति घरी घरी।
पवन की झूकैं सुनि कोकिल की कूकैं सुन उठत हिय हूकैं लगै कापन डरी डरी।
परी अलबेली हिय खरी तलबेली तकै हरी हरी बेली बकै व्याकुल हरी हरी।[3]

राधा के विरह में कृष्ण की क्या दशा होती है इसका चित्रण करने के लिए कवि ने प्राकृतिक पदार्थों का ढेर सा लगा दिया है। कृष्ण आम के बौरों का संग्रह कर रहे हैं क्योंकि विरह में उनकी 'बौरई'—पागलपन—जैसी अवस्था है। वे खंजन, चकोर, परेवा, पिक, मोर, शुक, भंवर आदि पक्षियों को एकत्र कर रहे हैं क्योंकि उनमें उन्हें राधा के अंगों तथा गति आदि का आभास मिलता है। वे पुष्पहारों, सोनजुही की झाड़ियों तथा चम्पक की डालियों का आलिंगन कर रहे हैं क्योंकि इन वस्तुओं का सौंदर्य बहुत कुछ राधा जैसा ही है।

१. रस सारांश, पृ० ५६।
२. रस सारांश पृ० ११०-१११।
३. रस सारांश पृ० ८६।

तो बिनु बिहारी मैं निहारी गति औरई में, बौराई के वृन्दन समेटत फिरत हैं।
दाड़िम के फूलन में दास दार्यो दाना भरि, चूमि मधु रसन लपेटत फिरत हैं।
खंजन, चकोरन, परेवा, पिक मोरन, मराल, सुक, भौंरन समेटत फिरत हैं।
कोसमीर हारन को सोनजुही भारन को चम्पक की डारन को भेंटत फिरत हैं।[1]

(२) शैलीपक्ष

शैली पक्ष के अन्तर्गत दास जी के काव्य में हमें प्रायः उन सभी काव्य उपकरणों का विवेचन मिलता है जो किसी रचना को उत्कृष्ट बनाने में सहायक होते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दास ने 'विष्णुपुराण भाषानुवाद' नामक ग्रन्थ को छोड़ कर अन्य ऐसे किसी भी ग्रन्थ की रचना नहीं की जिसमें किसी न किसी प्रकार की प्रबन्धात्मकता मिलती हो। वे मुख्यतः आचार्य थे और गौणतः कवि। इसी कारण उनके ग्रन्थों में काव्य-शास्त्र के विविध विषयों के लक्षणों का विशेष रूप से विवेचन हुआ है। इन लक्षणों को अधिक स्पष्ट बनाने के लिए उन्होंने उदाहरणों का ही आश्रय लिया है। अतः उनके काव्य के शैली पक्ष का जो भी प्रस्फुटन हुआ है वह इन्हीं उदाहरणों में हुआ है। स्फुट होने के कारण इन उदाहरणों में रस, अलंकार आदि के विविध अंगों जैसे भाव, अनुभाव, व्यभिचारी भावों का विशेष अभाव तो नहीं है, हां इन पक्षों का उनमें उतना बाहुल्य नहीं मिलता जितना किसी ऐसे कवि में देखने को मिल सकता है जिसने प्रबंधात्मक रूप में अपने ग्रन्थों का निर्माण किया हो।

जहाँ तक रस, छंद और अलंकार का सम्बन्ध है यह कहना अत्युक्ति नहीं प्रतीत होता कि दास के भावचित्र सरस तथा उनकी उक्तियां अलंकारिक हैं। साथ ही उनके द्वारा प्रयुक्त विविध प्रकार के छंदों में भी प्रवाह है। हमें दास की कविता में रस और अलंकार आदि काव्य-उपकरणों के प्रयोगों की पटुता तथा उनके काव्य की प्रभावात्मकता के दर्शन बराबर होते हैं। दास का निम्नलिखित छंद हिन्दी साहित्य के सर्वोत्तम उदाहरणों में स्थान पाने का अधिकारी है इसमें हमें सन्देह नहीं—

चंद कहैं तिय आनन सों जिनकी मति बांके बखान सों है रली।
आनन एकता चंद लखै मुख के लखे चंद गुमान घटै अली।
दास न आनन सो कहैं चन्द दई सों भई यह बात न है भली।
ऐसो अनूप बनाइ कै आनन राखिबे को ससिहू की कहा चली।[2]

इस उदाहरण में पांचों प्रतीपों का तो एकसाथ समावेश है ही साथ ही उसमें नायिका-सौंदर्य का चित्रण करने वाली उक्ति भी कितनी चमत्कारपूर्ण है इसका अनुमान सहज ही में लग सकता है।

दास ने रस, अलंकार और छंदों का विवेचन करते हुए उन्हें अपने ग्रन्थों में विशिष्ट स्थान दिया है। वस्तुतः दास के काव्य निर्णय, शृंगार निर्णय तथा छंदोर्णव पिंगल नामक ग्रन्थ ही क्रमशः अलंकार, रस तथा छंद शास्त्र पर लिखे गये उनके मौलिक ग्रन्थ हैं जिनका

१. काव्य निर्णय, पृ० २४८, २४६। २. काव्य निर्णय, पृ० २३।

विद्वानों में बड़ा आदर रहा है। प्रस्तुत निबन्ध में कवि द्वारा विवेचित इन विषयों के शास्त्रीय पक्ष पर भी अलग से विचार किया गया है।[1]

भाषा विवेचन

ब्रज भाषा की व्यापकता—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का मत है "हिन्दी साहित्य में आकर ब्रज शब्द पहले पहल मथुरा के चारों ओर के प्रदेश के अर्थ में मिलता है किन्तु इस प्रदेश की भाषा के अर्थ में यह शब्द हिन्दी साहित्य में भी बहुत बाद को प्रयुक्त हुआ है। कदाचित् भिखारीदास कृत 'काव्यनिर्णय' (सं० १०८०३) में ब्रज भाषा शब्द पहले पहल आया है। जैसे 'भाषा ब्रज भाषा रुचिर, या ब्रज भाषा हेतु ब्रज वास ही न अनुमानो'। प्राचीन हिन्दी कवियों ने केवल भाषा शब्द समकालीन साहित्यिक देश भाषा, ब्रज भाषा या अवधी के लिए प्रयुक्त किया है जैसे 'का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए सांच' 'ताही ते यह कथा यथामति भाषा कीनी' इसी भाषा नाम के कारण उर्दू लेखक ब्रज भाषा को 'भाखा' कह कर पुकारते थे। काव्य की भाषा होने के कारण राजस्थान में ब्रज भाषा 'पिंगल' कहलाई"।[2]

जिस समय भिखारीदास ने ब्रज भाषा में रचना आरम्भ की उस समय तक ब्रज भाषा बहुत अधिक समृद्ध हो चुकी थी और सूर तुलसी आदि भक्तिकालीन महा कवियों की लेखनी से प्रस्फुटित होकर केशव, तोष, मंडन, कुलपति, सुखदेव मिश्र, श्रीपति, मतिराम, भूषण, देव, आदि लब्धप्रतिष्ठ रीतिकालीन कवियों के हाथों में पड़कर बहुत कुछ प्राञ्जल बन चुकी थी। ब्रज भाषा के सहज सौंदर्य एवं लालित्य ने इसके क्षेत्र को तथाकथित चौरासी कोस से बढ़ाकर सहस्रों कोस तक पहुंचा दिया था। उत्तर प्रदेश (तत्कालीन संयुक्त प्रान्त), मध्य प्रदेश, बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, काठियावाड़ और दक्षिण भारत तक में ब्रज माधुरी का गान होने लगा था और बंगाली, गुजराती, मैथिल और मद्रासी कवि तक ब्रज भाषा में कविता करने लगे थे।[3] भूषण की ओजपूर्ण कविता से तो यह बात भी सिद्ध हो चुकी थी कि जो भाषा साधारण जनों में उत्कट शृंगार रस का प्रादुर्भाव करने की सहज क्षमता रखती है वही समरांगण में योद्धाओं और वीरों में उत्साह और जोश भी फूंक सकती है, कायरों को शूरवीर और निष्क्रियों को सक्रिय बना सकती है। इसके व्यापक प्रचार व प्रसार का एक स्वाभाविक परिणाम यह भी हुआ कि तत्कालीन अनेक बोलियाँ अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखने में पूर्णतः सफल न हो सकीं। उत्तर-पूर्व में कन्नौजी तथा दक्षिण में बुन्देलखंडी बहुत कुछ ब्रज भाषा से प्रभावित हुईं और इन दोनों से ब्रज भाषा प्रभावित हुई। ब्रज भाषा ने अनेक बोलियों तथा स्वतंत्र भाषाओं से बहुत कुछ ग्रहण किया था और इन सबके समन्वय से वह सशक्त भी हुई थी। स्वयं भिखारीदास ने लिखा है :

> भाषा ब्रज भाषा रुचिर कहैं सुकवि सब कोइ।
> मिलै संस्कृत पारसिहु पै अति प्रगट जु होइ।
> ब्रज मागधी मिलै अमर नाग जमन भाषानि।
> सहज पारसीहू मिले षटविधि कवित बखानि।[4]

---

१. देखिये 'आचार्यत्व' वाला खंड। २. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रज भाषा व्याकरण, पृ० १०।
३. किशोरीदास बाजपेयी: ब्रज भाषा का व्याकरण, पृ० ८५-८६। ४. का० नि०, पृ० ६।

अतः स्पष्ट है कि ब्रज भाषा में मागधी, संस्कृत, अपभ्रंश, प्राकृत, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का ग्रहण होने लगा था और इन सबसे समन्वित ब्रज भाषा ही सुन्दर भाषा मानी जाती थी। 'दास' का भी यही विचार था जैसा कि उन्होंने कहा है :

तुलसी गंग दुग्रौ भये सुकविन्ह के सरदार।
इनकी काव्यन्ह में मिली भाषा विविध प्रकार।[1]

ब्रज भाषा का आरम्भिक रूप—ब्रज भाषा का उत्कृष्ट एवं ललित रूप हमें अष्टछाप सम्प्रदाय के कवियों और उनमें भी विशेषतया सूर में प्राप्त होता है। इस सम्प्रदाय के पूर्ववर्ती सन्त सम्प्रदाय की परम्परा के मुख्य कवि हुए हैं। हठयोगी गुरु गोरखनाथ, स्वामी रामानन्द जी के शिष्य पीपा, सेना, धना, रैदास तथा कबीर, नानक, महाराष्ट्र कवि त्रिलोचन और नामदेव। इन कवियों ने जिस सन्त साहित्य की रचना की 'उसकी भाषा का रूप एक अनिश्चित तथा मिश्रित भाषा का रूप था। इसमें पूर्वी, अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली, ब्रज भाषा और पंजाबी का मिश्रण मिलता है। अष्टछाप की भाषा पर सन्त काव्य की मिश्रित भाषा का हमें कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं मिलता'।[2]

सन्त साहित्य में ब्रज भाषा का निखरा हुआ रूप नहीं पाया जाता था अन्यथा अष्टछाप सम्प्रदाय के कवियों ने उसे अपने काव्य की पृष्ठभूमि के रूप में अवश्य अपनाया होता। ब्रज भाषा के निखरेपन के अभाव का एक कारण यह भी था कि 'सन्त कवि बहुधा अनपढ़ तथा संगीत और काव्यकला के शास्त्रीय ज्ञान से अनभिज्ञ थे'। सन्त कवि नामदेव की भाषा को ब्रज भाषा का एक साहित्यिक रूप माना जा सकता है परन्तु इस सम्बन्ध में डा० दीनदयाल गुप्त का मत है 'हां यदि नामदेव जी के नाम से हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों में उद्धृत की जाने वाली भाषा का ब्रज भाषा रूप नामदेव जी ही द्वारा लिखित है, तब तो उनकी भाषा में ब्रज भाषा के एक ऐसे साहित्यिक रूप का नमूना मिल जाता है जिसको सूर और परमानन्द दास की परिष्कृत साहित्यिक ब्रज भाषा की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है। परन्तु उस भाषा के नामदेव कृत होने में सन्देह है। कदाचित् ब्रज भाषा की मौखिक परम्परा ने उसे इस प्रकार की भाषा का रूप दे दिया है'।[3]

ब्रज भाषा का माधुर्य एवं सौष्ठव—ब्रज भाषा भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन कवियों द्वारा इतनी व्यापकता के साथ क्यों ग्रहण हुई इसके अनेक कारण थे। इस भाषा का विकास कृष्ण की लीला भूमि ब्रज (वृन्दावन) तथा मथुरा के आसपास हुआ। डा० धीरेन्द्र वर्मा गोवर्द्धन में संवत् १५५६ सुदी ३ आदित्यवार को साहित्यिक ब्रज भाषा की जन्मतिथि

१. काव्यनिर्णय, पृ० ६।
२. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० १८-१९।
३. डॉ० दीनदयालु गुप्त : अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय पृ० १९।

बताते हैं।[1] यहां पर वल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना होने तथा वल्लभाचार्य के शिष्यों द्वारा, जिनमें सूरदास सर्व प्रतिष्ठित थे, ब्रज भाषा में रचना किये जाने के कारण कृष्ण भक्ति की रसधारा बहती रही और भक्त कवियों ने भक्ति के विभिन्न रूपों का दिग्दर्शन जनता को कराया और कालान्तर में इसी क्षेत्र के आसपास अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैताद्वैत आदि अनेक धार्मिक सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन तथा खंडन मंडन हुआ। फलतः यह क्षेत्र हमारी सांस्कृतिक विचारधारा का भी एक अजस्र स्रोत बना। विचारों के आदान प्रदान तथा भक्ति रस की कविता ने ब्रज भाषा में आर्द्रता, कोमलता तथा माधुर्य आदि गुणों का विकास किया। विद्वानों ने ब्रज भाषा का जन्म शौरसेनी प्राकृत से माना है। अतः इसमें इस प्राकृत का माधुर्य गुण भी आ गया है। कुछ अपवादों को छोड़कर ब्रज भाषा में श, ष का स, ण का न, य का ज आदि में परिवर्तन भाषा माधुर्य का ही द्योतक है। ब्रज भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्द अनेक तद्भव रूपों में प्रयुक्त हुए हैं जैसे कृष्ण के लिए कान्ह, कान्हा, कान्हर, कन्हैया आदि। फलतः गीतों, पदों आदि में तुक बिठलाने में बड़ी सुविधा हो गयी। इस भाषा के मधुर होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इस भाषा को संगीत शास्त्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त है और यह अत्युक्ति नहीं कि संगीतशास्त्री, चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, पंजाबी, गुजराती, पारसी कोई भी हो, जब भी अपना शास्त्रीय संगीत आरम्भ करेगा तो उस पद की भाषा अधिकतर ब्रज ही होगी। ब्रज भाषा ने संगीत के रूप को निखारा है और संगीत ने ब्रज भाषा की मधुरता में वृद्धि की है।

ब्रज भाषा में अर्थाभिव्यक्ति की शक्ति संस्कृत को छोड़कर अन्य प्रायः सभी भाषाओं से अधिक है, उदाहरणार्थ 'रामहि नमत' में जो सौष्ठव, अर्थाभिव्यक्ति तथा संक्षिप्तता है वह 'राम को प्रणाम करता है' में नहीं है। इसीलिए तो दास जी ने ब्रज भाषा के लिए 'भाषा ब्रज भाषा रुचिर' कहा है।

वास्तविकता तो यह है कि ब्रज भाषा को उसके सहज माधुर्य, लालित्य तथा अर्थध्वनन शक्ति के कारण ही भक्तिकालीन तथा रीतिकालीन कवियों ने अपनाया। आचार्य-कवियों जैसे भिखारीदास, मतिराम, केशव आदि ने तो इसमें अपनी विद्वत्ता के कारण मणिकांचन का सा योग कर दिया है।

ब्रज भाषा की प्रकृति—भिखारीदास के भाषा विषयक परीक्षण के लिए यह आवश्यक है कि पहले ब्रज भाषा की सामान्य प्रकृति का परिचय दिया जाय और तब उसके अनुसार भिखारीदास की भाषा का परीक्षण किया जाय।[2] किसी भाषा की प्रकृति का निर्णय करने

१. इलाहाबाद के निकट मुख्य केन्द्र अरैल (अडेल) के अतिरिक्त जिस समय श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य को ब्रज जाकर गोकुल तथा गोवर्द्धन को अपना द्वितीय केन्द्र बनाने की प्रेरणा हुई उसी तिथि से ब्रज की प्रादेशिक बोली के भाग्य पलटे। संवत् १५५६ वैशाख सुदी ३, आदित्यवार, को गोवर्द्धन में श्रीनाथ जी के विशाल मन्दिर की नींव रखी गयी थी। यही तिथि साहित्यिक ब्रज भाषा के शिलान्यास की तिथि भी मानी जा सकती है।

डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रज भाषा व्याकरण, पृ० ११।

२. व्याकरण के रूप आदि का आधार श्री किशोरीदास बाजपेयी का 'ब्रज भाषा का व्याकरण', डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का 'ब्रज भाषा व्याकरण' तथा डॉ० नगेन्द्र का 'देव और उनकी कविता' है।

में उस भाषा का व्याकरण विशेष रूप से सहायक होता है जब कि उसका शब्द समूह अन्य भाषाओं के आदान प्रदान द्वारा सदा परिवर्तनशील रहता है। इसी कारण हम ब्रज भाषा व्याकरण के कुछ सामान्य नियमों पर अपने प्रयोजन भर के लिए प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

उच्चारण—ब्रज भाषा में उच्चारण सम्बन्धी कुछ विशिष्ट बातें हैं। ब्रज भाषा में दैबो, जैयो आदि का उच्चारण दइबो, जइयो की भांति तथा अवधी के कुआर और पिआर का क्रमशः क्वार और प्यार की भांति होता है। अर्थात् ब्रज के इ और अ के स्थान पर य तथा उ और अ के स्थान पर व हो जाता है। ब्रज भाषा में अनुनासिकता की प्रवृत्ति भी मिलती हैं। इस सम्बन्ध में डा० धीरेन्द्र वर्मा का मत है—

'अनुनासिकता की प्रवृत्ति बुन्देली तथा पूर्वी राजस्थानी से आती हुई ग्वालियर, आगरा, मथुरा व मैनपुरी तक आजकल भी फैली मिलती है। अतः राजस्थान, बुंदेलखंड तथा ब्रज प्रदेश के लेखकों में सानुनासिक रूपों का प्रयोग मिलना अधिक स्वाभाविक है।'[1]

कारक और विभक्तियां

कर्ता : ने, नें, नै।[2]

कर्म : को, कों, को, कौं, हिं, सों।

करण : सों, सौं, तें,ते, पै, पैं, पर।

सम्प्रदान : कौ, कों, कौ, कौं, हिं।

अपादान : सों, सौं, तें, ते, पै, पैं, पर।

सम्बन्ध : को, कों, कौ, के, कें, कै, कैं, की, कि।[3]

अधिकरण : में, मैं, मै, माँझ, पै, पर, महँ, माँहि' माँय।

संज्ञा—पुल्लिंग संज्ञाएं प्रायः ओकारान्त होती हैं जैसे घोड़ो, बिछौनो, भावतो आदि।

विशेषण—खड़ी बोली के विशेषण प्रायः ओकारान्त हो जाते हैं जैसे भलो, थोरो, दूजो, चौथो आदि।

सर्वनाम

उत्तम पुरुष

	एक वचन	बहुवचन
मूल रूप	हौं, हों, हूं, हुं, मैं, में।	हम
विकृत रूप	मो, मौ।	हम

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रज भाषा व्याकरण, पृ० ४४।

२. ने, सों, में, कौं आदि विभक्तियां कर्ताकारक के साथ आती हैं पर कर्मवाच्य या भाववाच्य क्रिया होने पर ही। हो सकता है इसका अपवाद विस्तृत ब्रज भाषा साहित्य में कहीं मिल जाय पर मुख्य नियम यही है।

किशोरीदास बाजपेयी : ब्रज भाषा का व्याकरण, पृ० ११०।

३. किशोरीदास जी संबोधन को कारक नहीं मानते।

किशोरीदास बाजपेयी : ब्रज भाषा का व्याकरण, पृ० ३५।

	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	मैं, हौं, (प्रान्त-भेद से हों और हुं भी)।	हम।
कर्म-सम्प्रदान	मोकों, मोकूं, मोहिं, मोहि आदि।	हमकों, हमकूं हमहिं, हमैं
करण-अपादान	मोसों, मोसैं, मोतैं।	हमसों, हमसैं, हमतैं
सम्बन्ध	मेरौ, मेरो, मेरे, मेरी।	हमारौ, हमारो, हमारे, हमारी।
अधिकरण	मोमें, मोपै आदि।	हममें, हमपै आदि।

मध्यम पुरुष

	एक वचन	बहुवचन
मूल रूप	तू, तूं, तैं, तें।	तुम
विकृत रूप	तो	तुम

	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	तू, तैं।	तुम
कर्म-सम्प्रदान	तोकों, तोकूं, तोहि आदि।	तुमकों, तुमकूं, तुमहिं, तुम्हैं।
करण-अपादान	तोसों, तोसैं, तोतैं।	तुमसों, तुमसैं, तुमतैं।
सम्बन्ध	तेरौ, तेरो, तेरे, तेरी।	तुम्हारौ, तुम्हारे, तिहारौ, तिहारे आदि।
अधिकरण	तोमें, तोपै इत्यादि।	तुममैं, तुमपै आदि।

अन्य पुरुष

	एक वचन	बहुवचन
मूल रूप	वह	वे, वै।
विकृत रूप	वा	उन, विन।
अन्य रूप	वाहि	

अन्य रूप

	एक वचन	बहुवचन
कर्ता	वह, वो, वु आदि।	वे
कर्म-सम्प्रदान	वाकों, वाकूं, वाहि।	उनको, उनकूं, उनहि, उन्हैं।
करण-अपादन	वासों, वासैं, वातैं।	उनसों, उनसैं, उनतैं।
सम्बन्ध	वाकौ, वाको, वाके, वाकी।	उनकौ, उनको, उनके, उनकी।
अधिकरण	वामें, वापै आदि।	उनमैं, उनपै आदि।

संकेतवाचक, सम्बन्ध वाचक, प्रश्नवाचक, नित्यसम्बन्धी सर्वनामों के रूप प्रायः अन्य पुरुष के ही अनुसार चलते हैं।

क्रिया

ब्रज भाषा में क्रिया के सामान्य रूप प्रायः ओकारान्त होते हैं जैसे करिवो, पढिबो, बसिबो, पढ़नो, रहनो आदि।

वर्तमान काल—वर्तमान काल की क्रियाएं ब्रजभाषा तथा अवधी में प्रायः एक ही तरह की होती हैं। यहां 'आ' का ह्रस्व कर दिया जाता है जैसे करता है, रहता है आदि का

करत (है), रहत (है) और कहीं कहीं पर करतु (है) तथा रहतु (है) भी हो जाता है। स्त्रीलिंग में यही 'रहति है' और 'करति है' हो जाता है (कहीं कहीं खड़ी बोली की भांति 'रहती है' और 'करती है' जैसे रूप भी मिलते हैं)। इसके अतिरिक्त वर्तमान काल में चलै, चलौं, चलौ आदि रूप भी होते हैं। वर्तमान काल की क्रियाएं एक और प्रकार से भी बनती हैं—

	एक वचन	**बहुवचन**
अन्य पुरुष	करै	करैं
मध्यम पुरुष	करु	करौ
उत्तम पुरुष	करौं (करूं)	करैं

'होना' क्रिया के वर्तमानकाल के रूप—वर्तमान काल में 'होना' सहायक क्रिया के रूप साधारणतः इस प्रकार होते हैं—

	एक वचन	**बहुबचन**
उत्तम पुरुष	हौं, हूं, होत हौं, होंहुं आदि।	हैं, होत हैं, होंहिं आदि।
मध्यम पुरुष	है, होत है।	हौ, होत हौ, होहु।
अन्य पुरुष	है, होत है।	हैं, होत हैं।

ब्रजभाषा में कुछ क्रियाओं के स्वतंत्र भाववाच्य प्रयोग हैं जैसे कहियत, सुनियत आदि।

भूतकाल—भूतकाल में क्रिया का साधारण रूप 'ओ' अथवा 'औ' कहीं कहीं 'यो' अथवा 'यौ' लगाकर बनता है जैसे लियो, दियो, कियो और कहीं इनके रूप लीनो, दीनो और कीनो भी हो जाते हैं। स्त्रीलिंग में लीनी, दीनी, कीनी, दई, लई आदि रूप होते हैं।

'हुतो' आदि का योग करके भी भूतकाल के रूप बनते हैं—

	एकवचन	**बहुवचन**
पुल्लिंग	हो, हौ, हुतो, हुतौ, हतो।	हे, हुते, हते।
स्त्रीलिंग	ही, हुती, हती।	हीं, हुतीं।

भविष्यत् काल—भविष्यत् काल में क्रिया का साधारण रूप 'ग' लगाकर बनता है जैसे चलैगो, चलैंगे, चलैगी कहीं कहीं तजौंगो और चलौंगी आदि भी होते हैं। 'इह' प्रत्यय द्वारा भी इसके अनेक रूप बनते हैं जैसे चलिहैं, रहिहैं।

सहायक रूप	**एक वचन**	**बहुवचन**
उत्तम पुरुष	उंगो, औंगो, इहौं।	एंगे, यंगे, इहैं।
मध्यम पुरुष	ऐगौ, यगौ, इगौ, इहै	औगे, उगे, हुगे, इहौ।
अन्य पुरुष	ऐगो, यगौ, इगौ, इहै	यंगे, एंगे, हिंगे, इहैं।

आज्ञा, विधि, प्रार्थना आदि

आज्ञा

	एक वचन	**बहुवचन**
उत्तम पुरुष	उं, ऊं	यँ, एं
मध्यम पुरुष	आ, (उ), हु	ओ, उ, हु
अन्य पुरुष	ए, ऐ, य, इ	यँ, एं

प्रार्थना

एक वचन में इयो, ईजियो तथा बहुवचन में इये, ईजिये और ईजै के योग से शब्द बनते हैं—

सम्भावना

	एक वचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	तो	"
मध्यम पुरुष	तो	"
अन्य पुरुष	तो	"

कृदन्त

		एक वचन	बहुवचन
वर्तमानकालिक—	पुल्लिग	त, अत, अतु ।	
	स्त्रीलिंग	ति, अति, अती ।	
भूतकालिक—	पुल्लिग	ओ, औ, यो, यौ	ए, ये, यै
	स्त्रीलिंग	ई, यी	ईं, यीं

पूर्वकालिक—१. 'इ' प्रत्यय पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग दोनों ही में लगता है। कभी कभी 'इ' का 'य' हो जाता है।

२. कभी कभी पूर्वकालिक कृदंत अपनी पूर्ति के लिए के, कै आदि की अपेक्षा करते हैं।

ऊपर ब्रज भाषा व्याकरण के नियमों के अन्तर्गत कुछ रूप दिये गये हैं, जिनसे केवल ब्रजभाषा की प्रकृति का अनुमान लगाया जा सकता है। 'दास' ने ब्रजभाषा में ही अपने ग्रन्थों की रचना की है, अतः उनमें उपर्युक्त रूपों का प्रयोग मिलेगा। साथ ही उनकी भाषा में उन सभी नियमों का समावेश मिलेगा जो वैयाकरणों ने ब्रजभाषा के लिए निर्दिष्ट किये हैं। उन सबके उदाहरण देना स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं। फिर भी हम 'दास' द्वारा प्रयुक्त ब्रजभाषा की कुछ विशेषताओं का दिग्दर्शन कराने का प्रयास करेंगे।

अनुनासिकता—अनुनासिकता का समावेश दास ने अनेक स्थानों पर किया है जिससे भाषा के प्रवाह में लालित्य आ गया है, उदाहरणार्थ—

१. भिन्न भिन्न बरनन करै इन सब **कों** कविराय।
सब ही **कों** करि एक पुनि देत रसै ठहराय।[1]

२. जातैं **उनैं** सुधि जोग की आई दया कै वहै हमहूं को पठावैं।[2]

सर्वनाम

दास जी की रचनाओं में ब्रजभाषा के नियमों के अनुसार सर्वनामों का निम्नलिखित रूप मिलता है।

---

१. काव्य निर्णय, पृ० ३२। २. शृंगार निर्णय पृ० २६।

(१) कहीं तो एकवचन, उत्तम पुरुष, सर्वनाम अपने मूलरूप में मिलते हैं जैसे—

१. **मैं**—हिन्दूपति साहेब के गुन **मैं** बखाने।[1]

२. **हौंहूं**—तैंहूं कहै अरु **हौंहूं** लख्यो यहि ऊपर चित्त रह्यौ चढ़ि मेरो।[2]

और कहीं अपने विकृत रूप में जैसे—

मो— **मो** सम जे ह्वैहैं ते विशेष सुख पैहैं…[3]

(२) बहुवचन में उत्तमपुरुष सर्वनामों के रूप मिलते हैं, जैसे—

हम—**हम** ताही कलानिधि काम की जानैं…[4]

(३) सम्बन्ध कारक एकवचन उत्तमपुरुष का निम्नलिखित रूप अधिकता के साथ मिलता है—

मेरौ—तैंहूं कहै अरु हौंहूं लख्यो यहि ऊपर चित्त रह्यो चढ़ि **मेरौ**।[5]

इसी का बहुवचन रूप भी देखने को मिलता है—

हमारौ—मृगराज जिय जानै कै **हमारौ** गुन गान है।[6]

(४) कर्मकारक बहुवचन में उत्तमपुरुष सर्वनाम के 'हमैं' रूप की भी प्रचुरता मिलती है।

हमैं—**हमैं** भयो सुरलोक सुख…[7]

(५) मध्यम पुरुष एकवचन में तू, तैं अपने मूल रूप में तथा तो विकृत रूप में मिलते हैं—

तू—**तू** ही है बाम गोविंद को रोचक…[8]

तैं—**तैं** हूं कह्यो अरु…[9]

तो—**तो** ही कलानिधि काम की जानैं।[10]

क्रिया

दास की रचनाओं में हमें क्रिया के अनेक रूप मिलते हैं।

वर्तमान काल—दास की कविता में वर्तमान काल की क्रियाएं ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार अधिकता से मिलती हैं। निम्नलिखित उदाहरणों में निकसै, जरै, परै क्रियाएं अन्यपुरुष एक वचन में प्रयुक्त हुई हैं।

१. उपरैनी धरे सिर भावती की प्रति रोम पसीनन यों **निकसै**।[11]

२. भूख प्यास भागी विदा मांगी लोकलाज मुख,

तेरी जक लागी अंग सीरै छ्वै **जरै**।

दास जिहि लागि कोऊ एतो तलफत,

वा कसाइन सों कैसे दई धीरज धरो **परै**।[12]

---

१. काव्य निर्णय, पृ० ६६। २. काव्य निर्णय, पृ० ६३। ३. काव्य निर्णय पृ० ३। ४. काव्य निर्णय पृ० ११४। ५. काव्य निर्णय, पृ० ६३। ६. काव्य निर्णय, पृ० ६६। ७. काव्य निर्णय, पृ० २७। ८. काव्य निर्णय, पृ० ११४। ९. काव्य निर्णय, पृ० ६३। १०. काव्य निर्णय, पृ० ११४। ११. शृंगार निर्णय, पृ० ७,८। १२. शृंगार निर्णय, पृ० ३३।

वर्तमान काल के स्त्रीलिंग एकवचन अन्यपुरुष में 'है' सहायक क्रिया के साथ इकारान्त तथा ईकारान्त दोनों क्रियाएं मिलती हैं जैसे—

१. पान औ खान तें पी को सुखी लखै आपु तवै कछु **पीवति खाति** है ।[1]

२. आवर्त सोमव्रती सब संग ही गंग नहान कियौ **चहती** हैं ।[2]

कहीं कहीं ये योग क्रियाओं में 'ह' लगाकर भी हुए हैं, जैसे—

जहां यह श्यामता को अंक है मयंक में तहांई स्वच्छ छबिहि सुधानि विधि **लीन्ही** है ।[3]

भूतकाल - भूतकालिक क्रियाओं में 'य' के योग से बने हुए रूप मिलते हैं, जैसे विकस्यो, हुत्यो (था के अर्थ में), अनुमानी (अनुमान किया) आदि—

१. बदन प्रभाकार लाल लखि **विकस्यो** उर अरबिन्द ।[4]

२. कहौ रहै क्यों निसि बस्यौ **हुत्यो** जु मान मलिन्द ।[5]

३. कोऊ कहै करहाट कै तन्तु में काहू परागन में **अनुमानी** ।[6]

भविष्यत् काल—भविष्यत् काल में ज्वैहै ह्वैहै, छ्वैहै आदि क्रियाओं के रूप एक वचन अन्य पुरुष के साथ मिलते हैं, उदाहरणार्थ—

दास बड़े कुल की बतियां बतियां परवीनी सी जीवन **ज्वैहै** ।
बाहिर **ह्वैहै** न जाहिर और अनाहिर लोग की छाँह न **छ्वैहै** ।[7]

इसी प्रकार ह्वैहैं, पैहैं आदि का भी बहुवचन में प्रयोग मिलता है जैसे—

मो सम जे **ह्वैहैं** ते विसेष सुख **पैहैं**···[8]

कहीं कही प्रार्थनार्थक क्रियाओं में 'ईजै' प्रत्यय के योग से भी शब्दों का निर्माण हुआ है। निम्नलिखित उदाहरण में मध्यमपुरुष सर्वनाम में इसी प्रकार का एक योग देखने को मिलता है—

ऊधो अहीरन के गुरु हैं इनकी सिर आयसु मानि ही **लीजै** ।
गुंज के गंज गहो तजि लालन डारि सुधा विष संग्रह **कीजै** ।[9]

संभावनार्थक क्रियाएं बहुवचन में 'ते' प्रत्यय लगाकर वनी हैं—

अलिन के गन खन खन तन **भारते** ।[10]

ब्रज भाषा की प्रकृति के अनुसार आज्ञार्थक क्रियाएं मध्यमपुरुष एकवचन में निम्नलिखित रूपों में मिलती हैं, जैसे—

ल्याउ ल्याउ ज्याउ ज्याउ रूप रस **प्याउ प्याउ** राधे राधे कान्ह ही लों ललितै सुनावती ।[11]

---

१. शृंगार निर्णय पृ० २३ ।
२. शृंगार निर्णय, पृ० ४० ।
३. शृंगार निर्णय, पृ० १७ ।
४. काव्य निर्णय, पृ० ४२ ।
५. काव्य निर्णय, पृ० ४२ ।
६. काव्य निर्णय, पृ० ११६ ।
७. शृंगार निर्णय, पृ० ४४ ।
८. काव्यनिर्णय, पृ० ३ ।
९. काव्यनिर्णय, पृ० १६७ ।
१०. काव्यनिर्णय, पृ० २२१ ।
११. शृंगार निर्णय, पृ० ४९ ।

दास के निम्नलिखित उदाहरण में क्रियाओं की सुन्दर योजना मिलती है—

नैनन को **तरसैये** कहां लौं कहां लौं हियो विरहागि में **तैये**।
एक घरी न कहूं कल **पैये** कहां लगि प्राननि को **कलपैये**।
आवै यही अब जी में विचार सखी चलि सौतिहू के गृह **जैये**।
मान घटे तें कहा घटिहै जुपै प्रानपियारे को देखन **पैये**।[1]

उक्त उदाहरण में प्रथम पंक्ति में तरसैये तथा तैये शब्दों में 'य' प्रत्यय का, जिसका प्रयोग प्रायः भाववाच्य में होता है, एकारान्त प्रयोग मिलता है। इस योजना द्वारा ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार मन में उठने वाले तर्क वितर्कों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। तृतीय पंक्ति में जैये' शब्द विध्यर्थक क्रिया का द्योतक है और अन्तिम पंक्ति का 'पैये' सम्भावनार्थक का।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दास के काव्य में क्रियाओं के विविध रूप मिलते हैं। उनकी कविता में पायी जाने वाली प्रेरणार्थक क्रियाओं का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

उठि आपुही आसन दै रस प्यार सों लाल सों आँगी **कढ़ावति** है।
पुनि ऊंचे उरोजनि दै उर बीच भुजान के मध्य **मढ़ावति** है।
रसरंग मचाइ नचाइ कै नैनन्ह अंग तरंग **बढ़ावति** है।
विपरीत की रीति में प्रौढ़ तिया चित चौगुनौ चोप **चढ़ावति** है।[2]

दास की भाषा सम्बन्धी कुछ अन्य विशेषताएं

(१) 'क्ष' के स्थान पर दास ने 'छ' अथवा 'च्छ' का प्रयोग किया है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

तीक्ष्ण—मेरो हियो पषान है तिय दृग **तीछन** बान।[3]
आक्षेप—कहै कहन की विधि मुकुरि कै **आछेप** सुवेस।[4]
अधरक्षत—वहै अपह्नुति **अधरछत** करत न पिय हिमवाय।[5]
संक्षेप—तेहि तें कछु **संचछेप** करि तिन्हहिं देत दरसाइ।[6]
लाक्षणिक—मुख्य अर्थ के बाध तें शब्द **लाच्छनिक** होत।[7]

(२) **शब्दों की आवृत्ति**—शब्दों की आवृत्ति पुनरुक्ति प्रकाश के रूप में 'दास' की कविता में अधिकतर पायी जाती है। कदाचित् इसका कारण यह रहा होगा कि 'दास' जी अपनी रचनाओं में कलात्मक प्रभाव की सृष्टि करने के अधिक इच्छुक थे। इस प्रकार के एक दो उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं—

१. काव्यनिर्णय पृ० ३६।
२. काव्यनिर्णय, पृ० १६१।
३. काव्यनिर्णय, पृ० ५६।
४. काव्यनिर्णय, पृ० २६।
५. काव्यनिर्णय, पृ० २४।
६. काव्यनिर्णय, पृ० २३।
७. काव्यनिर्णय, पृ० ११।

चंद चढ़ि देखौं चारु आनन प्रबीन गति,
लीन होत मात गजराजन को **ठिलि ठिलि** ।
बारिधर धारनि तें बारन यै ह्वै रहै,
पयोधरनि छ्वै रहै पहारनि को **पिलि पिलि** ।
दई निरदई दास दीनो है बिदेश तऊ,
करौं ना अँदेसो तुव ध्यान ही सो **हिलि हिलि** ।
एक दुख तेरो है दुखारी न त प्रानप्यारी,
मेरो मन तोसों नित आवत है **मिलि मिलि** ।[१]

इसी प्रकार का एक और उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

जानि जानि आवै प्यारी प्रीतम बिहार भूमि,
मानि मानि मंगल सिंगारन सिंगारती ।
दास दृग कंजन बँदनवार **तानि तानि**,
छानि छानि फूले फूले सेजहि संवारती ।
ध्यान ही में **आनि आनि** पी को गहि **पानि पानि**,
ऐंचि पट **तानि तानि** मैन मद झारती ।
प्रेम गुन **गानि गानि** पीउ बनि **सानि सानि**,
बानि बानि खानि खानि बैनन बिचारती ।[२]

मैं यह सोच **बिसूरि बिसूरि** करौं बिनती प्रभु सांझ पहाऊं ।[३]

(३) **संधियोग अथवा संधि विग्रह द्वारा समान योजना**—दास की कविताओं में इस प्रकार के उदाहरण प्रायः यमक अथवा अनुप्रास अलंकार के अन्तर्गत आये हैं। उदाहरणार्थ—

लीन्हों **सुख मानि सुखमा निरखि** लोचनन, नीरज **लजात जलजातन** बिहारिगो ।[४]

उपर्युक्त उदाहरण में सुखमानि के साथ सुखमा निरखि रख देने से 'सुखमा' की आवृत्ति होकर अर्थ में चमत्कार की सृष्टि हुई है। एक ही साथ संधियोग और संधिविग्रह का यह अच्छा उदाहरण है। इसी प्रकार के कुछ और रोचक उदाहरण दिये जा सकते हैं—

अरी सीअरी होन **को, ठरी कोठरी** नाहिं ।
जरी गूजरी जाति है **घरी दूघरी** माहिं ।[५]

नींद भूख प्यास उन्हैं व्यापत न **तावसी** लों **ताप सी** चढ़त तन चंदन लगाये तें ।[६]

(४) **समोच्चरित शब्द योजना**

दास में समोच्चरित शब्दों की योजना भी प्रायः दिखायी पड़ जाती है, उदाहरणार्थ—

१. शृंगार निर्णय, पृ० ९९–१०० । २. शृंगार निर्णय, पृ० ५४ ।
३. काव्यनिर्णय, पृ० ४६ । ४. का० नि०, पृ० २०१ ।
५. का० नि०, पृ० २०३ । ६. शृं० नि०, पृ० ९९ ।

मुख मोरत नैन की सैनन्ह दै अंग अंगन्ह दास देखाइ रही।
ललचौहें लजौहें हँसौहें चितै हित सों चित चाव बढ़ाइ रही।
मुरिकै अरिकै दृग सों भरिकै जुग भौंहनि भाव बताइ रही।
कनखा करिकै पग सों परिकै पुनि सूने निकेत में जाइ रही।[१]

इस उदाहरण में ललचौहें, लजौहें, हँसौहें, तथा मुरिकै, अरिकै, भरिकै, करिकै और परिकै आदि समोच्चरित शब्दों की योजना हुई है। इसी प्रकार के कुछ अन्य उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

बाँसुरी बजैबो गैबो चलिबो चितैबो मुसुकैबो अठिलैबो रावरे को गिरिधारी जू।[२]
नैनन को तरसैये कहां लौं कहां लौं हियो विरहागि में तैये।
एक घरी न कहूं कल पैये कहां लौं प्राननि को कलपैये।[३]

कहीं कहीं पर इस प्रकार के समोच्चरित शब्द केवल भरती के से शब्द प्रतीत होते हैं, उदाहरणार्थ—

संध्या के सुमन सूर सुअन मजीठ ईठ कोहर मनोहर की आभा के हरन हैं।
साहिब सहाब के गुलाब गुड़हर गुर ईंगुर प्रकाश दास लाली के लरन हैं।
कुसुम अनार कुरबिन्द के अँकुरकारी, निन्दक पवारी प्रानप्यारी के चरन हैं।[४]

ये समोच्चरित शब्द सभी जगह रुचिपूर्ण हुए हों ऐसी बात नहीं है। कहीं कहीं तो समोच्चरित शब्दों का जुटाव बहुत ही अखरता है, क्योंकि शब्दों की इस कलाबाजी में भावों का प्रायः लोप सा हो जाता है।

लहलह लता डहडह तरु डारें गहगह भयो गजन कै आयो कौन वरि है।
चहचह चिरी धुनि कहकह केकिन की घहघह घनसोर सुनि ते अखरि है।
दास यह यहहीं पवन डोलि महँ महँ रह रह यहई सुनावत दवरि है।
सहसह समर की वहवह बीज भई तहँ तहँ तिय प्रान लीबै की खबरि है।[५]

दास जी में उपर्युक्त जो कुछ विशेषताएं देखने में आती हैं वे उनकी निजी सम्पति नहीं कही जा सकतीं क्योंकि रीतिकाल में उन्हें ये सभी विशेषताएं परम्परा के रूप में प्राप्त हुई थीं। दास ने अपने भावों को केवल परंपरित भाषा में ही प्रस्तुत किया है। फलतः इस क्षेत्र में हमें दास जी में किसी मौलिकता के दर्शन नहीं होते।

भाषा की विविधता—जैसा पहले कहा जा चुका है दास जी उसी ब्रज भाषा को रुचिर मानते थे जो अन्य अनेक भाषाओं जैसे संस्कृत, प्राकृत, फारसी, मागधी आदि के शब्दों को आत्मसात् करके फिर भाव प्रकाशन में समर्थ हो सके। 'दास' जी ने अपने इस विचार को स्वयं अपने काव्य में चरितार्थ करके दिखाया है। उनकी भाषा में अनेक भाषाओं तथा बोलियों का मिश्रण उपलब्ध होता है जैसा हम क्रमशः देखेंगे—

१. का० नि०, पृ० २१। २. काव्य निर्णय, पृ० १८२।
३. काव्यनिर्णय, पृ० ३६। ४. काव्य निर्णय, पृ० ३०-३१।
५. श्रृंगार निर्णय, पृ० १००।

१. **संस्कृत**—दास जी ने अनेक स्थलों पर ऐसे वाक्यों एवं पदों का प्रयोग किया है जिनसे पाठक को संस्कृत के श्लोकों का सा आनन्द आता है। दास का ऐसा ही एक पद नीचे दिया जा रहा है—

करिवदन विमंडित ओज अखंडित पूरण पंडित ज्ञान परं।
गिरिनन्दिनिनन्दन असुर निकन्दन सुर उर चन्दन कीर्तिकरं।
भूषण मृग लक्षण वीर विचक्षण जनप्रणरक्षण पाश धरं।
जय जय गणनायक खगगणघायक दास सहायक विघनहरं।[1]

इस उदाहरण की प्रत्येक पंक्ति के अंतिम शब्द अनुस्वारांतक हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि वे संस्कृत के श्लोकों वाली शैली पर हैं। सम्पूर्ण पद संस्कृतपरक क्लिष्ट हिन्दी का सुन्दर नमूना है।

२. **तत्सम तथा तद्भव रूप**—दास ने यत्र तत्र संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव रूपों का भी अपने काव्य में प्रयोग किया है। उनके निम्नलिखित उदाहरण में रद, विवेक, अघ, विजन आदि शब्दों की योजना इसी ओर इंगित करती है।

एक रद हैं न शुभ्र शाखा बढ़ि आई लम्बोदर में विवेक तरु जो है शुभ्रवेस को।
शुण्डादण्ड कै तब हथ्यार है उदंड यह राखत न लेश अघ विघन अशेष को।
मद कहो भूलि न भरत सुधासार यह ध्यान ही तेहि को दृढ़ हरण कलेश को।
दास गृह विजन विचारो तिहूं तापनि को दूरि करने को वारो करण गनेस को।[2]

इस उदाहरण में विघन (विघ्न), करण (कर्ण) आदि तद्भव शब्दों की प्रचुरता है।

निम्नलिखित पद में पंच, बट, आनन, सप्त, अष्टसिद्धि, नवनिद्धि, आदित्य आदि शब्द तत्सम तथा मातु (माता), दस (दश), जस (यश) आदि तद्भव हैं—

एक रदन द्वै मातु, त्रिचख चौबाहु पञ्च कर।
षट आनन वर बन्धु, सेव्य सप्तार्चि भाल धर।
अष्ट सिद्धि नवनिद्धि, दानि दस दिसि जस विस्तर।
रुद्र ग्यारह सुबद, द्वादसादित्य ओज वर।
जो त्रिदस वृन्द वन्दित चरन चौदह विद्यन्ह आदि गुर।
तेहि दास पंचदसहूँ तिथिन्ह धरिय षोडसो ध्यान उर।[3]

प्राकृत के शब्दों के प्रयोग—दास की रचनाओं में यत्र तत्र प्राकृत के प्रयोग भी मिल जाते हैं, उदाहरणार्थ मित्त, किअ, बिज्जु आदि।

१. काहू को अंग होत रस भावाभास जु **मित्त**।[4]
२. सदा अकिल बानै गनै गनै बाल **किअ** दास।[5]

---

१. छन्दोर्णव पिंगल, पृ० १। २ छन्दोर्णव पिंगल, पृ० ६४।
३. काव्य निर्णय, पृ० १। ४. काव्य निर्णय, पृ० ४५।
५. काव्य निर्णय, पृ० २३८।

३. बिज्जु हास दार्यो दसन बिम्बाधर अभिराम।[1]

कहीं कहीं प्राकृत भाषा के देशी प्रयोग भी मिल जाते हैं, जैसे तक्कत। नीचे के उदाहरण में प्राकृत देशी शब्द 'तक्करा' के स्थान पर तक्कत का प्रयोग हुआ है।

४. क्रुद्ध प्रचंडी चंडिका तक्कत नैन तरेरि।[2]

५. इतनी सुनत रुसि जात भयो...[3]

यहां 'रुष' (प्राकृत) के लिए देशी शब्द 'रुसि' का प्रयोग हुआ है। इन उदाहरणों से दास के काव्य में प्राकृत का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।

अन्य बोलियों के शब्द

संस्कृत और प्राकृत के अतिरिक्त दास जी के ग्रन्थों में अवधी, कन्नौजी, बुंदेली, खड़ी बोली आदि के भी कुछ शब्द मिलते हैं। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं--

अवधी--दास जी ने अवधी के बतलात हौ, फिर अइहैं, होइ जात हैं, करू, अनते, अलंग ते आदि रूपों का प्रयोग किया है--

१. **बतलात हौ** लाल जिते तितही अब जाइ सुखै बतलाइये जू।[4]

२. घर **फिर अइहैं** होत ही बन बागन्ह सों भेंट।[5]

३. दास जू आनन्द चन्द प्रकास तें फूलो सरोज कली **होइ जात** है।[6]

४. मीठो पियूष **करू** विष दास जू है यह रीति न निन्द बड़ाई।[7]

५. प्रान के नाथ चले **अनते** तनते नहि प्रान चले किहि कारन।[8]

६. लेन आयो कान्ह कोऊ मथुरा **अलंग** तें।[9]

कन्नौजी--दास जी की रचनाओं में अनेक स्थलों पर कन्नौजी के रूप हुतो, हुतीं, हुती, बोलावन पठाई, लगन लगी आदि अनेक स्थलों पर मिलते हैं--

१. कज्जल जहर सों कहर करि डारो **हुतो**।[10]

२. बतियाँ **हुतीं** न सपनेहूं सुनिबे की सो सुनी मै,
जो **हुती न** कहिबे की सो कह्योई मैं।[11]

३. पीत पटवारे को **बोलावन पठाई** मैं तो,
पीत पट काहे को रँगाइ ल्याई बावरी।[12]

४. मौने मौने सुन्दर सलोने पद दास लोने,
मुख की बनक ह्वै **लगन लगी** टोने सी।[13]

बुन्देली--दास के ग्रन्थों में बुन्देली के अनेक रूप जैसे गैबो, कीबी, दीबी, कहिबी, जाइबी, हजारबी आदि प्रचुरता के साथ मिलते हैं।

---

१. का० नि०, पृ० ७३। २. का० नि०, पृ० ६३। ३. का० नि०, पृ० ४८। ४. शृं० नि०, पृ० ६२। ५. का० नि०, पृ० २१। ६. का० नि०, पृ० १७६। ७. का० नि०, पृ० ८७। ८. शृं० नि०, पृ० ६७। ९. का० नि०, पृ० ११०। १०. का० नि०, पृ० १५२। ११. का० नि०, पृ० ३७। १२. शृं० नि०, पृ० ६६। १३. का० नि०, पृ० ३३।

१. बादि छयो रस व्यंजन खाइबो बादि नवो रस मिश्रित **गैबो** ।
बादि जराउ प्रजंक बिछाइ प्रसून घने परि पाथ **लुढ़ैबो** ।
दास जू बादि जनेश मनेश धनेश फनेश गनेश **कहैबो** ।
या जग में सुखदायक एक मयंकमुखीन को अंक **लगैबो** ।[१]

२. एतो सखी **कीबो** यह अम्ब बौर **दीबो** अरु **कहिबो** वा अमरैया रामराम कही है ।[२]

३. एती बिनै करि दासिन सों कहि **जाइबो** नेकु बिलंब न लावै ।[३]

४. करि दीन्हो करतार चसमा चखर्न **हजारिबी** ।[४]

जैसा पहले कहा जा चुका है कन्नौजी और बुन्देलखण्डी दोनों ही का ब्रज भाषा म समावेश हो गया था । अतः जो प्रयोग वस्तुतः बुन्देली और कन्नौजी के अपने हैं उनकी गणना ब्रजभाषा के ही प्रयोगों में की जाती है ।

देशज शब्दों के प्रयोग--'दास' के ग्रन्थों में अनेक देशज प्रयोग भी पाये जाते हैं जैसे बिललाति, बिलखाति, डौंरू (डमरू), भननात, हरबर, कहन्त आदि ।

१. जल्पति जकति कहरत कठिनाति माति मोहति मरति **बिललाति बिलखाति** है ।[५]

२. **डौंरू** कर धारे जोरि द्वैक उत्पल सों ।[६]

३. ठौरहि ठौर बंधे अरबिन्द मलिन्द के वृन्द घने **भननात** हैं ।[७]

४. फेरि जोति देखिबे को **हरबर** दान देत...।[८]

५. हौं गंवारि गांवहि बसी कैसो नगर **कहन्त** ।[९]

खड़ी बोली—यद्यपि दास के ग्रन्थों में खड़ी बोली के प्रयोगों का प्रायः अभाव पाया जाता है क्योंकि उस युग में खड़ी बोली का विशेष प्रचलन न था, फिर भी कहीं कहीं हमें दास के ग्रन्थों में कुछ ऐसे पद अवश्य मिल जाते हैं जिनमें खड़ी बोली का रूप मिलता है—

१. मन्द मन्द गौने सों गयन्द गति **खोने लगी**,
बोने लगी विष सों अलक अहिछौने सी ।
लंक नवला की कुच भारन दुनौने लगी,
होने लगी तन की चटक चारु सोने सी ।[१०]

२. विश्वामित्र मुनीश की महिमा अपरम्पार ।[११]

३. बारी बासर **बीतते** प्रीतम आवन हार ।[१२]

कहीं कहीं अवधी के साथ खड़ी बोली का पुट भी मिलता है जैसे—

४. जानि कै सहेट गई कुंजनि **मिलै के लिए** ।[१३]

---

१. का० नि०, पृ० ४३-४४ । २. का० नि०, पृ० ५६ । ३. का० नि०, पृ० १२६ ।
४. र० सा० पृ० ११३ । ५. शृं० नि०, पृ० ८२ । ६. का० नि०, पृ० १०४ ।
७. र० सा०, पृ० १७६ । ८. शृं० नि०, पृ० ५७ । ९. का० नि०, पृ० ६३ ।
१०. का० नि०, पृ० ३३ । ११. का० नि०, पृ० ११६ । १२. का० नि०, पृ० २० ।
१३. का० नि०, पृ० ५२ ।

अरबी—'दास' के ग्रन्थों में अरबी के शब्दों का बाहुल्य मिलता है, परन्तु इन पर ब्रज भाषा की भी स्पष्ट छाप दिखायी पड़ती है।

शामिल—ऐसी **सामिल** रीति मैं नेम कहै क्यों कोइ।[1]

क़बूल—जा मग सिधारे नंदनन्द ब्रज स्वामी दास,
जिनकी गुलामी मकरध्वज **कबूलि** गो।[2]

शायर—पडित पंडित सों सुखमंडित **सायर सायर** के मन माने।[3]

ज़ाहिर—धीर न रहत जस **जाहिर** जहान है।[4]

ज़िक्र—सिंहिनी औ मृगिनी की ता ढिग जिकिर कहा।[5]

कलाम—आजु चन्द्रभागा चंप लतिका विशाखा को,
पठाई हरि बाग तें **कलामें** करि कोटि कोटि।[6]

आशिक़—**आसिक** और तियान को उपपति ताकों जान।[7]

मुजरा—छाड्यों सभा निसि बासर की **मोजरे** लगे पावन लाग प्रभातैं।[8]

लायक—दास जू भूषन बास कियो सब ही के मनोरथ पूजिबे **लायक**।[9]

इशारा—नटनागर हौ जू सही सब ही अंगुरी के **इसारे** नचावत हौ।[10]

खवास—केती सहबासिनी सुबासिनी **खवासिनौहू** नैन जोहैं बैठी बड़ी आपने हदन में।[11]

अरबी म 'खवास' नौकरानी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यहां दास ने मूल स्त्रीलिंग का हिन्दी भाषा के अनुसार पुनः स्त्रीलिंग बनाया है।

कसूर—कहिये रे **कसूर** कहा तू कियो।[12]

फारसी—दास ने फारसी शब्दों का भी अधिक प्रयोग किया है जिसमें आवश्यकतानुसार उन्होंने कुछ परिवर्तन भी कर लिये हैं।

फ़ौज—अनीनेह नरेस की माधव बने बनी राधे मनोज की **फौज** खरी।[13]

नज़दीक—निपटै **नजीक** सुरपति को अगार है।[14]

फरियादी—ह्वैहैं सौंहवादी ह्वै **फिरादी** ह्यां कमलनैनी।[15]

जुदा—कौन **जुदो** करै लौन ज्यों नीर में...।[16]

अदलखाना—मेरे ही अकेले गुन औगुन बिचारे बिना
बदल न जैहै ह्वै बड़ो **अदलखाने** मैं।[17]

फारसी के कुछ शब्दों को दास ने विकृत रूप में प्रयोग किया है जैसे उपर्युक्त उदाहरणों में नजदीक के लिए नजीक और फरियादी के लिए फिरादी।

---

१. का० नि०, पृ० ३२। २. का० नि०, पृ० ३५। ३. का० नि०, पृ० ८१।
४. का० नि०, पृ० ६६। ५. का० नि०, पृ० १२१। ६. का० नि०, पृ० १२७।
७. शृं० नि०, पृ० ३। ८. शृं० नि०, पृ० ३। ९. शृं० नि०, पृ० ३।
१०. शृं० नि०, पृ० ७। ११. शृं० नि०, पृ० ९ १२. र० सा०, पृ० ९१।
१३. का० नि०, पृ० १०६। १४. का० नि०, पृ० १०९। १५. का० नि०, पृ० १७६।
१६. का० नि०, पृ० १८५। १७. का० नि०, पृ० ११५।

मुहावरों का प्रयोग—दास जी ने मुहावरों का सुन्दर प्रयोग किया है--

१. पेट पकड़ना

दास नहिं जानो हौं बिगारो कहा सब ही कौ
याही पीर बीर नित **पेट पकरति** हौं।[1]

२. जले पर नमक लगाना

इत जोरी जो रावरी सो न जुरैं न **जरे पर लोन लगाइये** जू।[2]

३. तिल में तेल न होना

जान्यो मैं **वा तिल तेल नहीं** पहिले जब भामिनी भौंह चढ़ाई।[3]

४. दांव लेना

वा दिन मेरे प्रजंक पै सोये हौ हौं वह **दांव लहौं पै लहौंगी**।[4]

५. कोस के बीच डेरा करना

कोस के बीच कियो तुम डेरो तो को सकै राखि पियारी के प्रानहि।[5]

६. लोभ की डोरी गले के बीच डालना

लोभ की डोरी गरे बिच डारि के डोलत डोरे जहां जहं चाहै।[6]

दास की कविता में भाषा तथा काव्य सम्बन्धी दोष

दास जी के ग्रन्थों में भाषा तथा काव्य रचना सम्बन्धी कुछ दोष भी मिलते हैं। यहां हम उनकी कविता के दोषों के सम्बन्ध में संक्षेप में विवेचन करेंगे।

लिंग तथा वचन दोष—दास जी के काव्य में लिंग तथा वचन दोष अनेक स्थलों पर देखने को मिलते हैं।

१. **इनकी** काव्यन्ह में मिली भाषा विविध प्रकार।[7]

यहां पर काव्यन्ह पुल्लिग के साथ 'इनकी' स्त्रीलिंग का प्रयोग अशुद्ध है। होना चाहिए था 'इनकी' के स्थान पर 'इनके'।

२. **बिथुरे** अलकैं श्रम के झलकैं तन ओप अनूपम जागि रही।

अलकैं स्त्रीलिंग के साथ 'बिथुरे' का पुल्लिंग की भांति प्रयोग हुआ है जो अशुद्ध है।

३. चंद्रमुखिन के कुचन पर जिनको सदा बिहार,
अहह करै **ताही** करन चिरियन फेर वदार।[8]

यहां 'चंद्रमुखिन' बहुवचन के लिए 'ताही' एक वचन का प्रयोग हुआ है।

४. मोहिं निपट मीठी लगै यह **तेरी** कटु बोल।[9]

यहां 'बोल' पुल्लिग के साथ स्त्रीलिंग शब्द 'तेरी' का प्रयोग हुआ है।

---

१. शृं० नि०, पृ० ३२।
२. शृंगार निर्णय, पृ० ६२।
३. शृंगार निर्णय, पृ० ६४।
४. शृंगार निर्णय, पृ० ६४।
५. शृंगार निर्णय, पृ० ६७।
६. रस सारांश, पृ० १२१।
७. काव्यनिर्णय, पृ० ६।
८. का० नि०, पृ० ४४।
९. का० नि०, पृ० १२६।

५. विहंग सोर सुनि सुनि समुझि पछवारे **की** बाग ।[1]

'बाग' स्पष्टतः पुल्लिग है जिसके साथ 'की' स्त्रीलिंग प्रयोग है जो नितान्त अशुद्ध है।

६. सिंहिनी औ मृगिनी की ता ढिग जिकिर कहा ।[2]

यहां जिकिर (ज़िक्र) पुल्लिग के साथ 'की' स्त्रीलिंग का प्रयोग हुआ है ।

दास जी में इस प्रकार के अशुद्ध प्रयोग एक दो नहीं बहुत से हैं ।

वाक्य रचना दोष--कहीं कहीं पर दास जी के काव्य में वाक्यरचना दोष भी मिलते हैं ।

१. कोस तें लख्यो प्रकासमान मैं ।[3]

इसका अन्वय इस प्रकार हुआ 'मैं कोस तें प्रकासमान लख्यो' जो भाषा की दृष्टि से शिथिल रचना है ।

इसी प्रकार के प्रयोग निम्नलिखित पद में देखने को मिलते हैं--

बतियां हुतीं न सपनेहूं सुनिबे की सो **सुनी मैं** जो हुतीं न कहिबे की सो **कह्योई मैं** ।
रोवैं नर नारी पशु देहधारी सबै परम दुखारी ऐसे सूलनि **सह्योई मैं** ।
हाय अपलोक ओक पंथहि गह्यो पै बिरहागिनि दह्यो मैं सोकसिंधुन **बह्योई मैं** ।
हाय प्रान प्यारे रघुनन्दन दुलारे तुम बन को सिधारे प्रान तन लै **रह्योई मैं** ।[4]

२. केलि की रैन परी है वरीक **गई करि जाहु** दई के निहोरे ।[5]

यहां चले जाओ के अर्थ में 'गई करि जाहु' का प्रयोग हुआ है । इसमें सन्देह नहीं कि सुनने में यह वाक्य ललित लगता है परन्तु ऐसा प्रयोग प्रचलित नहीं है ।

३. दास जबै तुक जोरन हार कबिन्द **उदारन** की सरि पैहै ।[6]

यहां 'कबिन्द उदारन' का प्रयोग अशुद्ध है। बहुवचन बनाने के लिए जो प्रत्यय आदि लगाये जाते हैं वे संज्ञा में लगने चाहिए न कि विशेषण अथवा सर्वनाम आदि में ।

४. तिनके भेद अनेक **मैं कछु कछु कहौं** बिसेखि ।[7]

'मैं कहौं' इस प्रकार के प्रयोग अशुद्ध माने जाते हैं ।

व्याकरण से असम्मत रूप--(१) दास में ऐसे रूपों की विशेष भरमार है जो व्याकरण के अनुसार निर्मित नहीं हैं जैसे उन्नतताई, सुन्दरताई, उज्जलताई, मलीनी, मलिनई, महुज्जल, मेचकताई आदि ।

१. नेह लगावत रूखी परी तन देखि गही अति **उन्नतताई** ।[8]

२. कै तिय तेरे गरे में परी तिहुं लोक की आनि कै **सुन्दरताई** ।[9]

३. कौन अचम्भो कहूं अनुरागी भयो हियरो जस **उज्जलताई** ।[10]

४. दीपक जोति **मलीनी** भई मनि भूषन जोति की आतुरिया है ।[11]

१. का० नि०, पृ० ६८ । २. का० नि०, पृ० ११ । ३. का० नि०, पृ० २०६ ।
४. का० नि०, पृ० ३७-३८ । ५. शृं० नि०, पृ० ५० । ६. का० नि०, पृ० ८३ ।
७. शृं० नि०, पृ० ५१ । ८. का० नि०, पृ० १३० । ९. शृं० नि०, पृ० १४ ।
१०. का० नि०, पृ० १३८ । ११. शृं० नि०, पृ० ५० ।

५. लली पीत पट **मलिनई** कैसे मेटी जाय ।[१]

६. चंद सों आनन राजत तीय को चांदनी सों उतरीय **महुज्जल** ।[२]

७. मेटत मेटत ह्वै धनुषाकृति **मेचकताई** की रेख गई रहि ।[३]

(२) कहीं कहीं दास जी ने विदेशी भाषा के शब्दों के साथ हिन्दी का प्रत्यय लगा कर उन्हें हिन्दी के प्रवाह में लाने का प्रयत्न किया है जैसे सहिम्मत, खवासिनी, हदन आदि—

दासी दास केते करि लेत सधरम तें सलच्छन **सहिम्मति** सहर्ष अवरेखिये ।[४]

केती सहवासिनी सुवासिनी **खवासिनीहू** नैन जोहैं बैठी बड़ी आपने **हदन** मैं ।[५]

स्वयं खवास का ही अर्थ 'नौकरानी' (जैसा पहले भी कहा जा चुका है) है परन्तु दास ने इसमें हिन्दी व्याकरण के अनुसार 'नी' प्रत्यय लगाकर इसे स्त्रीलिंग का रूप दे दिया है। इसी प्रकार 'हद' (सीमा) फारसी शब्द है जिसका बहुवचन होता है 'हुदूद' (फारसी के अनुसार) अथवा 'हदों' (हिन्दी के अनुसार), परन्तु दास ने लिखा है 'हदन' जो ब्रजभाषा व्याकरण के अनुसार ठीक है। किन्तु विदेशी शब्दों की इस प्रकार अधिक तोड़ मरोड़ हिन्दी भाषा के व्याकरण के अनुसार संगत नहीं प्रतीत होती है।

कही कहीं महाराष्ट्री लिपि के अनुसार भी शब्दों की रचना मिलती है—

१. तौ करतारहु सों औ कुम्हार सों एक दिना झगरौ वनि **अहै** ।[६]

२. औरन को लागै कठिन गुन उदारता **अैन** ।[७]

अर्थदोष—कुछ स्थलों पर दास की कविता में क्लिष्ट कल्पना करने पर भी अर्थ समझ में नहीं आता। इस प्रकार के कष्टार्थ दोषों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

१. तीतू ताते तीति ते, ताते तोते तीत।
तोतें ताते तत्तुते तीते तीतातीत ।[८]

२. रोर मार रौरे ररै मुरि मुरि मेरी रारि।
रोम रोम मेरो ररै रामा राम मुरारि ।[९]

(३) है हैं कही को है खै खै ये गेह के गाहक खेह के खेह हैं अंगा ।[१०]

परन्तु इस प्रकार के पद केवल उन्हीं स्थानों पर मिलते हैं जहां दास जी ने काव्य-शास्त्र विषयक किसी कठिन विषय के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। अधिकतर ये उदाहरण चित्रालंकार के प्रसंग में मिलते हैं जिसका वर्णन एवं विषय स्पष्टीकरण यों भी एक कठिन कार्य है।

अप्रचलित रूपों का प्रयोग—दास में हमें अनेक अप्रचलित रूपों का प्रयोग भी मिलता है, जैसे सज्जा (शैया), अज्जा (माता), डौंरू (डमरू), पिछानि (पहचान), डम्बर (आडम्बर), म्वाय (मार कर), वत्तमों (उत्तम), किन्हवारी (चिह्नवारी) आदि।

१. एहि **सज्जा अज्जा** रहै एहि हौं चाहत सैन ।[११]

---

१. र० सा०, पृ० ५० । २. का० नि०, पृ० २४६ । ३. शृं० नि०, पृ० १६ ।
४. का० नि०, पृ० २२० । ५. शृं० नि०, पृ० ६ । ६. का० नि०, पृ० ८३ ।
७. का० नि०, पृ० १६४ । ८. का० नि०, पृ० २२३ । ९. का० नि०, पृ० २२२-२२३ ।
१०. का० नि०, पृ० २२३ । ११. का० नि०, पृ० २२ ।

२. डौंरू कर धारे जोरि द्वैक उतपल सों ।[1]

३. दास पिछःनि कै दूजी न कोप भले संग सौति के सोइ है प्यारी ।[2]

४. तापर संवारे सेत अम्बर को डम्बर सिधारी स्याम सन्निधि निहारी काहू न जनी ।[3]

५. आली कहा कहौं या घर की सिगरी मोहिं म्वाय जियो चहती हैं ।[4]

६. बिधु सो निकासि नीकी बिधि सो तरासि कला सैकरि सवार्यो विधि वत्तमो बनाय है ।[5]

७. आभा समूह में अम्बर को पहचानिये दास बड़ी किन्हवारी ।[6]

स्वशब्दवाच्य दोष—जहां रस, स्थायीभाव अथवा व्यभिचारी भाव व्यंगात्मक हों, वहां काव्य के वास्तविक आनन्द की अनुभूति होती है। दास ने कहीं कहीं इनकी अनुभूति कराने के लिए इनका शब्दों द्वारा उल्लेख करके रस भावादि को उद्बुद्ध कराने की चेष्टा की है। अतः इनमें यत्र तत्र स्वशब्दवाच्य दोष पाया जाता है।

१. निम्नलिखित पद में 'हास' और 'विहंसि' शब्दों से स्वशब्दवाच्यदोष का संकेत मिलता है—

काहू एक दास काहू साहब की आस में, कितेक दिन बीते रीत्यो सबै भाँति बल है।
बिथा जो बिनै सों करै उत्तर याही सो लहै सेवा फल ह्वै ही रहै,यामे नहिँ चल है।
एक दिन **हास** हित आयो प्रभु पास तन राखे न पुरानो वास कोऊ एक थल है।
करत प्रनाम सो **विहँसि** बोल्यो यह कहा? कह्यो कर जोरि देव सेवा ही को फल है।[7]

२. निम्नलिखित पद में 'घिनात,' 'घिन',' घिनावने' शब्दों से वीभत्स रस होने का संकेत मिलता है। वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा अथवा घृणा है।

वरषा के सरे मरे मृतकहु खात न **घिनात** करै कृमि भरे मांसनि के कौर को।
जीवत बराह को उदर फारि चूसत है भावै दुरगन्ध सो सुगन्ध जैसे बौर को।
देखत सुनत सुधि करतहु आवै **घिन,** साजे सब अंगनि **घिनावने** ही ठौर को।
मति के कठोर मानि धरम को तौर करै करम अघोर डरै परम अघोर को।[8]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दास जी की कविता दोषरहित नहीं हैं। उनमें शब्द दोष, अर्थ दोष, वाक्य दोष और काव्य दोष सभी मिलते हैं।

यह भी तथ्य है कि कोई भी कवि, चाहे वह कितना ही काव्यकला पटु क्यों न हो, पूर्णतः निर्दोष कविता कर ही नहीं सकता। विद्वानों ने सूर, तुलसी, कबीर, केशव, देव, मतिराम, आदि सभी कवियों में अनेकानेक दोष निकाले हैं। इन दोषों के होते हुए भी ये कवि प्रतिष्ठित हैं। सूर और तुलसी के टक्कर के कवि तो सम्पूर्ण संसार में एक दो ही मिलेंगे। अतः कतिपय दोषों के आ जाने के कारण कवि के रूप में दास की महत्ता कम नहीं

१. का० नि०, पृ० १०४। २. शृं० नि०, पृ० २४। ३. का० नि०, पृ० १४८।
४. शृं० नि०, पृ० ४०। ५. शृं० नि०, पृ० १५। ६. का० नि०, पृ० १४६।
७. का० नि०, पृ० ३७। ८. का० नि०, पृ० ३९।

हो जाती। यह बात दूसरी है कि विद्वान लोग अपनी मति के अनुसार दास जी को दूसरे कवियों की अपेक्षा कुछ घट बढ़ कर रखें और ऐसा करना प्रत्येक सत्यनिष्ठ काव्य प्रेमी एवं निष्पक्ष विचारक तथा आलोचक के लिए नितान्त स्वाभाविक है। जहां सेठ कन्हैयालाल पोद्दार जी का यह मत है कि 'दास जी की कवित्वशक्ति हमारे विचार में मध्य श्रेणी की है। जैसा कि पद्माकर जी, ग्वाल और मतिराम आदि के काव्यों में धारावाहिक वर्णन देखा जाता है, वैसा दास की कविता में उपलब्ध नहीं होता' [१], वहां विद्वान आलोचक पं० कृष्णबिहारी मिश्र का कथन है कि 'कुछ लोग शृंगारी कवियों में प्रथम स्थान बिहारीलाल को देते हैं और दूसरे स्थान पर दास जी को बिठलाते हैं, पर कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो शृंगारी कवियों में देव जी को सर्वशिरोमणि मानते हैं और दास जी का नम्बर केशव, बिहारी, मतिराम तथा सेनापति आदि के बाद बतलाते हैं···कुछ लोग दास जी को देव से अच्छा कवि मानते हैं'।[२]

जैसा आगे के अध्यायों में दिखाया जायगा, दास जी प्रमुखत: आचार्य थे और गौणत: कवि। आचार्य के नाते उन्होंने काव्यांगों के प्राय: सभी विषयों का जितना विशद एवं विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है उतना इनके काल के किसी भी आचार्य ने नहीं किया। यह भी तथ्य है कि आचार्य के रूप में दास जी ने विद्वानों को जितना आकृष्ट किया है, कवि के रूप वे उन्हें उतना आकृष्ट न कर सके। और इसका कारण स्पष्ट है—आचार्य को गम्भीर विषयों का स्पष्टीकरण करना होता है, जिसके लिए विशेष प्रकार की रचना प्रणाली की अपेक्षा होती है। उस समय उसका क्षेत्र व्यापक न होकर संकुचित रह जाता है और वह काव्य के प्रांगण में उन्मुक्त होकर नहीं विचर सकता। उसे दुर्गम मार्गों को कांट छांट कर ऐसा बनाना पड़ता है कि आने जाने वाले उस पर फिसलें नहीं, गिरें नहीं, भटकें नहीं। काव्य के क्षेत्र में दास जी ने एक पथप्रदर्शक का काम करते हुए कवियों को काव्यशास्त्र का रसास्वादन कराने का ही विशेष प्रयास किया है और ऐसा कराने में यदि उनमें 'कहीं धारावाहिकता की कमी मिलती है, कल्पना की उड़ान बहुत ऊंची नहीं उठ पाती, कवि के लिए अपेक्षित भाव सामग्री का थोड़ा बहुत अभाव मिलता है, तो उसके लिए वे क्षम्य हैं क्योंकि ये अभाव उनकी महत्ता के मार्ग में अवरोधस्वरूप नहीं माने जा सकते।

३) भक्ति भावना तथा नीति

जैसा पूर्व पृष्ठों में दिखाया जा चुका है, रीतिकालीन काव्य में शृंगार रस की प्रचुरता है और उस काल के कवियों की प्रतिभा की अभिव्यक्ति प्रमुखत: इसी ओर हुई थी। उस काल की विभिन्न प्रवृत्तियों में संयोग-वियोगात्मक शृंगार की प्रवृत्ति प्रधान थी, साथ ही वीर, नीति, दार्शनिक तत्वचिंतन, प्रेमभक्ति आदि अन्य प्रवृत्तियों से समन्वित काव्य भी उस काल में निर्मित हुआ। डा० नगेन्द्र का कथन है 'जब हमारी वृत्तियां किसी सूक्ष्म एवं महत्तर अथवा अलौकिक लक्ष्य—उदाहरण के लिए परमात्म चिंतन अथवा तत्वान्वेषण—पर केन्द्रित

१. श्री कन्हैयालाल जी पोद्दार द्वारा हमें दिनांक २० जुलाई १९५२ को लिखे गये पत्रसे उद्धृत।
२. श्री कृष्णबिहारी जी मिश्र : देव और बिहारी, पृ० १८५ तथा पृ० २०६।

हो जाती हैं, तो भौतिक सुखों के प्रति स्वभावतः ही हमारे हृदय में उदासीनता एवं तिरस्कार की भावना उत्पन्न हो जाती है। वह उदासीनता एवं तिरस्कार की भावना का मिश्र भाव यहां अहं के संवर्धन में योग देने के कारण (द्वेष का अंश रखते हुए भी) दुखमय न होकर सुखमय ही होता है। सांसारिक मनुष्य साधारणतः अतिशय राग से थक कर ही तत्वान्वेषण अथवा परमात्म चिंतन की ओर प्रवृत्त होते हैं।"[1]

तत्वचिन्तन अथवा ईश्वरोन्मुख भावना का चित्रण हमें भिखारीदास के काव्य में बराबर मिलता है। उन्होंने इस विषय पर प्रबन्धात्मक रूप से विचार नहीं किया और न किसी एक ग्रन्थ में किसी एक स्थान पर ही इस विषय का विवेचन किया है। अतः यहां उनके सभी ग्रन्थों में यत्र तत्र बिखरे हुए तत्वचिन्तन एवं भक्ति-भावना सम्बन्धी भावों को एकत्र करके प्रस्तुत किया गया है।

दास जी ईश्वर भक्त थे। उनके ग्रन्थों से तो इसी बात का पता चलता है कि उनमें राम के प्रति अधिक आस्था थी। वे प्रमुखतः राम भक्त थे, यद्यपि उन्होंने शिव, गंगा, गणेश आदि के भी गुणानुवाद गाये हैं।

राम नाम महिमा—दास राम से भी अधिक राम नाम को मानते थे। राम ने तो दश सिर वाले रावण का ही बध किया था, नाम से तो सैकड़ों सिर वाले दारिद्रय का विनाश होता है। राम ने अपने प्रताप से सिन्धु को बांध कर वानर सेना उतारी थी परन्तु नाम के प्रताप से तो संसार रूपी महासिन्धु के पार सरलता से पहुंचा जा सकता है। राम नाम तो घट घट में निवास करता है (राम का क्षेत्र तो संकुचित है)। इसी कारण नाम में राम की अपेक्षा अधिक गुण हैं।

आप दसै शिर शत्रु हन्यो यह सै सिर दारिद को बधिको है।
सिन्धु बंधाय तरे तुम तो यह तारक मोहि महोदधि को है।
रावरे को सुनिये यह जाहिर बासी सबै घट के मध को है।
राम जू रावरे नाम में दास लख्यो गुन रावरे ते अधिको है।[2]

संसार राम का दास कहलाता है। दास जी भी राम के दास हैं और उन्हें पूर्ण विश्वास है कि राम नाम के प्रताप से उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे, क्योंकि राम नाम से दरिद्रता का विनाश और दीनों की रक्षा होती है।

राम को दास कहावै सबै जग दासहु रावरो दास निहारो।
भारी भरोसो हिये सब ऊपर ह्वैहै मनोरथ सिद्ध हमारो।
राम अदेवन के कुल घाले भयो रह्यो देवन के रखवारो।
दारिद घालिबो दीन को पालिबो राम को नाम है काम तिहारो।[3]

राम का नाम मुक्ति का धाम, भुक्ति का दाम तथा कामधेनु के समान फल देने वाला है—

१. डा० नगेन्द्र : देव और उनकी कविता, पृ० ११०। २. का० नि०, पृ० २८१।
३. का० नि०, पृ० २८२।

आगर बुद्धि उजागर है भवसागर की तरनी के खेवैया।
व्यक्त विधान अनन्द निधान है भक्ति सुधारस प्रान भेवैया।
जानि यहै अनुमानि यहै मन मानि के दास भयो है सेवैया।
मुक्ति को धाम है भुक्ति को दाम है राम को नाम है कामद गैया।[१]

दास जी द्वारा वर्णित नाम-महिमा के कुछ और पद नीचे दिये जा रहे हैं—

१. पूरन सक्ति दुवर्न को मंत्र है जाहि सिवादि जपै सब कोऊ।
पावक पौन समेत लसै मिलि जारत पाप पहार कितोऊ।
दास दिनेस कलाधर भेस बने जग के निसतारक जोऊ।
मुक्ति महीरुह के द्रुम हैं किधौं राम के नाम के आखर दोऊ।[२]

२. पावतो पार न वार कोऊ परिपूरन पाप को पानिप जोतो।
बूड़तो झूठ तरंगन में मिलि मोहमई सरितान को सोतो।
दास जू त्रास तिमिंगल सों तम ग्राह के ग्रास से बांचतो कोतो।
जो भवसिन्धु अथाह निबाह को राम को नाम मलाह न होतो।[३]

३. क्यों लिखौं राम को नाम हिये कहां कागद ऐसो पुनीत मैं पाऊं।
आखर आछे अनूठे तिहारे क्यों जूठी जबान सों हौं रट लाऊं।
दास जू पावनता भरे पुंज हौ मोह भरे हियरे क्यों बसाऊं।
काम है मेरो तमाम यहै सब जाम गुलाम तिहारो कहाऊं।[४]

बालकृष्ण वर्णन—दास जी ने बालकृष्ण का सुन्दर वर्णन किया है। कहीं कहीं तो यह वर्णन सूरदास की भांति का प्रतीत होता है। नन्द की गोद में खेलते हुए दास जी के बालकृष्ण की शोभा अवलोकनीय है, जिनके हाथों में सोने की पहुंची, गले में मोती की माला, कान में कुंडल तथा उनके चारों ओर घुँघराली लटें हैं, जिनकी छोटी छोटी दंतुलियां दामिनी की प्रभा को भी निस्तेज कर रही हैं—

कर कंजन कंचन की पहुंची मुकुतानि को मंजुल माल गरें।
चहुंघा श्रुति कुंडल घेरि रही घुंघुंरारी लटें घन शोभ धरें।
बतियां मृदु बोलनि बीच फबें दतियां दुति दामिनि की निदरें।
मुनि वृन्द चकोर के चंद मनोहर नन्द के गोद बिनोद करें।[५]

मणि-जटित आंगन में खेलते हुए दास जी के ये बालकृष्ण कितने शोभायुक्त हैं, जिनके हाथों में मणिजटित चूड़ियां तथा शरीर पर पीतवर्ण का झंगा (बच्चों के पहनने का वस्त्र विशेष) है।

१. का० नि०, पृ० २८०। २. का० नि०, पृ० २८०।
३. का० नि०, पृ० २८१। ४. काव्य निर्णय, पृ० २८२।
५. रस सारांश, पृ० १२६।

पद पानिन कंचन चूर जराइ जरे मनि लाखन शोभ धरैं।
चिकुरारी मनोहर पीत झंगा पहिरे मणि आंगन में बिहरैं।
यह मूरत ध्यानन आनन को सुर सिद्ध समूहनि साध मरैं।
बड़ि भागिनि गोपि मयंकमुखी अपनी अपनी दिशि अंक भरैं।[1]

दास जी के उन बालकृष्ण का रूप तो वास्तव में दर्शनीय है जो अपने नीलवर्ण शरीर पर केसरिया रंग का दुकूल डाले, वक्षस्थल पर बघनखा धारण किये हुए नन्द जी के आंगन में किलकारियां मारते तथा अपनी 'तुतली' भाषा में बातें करते हुए खेल रहे हैं।

नव नील सरोरुह अंगनि केसरि रंग दुकूल प्रभा सरसै।
उर नाहर के नष संयुत चारु मयूर सिखीन के हार लसै।
विचरै पद पानिन्ह अंगन में कुलकै किलकै हुलसै बिहंसै।
अधराधर खोलनि तोतरि बोलनि दास पिये दिन रैन बसै।[2]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि दास का बालकृष्ण वर्णन उत्कृष्ट और भावुकता-पूर्ण है और वे कृष्ण के बालरूप का चित्रण करने में सफल हुए हैं।

शिव वर्णन—दास जी अपने पापों के संहार तथा भवसंकटों से निवृत्ति पाने के हेतु शिव जी की कृपा की आकांक्षा करते हैं।

भाल में जाके कलानिधि है वह साहेब ताप हमारो हरैगो।
अंग में जाके विभूति भरो वहै भौन में संपति भूरि भरैगो।
घातक है जु मनोभव को मन पातक वाही के जारे जरैगो।
दास जौ सीस पै गंग धरे रहैं ताकी कृपा कहु को न तरैगो।[3]

गंगा वर्णन—दास जी ने गंगा के माहात्म्य का वर्णन किया है और कहा है कि गंगा की तरंगों की सेवा करने से सभी इन्द्र की प्रभुता को प्राप्त होते हैं—

जे तट पूजन को बिसतारैं पखारैं जे अंगन की मलिनाई।
जो तुव जीवन लेत हैं जीवन देत हैं जे करि आपु दिढ़ाई।
दास न पापी सुरापी तपी अरु जापी हितू अहितू बिलगाई।
गंग तिहारी तरंगन सों सब पावैं पुरन्दर की प्रभुताई।[4]

गणेश स्तुति—दास जी ने अपने सभी ग्रन्थों के आरम्भ में गणेश जी की स्तुति की है क्योंकि गणेश जी ही एक ऐसे देव हैं जिनकी स्तुति से प्रत्येक कार्य में सफलता मिलती है।

दास जी ने अपने काव्य निर्णय ग्रंथ के आरम्भ में आठों सिद्धियों और नवों निधियों के दाता, देववन्द्य, चौदहों विद्याओं के आदि गुरु तथा षडानन के बन्धु की निम्नलिखित छन्द में वन्दना की है—

१. रस सारांश, पृ० १२६। २. रस सारांश, पृ० १३०।
३. का० नि०, पृ० १७०। ४. का० नि०, पृ० ८५।

एक रदन द्वै मातु, त्रिचख चौबाहु पंच कर।
षट आनन वर बन्धु सेव्य सप्तार्चि भाल धर।
अष्ट सिद्ध नवनिद्धि दानि दस दिसि जस विस्तर।
रुद्र ग्यारह सुबद द्वादसादित्य ओज वर।
जो त्रिदस वृन्द वन्दित चरन चौदह विद्यन्ह आदि गुरु।
तेहि दास पंचदसहूं तिथिन्ह धरिय षोडसो ध्यान उर।[1]

'छन्दोर्णव पिंगल' में दास जी ने असुरों, विघ्नों तथा खलों का नाश और राक्षसों का संहार करने वाले पूर्णज्ञानी, तेजस्वी, अपने भक्तों के प्रण की लाज रखने वाले तथा दास की सहायता करने वाले गणनायक की वन्दना की है—

करिवदन विमंडित ओज अखंडित पूरण पंडित ज्ञान परं।
गिरिनन्दिनि नन्दन असुर निकन्दन सुर उर चन्दन कीर्तिकरं।
भूषण मृग लक्षण वीर विचक्षण जनप्रणरक्षण पाश धरं।
जय जय गणनायक खलगण घायक दास सहायक विघ्न हरं।[2]

और 'शृंगार निर्णय' में तो उन्होंने जगत गुरु गणाधिप की उनके माता पिता सहित वन्दना की है —

मूस मृगेस बली वृष बाहन किंकर कीनो करोर तेंतीस को।
हाथन में फरसा करबाल त्रिसूल धरे खल खोइबो खीस को।
जक्तगुरु जग की जननी जगदीस भरे सुख देत असीस को।
दास प्रणाम करै कर जोरि गणाधिप को गिरिजा को गिरीसको।[3]

पौराणिक भक्तों के उल्लेख तथा आत्मदोष निवेदन—भक्त भगवान से अपने उद्धार की प्रार्थना करते समय अपने कथन के समर्थन में कुछ ऐसे पौराणिक नाम ले देता है जिससे उसकी प्रार्थना को बल मिलता है। इन नामों में अजामिल, प्रह्लाद, सुदामा, द्रोपदी, जटायु आदि प्रमुख हैं। 'दास' जी ने अपनी भक्ति को सप्रमाण एवं सबल बनाने के उद्देश्य से इन नामों का अपने पदों में स्वच्छंद रूप से उपयोग किया है —

१. भोरे भोरे नाम लै अजामिल से अधमनि पायो मन भायो सुनै स्मृति कथानि में।
अनु दिन राम राम राम रटि लाय मोहि दीनबन्धु देखत हौ कैती विपदानि में।
सुखी करि दीने घने बिनु दुखियान प्रभु नजरि न कीने कहूं काहू की क्रियान में।
मेरौ गुन ऐगुन बिचारि कत पारियत कारी छीट बिमल बिपतिहारी बानि में।[4]

२. ह्वै नरसिंह महा मनुजाद हन्यो प्रहलाद को संकट भारी।
दास विभीषनै लंक दियो जिन रंक सुदामा को संपति सारी।
द्रौपदी चीर बढ़ायो जहान में पांडव के जस की उंजियारी।
गर्विन को खनि गर्व बहावत दीनन को दुख श्री गिरिधारी।[5]

---

१. का० नि०, पृ० १। २. छ० पिं०, पृ० १। ३. शृं० नि०, पृ० १।
४. र० सा०, पृ० ११४-११५। ५. का० नि०, पृ० १६०।

३. कोरी कबीर चमारहु दास ह्वै जाट धना सधनाहूं कसाई।
गीध गुनाहु भरोई हुत्यो भरि जन्म अजामिल कीन्हीं ठगाई।
दास दई इनको गति जैसी न तैसी जपीन्ह तपीन्हहू पाई।
साहेब सांचो न दोष गनै गुन एक गहै जौ समेत सचाई।[1]

उपालंभ भरी प्रार्थनाएं—भक्त भगवान के आगे कभी सीधी बात को कुछ घुमा फिरा कर कहता है। ऐसा करना भक्त को अपेक्षाकृत अधिक प्रिय लगता है। यह एक प्रकार का उपालंभ है। दास जी ने भी तर्क के बल पर इस प्रकार के कुछ पद लिखे हैं।

दास का भगवान से तर्क है 'आप आदि ही के निष्ठुर हैं, यदि ऐसा न होता तो मेरे उद्धार के समय आप निष्ठुर क्यों हो जाते ? यदि आप दीन के प्रति दयालु होते तो हम ही दीन क्यों रहते ? यशस्वी लोग तो सुकर्म करके अपना यश बढ़ाने की ही कामना करते हैं परन्तु आप यश का निर्वाह नहीं करते। अतः ज्ञात होता है कि लोगों ने आपके जो करुणामय दयासिंधु, दीनानाथ, दीनबंधु आदि नाम दिये हैं वे झूठे हैं। यहां व्याजनिन्दा के रूप में भगवान की प्रशंसा की गयी है—

जो पै तुमं आदि ही के निठुर न होते हरि मेरी बार येती निठुराई क्यों कै गहते।
तुम ऐसे साहेब जो दीन के दयाल होते हम ऐसो दीन क्यों अधीन ह्वै ह्वै रहते।
जसिन को रीति है जु और लै निबाहै जस तुमको क्यों न येती बात और लै निबहते।
करुनामय दयासिंधु दीनानाथ दीनबन्धु मेरी जान लोग यह झूंठे नाम कहते।[2]

संसार जानता है कि आपने बड़े बड़े पापियों का उद्धार किया है। यदि मेरे गुण अवगुण विचारे बिना आप मेरा उद्धार कर देंगे तो यश में कलंक नहीं लग जायगा। आप हमारा जितना ही उद्धार करेंगे उतना ही आपका यश बढ़ेगा।

नाम औ सुदामा गीध गनिका अजामिल सों कीन्हीं करतूति सो विदित रावराने में।
मेरे ही अकेले गुन औगुन बिचारे बिना बदल न जैहैं ह्वै बड़ो अदलखाने में।
येती तकरारु तुम्हैं ताही सो जरूर प्रभु राखै जो गरूर तुम्हहूं सो या जमाने में।
दास को ज्यों ज्यों प्रभु पानिप चढ़ैहौ त्यों त्यों पानिप चढ़ैगो बेस रावरे के बाने में।[3]

यदि आप मुझे दुख में ही देख कर प्रसन्न हों तो मैं सारे सुखोंका परित्याग कर दूं। परन्तु आप भक्तों को दुख में देख कर प्रसन्न होते हैं यह तो कहना आपकी निन्दा है, यदि लोग इस बात को लेकर आपकी निन्दा करने लगें तो मैं किस किस का मुंह बन्द करूंगा। अतः आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, समर्थ हैं, आपका दास होता हुआ मैं अनाथ कैसे कहाऊं। दास का यह तर्क एक भक्तोचित तर्क है—

जो दुख ते प्रभु राजी रहै तो सबै सुख सिध्यनि सिंधु बहाऊं।
पै यह निंदा सुनौ निजु श्रौन सो कौन सो कौन सो मौन गहाऊं।
मैं यह शोच बिसूरि बिसूरि करौं बिनती प्रभु सांझ पहाऊं।
तीनिहु लोक के नाथ समर्थ्य हो मैं ही अकेलो अनाथ कहाऊं।[4]

१. का० नि०, पृ० १४३। २. र० सा०, पृ० १२३-१२४।
३. र० सा०, पृ० ११५। ४. र० सा०, पृ० ११२।

भगवान कितने परोपकारी तथा दानी हैं इसका तर्क दास जी ने यह दिया है कि आपके भक्तों के भक्त भी कल्पवृक्ष तक का दान कर सकते हैं। अतः यदि आप दीन दयालु होकर मुझ दीन का उद्धार कर देंगे तो कोई बड़ी बात न होगी—

एती अनाकनी कीबो कहा रघु के कुल बीच कहाय के नायक।
आपनो मेरो धौं नाम बिचारो हौं दीन अधीन तू दीन को दायक।
हौं तो अनाथ अनाथन में इक तेरोई नाम न दूजो सहायक।
मंगन तेरे के मंगन सों कल्पद्रुम आज है मांगबे लायक।[1]

इस प्रकार के उपालंभ दास जी ने भगवान शंकर से भी किये हैं। वे शिव जी की भक्ति की याचना करते हैं। शिव जी कितने भोले बाबा तथा औघड़ दानी हैं इसका पता उनके आक और धतूरे के पत्तों के भोजन से, सर्पमाला तथा गजखाल के पहनने से तथा वृषभ को अपना वाहन बनाने से चलता है। परन्तु वे भक्तों को षटरस व्यंजन, शाल, स्वर्ण, हाथी इत्यादि का दान देना एक साधारण सी बात समझते हैं। शिव की स्तुति का यह एक सुन्दर उदाहरण है—

आक औ कनकपात तुम जो चबात हौ तो षटरस व्यंजन न केहूं भाँति लटिगो।
भूषन बसन कीन्हों व्याल गजखाल को तो, साल सुबरन को न धारिबो उलटिगो।
दास के दयाल हौ सुरीतिही उचित तुम्हें लीन्हीं जो कुरीति तो तिहारो ठाट ठटिगो।
ह्वै के जगदीस कीन्हों बाहन वृषभ को तौ कहा सिब साहेब गयन्दन्ह को घटिगो।[2]

दास ईश्वर भक्त थे। उनके हृदय में राम की भक्ति इस प्रकार बसती थी जैसे कामी जनों के हृदय में परम सुन्दरी बाम—

भक्ति तिहारी यों बसै मो मन में श्री राम।
बसै कामि जन हियनि ज्यों परम सुन्दरी बाम।[3]

भगवान की भक्ति हो तभी जन्म लेना सफल है। यदि मन कृष्ण के रंग में रंग जाय, जीव ब्रजनाथ (कृष्ण) में लीन हो जाय, शरीर गोपाल की भक्ति से ओतप्रोत हो जाय और आंख की पुतली श्याम को अपने में बसा ले तो ये सभी अंग मुझे प्रिय हो जायँगे—

रे मन कान्ह में लीन जौ होइ तौ तोहू को मैं मन में गुनि राखों।
जीव जो हाथ करै ब्रजनाथ तौ तोहि मैं जीवन में अभिलाखों।
अंग गुपाल के रंग रंगे तहूं अंग लहे को महाफल चाखों।
दास जू धाम ह्वै स्याम को राखै तौ तारिका तोहि मैं तारिका भाखों।[4]

विश्वास—'दास' जी की रचनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें भगवान की भक्ति में अखंड विश्वास था। वे जानते थे कि भगवान के लिए संसार में सबसे कठिन कार्य है मेरे क्लेश को दूर करना, क्योंकि क्लेशों की दुर्गमता को देखते हुए गोचारण, गोवर्द्धन

१. काव्यनिर्णय, पृ० ११२। २. काव्यनिर्णय, पृ० १४२।
३. काव्यनिर्णय, पृ० २७७। ४. काव्यनिर्णय, पृ० १६२।

धारण, अहिल्योद्धार, द्रोपदी चीर वृद्धि, नागनाथन, गणिका उद्धार, मधुसुर वकासुर वध, गजोद्धार आदि कार्य सरल थे। फिर भी दास को विश्वास है कि जब मेरे क्लेशों को दूर करने का समय आयेगा तो फिर पेश नहीं जायगी और विवश होकर यह कार्य करना ही पड़ेगा।

गैग्रन चरैबो नहीं गिरि को उठैबो नहीं पावक अचैबो है न पाहन को तारिबो।
धनुष चढ़ैबो नहीं बसन बढ़ैबो नहीं, नाग नथि लैबो है न गनिका उधारिबो।
मधुसुर मारबो बकासुर बिदारबो न, वारन उधारबो न मन में बिचारिबो।
ह्यांते तो न जैहौ पैन सुनो राम भुवनेस, सब तें कठिन बेस मेरो क्लेस टारिबो।[1]

अनन्यता—नीचे लिखे छंद में दास जी भगवान की अनन्य भक्ति प्रकट करते हैं।

श्री मनमोहन प्रान हैं मेरे। श्री मनमोहन मान हैं मेरे॥
श्री मनमोहन ग्यान हैं मेरे। श्री मनमोहन ध्यान हैं मेरे॥
श्री मनमोहन सों रति मेरी। श्री मनमोहन सों नति मेरी॥
श्री मनमोहन सों मति मेरी। श्री मनमोहन सों गति मेरी॥[2]

कवि कहता है कि उसका मन कृष्ण में इतना लवलीन है कि उसकी पृथक प्रतीति ही नहीं होती। जिस प्रकार धुएं में भाप, घन में घन, पवन में पवन, जल में लवण और दूध में जल मिल कर एकरूप हो जाते हैं और फिर उनका पृथक् करना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार दास का मन भी मनमोहन के प्रेम में लीन है।

न्यारो न होत बफारो ज्यों धूम में धूम ज्यों जात घनै घन में हिलि।
दास उसास रलै जिमि पौन में पौन ज्यों पैठत आंधिन में पिलि।
कौन जुदो करै लौन ज्यों नीर में नीर ज्यों छीर में जात खरो खिलि।
त्यों मति मेरी मिली मन मेरे में मो मन गो मनमोहन सों मिलि।[3]

और इस अनन्यता का कारण था। भगवान के समान दानी विश्व में दूसरा नहीं। उनके आगे पारस पत्थर के समान, कामधेनु पशुवत् तथा कल्पवृक्ष एकमात्र काष्ठ के समान है। दानी वारिद भी नगण्य है, क्योंकि जल के अतिरिक्त वह और कुछ देता भी तो नहीं।

वारिद देखत हौं नित ही जग में तजि कै जल देत न आन है।
पारस को अनुमानत हौं पहिचानत हौं तो निदान पखान है।
है पशु जाति की कामदुहा कलपद्रुम बापुरो काठ प्रमान है।
और में काहि कहौं प्रभु दूसरो दानि कथान में तोहि समान है।[4]

दीनता—दास जी को भगवान की भक्ति पर इतना भरोसा था कि वे अपना कच्चा चिट्ठा तक उनके समक्ष खोल कर रख देते थे क्योंकि वे भगवान के विपत्ति विदारन स्वभाव

१. काव्यनिर्णय, पृ० १६१-१६२। २ काव्यनिर्णय, पृ० २००।
३. काव्य निर्णय, पृ० १८५। ४. काव्य निर्णय, पृ० ६८।

से भली भांति परिचित थे। उन्होंने भगवान से स्पष्ट कह दिया है कि उनका शरीर अपरिमित दारिद्र्य की खान है, तन मन पापों का कोश है और वे यह सब कुछ उन्हें दे देने के लिए इस कारण तैयार हैं कि यह उनके काम आ सके और इन विपत्तियों के विनाश द्वारा उनके प्रभु का यश बढ़े, साथ ही उनका भी उद्धार हो जाय।

दारिद बिदारिबे की प्रभु को तलास तौ हमारे इहां अनगन दारिद की खानि है।
अघ की सिकारी जौ है नजर तिहारी तौ हौं, तन मन पूरन अघन राख्यो ठानि है।
दास निज सम्पति सुसाहिब के काज आय, होत हरषित पूरो भाग उनमानि है।
आपनी विपति को हजूर हों करत लखि रावरे की बिपति बिदारन की बानि है।[1]

संतोष—अन्त में वे भगवान से प्रार्थना करते हैं कि आप जैसे भी चाहें मुझे रखें, मुझे आपकी इच्छा में ही संतोष है। यदि आप मुझे सुख संपति से निहाल कर देंगे तो भी मुझे संतोष रहेगा और यदि फटे हाल रखेंगे तो भी आप जैसी भी व्यवस्था करना चाहेंगे वह मेरे लिए हितकर ही होगी क्योंकि आपसे अधिक अनूठी 'रीझि बूझ' वाला है भी कौन ?

गैयंद चढ़ाओ तौ न गहिये गरूर नागे पैरन चलाओ तौ न याको दुख भारी है।
मांगि कै खवाओ तौ मगन रहियत बरु मागननि दै खवाओ तो दया को अधिकारी है।
जाहि तुम देत ताहि देत प्रभु आप रुचि रावरे की रीझि बूझि सब ही सों न्यारी है।
याते हम गरजी हैं रावरे रजाइ ही की मरजी तिहारही में अरजी हमारी है।[2]

तात्विक विचार—तात्विक दृष्टि से संसार, जीवन तथा उसके साफल्य, एवं सन्त महिमा आदि के सम्बन्ध में दास की अपनी कुछ मान्यताएं थीं जिन्हें उन्होंने स्थान स्थान पर व्यक्त किया है। हम उन्हें यथावत् नीचे दे रहे हैं—

१. संसार का रूप—दास के अनुसार यह संसार केवल भ्रम है, जिसे तत्वचिंतकों ने माया के नाम से पुकारा है। संसार रूपी भ्रम के दरिया में पड़े हुए लोगों के लिए सीताराम की चर्चा नाव के समान तथा भक्ति मल्लाह (नाविक) के समान है। अतः श्यामवर्ण राम से लगन लगाने, उनके गुणगान करने तथा उनकी भक्ति करने से ही इस संसार सागर से पार उतरा जा सकता है।

मन बावरे अजहूं समुझि संसार भ्रम दरियाउ।
इहि तरनिका यह छोड़ि कै कछु नाहि ग्रौर उपाउ।
लै संग भक्ति मलाह करिआ रूप सो लै लाउ।
श्री राम सीता चरित चरचा शुभ्र गीता नाउ।[3]

२. मन की अहंकारमयी प्रकृति और उसको प्रबोध—पथप्रदर्शक गुरु की शिक्षा भी मन को कटु लगती है। वह अपने को संभालने का प्रयास नहीं करता तथा तरुणी को भवसागर से पार उतारने वाली नौका और हरि को काष्ठ समझ बैठता है—

१. काव्य निर्णय, पृ० ४७। २. रस सारांश, पृ० १०४-१०५।
३. छन्दोर्णव पिंगल, पृ० ६१।

नीको बसीठी लगी मन की गुर की सिख तौ विष सी पहिचान्यौ।
आपनी बूझि संभारो नहीं तब दास कहा अब ज्यों पहिचान्यौ।
मूरुष तू तरुनी तन को भवसागर को तरनी अनुमान्यौ।
ऐसो डर्‌यौ हरि नाम को पाठहि काठ ही को हरि को जिय जान्यौ।[१]

वह भगवान से वैर ठानता है। परन्तु भगवान द्वारा बनायी गयी इस सृष्टि में वह कहीं भी भाग कर नहीं जा सकता। उसे भगवान का कोपभाजन बनना पड़ता है—

सातों समुद्र घिरी बसुधा यह सातों गिरीश धरे सब ओरे।
सात ही द्वीप सबै दरम्यान में होंहिगे खंड किते तेहि ठौरे।
दास चतुर्दश लोक प्रकाशित है ब्रह्मंड इकीस ही जोरे।
एत ही में भजि जैहै कहाँ खल श्री रघुनाथ सों बैर बिथोरे।[२]

३. जीवन लाभ—ऐसे मनुष्यों के उद्धार का उपाय है भगवान का स्मरण, मेरा-तेरा' से उत्पन्न होने वाले झगड़ों का परित्याग, कृष्ण की पादसेवन भक्ति तथा गोपीकृष्ण को हृदय में बसाना।

समुझिय जग में को फल मन में हरि सुमिरन में दिन भरिये।
झिगरो बहुतेरो घेरु घनेरो मेरो तेरो परिहरिये।
मोहन बनवारी गिरिवरधारी कुंजबिहारी पगु धरिये।
गोपिन को संगी प्रभु बहुरंगी लाल त्रिभंगी उर धरिये।[३]

४. सन्त महिमा—भगवान की प्राप्ति में सन्त समाज बड़ा सहायक होता है ऐसा सभी का विश्वास है। 'दास' जी ने भी सन्तों की महिमा का वर्णन किया है। परन्तु इन सन्तों का समागम तथा उनसे तत्वज्ञान के उपदेश का लाभ भगवान की कृपा पर ही निर्भर है। सज्जनों (सन्तों) के प्रताप से मनुष्य में क्षमा, सत्य, वैराग्य, धर्म कथा, भगवद्प्रेम, स्तुति, विनय आदि सद्‌गुणों का प्रादुर्भाव होता है—

देव कृपा सज्जन मिलन तत्वज्ञान उपदेश।
तीर्थ बिभाव सुभक्ति सम थाई सांत सुदेश।
क्षमा सत्य वैराग्य तिथि धर्म कथा में चाउ।
देव प्रणति स्तुति बिनय गुनो सन्त अनुभाव।[४]

कवि कामना—अन्त में 'दास' ने निष्कपट हृदय से यह कामना की है कि घट घट में भगवान के प्रेम का उदय हो तथा भगवान के वियोग का दुख किसी को न सहन करना पड़े—

ए करतार बिनै सुनि दास की लोकन को अवतार करो जनि।
लोकनि को अवतार करो तो मनुष्यनिहूं को सँवार करो जनि।
मानुष ही को सँवार करो तो तिन्हें बिच प्रेम प्रचार करो जनि।
प्रेम प्रचार करो तौ दयानिधि क्योंहूँ बियोग बिचार करो जनि।[५]

१. र० सा०, पृ० १०४। २. का० नि०, पृ० ११६। ३. छं० पिं०, पृ० ६८।
४. र० सा०, पृ० १०३। ५. का० नि०, पृ० १८४।

सामाजिक नीति

भक्ति भावना तथा तात्विक विचारों के अतिरिक्त दास की रचनाओं में हमें सामाजिक नीतिशास्त्र की अनेक उपयोगी बातें भी मिलती हैं। दास की प्रतिभा का मूल्यांकन करने के लिए इनका विवेचन अनिवार्य प्रतीत होता है।

नीतिशास्त्र की व्यापकता—मनुष्य में जिज्ञासा की प्रवृत्ति उसके जन्मकाल से ही पायी गयी है। उसके अन्तस् में सांसारिक वस्तुओं के प्रति अपने कर्तव्याकर्तव्यों की निश्चिति के लिए सदा द्वन्द्व सा मचता रहा। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्वाभाविक रूप से वही प्रश्न उठा करते हैं जो रामचन्द्र जी ने अपने कुलगुरु वशिष्ठ जी से किये थे—

किं तत्स्यादुचितं श्रेयः किं तत्स्यादुचितं फलम्।
वर्तितव्यं च संसारे कथं नामा समञ्जसे।[1]
क उपायो गतिः का वा का चिन्ता समाश्रयः।
केनेयमशुभोदर्का न भवेज्जीविताटवी।[2]

अर्थात् 'क्या उचित श्रेय है? कौन सा फल प्राप्त करने योग्य है? इस असमंजसपूर्ण संसार म व्यवहार किस प्रकार करना चाहिए? कौन ऐसा उपाय है, कौन ऐसा मार्ग है, कौन ऐसा विचार है जिससे यह जीवन रूपी वन दुखदायी न प्रतीत हो'।

इसी प्रकार के प्रश्नों ने जब कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन को व्यथित किया था तब उन्होंने अपने सारथि कृष्ण से प्रश्न किया था—

पृच्छामि त्वां धर्म संमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे।[3]

अर्थात् धर्म (कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान) के विषय में मूढ़ चित्त वाला मैं आपसे पूछता हूं मुझे वह मार्ग बताइये जिससे मेरा निश्चित कल्याण हो।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसके कार्य उस तक ही सीमित न रह कर दूसरों पर भी अपना प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार दूसरों के कार्यों का अपने ऊपर प्रभाव पड़ता है। हम दूसरों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे ऐसा कोई कार्य न करें जिनसे हमारा और फिर परिणामतया सम्पूर्ण समाज का अनिष्ट हो। दूसरे भी हम से ऐसी ही आशा करते हैं। फलतः हमारे आचार विचार, कार्य व्यवहार आदि समाज द्वारा परोक्ष रूप में निर्दिष्ट उच्चादर्शों पर ही आधारित हैं।

मनुष्य की इसी आकांक्षा एवं जिज्ञासा की पूर्ति के लिए हमारे प्राचीन ग्रन्थों जैसे महाभारत, गीता, वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, रामायण आदि में नीति की बातों की चर्चा की गयी है। हमारे ऋषि मुनियों ने प्राचीन काल में अपने तत्व ज्ञान के आधार पर हमारे नीति वाक्य निर्धारित किये थे, साथ ही हमारे कवि भी अपनी रचनाओं में उन बातों को दुहराते रहे। इन सब का उद्देश्य है उच्चतम आदर्शों की स्थापना तथा उन आदर्शों की प्राप्ति के

१. योगवाशिष्ठ १।३०।२० २. योगवाशिष्ठ १।३०।१६
३. श्रीमद्भगवद्गीता २-७।

उपाय। नीति शास्त्र के नियम सीमित अथवा एकदेशीय नहीं। वे सार्वभौम हैं। पाश्चात्य देशों में भी नीति शास्त्र पर अत्यधिक साहित्य उपलब्ध होता है। वहां भी आदर्शों की स्थापना की गयी है परन्तु जहां भारतीय नीतिशास्त्र में आदर्शों के साथ उन्हें क्रियान्वित करने के उपायों का विशद उल्लेख मिलता है वहां पाश्चात्य साहित्य में उपायों पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है।

नीतिशास्त्र की उपयोगिता—जैसा कहा जा चुका है, नीति शास्त्र का मुख्य उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि हमें समाज में रहकर किस प्रकार परस्पर व्यवहार करना चाहिए। हमारे लिए क्या उचित है, क्या अनुचित, क्या श्रेष्ठ है, क्या निकृष्ट। इसका ज्ञान हो जाने पर ही हम समाज की बुराइयों को दूर कर उसमें नैतिक आदर्शों की स्थापना कर सकते हैं। फलतः नीतिशास्त्र के पठन-पाठन, एवं अध्ययन-मनन द्वारा हम अपनी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं का समाधान ढूंढ़ कर देश को समृद्धि की ओर ले जा सकते हैं।

नीतिशास्त्र हमारे चरित्र का निर्माण करता है, उसे उठाता है और हममें सदाचारिता की भावना पैदा करता है। वह हमारे मध्य साहित्य, संगीत तथा कला की अपने शुद्धातिशुद्ध रूप में स्थापना करता है तथा हमें इस बात के लिए प्रेरित करता है कि हम उनकी ओर अपनी रुचि का प्रदर्शन करें और साक्षात् पशु ही न बने रहें जैसा कि नीति का यह वाक्य इंगित करता है—

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशु पुच्छविषाणहीनः।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नीति वाक्यों के महत्व को दृष्टिविगत नहीं किया जा सकता। इन वाक्यों का क्षेत्र सीमित नहीं—विद्या की श्रेष्ठता, राजधर्म, आपद्धर्म, शूरता, वीरता, न्याय, सत्य, उद्योग, पुरुषार्थ, धन की तुच्छता तथा उसकी वास्तविक उपयोगिता, बुद्धिबल, क्रोध, लोभ, संतोष, कृतज्ञता आदि सभी कुछ नीति के अन्तर्गत आ जाते हैं और हमारे साहित्य के कवियों ने अपने मतानुसार इन विषयों का विवेचन भी किया है।

नीति वाक्य

जहां तक भिखारीदास का सम्बन्ध है इसमें सन्देह नहीं कि नीति वाक्यों के निर्धारण में उन्होंने विशेष प्रयास किया है। इससे स्पष्ट है कि वे मनुष्य को समाज में एक उचित स्थान देने के समर्थक थे। हम उनके कुछ नीतिवाक्यों को नीचे उद्धृत कर रहे हैं—

संसार में मनुष्य निस्सार वस्तुओं के प्रति कितना आकृष्ट एवं उनमें कितना लिप्त रहता है और इस मृगतृष्णा में वह कितना दुखी रहता है इसे दास जी ने उस कीर (तोते) के उदाहरण द्वारा समझाया है जो अपने अज्ञान के कारण तूल भरे सेमर के फूल की सेवा करता है परन्तु यह नहीं जानता कि यह वस्तु सारहीन है, निरर्थक है। यह उदाहरण मनुष्य के लिए प्रबोध है।

तूल भरे फल सेमर सेइ कै कीर तूं काहे को होत अयाने।
आस लिए यहि रूखे पै ह्वै दुख भूखे फिरे कितने बिलखाने।[1]

१. रस सारांश, पृ० १२०।

मनुष्य का जीवन रसाल के समान होना चाहिए। आम्र के वृक्ष को वायु झकझोरती है, उसे लोग झोड़ते हैं, परन्तु इतने दुख सहकर भी वृक्ष आततायी को मीठा फल खिलाता है और साधु असाधु सभी को अपनी छाया देता है :

बात सह्यौ औ निपात लह्यौ परस्वारथ कारन बौरो कहायो।
झोरत हू झकझोरत हू गहि तोरत हू फल मीठो खवायो।
मंदन हूं औ अमंदन हूं कहं आपनी छांह सु बास बसायो।
क्यों न लहै महि में बहु साधु रसाल तुही जग में जस जायो।[1]

'क़द्रे गौहर शाह दानद या बेदानद जौहरी' (अर्थात् मोती की क़द्र या तो बादशाह जानता है या जौहरी) फारसी की इस कहावत के आशय के ये उद्गार दास जी ने भी व्यक्त किये हैं कि जवाहर के गुण केवल जौहरी जानता है गांव का रहने वाला साधारण ग्रामीण नहीं। तात्पर्य यह कि हमें जिस बात का ज्ञान नहीं है उसमें हमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

ल्यायो कछू फल मीठो बिचारि कै दूरि ते दौरे सबै ललचाने।
हाथ लै चाखि कै राखि दयो निस बा दिल बोलि सबै अलगाने।
दास जू गांहक चीन्ह्यो न लीन्हो तू नाहक दीन्ह्यो बगारि दुकाने।
रे जड़ जौहरी गांव गंवार में कौन जवाहिर के गुन जाने।[2]

मनुष्यों के प्रमुख गुण हैं परोपकार, कृतज्ञता, प्रत्युपकार तथा सुहृदों के लिए अपने प्राण तक का उत्सर्ग—

या जग में तिन्हैं धन्य गनौ जे सुभाय पराये भले कहं दौरें।
आपनो कोऊ भलो करै ताको सदा गुन माने रहैं सब ठौरें।
दास जू ह्वै जो सकै तो करैं बदले उपकार के आपु करोरैं।
काज हितू के लगे तन प्रान के दान तें नेकु नहीं मन मोरें।[3]

संगति के गुण दोष मनुष्य को सब काल में प्रभावित करते हैं, इसके 'दास' जी ने बड़े सुन्दर उदाहरण दिये है। पवन के साथ धूल आसमान तक पहुंच जाती है, परन्तु वही धूल जल के साथ कीचड़ का रूप ले लेती है, फूल के साथ कृमि राजा तक पहुंचता है परन्तु कांटे के साथ उसे गहन वेदना का अनुभव होता है, चंदन के संसर्ग से कुदाल सुगंधित होता है परन्तु नीम के संग उसी कुदाल में कड़वाहट आ जाती है। ये नैतिक संदेश हैं जिन पर मनुष्य को अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए विचार एवं मनन करना चाहिए।

धूरि चढ़ै नभ पौन प्रसंग तें कीच भई जल संगति पाई।
फूल मिलै नृप पै पहुँचै कृमि काँटनि संग अनेक बिथाई।
चंदन संग कुदारु सुगंध ह्वै नीब प्रसंग लहै करुआई।
दास जू देख्यो सही सब ठौरनि संगति को गुन दोष न जाई।[4]

---

१. र० सा०, पृ० १२०। २. रा० सा० पृ० १२१।
३. का० नि०, पृ० ११६। ४. का० नि०, पृ० ८०-८१।

काल मनुष्य को अगणित खेल खिलाता है। इसी के वश होकर वह लोभी बनकर दर दर की ठोकरें खाता है और तरह तरह के नाच नाचता है—

पेषन देखन हार सु साहेब पेखनि या यह कालु महा है।
ठौरहि ठौर सु लीन्हें मंगावत सोई करावत कोटि कला है।
लोभ की डोरी गरे बिच डारि कै डोलत डोरै जहां जहँ चाहै।
बानर लौं नर लोगनि को बहु नाच नचावत सोई सदा है।[1]

भगवान के बिना संत कितने व्याकुल रहते हैं इस का कुछ आभास कराने के लिए दास ने कितने उदाहरणों की योजना की है यह तो देखने योग्य है ही साथ ही अनेक उपयोगी बातें भी उनमें आ जाती हैं जिनसे मनुष्य शिक्षा ग्रहण कर सकता है—

देस बिनु भूपति दिनेस बिनु पंकज फनेस बिनु मनि औ निसेस बिनु जामिनी।
दीप बिनु नेह औ सुगेह बिनु संपति सुदेह बिनु देही घन मेह बिनु दामिनी।
कविता सुछन्द बिनु मीन जलवृन्द बिनु मालती मलिन्द बिनु होती छबि छामिनी।
दास भगवन्त बिनु सन्त अति व्याकुल बसन्त बिनु लतिका सुकन्त बिनु कामिनी।[2]

बिना लोभ के जप योग, नीरोग शरीर, बिना शोक के भोग आदि कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिनकी प्राप्ति बड़े भाग्य से ही होती है। दास की इस प्रकार की एक लम्बी सूची नीचे दी जा रही है।

नेगी बिनु लोभ को पटैत बिनु छोभ को तपस्वी बिनु सोभ को सतायो ठहराइये।
गेह बिनु पंक को सनेह बिनु संक को सदा बिनु कलंक को सुबंस सुखदाइये।
बिद्या बिनु दंभ सूत आलस बिहीन दूत बिना कुव्यसन पूत मन मध्य ल्याइये।
लोभ बिनु जप जोग दास देह बिनु रोग, सोग बिनु भोग बड़े भागन तें पाइये।[3]

मित्रता का निर्वाह किस प्रकार किया जा सकता है इसका उदाहरण 'दास' जी ने नीर क्षीर से दिया है। दूध अपने मित्र जल को साथ ही नहीं रखता अपितु उसे अपने ही मूल्य पर बिकवाता भी है। उसके बदले में जब अग्नि दूध को जलाती है तो जल बीच में कूद कर अपना बलिदान कर देता है और फिर दूध जल की पीड़ा दूर करने के लिए घड़ी घड़ी उबलने लगता है—

दास परसपर प्रेम लखो गुन छीर के नीर मिले सरसात है।
नीर बेंचावत आपने मोल जहाँ जहँ जाइ के आप बिकात है।
पावक जारन छीर लगै तब नीर जरावत आपनो गात है।
नीर की पीर निवारन कारन छीर घरीहि घरी उफनात है।[4]

संसार में मनुष्य की स्थिति उस विहंग की सी है जिस पर ऊपर से बाज और नीचे से बहेलिया अपने दाँत गड़ाये रहता है। बेचारा तभी बच सकता है जब भगवान ही उसे

१. र० सा०, पृ० १२१। २. का० नि०, पृ० १६०-१६१।
३. का० नि०, पृ० १६१। ४. का० नि०, पृ० १२०।

बचाये। तात्पर्य यह कि संसार में मनुष्य को अनेक प्रकार के कष्ट हैं और उनसे उसकी रक्षा केवल भगवान के ही हाथ में है।

वह पर ऊपर ते तकत नीचये बसे यह नीच।
बिधि बचये बचिहै बिहंग व्याध बाज के बीच।[1]

'सांच को आंच क्या' इस नीति वाक्य की अभिव्यक्ति 'दास' की निम्नलिखित पंक्तियों में हुई है।

कान्ह चलो किन एक दिन जहँ परपंचो पाँच।
देहु कहैं तो लीजियो कहा सांच को आँच।[2]

जिसे अपनी इन्द्रियों और अपने स्वभाव पर विश्वास है उसी को आत्म संतोष भी होता है, दास का यह भाव नीचे की पंक्तियों में व्यक्त किया गया है।

अपने अंग सुभाव को दिढ़ विश्वास जहाँहि।
आतम तुष्टि प्रमान कवि कोबिद कहत तहाँहि।[3]

दास का कथन है कि लोभ से मोह, मोह से गर्व, गर्व से कोप, कोप से कलह और कलह से व्यथा की उत्पत्ति होती है--

होत लोभ से मोह मोहहिं ते उपजै गरब।
गरब बढ़ावै कोह, कोह कलह, कल्लह बिथा।[4]

विद्या से विनय, विनय से पात्रता, पात्रता से धन, धन से धर्म और धर्म से अनन्त सुख की प्राप्ति होती है, ये भाव दास ने निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किये हैं।

विद्या देती विनय को बिनय पात्रता मित्त।
पात्रत्वै धन धन धरम, धरम देत सुख नित्त।[5]

कुकर्मों का फल मनुष्य को अवश्य मिलता है। दावाग्नि वन से ही पैदा होती है और उसी को जला डालती है। परन्तु वही अग्नि बादल को जन्म देती है जो अग्नि के ही विनाश का कारण बनता है।

जो कानन ते उपजि कै कानन देत जराय।
ता पावक सों उपजि घन हनै पावकहि न्याय।[6]

'दास' जी का कथन है कि धन, यौवन, बल, अज्ञान इनमें से यदि एक भी उपस्थित हों वहाँ मोह अवश्य होगा, जो पतन एवं विनाश का कारण होता है। फिर यदि किसी में ये चारों ही एकत्र हो जांय तो उसमें विवेक के लिए भी स्थान नहीं रह जाता।

धन जोबन बल अज्ञता मोह मूल इक एक।
दास मिलें चार्‌यो जहाँ पैये कहाँ बिवेक।[7]

१. र० सा०, पृ० १२३। २. का० नि०, पृ० १७४। ३. का० नि०, पृ० १७४।
४. का० नि०, पृ० १८३। ५. का० नि०, पृ० १०। ६. का० नि०, पृ० १५०।
७. का० नि०, पृ० ३५।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'दास' की रचनाओं में नीति के ऐसे-ऐसे संदेश भरे पड़े हैं जो हमारे जीवन को सुखमय बनाने में बड़े काम के सिद्ध हो सकते हैं। 'दास' ने ऊपर नीति की जिन बातों को कहा है वह इतनी सुस्पष्ट एवं सुगम हैं कि मनुष्य उनका सरलता से अनुकरण कर सकता है। वस्तुतः इनमें कोई बात ऐसी नहीं है जिसे मनुष्य न जानता हो पर आवश्यकता है उन पर व्यवहार करने की और दास जी ने इन बातों की योजना कदाचित् इसी कारण की है कि मनुष्य उनसे लाभ उठाये।

खण्ड ४

आचार्यत्व

जैसा पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है, हिन्दी साहित्य के रीतिकाल तक संस्कृत साहित्य काव्य सिद्धान्तों के प्रतिपादन तथा उनके खंडन मंडन द्वारा पूर्ण प्रौढ़ता को पहुँच चुका था और अब भाषा के कवियों की ज्ञान तुष्टि तथा उनके लिए काव्यसामग्री प्रस्तुत करने के निमित्त संस्कृत में रीति सम्बन्धी अपरिमित कोश उपलब्ध था, जिसके आधार पर कवि कर्म की ओर लगते हुए भी वे काव्यांगों का विशद विवेचन भाषा में कर सकते थे। अतः काव्य रचना के पूर्व अधिकांश कवियों ने संस्कृत में उपलब्ध काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन किया। कुछ ने लक्षणों के आधार पर केवल कविता की तथा काव्यांगों के विवेचन एवं विश्लेषण की ओर विशेष ध्यान न दिया। इसके विपरीत कुछ कवि ऐसे भी थे जो विद्वानों के मध्य आदर प्राप्त करने तथा दरबारों में अपने पांडित्य की धाक जमाने के लिए उत्सुक रहते थे। हिन्दी के ये यशेच्छु कवि संस्कृत के उद्भट विद्वानों के ग्रन्थों में प्रतिपादित सिद्धान्तों, काव्यशास्त्र के नियमों तथा सरल उदाहरणों को स्वनिर्मित ललित छन्दों में रच कर दूसरों पर अपनी विद्वत्ता की धाक जमाते थे। इस होड़ में अनेक कवियों ने संस्कृत साहित्य के आधार पर काव्यांगों का विवेचन करने वाले अपने ग्रन्थों की रचना की। उनके पास शताब्दियों से प्रतिपादित एवं विवेचित संस्कृत में काव्यशास्त्र के नियमों एवं सिद्धान्तों का अक्षय कोश था ही। इन नियमों एवं सिद्धान्तों का संस्कृत साहित्य में इतना अधिक खंडन मंडन हो चुका था कि हिन्दी के कवियों के लिए नयी उद्भावनाएं करना और फिर उन्हें संस्कृत का ज्ञान रखने वाले विद्वानों से मान्य करा लेना न तो आसान ही था और न सहज सम्भव ही। यही क्या कम था कि संस्कृत की प्रौढ़ता के इस युग में हमारे इन कवियों ने भाषा में कविता की और संस्कृत साहित्य में निहित उच्च भावों एवं कल्पनाओं को भाषा भाषी जनता के समक्ष रोचक ढंग से प्रस्तुत किया। पं० रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि 'इन रीति ग्रन्थों के कर्ता भावुक, सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था, न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनके द्वारा बड़ा भारी कार्य यह हुआ कि रसों (विशेषतः शृंगार रस) और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यन्त प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत हुए। ऐसे सरल और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण ग्रन्थों से चुनकर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।

अलंकारों की अपेक्षा नायिका भेद की ओर कुछ अधिक झुकाव रहा'।[1]

अस्तु, संस्कृत साहित्य में निहित ज्ञानभंडार का बड़ी उदारतापूर्वक उपयोग किया गया, यहां तक कि हिन्दी के कवियों ने संस्कृत ग्रन्थों के उदाहरण तथा लक्षण भी ज्यों के त्यों अपनी भाषा में रख लिये। रीतिकाल के विभिन्न कवियों ने ऐसे ही संस्कृत ग्रन्थों का आधार लिया जिनके पढ़ने में उनकी रुचि थी, जो उनके लिए बोधगम्य थे तथा जो उन्हें अधिक आनन्द प्रदान कर सकते थे। जिन ग्रन्थों का विशेष रूप से आधार लिया गया, वे हैं: भरत का नाट्यशास्त्र, भामह का काव्यालंकार, दंडी का काव्यादर्श, उद्भट का अलंकार सार संग्रह, केशव मिश्र का अलंकार शेखर, अमरदेव का काव्यकल्पलतावृत्ति, जयदेव का चन्द्रालोक, अप्पय दीक्षित का कुबलयानन्द, मम्मट का काव्यप्रकाश, विश्वनाथ का साहित्यदर्पण, आनन्दवर्धन का ध्वन्यालोक, भानुदत्त की रसमंजरी तथा रसतरंगिणी। हिन्दी के रीति ग्रन्थों और विशेषकर अलंकार ग्रन्थों में चन्द्रालोक, कुबलयानन्द, काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण का आधार लिया गया है। चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, श्रीपति, सोमनाथ आदि कुछ आचार्य कवियों ने काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण जैसी व्याख्यापूर्ण शैली और अधिकांश ने चन्द्रालोक कुवलयानन्द की वह शैली अपनायी जिसमें दोहों में लक्षण तथा कवित्त सवैया आदि पदों में उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। भिखारीदास जैसे कुछ आचार्यों ने चन्द्रालोक तथा काव्य प्रकाश दोनों ही की शैलियों को अपनाया। ऐसे भी अनेक कवि हुए जिन्होंने प्रचलित प्रणाली का शतप्रतिशत अनुकरण न करके कहीं तो उदाहरण सोरठों और वरवों में दिये हैं और कहीं दोहे के एक चरण में लक्षण तथा दूसरे में उदाहरण दिये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कवियों द्वारा प्रस्तुत ये उदाहरण बहुत ही सरल एवं हृदयग्राही बन पड़े हैं और उनके भाषाधिकार के द्योतक हैं।

यों तो रीतिकाल में रीति ग्रन्थों की संख्या बहुत अधिक है किन्तु आचार्यत्व की ख्याति प्राप्त कवियों की संख्या थोड़ी होने के कारण काव्यशास्त्र सम्बन्धी उच्चकोटि के ग्रन्थों की संख्या अधिक नहीं।[2] ये ग्रन्थ चार भागों में रखे जा सकते हैं—

१. **अलंकार ग्रन्थ**—वे ग्रन्थ जो केवल अलंकार सम्बन्धी हैं।

२. **रस ग्रन्थ**—वे ग्रन्थ जिनमें केवल रसों का विवेचन है।

३. **शृंगार एवं नायिकाभेद ग्रन्थ**—वे ग्रन्थ जिनमें शृंगार रस अथवा नायिकाभेद का वर्णन है।

४. **वे ग्रन्थ** जिनमें काव्यशास्त्र के समस्त, अधिकांश या एकाधिक अंगों का वर्णन मिलता है।

आचार्यत्व की व्याख्या—संदिग्ध कवि पुंड या पुष्य के समय (सं० ७७० वि०) से

१. प० रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २०५.

२. काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की विस्तृत सूची के लिए देखिये डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ४१ से ४७ तक।

हिन्दी में काव्य की जो परम्परा मिलती है वह आज भी अक्षुण्ण है। हमारे कवियों ने न केवल हमें आध्यात्मिकता के मानसिक दर्शन कराये हैं अपितु लोकाचार, लोकव्यवहार, मानव प्रेम आदि गुणों का साक्षात्कार भी कराया है। इनमें सूरदास, तुलसीदास आदि तो अत्यन्त उच्च कोटि के कवि थे जो आध्यात्मिकता की उच्च भूमि पर काव्य की चरम सफलता मानते थे। तुलसी का यह कथन **'कीन्हे प्राकृत जनगुन गाना। सिर धुन गिरा लागि पछताना'** इसी की ओर इंगित करता है। ये कवि काव्य की इतनी प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकने पर भी कितने विनम्र थे इसका आभास हमें तुलसी के इन शब्दों में मिल जाता है—

कवित विवेक एक नहि मोरे। सत्य कहहुं लिखि कागद कोरे।।

कवि के लिए कवित विवेक अथवा काव्यशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है, इस बात को काव्यशास्त्री और कवि दोनों ही मानते हैं। साधारणतया काव्याचार्य काव्यशास्त्र के पंडित को कहते हैं। आचार्य वे विद्वान हैं जिन्होंने कविता करने के लिए जिन नियमों एवं सिद्धान्तों की आवश्यकता होती है उनका विधिवत् विवेचन किया हो। काव्य नियमों एवं सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में हृदयग्राहिणी एवं आनन्दप्रदायिनी कविता भी जिस आचार्य ने की हो उसे वस्तुतः बड़ा आचार्य मानना चाहिए। इस तथ्य को सम्मुख रखने से हमें भिखारीदास में आचार्यत्व के दर्शन होते हैं।

भिखारीदास ने अपने को कहीं भीं आचार्य नाम से संबोधित नहीं किया है। वे सदा अपने को कवि ही मानते रहे, परन्तु कवि होकर उन्होंने काव्यशास्त्र के जिन विषयों का हिन्दी में विवेचन किया है वे निश्चय ही उत्कृष्ट बन पड़े हैं और उनकी प्रखर प्रतिभा के द्योतक हैं।

काव्य के स्वरूप का उल्लेख करते हुए स्वयं मम्मटाचार्य ने कहा है कि काव्य वह है जिसके शब्दों और अर्थों में दोष न हो, गुण अवश्य हों चाहे अलंकार कहीं कहीं न हों।[1] परन्तु जयदेव ने मम्मट के इस मत का खंडन किया है कि अलंकार शून्य शब्दार्थ काव्य की कोटि में आते हैं।[2] भिखारीदास ने दोनों आचार्यों के मतों का समन्वय करते हुए कहा है कि काव्य के लिए शब्दालंकार तथा अलंकार सार का होना अपेक्षित है।[3]

काव्याङ्ग, काव्य-प्रयोजन तथा काव्य के कारण

भिखारीदास ने अपने 'काव्यनिर्णय' में काव्य के उपर्युक्त सभी अंगों का विशद विवेचन किया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत के आचार्यों के मतानुसार काव्यांग, काव्य-प्रयोजन, तथा काव्य के कारण आदि विषयों पर भी अपना मत व्यक्त किया है।

काव्यांग—यद्यपि, जैसा पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है, भिखारीदास ने काव्य का

---

१. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि। का० प्र०, पृ० ४।

२. अङ्गीकरोति यः काव्यम् शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती। चं० लो०, पृ० १०।

३. देखिये पृ० १०३।

स्वरूप खड़ा करने का प्रयत्न किया है और उनका कहना है कि कविता का शरीर रस, उस शरीर को अलंकृत करने वाले आभूषण अलंकार, रूप और रंग कविता के गुण तथा दोष कविता की कुरुपता है,[1] फिर भी उन्होंने यह नहीं बताया कि कविता की आत्मा क्या है क्योंकि बिना आत्मा के शरीर, उसके आभूषण, उसके सौंदर्य अथवा कुरूपता का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता है। हो सकता है कि 'दास' ने काव्य के लिए सब से अपेक्षित वस्तु—काव्य की आत्मा—का उल्लेख इसीलिए न किया हो कि इस विषय में स्वयं संस्कृत के आचार्य भी एक मत नहीं रहे हैं। कुछ काव्य की आत्मा रीति को मानते हैं, कुछ ध्वनि को, कुछ रस को, कुछ वक्रोक्ति को, कुछ शब्दार्थ को, कुछ रमणीयार्थ को और कुछ अलंकार को।[2] परन्तु दास के अनुसार काव्य में रस, अलंकार, गुण ध्वनि आदि सभी का होना अपेक्षित है और इन सभी के समन्वय से सुकवि अपने काव्य को आस्वादनीय एवं श्रेष्ठ स्वरूप प्रदान कर सकता है। इस प्रकार दास ने इस विषय के खंडन मंडन में न पड़कर समन्वयात्मक बुद्धि से काम लिया है।

काव्य का प्रयोजन—काव्य-प्रयोजन के संबंध में भिखारीदास का कथन है कि काव्य रचना द्वारा कुछ कवि तो तुलसी और सूर की भांति परमार्थ लाभ करते हैं, कुछ केशव और भूषण की भांति प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त करते हैं, कुछ रसखान और रहीम की भांति केवल यश प्राप्त करके ही संसार में अक्षय कीर्ति के भागी होते हैं परन्तु वास्तविकता यह है, कि काव्यचर्चा से सभी बुद्धिमानों को सब स्थानों पर सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है।[3] आचार्य मम्मट ने भी काव्य के कुछ प्रयोजन बतलाये हैं जो अधिक व्यापक हैं। उनके अनुसार ये प्रयोजन हैं यश प्राप्ति, धन प्राप्ति, सामाजिक व्यवहार शिक्षा, विपक्षियों का नाश, उच्चकोटि के आनन्द का अनुभव तथा 'कान्ता' के समान सुख देने वाली शिक्षाएं।[4] स्पष्ट है कि दास ने मम्मट के इन प्रयोजनों में से केवल धन, यश और आनन्द ये तीन प्रयोजन स्वीकार किये हैं, परमार्थ लाभ का चौथा प्रयोजन उन्होंने सूर, तुलसी जैसे कवियों के उदाहरण से स्थापित

१. रस कविता को अंग, भूषन हैं भूषन सकल।
गुन सरूप औ रंग, दूषन करैं कुरूपता। — का० नि०, पृ० ५।

२. रीतिरात्मा काव्यस्य। — काव्यालंकार सूत्र, पृ० १५।
काव्यस्यात्मा ध्वनिः— — ध्वन्यालोक, पृ० २।
वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम् — — साहित्यदर्पण, पृ० २३।
वक्रोक्ति काव्यजीवितम्— — वक्रोक्तिजीवितम्।
ननु शब्दार्थौ काव्यम् शब्दस्तत्रार्थवाननेकविधः- — काव्यालंकार, पृ० ८।
तददौषो शब्दार्थौ— — काव्यप्रकाश, पृ० ६।
रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् — रस गंगाधर, पृ० ६।
काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकाराल प्रवक्षते — काव्यादर्श पृ० १०६।

३. एक लहैं तपपुंजन्ह के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाँई।
एक लहैं बहु सम्पति केशव भूषन ज्यों बरवीर बड़ाई।
एकन्ह को जस ही सों प्रयोजन है रसखानि रहीम की नाँई।
दास कवित्तन की चरचा बुधिवन्तन को सुखदै सब ठाँई। का० नि०, पृ० ४।

४. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिवृत्तये कान्तासम्मित तयोपदेशयुजे। — काव्य प्रकाश, पृ० २।

किया है। साथ ही जहां मम्मटाचार्य अपने समर्थन में कालिदास, श्री हर्ष आदि के नाम लेते हैं,[१] वहाँ भिखारीदास ने हिन्दी कवियों के नाम दिये हैं।

'दास' ने काव्य के प्रयोजनों में मुख्य प्रयोजन 'आनन्द' पर विशेष बल दिया है। यह आनन्द लौकिक नहीं अलौकिक है तथा इसे ब्रह्मानन्द सहोदर की संज्ञा दी गयी है।[२]

काव्य के कारण—भिखारीदास ने काव्य के तीन कारण बताये हैं—(१) प्रतिभा, (२) सुकवियों द्वारा काव्य की रीतियों का अध्ययन तथा (३) लोकानुभव।[३] परन्तु दास ने प्रत्येक का विशद विवेचन नहीं किया है। यह ठीक है कि ये तीनों ही सुकाव्य निर्माण में सहायक होते हैं परन्तु कभी कभी प्रतिभा के अभाव में यत्नपूर्वक शास्त्रों को सुनने तथा उनका मनन करने से भी अच्छी कविता बन पड़ती है।[४] जयदेव का मत है कि शास्त्रज्ञान और शास्त्र के मनन अर्थात् श्रुत और अभ्यास सहित प्रतिभा कविता का मूल है।[५] मम्मट ने काव्य के तीन कारण[६]—काव्य निर्माण की शक्ति, लोक और शास्त्र आदि का अवलोकन तथा काव्यज्ञों से शिक्षा प्राप्त कर उसका अभ्यास—बताते हुए शक्ति से किसी 'संस्कार' विशेष का अर्थ लिया है, **'शक्तिः कवित्वबीजरूपः संस्कार विशेषः'**।[७] यह संस्कार विशेष प्रतिभा ही हो सकती है। काव्यानुशासन में तो हेमचन्द्र ने यह स्पष्ट लिख दिया है कि केवल प्रतिभा ही काव्यरचना का कारण होती है।[८]

अतः दास जी द्वारा वर्णित काव्य के कारण प्रायः वे ही हैं जिनका उल्लेख संस्कृत के अनेक विद्वानों ने किया है। प्रतिभा काव्य का मूल है और प्रतिभा के साथ अध्ययन तथा अनुभव का सामञ्जस्य हो जाने से काव्य में उत्कृष्टता आती है।

गुण निर्णय

सर्वप्रथम भरत ने काव्य के दस गुणों अर्थात् श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता और कान्ति का उल्लेख किया है।[९] तत्पश्चात् भोज ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण में गुणों की संख्या २४ बताई है जिसमें उपर्युक्त

१. देखिये काव्यप्रकाश, पृ० २।
२. ब्रह्मास्वाद सहोदरः साहित्यदर्पण, पृ० ६३।
३. देखिये पृ० १०६ से १०९ तक।
४. न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्।
दंडी : काव्यादर्श, पृ० १०७, २४५।
५. प्रतिभैव श्रुताभ्यास सहित कवितां प्रति। चं० लो०, पृ० ८।
६. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे। का० प्र०, पृ० ३।
७. देखिये काव्यप्रकाश, पृ० ३।
८. प्रयोजनमुक्त्वा काव्यस्यं कारणमाह—प्रतिभास्य हेतुः—प्रतिभानवनवोल्लेखशालिनी प्रज्ञा। अस्य काव्यस्येदं प्रधान कारणं। हेमचन्द्र : काव्यानुशासन, पृ० ५-६।
९. श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यस्य गुणा दशैते।
भरत : नाट्यशास्त्र, भाग २, पृ० ३३४।

दस के अतिरिक्त उदात्तता, और्जित्य, प्रेय, सुशब्दता, सौक्ष्म्य, गाम्भीर्य, विस्तर, संक्षेप, संमितत्व, भाविक, गति, रीति, उक्ति और प्रौढ़ि भी सम्मिलित हैं। दंडी ने गुणों की संख्या दस कही है। वे गुणों का सम्बन्ध रीतियों के साथ स्थापित करते हैं। दंडी द्वारा बताये गये गुण वही हैं जो भरत ने माने हैं। हाँ, उन्होंने इन गुणों को वैदर्भ मार्ग का प्राण कहा है,[1] परन्तु भरत के अनुसार काव्यार्थ को विभूषित करने वाले उपर्युक्त दस गुण ही होते हैं, **'काव्यस्य गुणा दशैते'**।

भरत की भांति वामन ने भी उपर्युक्त दस गुण ही माने हैं किन्तु उन्होंने गुणों के दो प्रकार किये हैं—(१) शब्द गुण तथा (२) अर्थ गुण। उनके अनुसार प्रथम में रीतोन्मेष अल्प मात्रा में तथा द्वितीय में अधिक मात्रा में होता है क्योंकि अर्थगुण व्यापक होने के कारण रस का भी अपने में समावेश कर लेते हैं। अर्थगुण के भीतर वे ओज, माधुर्य, श्लेष तथा कान्ति गुणों को रख लेते हैं।[2] वामन यद्यपि रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे फिर भी उन्होंने गुणों का महत्व स्वीकार किया है **'विशेषो गुणात्मा'**। अतः गुण उत्तम काव्य के लक्षण स्वरूप हैं। वस्तुतः गुण ही काव्य के सर्वस्व हैं। श्रेष्ठ होने के कारण वैदर्भी रीति में समस्त गुणों का समावेश रहता है[3] और इसी वैदर्भी रीति में अर्थगुण सम्पत्ति विशेष आस्वादनीय होती है।[4] गौड़ी रीति में ओज तथा कान्ति गुणों की प्रधानता रहती है,[5] और पांचाली में, जिसकी कल्पना सर्वप्रथम वामन ने ही की थी, माधुर्य और सौकुमार्य का सद्भाव तथा ओज और कान्ति गुणों का अभाव रहता है।[6]

मम्मट ने केवल तीन ही गुण माने हैं—माधुर्य, ओज और प्रसाद।[7] उनके मतानुसार आचार्यों द्वारा कहे गये दस गुणों में से कुछ तो माधुर्यादि गुणों के अन्तर्गत आजाते हैं, कुछ निर्दोष होने के कारण स्वीकृत हैं और अन्य दूषित होने के कारण गणनीय नहीं।[8]

जयदेव ने उक्त १० गुणों में से ८ अर्थात् श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज

---

१. **श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता।**
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्ति समाधयः।
इति वैदर्भमार्गस्यप्राणाः दशगुणाः स्मृताः। दंडी : काव्यादर्श, पृ० ४१-४२।

२. **देखिये वामन : काव्यालंकारसूत्र, पृ० ६९, ७०, ७१।**

३. **समग्र गुणा वैदर्भी — काव्यालंकार सूत्र, पृ० १७।**

४. **तस्यामर्थगुणसम्पद् आस्वाद्या — काव्यालंकार सूत्र, पृ० २४।**

५. **ओजः कान्तिमती गौडीया — काव्यालंकार सूत्र, पृ० १९।**

६. **माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पांचाली। — काव्यालंकार सूत्र, पृ०, २१।**
आश्लिष्टश्लथ भावां तां पूरणच्छाययाश्रिताम्।
मधुरां सुकुमारां च पांचालीं कवयो विदुः। टीका पृ० २१।

७. **माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश। का० प्र०, पृ० २८९।**

८. **केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषत्यागात्परेश्रिताः।**
अन्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश। का० प्र०, पृ० २९२।

सौकुमार्य और उदारता ही माने हैं। कान्ति और अर्थव्यक्ति गुणों को उन्होंने क्रमशः शृंगार रस और प्रसाद गुण में अन्तर्भाव होना कहा है।[1]

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि काव्य में गुणों की संख्या तथा उनके विवेचन के सम्बन्ध में संस्कृत के आचार्यों में बहुत कुछ मतभेद रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि गुण विवेचन में दास भी इस खंडन मंडन से अप्रभावित नहीं रहे। इसी कारण दास ने स्पष्ट कहा है कि सुकवियों ने पहले तो काव्य के दस गुण बताये हैं और फिर उन दसों का केवल तीन गुणों में समावेश कर दिया है।[2] उन्होंने सर्वप्रथम गुण के तीन प्रकार माने हैं (१) **अक्षर गुण**, (२) **अर्थ गुण** (३) **वाक्य गुण**। **अक्षर गुण** के अन्तर्गत उन्होंने माधुर्य, ओज, प्रसाद, **अर्थगुण** के अन्तर्गत समता, कान्ति, उदारता, अर्थव्यक्ति और समाधि तथा **वाक्यगुण** के अन्तर्गत श्लेष और पुनरुक्ति प्रकाश रखे हैं।[3]

ऐसा प्रतीत होता है कि दास ने सम्पूर्ण गुणों को जिन तीन रूपों अर्थात् अक्षर, अर्थ और वाक्य में विभाजित किया है उनका आधार आचार्य वामन हैं क्योंकि सर्वप्रथम उन्होंने, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, दसों गुणों को शब्द गुण तथा अर्थ गुण इन दो भागों में विभाजित किया। अन्य किसी आचार्य ने गुणों के इस प्रकार विभाजन नहीं किये हैं। दास द्वारा गुणों के (अक्षर, अर्थ और वाक्य) विभाजन उनकी पूर्णतः नवीन उद्भावनाएं हैं और जैसा हम आगे देखेंगे यह विभाजन संगत प्रतीत होता है। दास ने एक सर्वथा नया गुण 'पुनरुक्ति प्रकाश' के नाम से वाक्य गुण के अन्तर्गत रखा है। हमारे विचार से यह सुकुमार गुण का स्थानापन्न है। शेष गुण वही हैं जिनका भरत, दंडी, वामन आदि आचार्यों ने उल्लेख किया है।

दास का कथन है कि जिस प्रकार सज्जनों के अन्तस् में शौर्यादि गुण प्रच्छन्नावस्था में विराजमान रहते हैं उसी प्रकार काव्य में भी दसों गुण स्वाभाविक रूप से स्थित रहते हैं।[4] ठीक यही भाव जयदेव ने अपने चन्द्रालोक में भी व्यक्त किया है—

अमी दश गुणाः काव्ये पुंसि शौर्यादयो यथा।[5]

दास जी ने माधुर्य, ओज और प्रसाद के लक्षण अक्षर-विशेषतानुरूप दिये हैं जैसे—

---

१. **शृंगारे च प्रसादे च कान्त्यर्थव्यक्ति संग्रहः।**
अमी दशा गुणाः काव्ये पुंसिशौर्यादयो यथा। चं० लो०, पृ० ८६।

२. **दस बिधि के गुन कहत हैं पहिले सुकवि सुजान।**
पुनि तीनै गुन गनि रचौ सब तिन के दरम्यान। का० नि०, पृ० १६१।

३. **अक्षरगुन माधुर्य अरु ओज प्रसाद बिचारि।**
समता कान्ति उदारता दूषन हरन निहारि।
अर्थाव्यक्त समाधिये अर्थहि करै प्रकास।
वाक्यन के गुन श्लेष अरु पुनरुक्ती परकास। का० नि०, पृ० १६१।

४. **ज्यों सतजन हिय ते नहीं सूरतादि गुन जाय।**
त्यों बिदग्ध हिय में रहैं दस गुन सहज स्वभाय। का० नि०, पृ० १६१।

५. **चंद्रालोक, पृ० ८६।**

माधुर्य गुण का लक्षण देते हुए वे कहते हैं, जहां अनुस्वार युक्त वर्ण तो हों, परन्तु टवर्ग के वर्ण न हों, और मृदु वर्ण भी हों वहां माधुर्य गुण माना जाता ह ।[१] मम्मट ने इस गुण की व्याख्या करते हुए कहा है कि जो चित को प्रसन्न और शृंगार रस में विभोर कर दे वह माधुर्य गुण होता है ।[२] जयदेव के अनुसार जहां पुनरुक्ति से भी अधिक वैचित्र्य हो वहां माधुर्य गुण होता है ।[३] मम्मट ने गुणों के व्यंजक वर्णों के विवेचन के अन्तर्गत माधुर्य गुण के लिए टवर्ग वर्जित स्पर्श वर्ण, जिनमें उनके वर्ग के अन्तिम वर्ण भी हों, ह्रस्व स्वरों के बीच 'र' तथा 'ण', समास का अभाव, मधुर शब्द-रचना इन सबका विधान बताया है ।[४] दास की परिभाषा यद्यपि मम्मटाचार्य से कुछ कुछ मिलती है परन्तु उसमें व्यापकता एवं विशदता की कमी मालूम पड़ती है ।

ओज गुण के व्यंजक वर्णों में जहां मम्मट ने किसी वर्ग के प्रथम व तृतीय अक्षरों के साथ उनके पिछले वर्णों का संयोग, रकार से संयोग तथा तुल्य अक्षरों का संयोग, टवर्ग के वर्ण, तालव्य (श) और मूर्द्धन्य (ष), लम्बे समास और विकट रचना का विधान[५] तथा उसका श्रोता अथवा पाठक के मन म व्याप्त हो जाना बताया है[६] वहां दास ने अपनी परिभाषा प्रायः मम्मट से मिलती जुलती पर अत्यंत संक्षिप्त रखी है ।[७] ओज को व्यक्त करने वाला दास का निम्नलिखित उदाहरण सुन्दर एवं तथ्यपूर्ण बन पड़ा है :

> **प्रिष्टप ठट गज घटन के जुथ्थप उठे बरक्कि ।**
> **पट्टुत महि घनकट्टि सिर कुद्दित खंग सरक्कि ।**[८]

प्रसाद गुण की व्यंजकता के संबंध में मम्मट का कथन है कि जिस शब्द को सुनते ही तत्काल अर्थ की प्रतीति हो जाय वह प्रसाद गुण का व्यंजक है ।[९] यह परिभाषा जयदेव से बहुत कुछ मिलती जुलती है । जयदेव के अनुसार जहां काव्य में प्रतिपाद्य अर्थ बिना कठिनाई अथवा प्रयास के सरलता से जाना जा सके वहां प्रसाद गुण होता है[१०], परन्तु दासजी

१. अनुस्वार जुत बर्ण जुत सबै बर्ग अटवर्ग ।
अक्षर जामें मृदु परै सो माधुर्ज निसर्ग । — का० नि०, पृ० १६२ ।
२. आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुतिकारणम् । — का० प्र०, पृ० २६० ।
३. माधुर्यं पुनरुक्तस्य वैचित्र्यं चारुतावहम् । — चंद्रालोक, पृ० ८३ ।
४. मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा । — का० प्र०, पृ० २६६ ।
५. योग आद्य तृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः
टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि । — का० प्र०, पृ० २६७ ।
६. दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति ।
चित्तस्य विस्ताररूपदीप्तत्वजनकमोजः । — का० प्र०, पृ० २६० ।
७. उद्धत अक्षर जहँ परै सकटवर्ग मिलि जाय ।
ताहि ओज गुण कहत हैं जे प्रवीन कविराय । — का० नि०, पृ० १६२ ।
८. का० नि०, पृ० १६४ ।
९. श्रुति मात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।
साधारण समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः । — का० प्र०, पृ० २६८ ।
१०. यस्मादन्तः स्थितः सर्वः स्वयमर्थोऽवभासते ।
सलिलस्येव सूक्तस्य स प्रसाद इति स्मृतः । — चं० लो०, पृ० ८० ।

ने कहा है, जहां मनोनुकूल अक्षर के सामञ्जस्य से गम्भीर अर्थ इतनी सरलता से स्पष्ट हो जाय जैसे स्वच्छ जल में सीप, वहां प्रसाद गुण होता है।[१] इस प्रकार स्पष्ट है कि दास का प्रसाद गुण का लक्षण काव्यप्रकाश तथा चन्द्रालोक दोनों ही के बहुत निकट है।

समता गुण दास के अनुसार वहां होता है जहाँ कोई बात रुढ़ि-विरुद्ध तो कही जाय परन्तु हो यथार्थ[२] जैसे—

मेरे दृगकुबलयन को होति निसा सानन्द।
सदा रहै ब्रज देश पर उदित सांवरो चन्द।[३]

यहां रात्रि को कमल खिलना तथा चन्द्रमा का सांवला होना ये विरुद्ध बातें पड़ती हैं परन्तु उनके सत्य होने के कारण यहां समता गुण है। यह मत मम्मट के समता संबंधी मत का विरोधी जान पड़ता है क्योंकि मम्मट का कथन है कि आरम्भ किये हुए मार्ग को न छोड़ना समता है। यह कहीं कहीं दोष हो जाता है।[४]

कांति गुण[५] में मधुर शब्दों में सुन्दर बात कही जाती है जिसका तात्पर्य गूढ़ होता हैं। 'दास' का यह मत बहुत कुछ मम्मट के आधार पर है। मम्मट ने औज्ज्वल्यस्वरूप (चटकीले तथा भड़कीले शब्दों वाली) रचना को कान्तिगुण के अन्तर्गत माना है।[६]

उदाहरण गुण वहां होता है जहां अन्वय के बल पर बुद्धिमानों को तो अर्थ स्पष्ट हो जाय परन्तु औरों को वह कठिन जान पड़े।[७] जयदेव का कथन है कि जहां बात तो चातुर्य से कही जाय परन्तु ग्राम्य दोष का अभाव हो वहां उदारतागुण होता है।[८] मम्मट ने इसका लक्षण विकटत्व कहा है।[९] अतः इस गुण की परिभाषा के सम्बन्ध में जयदेव और मम्मट में कुछ अन्तर है। 'दास' कृत इस की परिभाषा दोनों के ही निकट जान पड़ती है।

अर्थव्यक्ति गुण में स्वाभाविक ढंग से अर्थ प्रकट होता है। इसमें समास का बाहुल्य नहीं होता[१०], उदाहरणार्थ—

१. मन रोचक अक्षर परै सो है सिथिल सरीर।
गुन प्रसाद जल-सुक्ति ज्यों प्रगटै अर्थ गँभीर। — का० नि०, पृ० १६२।
२. प्राचीनन की रीति सों भिन्न रीति ठहराइ।
समता गुन ताको कहैं पै दूषनन्ह बराइ। — का० नि०, पृ० १६३।
३. का० नि०, पृ० १६३।
४. मार्गा भेदरूपा समता क्वचिद्दोषः। — का० प्र०, पृ० २६२।
५. रुचिर रुचिर बातैं करैं अर्थ न प्रगटन गूढ़।
ग्राम्य रहित सो कांति गुन समुझैं सुमति न मूढ़। — का० नि०, पृ० १६३।
६. औज्ज्वल्यरूपा कान्तिश्च स्वीकृता। — का० प्र०, पृ० २६२।
७. जो अन्वयबल पठित ह्वै समुझि परै चतुरैन।
औरन को लागै कठिन गुन उदारता ऐन। — का० नि०, पृ० १६४।
८. उदारता तु वैदग्ध्यमग्राम्यत्वात् पृथङ्मता। — चं० लो०, पृ० ८५।
९. विकटत्व लक्षण उदारता। — का० प्र०, पृ० २६२।
१०. जासु अर्थ अति ही प्रगट, नहिं समास अधिकाउ।
अर्थव्यक्त गुन बात ज्यों बौलैं सहज सुभाउ। — का० नि०, पृ० १६४।

इक टक हरि राधे लखै राधे हरि की ओर।
दोऊ आनन इन्दु औ चार्‌यो नैन चकोर।[1]

दास का यह लक्षण दंडी से मिलता जुलता है क्योंकि दंडी का कथन है कि अर्थव्यक्ति में अर्थ की स्पष्ट प्रतीति होती है।[2]

समाधि गुण[3] में क्रम से गुण का सुन्दर ढंग पर उत्कर्ष या अपकर्ष दिखाया जाता है। दास का समाधिगुण का निम्नलिखित उदाहरण सुन्दर एवं ललित है—

भावतो आवत ही सुनि कै उड़ि ऐसी गई मन छामता जो गुनी।
कंचुकी हू में नहीं मढ़ती बढ़ती कुच की अब तो भई दो गुनी।
दास भई चिकुरारिन की चटकीलता चामर चारु तें चौगुनी।
नौगुनी नीरज तें मृदुता सुखमा मुख में ससि तें भई सौगुनी।[4]

इस में सौंदर्य-प्रतीकों की वृद्धि क्रमिक रूप से—दुगुनी, चौगुनी, नौगुनी और सौगुनी—हुई है। अतः यह समाधि गुण है।

मम्मट ने समाधि का लक्षण बताते हुए कहा है कि जहां पर क्रम से आरोह और अवरोह—उतार और चढ़ाव—हों वहां समाधि गुण होता है।[5] जयदेव के अनुसार उस अर्थ—चमत्कार को समाधि कहते है जिसके सुनने से रसिकों का हृदय रस से ओत प्रोत हो जाय।[6] दंडी ने इस गुण को काव्यसर्वस्व कहा है। उनके मतानुसार समग्र कवि समुदाय इसी एक गुण का आश्रय लेता है।[7] दास की व्याख्या इन आचार्यों के मतों का समावेश कर लेती है।

वाक्यगुण के अन्तर्गत दास ने सर्वप्रथम श्लेष गुण लिया है। जहां बहुत से शब्दों को मिला कर समास बना लिया जाय वहां श्लेष गुण होता है।[8] श्लेष गुण दास ने तीन माने हैं—गुरु श्लेष, मध्यम श्लेष तथा लघु श्लेष। परन्तु उन्होंने इन तीनों श्लेषों के लक्षण न देकर उदाहरण मात्र दिये हैं। मम्मट ने श्लेष गुण का उल्लेख करते हुए कहा है कि

१. काव्यनिर्णय, पृ० १६४।
२. अर्थव्यक्तिरनेयत्वमर्थस्य। काव्यादर्श, पृ० ७८।
३. जु है रोह अवरोह गति रुचिर भांति क्रम पाय।
तेहि समाधि गुन कहत हैं ज्यों भूषन पर्याय। का० नि०, पृ० १६४।
४. काव्य निर्णय, पृ० १६५।
५. आरोहावरोहक्रमरूपः समाधिः। का० प्र०, पृ० २६२।
६. समाधिरर्थमहिमा लसद्घनरसात्मना। चं० लो०, पृ० ८२।
७. तदेतत् काव्य सर्वस्वं समाधिर्नाम यो गुणः।
कविसार्थः समग्रोऽपि तमेकमुपजीवति। दंडी : काव्यादर्श, पृ० १०४।
८. बहु सब्दन को एक कै कीजे जहां समास।
ता अधिकाई श्लेष गुन गुरु मध्यम लघु दास। का० नि०, पृ० १६५।

जहां अनेक पद सन्धि-चातुर्य से एक पद सरीखे प्रतीत हों वहां श्लेष होता है।[1] उन्होंने श्लेष के भेद नहीं किये हैं। जयदेव ने श्लेष गुण के दो भेद किये हैं——शब्दश्लेष और अर्थ-श्लेष। प्रथम वहां होता है जहाँ असंभव अर्थ को युक्ति से संभव दिखाया जाय और दूसरा वहां होता है जहां संधि अथवा सजातीय पदों के कारण बहुत से पद एक पद के सदृश दिखलाई पड़ें।[2] अतः स्पष्ट है कि दास का मत दोनों आचार्यों के समान होते हुए भी उनकी श्लेष की परिभाषा तथा उसके भेद अधिक व्यापक हैं।

पुनरुक्ति प्रकाश, जैसा पीछे कहा गया है, दास ने एक सर्वथा नया गुण माना है जिसका उल्लेख न तो उपर्युक्त किसी आचार्य ने ही किया और न भोजराज ने ही, जिन्होंने १० के स्थान पर २४ गुण माने हैं। परवर्ती आचार्यों ने इसे अलंकार के अन्तर्गत रखा है।

पुनरुक्ति प्रकाश गुण का लक्षण देते हुए दास ने कहा है कि जहां एक शब्द के बार बार आने के कारण उसके अर्थ में चमत्कार आ जाय वहां पुनरुक्ति प्रकाश होता है।[3] पुनरुक्ति प्रकाश नामक गुण को अधिक स्पष्ट करने के लिए दास ने दो उदाहरण दिये हैं जिससे न केवल इस गुण के लक्षण ही स्पष्ट हो जाते हैं अपितु उनकी इस नवीन उद्भावना के प्रति हमारी श्रद्धा भी उमड़ती है। वस्तुतः उनकी यह नयी योजना सराहनीय है।

बनि बनि बनि बनिता चली, गनि गनि गनि डग देत।
धनि धनि धनि अंखियां जु छबि, सनि सनि सनि सुख लेत।[4]

पुनः

मधुमास में दास जू बीस बिसे मन मोहन आइहैं आइहैं आइहैं।
उजरे इन भौननि को सजनी सुखपुंजन छाइहैं छाइहैं छाइहैं।
अब तेरी सौं एरी न संक इकंक बिथा सब जाइहैं जाइहैं जाइहैं।
घनस्याम प्रभा लखि कै सजनी अंखियां सुख पाइहैं पाइहैं पाइहैं।[5]

ऐसा प्रतीत होता है कि दास जी की पैनी दृष्टि उस ओर भी गयी जहां अनेक आचार्यों की दृष्टि न पहुंच सकी थी। उनकी इस नवीन उद्भावना ने वास्तव में एक बड़ी कमी की पूर्ति की है।

गुण और रस का सम्बन्ध

गुण और रस का सम्बन्ध बताते हुए मम्मटाचार्य ने कहा है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में प्रधान आत्मा के शूरता आदि गुण रहते हैं उसी प्रकार काव्य में प्रधान रस को उत्कर्ष प्रदान करने वाले जो धर्म हैं वे गुण कहलाते हैं और इनकी

१. बहूनामपि पदानामेकपदवद्भासनात्मा यः श्लेषः। का० प्र०, पृ० २६२।
२. श्लेषो विघटमानार्थघटमानत्ववर्णनम्।
स तु शाब्दः सजातीयै शब्दैर्बन्धः सुखावहः। चं० लो०, पृ० ७६।
३. एक शब्द बहु बार जहं परै रुचिरता अर्थ।
पुनरुक्ती परकाश गुन बरनै बुद्धि समर्थ। का० नि०, पृ० १६६।
४. का० नि०, पृ० १६६। ५. का० नि०, पृ० १६६।

स्थिति अचल व नियत रहती है।[1] तात्पर्य यह कि माधुर्य आदि धर्म रस ही के होते हैं और वे यथोचित वर्णों द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं न कि केवल वर्णों के ही आश्रित (वर्णों की कोमलता व कठोरता के अधीन) रहते हैं।[2] दास जी ने मम्मटाचार्य के इन भावों को यथावत् ले लिया है। अतः गुण और रस के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में उनका वही दृष्टिकोण है जो मम्मट का है।[3]

दास के अनुसार गुण रसरूप आत्मा में रहने वाले धर्म हैं तथा अनुप्रास, उपमादि अलंकार तो काव्य रूपी शरीर के बाह्य सौंदर्य की उसी प्रकार वृद्धि करते हैं जिस प्रकार हार (आदि बाह्योपकरण) मनुष्य के शरीर का सौंदर्य बढ़ाते हैं।[4] यह मत मम्मट के आधार पर है।[5] साथ ही जहां तक काव्य और अलंकारों का सम्बन्ध है जयदेव भी इसी मत के पोषक हैं।[6] उन्होंने भी कहा है कि जिस प्रकार तिलक आदि अलंकार शरीर से भिन्न होते हुए भी शरीर की शोभा को बढ़ाते हैं वैसे ही (अनुप्रास, उपमादि) अलंकार काव्य से भिन्न होते हुए भी काव्य के भूषण माने गये हैं। परन्तु जयदेव गुणों को रस के धर्म न मानकर काव्य के धर्म मानते हैं।[7] यही जयदेव और भिखारीदास अथवा मम्मट में अन्तर है।

भिखारीदास के मतानुसार रस का उत्कर्ष करने के कारण गुण आनन्दप्रद लगते हैं।[8] मम्मट के आधार पर भिखारीदास ने भी उपर्युक्त विवेचित दसों गुणों को माधुर्य, ओज और प्रसाद इन्हीं तीनों में अन्तर्भूत कर दिया है और ऐसा करने में उन्होंने मम्मट की ही आड़ ली है—

माधुर्योज प्रसाद के सब गुन हैं आधीन।
ताते इन हीं को गन्यो मम्मट सुकवि प्रवीन।[9]

१. ये रसस्याङ्गिनोधर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः। का० प्र०, पृ० २८५।

२. माधुर्यादयो रसधर्माः समुचितैर्वर्णैर्व्यज्यन्ते न तु वर्णामात्राश्रयाः। का० प्र०, पृ० २८३।

३. ज्यों जीवात्मा में रहै धर्मसूरता आदि।
त्यों रस ही में होत गुन बरनै गनै सबादि।
रस ही के उत्कर्ष को अचल स्थिति गुन होय।
अंगी धरम सुरूपता, अंग धरम नहि कोय।
कहुं लखि लघु कादर कहै, सूर बड़ौ लखि अंग।
रसहि लाज त्यों गुन बिना अरि सों सुभग न संग। का० नि०, पृ० २०४।

४. अनुप्रास उपमादि जे शब्दार्थालंकार।
ऊपर तें भूषित करैं जैसे तन को हार। का० नि०, पृ० २०४।

५. उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः का० प्र०, पृ० ८८।

६. तिलकाद्यमिवस्त्रीणां विदग्धहृदयङ्गमम्।
व्यतिरिक्तमलङ्कारं प्रकृतेर्भूषणं गिराम्। चं० लो०, पृ० ८७।

७. अमी दश गुणाः काव्ये पुंसि शौर्यादयो यथा। चं० लो०, पृ० ८६।

८. रस के भूषित करन तें गुन बरने सुखदानि। का० नि०, पृ० १९७।

९. का० नि०, पृ० १९६।

उन्होंने माधुर्य के अन्तर्गत मध्यम समास श्लेष, समता तथा कान्ति, ओज के अन्तर्गत श्लेष समाधि, उदारता तथा प्रसाद गुण के अन्तर्गत अर्थव्यक्ति को स्थान दिया है और कह दिया है कि (प्रसाद गुण की व्यापकता के कारण) इसमें (प्रसाद गुण में) सभी गुण और सभी रस स्थित रहते हैं।[1] उन्होंने अपने नव नियोजित पुनरुक्ति प्रकाश को उपर्युक्त तीन गुणों में से किसमें रखा है यह स्पष्ट नहीं परन्तु प्रसाद गुण की उक्त परिभाषा को देखते हुए पुनरुक्ति प्रकाश इसी गुण के अन्तर्गत आता है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, भिखारीदास गुणों को रस का धर्म तथा रसों का उत्कर्ष विधायक समझते थे, अतः उन्होंने माधुर्य, ओज तथा प्रसाद के अन्तर्गत उनकी विशेषतानुरूप निम्नानुसार रसों की कल्पना की है।

(१) माधुर्य गुण में करुण, हास तथा शृंगार की।

(२) ओज गुण में रुद्र, वीर, वीभत्स तथा भयानक की।

(३) प्रसाद गुण के अन्तर्गत उन्होंने सभी रसों को रखा है क्योंकि व्यापक होने के कारण इसकी स्थिति सर्वत्र व्याप्त रहती है।

दास की तीन गुणों में विभिन्न रसों के समावेश की कल्पना मम्मट के मत पर आधारित प्रतीत होती है क्योंकि मम्मट ने ही इस प्रकार का वर्गीकरण किया है। उनके अनुसार **माधुर्य** में करुण, विप्रलंभ शृंगार तथा शान्त, **ओज** में वीर, वीभत्स तथा रौद्र और प्रसाद में सभी रस रहते हैं।[2]

गुण, रस तथा अलंकार

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, गुण काव्य में प्रधान रस के उत्कर्ष विधायक धर्म हैं और अलंकार काव्य के बाह्यभूषण मात्र।[3] अतः दास के मतानुसार काव्य में अलंकार की स्थिति इस प्रकार हो सकती है—

(१) काव्य में बिना रस के अलंकार की उपस्थिति।[4]

---

१. श्लेषोमध्य समास को, समता कान्ति विचार।
लीन्हे गुन माधुर्यजुत करुना हास सिंगार।
श्लेष समाधि उदारता, सिथिल ओज गुन रीति।
रुद्र भयानक बीर अरु रस बिभत्स सों प्रीति।
अल्प समास समास बिन अर्थ व्यक्त गुन मूल।
सो प्रसाद गुन बर्न सब सब गुन सब रस तूल। का० नि०, पृ० १६७।

२. करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।
दीप्तयात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति।
वीराद्वीभत्से ततो रौद्रे सातिशयमोजः।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः। का० प्र०, पृ० २६०।

३. अनुप्रास उपमादि जे शब्दार्थालंकार।
ऊपर तें भूषित करें जैसे तन को हार। का० नि०, पृ० २०४।

४. अलंकार बिनु रसहु है रसौ अलंकृत छंडि।
सुकवि वचन रचनान सौं देत दुहुन को मंडि। का० नि०, पृ० २०४।

(२) काव्य में रस तो हो परन्तु अलंकार न हो।

दास का यह मत मम्मट के आधार पर जान पड़ता है। मम्मट ने कहा है कि रस की उपस्थिति अनुपस्थिति में अलंकार का प्रयोग निम्नप्रकार से भी हो सकता है।

(१) अलंकार, जो रस की उपस्थिति में उसके उपकारक रूप में प्रयुक्त हों।

(२) अलंकार, जो रस की अनुपस्थिति में केवल उक्ति चमत्कार के रूप में प्रयुक्त हों।

(३) अलंकार, जो रस की उपस्थिति में उसका कोई उपकार न करें।[1]

अतः दास का विवेचन मम्मट की भांति अधिक स्पष्ट नहीं हो पाया यद्यपि दास ने अपने मत को उदाहरणों द्वारा सुस्पष्ट बनाने का पूर्ण प्रयास किया है।

गुण, अनुप्रास तथा वृत्तियां

इसी स्थल पर दास जी ने अनुप्रास अलंकार का भी विवेचन किया है क्योंकि अनुप्रास अलंकार और गुणों का प्रगाढ़ सम्बन्ध है। स्वयं अभिनव गुप्त रीति और वृत्ति को गुण से पृथक नहीं मानते।[2] वे कहते हैं कि जिनमें अनुप्रास के भेद वर्तमान हों वे वृत्तियां हैं।[3] अतः अनुप्रास के भेदों में वृत्तियों के आजाने तथा वृत्ति और गुण के पृथक न होने के कारण गुण विवेचन के अन्तर्गत दास ने जो अनुप्रास तथा उसके भेदों का विवेचन किया है वह संगत प्रतीत होता है।

दास जी ने अनुप्रास के दो भेद[4] (१) छेकानुप्रास तथा (२) वृत्यानुप्रास करके वृत्यानुप्रास के अन्तर्गत उपनागरिका, परुषा तथा कोमला वृत्तियों का उल्लेख किया है जो क्रमशः माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों के परिणामस्वरूप है।[5] 'दास' का यह मत मम्मट के मत पर आधारित है क्योंकि उन्होंने भी माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों को प्रकट करने वाले वर्णों द्वारा प्रकाशित वृत्तियों के नाम क्रमशः उपनागरिका, परुषा और कोमला दिये हैं।[6]

---

१. उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
यत्र तु नास्ति रसस्तत्रोक्तिवैचित्र्यमात्र पर्यवसायिनः।
क्वचित्तुसन्तमपिनोपकुर्वन्ति। का० प्र०, पृ० २८४-२८५।

२. नैव वृत्तिरीतीनां गुण व्यतिरिक्तत्वं सिद्धम्। लोचन पृ०, ५,६।

३. वर्तन्ते अनुप्रासभेदाः आसु इति वृत्तयः।
तिस्रोऽनुप्रासजातयोवृत्तय इत्युक्ताः। लोचन, पृ०५-६।

४. बचन आदि के अन्त जहं अक्षर की आवृत्त।
अनुप्रास सो जानि द्वै भेद छेक औ वृत्ति। का० नि०, पृ० १६३।

५. मिले बरन माधुर्य के उपनागरिका निवृत्ति।
परुषा ओज प्रसाद के मिले कोमला वृत्ति। का० नि०, पृ० १६६।

६. माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते। का० प्र०, पृ० ३०६।
ओजः प्रकाशकैस्तैस्तु परुषा। का० प्र०, पृ० ३०६।
कोमला परैः। का० प्र०, पृ० ३०६।

मम्मट ने तो यह भी कहा है कि यह तीनों वृत्तियां वामन आदि आचार्यों के मत से क्रमशः वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली के नाम से प्रसिद्ध हैं।[1]

अनुप्रास वर्णन में दास ने शब्दगत अनुप्रास के अन्तर्गत लाटानुप्रास[2], वीप्सा, जो हर्षादि के कारण एक ही शब्द के बार बार आने पर होता है[3], यमक, जहां एक ही शब्द बार बार भिन्नार्थों में प्रयुक्त हो[4], तथा सिंहावलोकन, जहां आदि और अन्त के चरण यमक की भांति लगें[5], का भी सलक्षण एवं सोदाहरण विवेचन किया है।

निष्कर्ष—गुण निर्णय के सम्बन्ध में दास ने वैज्ञानिक एवं यथातथ्य विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मूलतः इस विवेचनका आधार संस्कृत के विद्वानों की रचनाएं हैं। उन्होंने मम्मट जैसे प्रतिष्ठित आचार्यों का भी शत-प्रतिशत अनुकरण नहीं किया। जहां 'दास' जी ने उचित समझा उन्होंने मम्मट तथा अन्य आचार्यों के मत के प्रतिकूल जाकर अपनी सूक्ष्म दृष्टि एवं तर्कबुद्धि से नवीन उद्भावनाएं कीं। उनके गुणों का तीन (अक्षर, अर्थ, वाक्य) श्रेणियों में विभाजन, पुनरुक्ति प्रकाश की योजना, श्लेष की गुरु, मध्यम और लघु इन तीन विशेषताओंकी कल्पना आदि इस बात के द्योतक हैं कि वे अन्धानुकरण न करके मान्य विद्वानों के मतों के प्रतिकूल जाकर भी अपने नवीन मतों की स्थापना करने में झिझकते न थे। जहां वे उचित समझते आचार्यों के मतों को शत प्रतिशत ग्रहण भी कर लेते अथवा उसमें थोड़ा बहुत अन्तर करके अपने विषय को स्पष्ट बनाते। दस गुणों का माधुर्य, ओज तथा प्रसाद में समावेश उन्होंने मम्मट के अनुकरण पर किया है। परन्तु जहां दास जी ने गुणों में रसों का वर्णन किया है वहाँ उन्होंने मम्मट के मत का आधार लेते हुए भी उसमें कुछ परिवर्तन कर लिये हैं जैसे उन्होंने माधुर्य में शान्त रस, जो मम्मट ने निर्दिष्ट किया था, के स्थान पर हास्य को तथा ओज में भयानक को, जिसकी मम्मट ने भी कल्पना न की थी, स्थान दिया है। गुण तथा रस, गुण तथा अलंकार और गुण, अनुप्रास तथा वृत्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध बताने के बाद इन सब का सांगोपांग विवेचन 'दास' की वैज्ञानिकबुद्धि का परिचायक है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दास जी का गुण निर्णय विवेचन प्राचीन आचार्यों के मतों से पुष्ट, उनकी (दास की) नवीन उद्भावनाओं से परिवर्द्धित तथा वैज्ञानिक विवेचन से समन्वित है।

---

१. एतास्तिस्रो वृत्तयः वामनादीनां मते वैदर्भी गौड़ीपांचाल्याख्या रीतियोमताः।
काο प्र०, पृ० ३०७।

२. एक शब्द बहु बार जहं सो लाटानुप्रास।
तातपर्य तें होत है औरै अर्थ प्रकाश। का० नि०, पृ० २००।

३. एक सब्द बहु बार जहं हरषादिक तें होइ।
ता कहं विप्सा कहत हैं कवि कोविद सब कोइ। का० नि०, पृ० २०१।

४. वहै सब्द फिरि फिरि परै अर्थ औरई और।
सो जमकानुप्रास है भेद अनेकन ठौर। का० नि०, पृ० २०१।

५. चरन अन्त अरु आदि के जमक कुंडलित होय।
सिंह बिलोकन है वहै मुक्तक पद ग्रस सोय। का० नि०, पृ० २०३।

पदार्थ निर्णय

पद (शब्द) के तीन प्रकार के अर्थ माने जाते हैं[1]—(१) वाचक (२) लाक्षणिक और (३) व्यञ्जक

संस्कृत के आचार्यों ने भी काव्य में यही तीन प्रकार के अर्थ माने हैं[2], यद्यपि किसी किसी के मत से 'तात्पर्य' भी एक प्रकार का अर्थ है[3] जो विद्वानों द्वारा विशेष रूप से मान्य नहीं हुआ है।

(१) वाचक पद (अभिधा)

दास ने तीनों अर्थों का विशद विवेचन किया है। वे कहते हैं कि वाचक पद जाति, यदिच्छा, गुण और क्रिया द्वारा निश्चित होता है[4], उदाहरणार्थ कृष्ण के यदुनाथ, कान्ह, स्याम और कंसारि ये चार नाम क्रमशः जाति, यदिच्छा, गुण तथा क्रिया के ही कारण हैं।[5] मम्मट के मतानुसार भी संकेतित अर्थ जाति, गुण, क्रिया, और यदिच्छा के भेद से चार प्रकार का होता है।[6] अतः दास का यह मत मम्मट के ही अनुसार है। दास का कथन है कि गुण का निश्चय रूप, रंग, गन्ध, रस तथा स्थायी धर्मों द्वारा होता है और इनसे संकेतित अर्थ को वाच्यार्थ कहते हैं[7] तथा जिस अनेकार्थ वाले शब्द से निश्चित

---

१. पद वाचक अरु लाच्छनिक व्यंजक तीनि विधान। — का० नि०, पृ० ७।

२. स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यञ्जकस्त्रिधा। — का० प्र०, पृ० १०।

३. तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्। — का० प्र०, पृ० १०।

आकाङ्क्षायोग्यतासन्निधिवशाद्वक्ष्यमाणस्वरूपाणां पदार्थानां समन्वये तात्पर्यार्थो विशेषवपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः समुल्लसतीत्यभिहितान्वयवादिनाम्मतम्। वाच्य एव वाक्यार्थ इत्यन्विताभिधानवादिनः।

"अर्थात् अभिहितान्वयवादियों (कुमारिल भट्ट मतानुयायी मीमांसकों) का मत है कि आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि के कारण जिन पदार्थों के परस्पर भली भांति अन्वय हो जाने पर, उन पदों मे से प्रत्येक के अर्थ से भिन्न, किन्तु अन्वय के कारण वाक्यार्थ नामक एक विशेष रूप अर्थ का ज्ञान उत्पन्न होता है, इसी को तात्पर्यार्थ कहते हैं। अन्विताभिधानवादी (प्रभाकर भट्ट मतानुयायी मीमांसक) कहते हैं कि पदों के वाच्यार्थों ही से वाक्यार्थ का बोध होता है (अतः उनसे भिन्न किसी विशेष रूप अर्थ व तात्पर्यार्थ के स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है)।"

४. जाति जदिच्छा गुन क्रिया नाम जु चारि प्रमान।
सब की संज्ञा जाति गनि वाचक कहै सुजान। — का० नि०, पृ० ७।

५. जाति नाम जदुनाथ अरु कान्ह जदिच्छा धारि।
गुन ते कहिए स्याम अरु क्रिया नाम कंसारि। — का० नि०, पृ० ७।

६. संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादिर्जातिरेव वा। — का० प्र०, पृ० १४।

७ रूप रंग रस गंध गनि औरहु निश्चल धर्म।
इन सब को गुन कहत हैं गुनि राखौ यह मर्म।
ऐसे शब्दन्ह सो फुरै संकेतित जो अर्थ।
ताको वाच्यारथ कहैं सज्जन सुमति समर्थ। — का० नि०, पृ० ८।

अर्थ की अभिव्यक्ति हो, उस वाच्यार्थ को अभिधा शक्ति कहते हैं।[१] इस क्षेत्र में भी दास ने मम्मट के मत को ही स्वीकार किया है क्योंकि मम्मट के मतानुसार जिस व्यापार द्वारा मुख्यार्थ का बोध हो उसे अभिधा कहते हैं।[२] अभिधा का यह व्यापार निम्नलिखित सम्बन्धों से प्रकट होता हैं :

संयोग, असंयोग, साहचर्य, विरोध, अर्थ, प्रकरण, लिंग, अन्य शब्द सामीप्य, सामर्थ्य, औचित्य, देशबल, काल, स्वारादिक फेर तथा अभिनयादि।

'दास' जी ने इन सब के लक्षणों को लिखकर उन्हें उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है।[३] दास ने यह विभाजन भर्तृहरि के आधार पर, जिसका उल्लेख काव्यप्रकाश में हुआ है, किया है[४], परन्तु उन्होंने भर्तृहरि के विप्रयोग के स्थान पर असंयोग तथा व्यक्तिके स्थान पर अभिनयादि नाम रख लिए हैं। इस प्रकार दास ने भर्तृहरि द्वारा दिये गये नामों में कुछ परिवर्तन कर लिया है।

जयदेव ने अभिधा शक्ति के ६ भेद माने हैं[५]—जाति, गुण, क्रिया, वस्तुयोग, संज्ञा व निर्देश, जिनमें से प्रथम चार का उल्लेख दास जी ने वाचक लक्षण के अन्तर्गत किया है।

अभिधा शक्ति को और भी स्पष्ट करते हुए दास ने कहा है कि अभिधा शक्ति वहां होती है जहां अभिप्रेतार्थ एक ही होता है।[६] उदाहरणार्थ—

मोर पक्ष को मुकुट सिर, उर तुलसीदल माल।
जमुना तीर कदम्ब ढिग मैंदेख्यो नंदलाल।[७]

यहां पर मोर पक्ष, दल, माल, तीर, कदम्ब, नंद और लाल शब्दयद्यपि अनेकार्थी हैं किन्तु यहां इनमें एक ही अर्थ की अभिधा है।

(२) **लक्षणा**—लक्षणा की परिभाषा करते हुए दास जी का कहना है कि जहां मुख्य

---

१. अनेकार्थहूं शब्द में एक अर्थ की व्यक्ति।
तेहि वाच्यारथ को कहैं सज्जन अभिधा सक्ति। — का० नि०, पृ० ८।
२. स मुख्योर्ऽथस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते। — का० प्र०, पृ० १७।
३. देखिये काव्य निर्णय, पृ० ८, ६, १०।
४. संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः।
सामर्थ्यमौचितो देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः। — का० प्र०, पृ० ३५।
५. जात्यागुणेन क्रियया वस्तुयोगेन संज्ञया।
निर्देशेन तथा प्राहुः षड्विधामभिधां बुधाः। — चं० लो०, पृ० २९६।
६. जामें अभिधासक्ति करि, अर्थ न दूजो कोइ।
वहै काव्य कीन्हें बनै, नातो मिश्रित होइ। — का० नि०, पृ० १०।
७. काव्य निर्णय, पृ० १०।

अर्थ की बाधा हो वहां लक्षणा होती है।[1] दास द्वारा प्रस्तुत लक्षणा की यह परिभाषा बहुत संक्षिप्त है। **मम्मट** के अनुसार जहां शब्द के द्वारा मुख्य अर्थ की उपपत्ति (सिद्धि) न हो परन्तु उससे सम्बन्ध बना रहे अथवा किसी विशेष अर्थ के बोध के लिए शब्द रूढ़ अथवा प्रसिद्ध हो गया हो अथवा किसी विशेष प्रयोजन के कारण शब्द अपने मुख्य अर्थ को छोड़ किसी अन्य अर्थ को लक्षित कराता हो तो उस अर्थ-प्रतीति के व्यापार का नाम लक्षणा है।[2]

मुकुल भट्ट ने अपने 'अभिधावृत्तिमातृका' में स्पष्ट लिखा है कि लक्षणा शक्ति तो अर्थानुसन्धान से जानी जाती है अर्थात् इसका शब्द में आरोप किया जाता है।[3] **महाभाष्य** में मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ का वर्णन करते हुए लक्षणा चार प्रकार की कही गयी है अर्थात् तात्स्थ्य, ताद्धर्म्य, सामीप्य और साहचर्य।[4] इनसे लक्ष्यार्थ की प्रतीति होती है। **गौतम के न्याय दर्शन** में लक्षणों का निर्देश इस प्रकार है—

'सहचरण-स्थान-तादर्थ्य-वृत्त-मान-धारण-सामीप्य-योग-साधना-धिपत्येभ्यो ब्राह्मणमंच-कट-राज-सक्तु-चन्दन-गंडा-शकटान्न-पुरुषेष्वतद्भावेऽपि तदुपचारः'।[5]

जयदेव ने अपने चन्द्रालोक में लक्षणा के विवेचन में कहा है कि जहां मुख्य अर्थ से तात्पर्य की प्रतीति न होने पर मुख्य अर्थ से सम्बन्ध रखने वाले अन्य अर्थ का बोध हो वहां लक्षणा होती है। जहां यह बोध लोकप्रसिद्धि के कारण हो वहां निरूढ़ा तथा जहां किसी प्रयोजन से लक्ष्यार्थ ज्ञान हो वहां प्रयोजनवती लक्षणा होती है।[6]

इन आचार्यों के मतों को देखते हुए 'दास' जी की लक्षणा की परिभाषा यद्यपि बहुत पूर्ण नहीं है तो भी युक्तियुक्त प्रतीत होती है। 'दास' जी ने लक्षणा के रूढ़ि और प्रयोजनवती दो भेद किये हैं।[7] ये भेद जयदेवकृत निरूढ़ा और प्रयोजनवती के समकक्ष हैं। जहां पर मुख्य अर्थ से अभिप्राय स्पष्ट न होकर लोकप्रसिद्धि के कारण उसका बोध होता हो वहां रूढ़ि लक्षणा होती है[8] उदाहरणार्थ—

फली सकल मन कामना लूटेउ अगनित चैन।
आज अंचइ हरि रूप सखि भये प्रफुल्लित नैन।[9]

---

१. मुख्य अर्थ के बाध तें शब्द लाच्छनिक होत। — का० नि०, पृ० ११।

२. मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया। — का० प्र०, पृ०१८।

३. शब्दव्यापारतो यस्य प्रतीतिस्तस्य मुख्यता। अर्थावसेयस्य पुनर्लक्ष्यमाणत्वमुच्यते।
मुकुल भट्ट : अभिधावृत्तिमातृका (उद्धृत)।

४. महाभाष्य ४। १। ४८। (उद्धृत)।

५. न्याय दर्शन, अध्याय। २, आह्नि २,सूत्र ६४। (उद्धृत)।

६. मुख्यार्थस्याविवक्षायां पूर्वाऽवाचो च रूढ़ितः।
प्रयोजनाच्च सम्बद्धं वदन्ती लक्षणा मता। — चं० लो०, पृ० २६३, २६६।

७. रूढ़ि औ प्रयोजनवती द्वै लच्छना उदोत। — का० नि०, पृ० ११।

८. मुख्य अर्थ के बाध पै, जग में वचन प्रसिद्ध।
रूढ़ि लच्छना कहत हैं ताको सुमति समृद्ध। — का० नि०, पृ० ११।

९. का० नि०, पृ० ११।

फलना शब्द वृक्षों के लिए होता है। मनोकामना वृक्ष तो है नहीं जो फलेगी। चैन वस्तु नहीं जिसे लूटा जा सके, हरि रूप जल अथवा द्रव नहीं, जिसे पिया जा सके, नैन पुष्प नहीं जो प्रफुल्लित होंगे, परन्तु फिर भी मनकामना फलना, चैन लूटना, हरिरूप का आचमन करना तथा नेत्र प्रफुल्लित होना अपने विशेष अर्थों में रूढ़ हो गये हैं।

रुढ़ि लक्षणा का दास जी का एक और उदाहरण भी दृष्टव्य है जहाँ उन्होंने लाज का पीना, कुल धर्म का पचा जाना, व्यथा बंधन का संचित करना, गोपाल में डूबना आदि, जिनमें मुख्यार्थ से असंगति है, का प्रयोग किया है। यह रुढ़ि लक्षणा का बहुत सुन्दर उदाहरण है।

अँखियां हमारी दई मारी सुधि बुद्धि हारी मोहू ते नियारी दास रहैं सब काल में।
कौन गहै ज्ञानै काहि सौंपत सयाने कौन, लोक ओक जानै ये नहीं हैं निज हाल में।
प्रेम पगि रहीं महा मोह में उमगि रहीं, ठीक ठगि रहीं लगि रहीं वनमाल में।
लाज को अँचै के, कुल धरम पचै के, विथा बन्धन सँचै के भईं मगन गोपाल में।[1]

दास जी ने प्रयोजनवती लक्षणा के दो भेद किये हैं (क) शुद्धा और (ख) गौणी।[2] शुद्धा लक्षणा के उन्होंने चार भेद बताये हैं, अर्थात् (१) उपादान, (२) लक्षित, (३) सारोपा तथा (४) साध्यवसाना।[3]

मम्मट ने शुद्धा लक्षणा के दो भेद किये हैं—(१) उपादान लक्षणा तथा (२) लक्षण लक्षणा। प्रथम वह है जो अपनी सिद्धि के लिए औरों का आक्षेप (ग्रहण) कर ले और दूसरी वह जहां कोई शब्द अन्य अर्थ की सिद्धि के लिए अपने को समर्पित कर दे।[4] मम्मट ने दूसरे प्रकार की लक्षणा का नाम सारोपा दिया है। इस लक्षणा में विषयी और विषय दोनों भिन्न होते हैं। यहां विषयी का विषय में आरोप किया जाता है[5] और जब विषयी (जिसका आरोप किया जाय) में विषय (जिस पर आरोप किया जाय) ऐसा लीन हो जाय कि दोनों में भेद-प्रतीति का अवसर ही न रह जाय तो वह साध्यवसाना लक्षणा होती है।[6] जहां सारोपा और साध्यवसाना लक्षणा के भेद सादृश्य द्वारा अथवा अन्य किसी सम्बन्ध द्वारा हों वहां उन्हें क्रमशः गौणी और शुद्धा लक्षणा समझा जाता है, अर्थात् जहां विषयी और विषय की सादृश्य-प्रतीति हो वहां गौणी सारोपा और साध्यवसाना का उदाहरण मानना

१. काव्यनिर्णय, पृ० १२।

२. प्रयोजनवती जु लच्छना द्वै विधि तासु प्रमान।
एक शुद्ध गौनी दुतिय भाषत सुकवि सुजान। का० नि०, पृ० १२।

३. उपादान इक जानिये दूजी लच्छित ठान।
तीजी सारोपा कहैं चौथी साध्यवसान। का० नि०, पृ० १२।

४. स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थं स्वसमर्पणम्।
उपादानं लक्षणं चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा। का० प्र०, पृ० १६।

५. सारोपान्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा। का० प्र०, पृ० २३।

६. विषय्यन्तः कृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात्साध्यवसानिका। का० प्र०, पृ० २३।

चाहिए तथा जहां पर अन्य सम्बन्ध (सादृश्य से भिन्न कार्य कारण अथवा जन्य जनक आदि सम्बन्ध) हों वहां पर शुद्धा सारोपा और शुद्धा साध्यवसाना जानना चाहिए।[1] इस प्रकार मम्मट ने लक्षणा के ये ६ भेद किये हैं—उपादान लक्षणा, लक्षण लक्षणा, शुद्धा सारोपा, शुद्धा साध्यवसाना, गौणी सारोपा और गौणी साध्यवसाना।

अतः स्पष्ट है कि पदार्थ निर्णय विवेचन में काव्य प्रकाश का आधार लेते हुए भी दास जी ने भेदोपभेदों को काव्य प्रकाश से कुछ भिन्न रखा है यद्यपि भेदों के नामों में दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं प्रतीत होता।

(क) शुद्धा लक्षणा

(१) **उपादान लक्षणा**—वहां होती है जहां अर्थसिद्धि के लिए दूसरों का गुण ग्रहण करना पड़ता है[2], जैसे "कुन्त चलत सब जग कहै नर बिनु चलै न सोइ"[3] यहां कुन्त (भाला) चलना का अर्थ है कुन्तधारियों द्वारा भाले चलाये जाना। मम्मट ने भी उपादान लक्षणा के विवेचन में 'कुन्ताः प्रविशन्ति', 'यष्टयः प्रविशन्ति' उदाहरण दिये हैं।[4] दास का उपर्युक्त उदाहरण तो मम्मट के इन्हीं उदाहरणों के आधार पर है। वस्तुतः उपादान लक्षणा में 'गुण ग्रहण करना' यह अशुद्धि प्रतीत होती है। सम्भवतः उन्होंने कुन्तधारियों का गुण कुन्त के द्वारा ग्रहण करना माना है जो संस्कृत के आचार्यों की दृष्टि से शुद्ध नहीं माना जा सकता। दास ने निम्नलिखित उदाहरण द्वारा उपादान लक्षणा का स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया है।

जमुना जल को जात ही डगरी गगरी जाल।
बजी बांसुरी कान्ह की गिरीं सकल तेहि काल।
खेलत ब्रज होरी सजैं बाजे बजैं रसाल।
पिचकारी चलती घनीं जहं तहं उड़त गुलाल।[5]

उक्त उदाहरण की प्रथम पंक्ति में उपादान लक्षणा संस्कृत के आचार्यों के अनुसार मानी जा सकती है किन्तु दूसरी पंक्ति में दास जी ने 'कान्ह' के बजाने का गुण बांसुरी में आरोपित माना है, परन्तु वास्तविकता यह है कि बांसुरी के बजाने में मुख्यार्थ का कोई बाध नहीं है। इसी प्रकार का भ्रम तीसरी तथा चौथी पंक्ति में भी है। इसी कारण इस सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि 'उपादान लक्षणा लीजिए। इसका लक्षण भी गड़बड़ है और उसी के अनुरूप उदाहरण भी अशुद्ध है'।[6]

(२) **लक्षित लक्षणा**—वहां होती है जहां कोई शब्द विशेष अर्थ-सिद्धि के लिए अपने

१. भेदाविमौ च सादृश्यात् सम्बन्धान्तरतस्तथा।
गौणौ शुद्धौ च विज्ञेयौ। का० प्र०, पृ० २४।
२. उपादान सो लच्छना परगुन लीन्हें होइ। का० नि०, पृ० १२।
३. काव्य निर्णय, पृ० १२।
४. देखिये काव्य प्रकाश, पृ० १९। ५. काव्यनिर्णय, पृ० १३।
६. रामचंद्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४१–२४२।

को समर्पित करदे[1], जैसे 'गंगा तटवासी कहैं गंगावासी लोग'[2] में गंगावासी का अर्थ गंगा के प्रवाह में उसके मध्य निवास करने वालों से न होकर गंगा तट के निवासियों से है। यह उदाहरण भी मम्मट के 'गंगायां घोष'[3] के ही आधार पर लिया गया है। यहां यह विचारणीय है कि दास ने इस लक्षण लक्षणा का नाम लक्षित लक्षणा क्यों रखा जब कि मम्मट ने इसके लिए लक्षण लक्षणा का प्रयोग किया है? बात यह है कि व्याकरण की दृष्टि से दास का लक्षित लक्षणा नाम अधिक संगत प्रतीत होता है।

(३) **सारोपा**—जहाँ किसी प्रकार की समता होने पर एक शब्द का आरोप दूसरे में करने से अर्थ की सिद्धि हो वहाँ सारोपा लक्षणा होती है[4], उदाहरणार्थ—

मोहन मो दृगपूतरी वा छबि सिगरी प्रान।
सुधा चितौनि सुहावनी मीचु बांसुरी तान।[5]

यहां मोहन को आँख की पुतली, छवि को प्राण, चितवन को अमृत तथा बांसुरी की तान को मृत्यु में आरोपित करने के कारण सारोपा लक्षणा है।

मम्मट का कथन है कि जहाँ विषयी तथा विषय में प्रकट रूप से भेद हो किन्तु वे एक ही आधार वाले कह कर निर्दिष्ट किये जांय वहाँ सारोपा लक्षणा होती है[6], उदाहरणार्थ "गौर्वाहीकः" अर्थात् यह वाहीक जाति का मनुष्य गौ है। यहाँ स्पष्ट है कि प्रकट रूप से गौ और वाहीक में भिन्नत्व है फिर भी दोनों में जड़ता, मन्दता आदि एक ही आधार होने का कारण गौ (बैल) का आरोप वाहीक में हुआ है। अतः यहाँ सारोपा लक्षणा है। इस विवेचन से ज्ञात होता है कि दास जी ने सारोपा का ऐसा लक्षण इस कारण लिखा कि सारोपा शुद्धा में भी होती है और गौणी में भी।

(४) **साध्यवसाना**—'दास' जी का कथन है कि साध्यवसाना लक्षणा वहाँ होती है जहाँ विषय का नाम न लेकर जिससे समता करनी हो उसे मुख्य कह दिया जाय।[7] उदाहरणार्थ—

बैरिन कहा बिछावती फिरि फिरि सेज कृसान।
सुन्यो न मेरे प्रान धन चहत आज कहुँ जान।[8]

१. निज लच्छन औरहि दिये, लच्छ लच्छना जोग। काव्य निर्णय, पृ० १३
२. काव्यनिर्णय, पृ० १३।
३. काव्य प्रकाश, पृ० २०।
४. और थापिये और को क्यों हू समता पाइ।
सारोपा सो लच्छना कहैं सकल कविराइ। का० नि०, पृ० १३।
५. काव्यनिर्णय, पृ० १४
६. आरोप्यमाणः आरोपविषयश्च यत्रानपह्नुतभेदौ।
समानाधिकरण्येन निर्दिश्येते सा लक्षणा सारोपा। का० प्र० पृ० २३।
७. जाको समता कहन को वहै मुख्य कहि देइ।
साध्यवसान सुलच्छना विषय नाम नहिं लेइ। का० नि०, पृ० १४।
८. काव्य निर्णय, पृ० १४।

यहां सखी को वैरिन तथा सेज को कृसान कहा है। अतः यह साध्यवसाना लक्षरणा हुई। यहाँ दास जी ने साध्यवसाना की परिभाषा ही बदल दी है और उपमेय के स्थान पर उपमान रख देने से साध्यवसाना लक्षणा का होना माना है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। **मम्मट** के अनुसार जहां विषयी का विषय में इस प्रकार अवसान (लीनत्व) हो कि दोनों के रूप में भेद ही न रह जाय वहां साध्यवसाना होती है।[1] हमारे विचार से दास जी ने अपनी परिभाषा को अधिक व्यापक बनाने के उद्देश्य से उसे संक्षिप्त रखा है और इसीलिए साध्यवसाना के लक्षरण निरूपरण में वे मम्मट से कुछ भिन्न हो गये हैं।

(ख) गौणी लक्षणा

जहां गुणों के योग से लक्षरणा का व्यापार होता है वहां गौणी लक्षरणा होती है। यह भी दो प्रकार की होती है, (१) सारोपा और (२) साध्यवसाना।[2]

(१) **सारोपा गौणी**—गुण के अनुसार आरोपित लक्षरणा को सारोपा गौणी लक्षणा कहते हैं।[3]

दास ने इसका अति सुन्दर उदाहरण दिया है—

जैसे सब कोऊ कहैं, वृषभै गँवई गोप।[4]

अथवा

सूर सेर करि मानिये, कायर स्यार बिसेखि।
विद्यावान त्रिनयन हैं कूर अन्ध करि लेखि।[5]

यहाँ ग्रामवासी अहीरों को 'वृषभ' कहा गया है क्योंकि वे बैलों की भांति जड़मति एवं मन्द बुद्धि होते हैं। इसी प्रकार वीरों को सिंह, कायरों को स्यार, विद्वानों को त्रिनेत्र तथा मूर्खों को अन्धा उनके व्यक्तिगत गुणों के अनुसार ही कहा गया है। अतः यहां पर सारोपा गौणी लक्षणा हुई।

(२) **साध्यवसाना गौणी**—में गुणानुसार केवल उपमान का ही उपमेय के स्थान पर प्रयोग होता है[6], जैसे—

कहा बृषभ सों कहत हौ बातें ह्वै मतिमान।[7]

यहाँ व्यक्ति के स्थान पर वृषभ रखने से यही तात्पर्य है कि उस व्यक्ति में वृषभ के समान ही गुण हैं।

मम्मट ने भी गौणी सारोपा तथा गौणी साध्यवसाना नाम के दो लक्षरण बताते हुए कहा है कि जहां पर विषय और विषयी की सादृश्य प्रतीति हो वहां पर गौणी सारोपा और गौणी साध्यवसाना मानना चाहिए।[8] ये लक्षरण और उदाहरण अधिक स्पष्ट प्रतीत होते हैं।

१. विषय्यन्तः कृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात्साध्यवसानिका। का० प्र०, पृ० २३।
२. गुन लखि गौनी लच्छना द्वै बिधि तासु प्रमान।
सारोपा प्रथमै गनो दूजी साध्यवसान। का० नि०, पृ० १४।
३. सगुनारोप सुलच्छना गुन लखि करि आरोप। का० नि०, पृ० १४।
४. काव्य निर्णय, पृ० १४। ५. काव्य निर्णय, पृ० १५।
६. गौनी साध्यवसान सो केवल ही उपमान। का० नि०, पृ० १५।
७. काव्य निर्णय, पृ० १५।
८. भेदाविमौ च सादृश्यात् सम्बन्धान्तरतस्तथा।
गौणौशुद्धौ च विज्ञेयो— का० प्र०, पृ० २४

इस प्रकार दास द्वारा निर्दिष्ट लक्षणा के भेदोपभेदों को निम्नलिखित तालिका से व्यक्त किया जा सकता है।
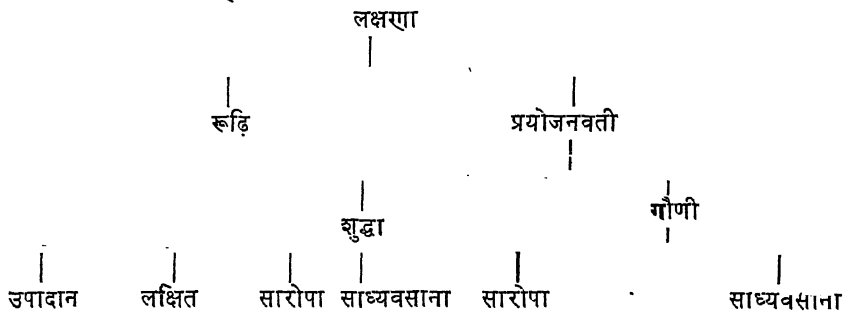
जैसा ऊपर कहा जा चुका है, मम्मट ने भी लक्षणा के ये ही भेदोपभेद कुछ अन्तर के साथ किये हैं। परन्तु जयदेव ने तो लक्षणा के भेदोपभेदों की संख्या ३६ बतायी है[1] जो दासकृत संख्या से कई गुनी अधिक है।

(३) **व्यंजना**—व्यंजना शक्ति की व्याख्या करते हुए दास जी ने कहा है कि शब्द के सीधे अर्थ को छोड़कर जिस व्यापार द्वारा और ही अर्थ की प्रतीति होती है उसे व्यंजना शक्ति कहते हैं।[2] वस्तुतः इसका अर्थ यह है कि जहां अर्थ वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भिन्न

१. जयदेव ने लक्षणा के पहले तो निरूढ़ा और प्रयोजनवती दो भेद किये हैं। ये दोनों भेद दो दो प्रकार के होते हैं। लक्ष्यवाचकपदामीलना, लक्ष्यवाचकपदमीलना (जिन्हें दास तथा मम्मट ने सारोपा और साध्यवसाना कहा है), फिर इन चारों में से प्रत्येक के तीन-तीन भेद—सिद्धा, साध्या और साध्यांगा—और होते हैं। इस प्रकार ये १२ भेद हुए।

लक्षणीयस्वशब्दस्यमीलनामीलनाद् द्विधा।

लक्षणा सा त्रिधा सिद्ध साध्य साध्यांग भेदतः। चं० लो०, पृ० २६९–२७०।

फिर प्रयोजन भेद से लक्षणा के दो भेद—स्फुट प्रयोजना और अस्फुट प्रयोजना—और होते हैं जिसमें स्फुट प्रयोजना के दो भेद—तटस्थगत तथा अर्थगत—होते हैं।

स्फुटास्फुट प्रभेदेन प्रयोजनमपि द्विधा।

विदुः स्फुटः तटस्थत्वादर्थगतत्वाद् द्विधा बुधाः। चं० लो०, पृ० २७१।

अस्फुट व्यंग्य के भी तटस्थ प्रयोजना और अर्थगत प्रयोजना ये दो भेद होते हैं। अर्थगत स्फुट तथा अस्फुट प्रयोजना के जयदेव ने लक्ष्यार्थनिष्ठा तथा लक्षकार्थनिष्ठा ये दो भेद और किये हैं।

अस्फुटं चार्थ निष्ठत्वात्तटस्थत्वादपि द्विधा।

लक्ष्य लक्षक निष्ठत्वादर्थ संस्थमपि द्विधा। चं० लो०, २७२–२७३।

इस प्रकार कुल ३६ भेद होते हैं।

२. सूधो अर्थ जु बचन को तेहि तजि औरे बैन।

समुझि परै ते कहत हैं सक्ति ब्यंजना ऐन। का० नि०, पृ० १६।

जान पड़े, जैसा कि जयदेव का मत है[1], वहाँ व्यंजना होती है परन्तु व्यंजना की यह वास्तविक परिभाषा दास जी के उक्त लक्षण से पूर्णतया स्पष्ट नहीं हो पायी है।

'दास' जी ने व्यंजना के अन्तर्गत (क) अभिधामूलक तथा (ख) लक्षणामूलक व्यंजना और तत्पश्चात् दसव्यंजक की विवेचना की हैं।

(क) अभिधामूलक व्यंग्य—दास के अनुसार अभिधामूलक व्यंग्य वहां होता है जहाँ अनेकार्थी शब्द का बिल्कुल दूसरा ही अर्थ निकलता हो।[2] मम्मट ने अभिधामूलक व्यंग्य का लक्षण इस प्रकार दिया है।

अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।
संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद्व्यापृतिरञ्जनम्।[3]

अर्थात् जब संयोग आदि द्वारा अनेकार्थी शब्द का एकार्थ नियमित हो जाय और फिर भी अन्य अर्थ की प्रतीति हो वहां पर यह (अभिधामूलक) व्यंजना होती है। मम्मट के लक्षण को देखते हुए 'दास' की यह परिभाषा अपूर्ण सी प्रतीत होती है।

(ख) लक्षणामूलक व्यंग्य—'दास' ने लक्षणामूलक व्यंग्य के दो भेद, अर्थात् गूढ़ और अगूढ़ किये हैं।[4] उनकी व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि जिसे केवल सहृदय कवि ही समझ सकें उस व्यंजना को गूढ़ तथा जो सबकी समझ में आ जाय उसे अगूढ़ कहते हैं।[5] 'दास' जी ने गूढ़ व्यंजना का निम्नलिखित एक सुन्दर उदाहरण दिया है—

आनन में मुसकानि सुहावनि बंकता नैनन्ह मांझ छई है।
बैन खुले मुकुले उर जात जकी बिथकी गति ठौनि ठई है।
दास प्रभा उछलै सब अंग सुरंग सुबासता फैलि गई है।
चंदमुखी तन पाइ नबीनो भई तरुनाई अनन्दमई है।[6]

यहां गूढ़ व्यंग्य यह है कि जिसके पाने से स्वयं तरुणाई आनन्दित हुई है उसे जो पुरुष भी प्राप्त करेगा उसे परमानन्द होगा। आनन में मुस्कान से नायिका के संकोच रहित

१. जयदेव का कथन है कि पुरुष की अभिलाषा रखने वाली चंचलाक्षी के कटाक्ष की भांति वाच्य और लक्ष्य अर्थ से भिन्न अर्थ की प्रतीति कराने वाली वाणी के व्यापार को व्यंजना कहते हैं।
   कटाक्ष इव लोलाक्ष्या व्यापारो व्यञ्जनात्मकः। चं० लो०, पृ० २३२।
२. शब्द अनेकारथन बल होइ दूसरो अर्थ।
   अभिधामूलक व्यंग तेहि भाषत सुकवि समर्थ। का० नि०, पृ० १६।
३. का० प्र०, पृ० ३४-३५।
४. गूढ़ अगूढ़ौ ब्यंग द्वै होत लच्छनमूल।
   छिपी गूढ़ प्रगटहि कहौं है अगूढ़ सम तूल। का० नि०, पृ० १६।
५. कवि सहृदय जा कहँ लखैं ब्यंग कहावत गूढ़।
   जाको सब कोई लखत सो पुनि होय अगूढ़। का० नि०, पृ० १६।
६. का० नि०, पृ० १६-१७।

होने के कारण अनुपम सौंदर्यवती होने, नेत्रों में बांकपन से उसके रतिप्रिया होने, **'बैन खुलै'** से उसके प्रेमालापप्रिय होने, 'उर जात कै मुकुलाकार' होने से स्तन कठोर होने तथा स्पर्श-मर्दन द्वारा अलौकिक सुख का अनुभव कराने वाले, 'प्रभा उछलना' तथा 'सुरंग सुवासता' के फैलने से नायिका के सुरति आनन्द के लिए तत्पर रहने आदि अनेक ऐसी बातों का बोध होता है जिन्हें केवल काव्य निपुण एवं सहृदय व्यक्ति ही समझ सकता है, दूसरा नहीं।

साहित्यदर्पण में कहा गया है कि जिस वृत्ति द्वारा लक्षणा के प्रयोजन का ज्ञान होता है उसे लक्षणामूला व्यंजना कहते हैं—

लक्षणोपास्यते यस्य कृते तत्तु प्रयोजनम् ।
यया प्रत्याय्यते सा स्याद् व्यञ्जना लक्षणाश्रया ।[1]

मम्मट ने इस लक्षणा को तीन प्रकार का कहा है —(१) बिना व्यंग्य वाली, (२) गूढ़ व्यंग्य वाली तथा (३) अगूढ़ व्यंग्य वाली।[2] यही मत दास का भी है। गूढ़ लक्षणा का दास ने उदाहरण भी वही दिया है जो मम्मट ने दिया है।[3]

दस व्यंजक वर्णन

दास जी ने अर्थ व्यंजना द्वारा अवगत होने वाले अर्थ की प्रतीति के लिए दस प्रकार बताये हैं[4]—व्यक्ति विशेष, बोधव्य विशेष, काकु विशेष, वाक्य विशेष, वाच्य विशेष, अन्य सन्निधि विशेष, प्रस्ताव विशेष, देश विशेष, काल विशेष तथा चेष्टा विशेष। दास के ये भेद मम्मट के आधार पर हुए हैं।[5] दास ने इन सब भेदों के उदाहरण मात्र दिये हैं जिनसे कहीं कहीं पर तो अत्यन्त सुन्दर अर्थ-व्यंजना होती है। ऐसे कुछ स्थल यहां दिये जा रहे हैं।

व्यक्ति विशेष का यह उदाहरण द्रष्टव्य है जहां कोई व्यभिचारिणी नायिका अपने 'सुरति व्यापार' को छिपाने के लिए—यद्यपि समागम के कारण वह पसीने से तर है और शीघ्रता से सासें भी चल रही हैं—अपनी सखि से बहाना बना रही है मैं बहुत बड़े जल कुंभ को सर पर लादे-लादे चली आ रही हूँ, अतः पसीने से लथपथ हो गयी हूँ और ज़ोरों से सांस चल रही है, क्या पूछती हो (बड़े कष्ट में हूँ)। भाव यह कि सखी ऐसी दशा जलकुंभ

१. साहित्य दर्पण पृ० ५५।
२. अव्यंग्या गूढ़ व्यंग्या अगूढ़ व्यंग्या च। का० प्र०, पृ० ३०।
३. मुखं विकसितस्मितं वशितवक्रिम प्रेक्षितं।
समुच्छलितविभ्रमा गतिरपास्तसंस्था मतिः।
उरो मुकुलितस्तनं जघनमंसबन्धोद्धुरं।
बतेन्दुवदना तनौ तरुणिमोद्गमो मोदते। का० प्र०, पृ० २८।
४. देखिये काव्य निर्णय, पृ० १८।
५. वक्तृबोद्धव्यकाकूनां वाक्यवाच्यान्यसन्निधेः।
प्रस्तावदेशकालादेर्वैशिष्ट्यात प्रतिभाजुषाम्।
योऽर्थस्यान्यार्थधीहेतुर्व्यापारो व्यक्तिरेव सा। का० प्र०, पृ० ४०।

उठा कर लाने के कारण ही समझे, कुछ और न समझ बैठे।

अति भारी जल कुंभ लै आई सदन उताल।
लखि श्रम सलिल उसास अलि कहा बूझती हाल।[1]

वाच्य विशेष का निम्नलिखित उदाहरण भी द्रष्टव्य है जहां नायिका स्थल विशेष की रमणीयता की प्रशंसा द्वारा सहेट में विहार करने की इच्छा प्रकट कर रही है।

भौन अंधारेहु चाहि अंध्यार चमेली के कुंज के पुंज बने हैं।
बोलत मोर करें पिक सोर जहाँ तहँ गुंजत भौंर घने हैं।
दास रच्यो अपने ही बलास को मैन जु हाथन्ह सों अपने हैं।
कूल कलिन्दजा के सुखमूल लतान के वृन्द वितान तने हैं।[2]

अन्यसन्निधि विशेष के निम्नलिखित उदाहरण में नायिका समीप खड़े हुए नायक को संकेत द्वारा समागम काल यह कह कर बतला रही है कि सारा दिन घर के काम काज में बीत जाता है जब कहीं शाम आती है तो ज्यों त्यों करके एक पल के लिए अवकाश ग्रहण करती हूं।

राज करो गृह काज दिन बीतत याही मांझ।
ईठ लहौं कल एक पल नीठ निहारे सांझ।[3]

देश विशेष का निम्नलिखित उदाहरण तो बहुत ही अर्थपूर्ण है जहां उद्यान में खड़ी नायिका आसपास ही अपने नायक को देखकर उसके साथ विहार करने के लिए अपनी सखियों को टालने के उद्देश्य से कह रही है कि हे सखी मैं अशक्त हूं अधिक दूर दूर तक फूल चुनने न जा सकूँगी। अतः मुझे तो तुम लोग यहीं फूल चुनने दो परन्तु तुम लोग मेरा कहना मानो दूसरी जगह जाकर फूल चुनो।

हौं अशक्त ज्यों त्यों इतहि सुमन चुनौंगी चाहि।
मानि बिनय मेरी अली और ठौर तू जाहि।[4]

चेष्टा विशेष का निम्नलिखित उदाहरण बड़ा भावपूर्ण है—

मुख मोरत नैन की सैनन्ह दै अँग अंगन्ह दास देखाइ रही।
ललचौहैं लजौहैं हंसौहैं चितै हित सों चित चाव बढ़ाइ रही।
मुरिकै अरिकै दृग सों भरिकै जुग भौंहनि भाव बताई रही।
कनखा करिकै पग सों परिकै पुनि सूने निकेत में जाइ रही।[5]

यहां पर दास की सूक्ष्म दृष्टि नायिका की चेष्टाओं पर पड़ी है। नायिका एकान्त में नायक के साथ विहार करने के लिए उत्सुक है। नायिका अकेली नहीं कि नायक से मिल कर अपना अभिप्राय स्पष्ट कह दे। उसने नायक को देख लिया है। अतः वह विचित्र प्रकार से मुंह मोड़ती है, नेत्र-संकेत करती है (आंख मारती है), अंगों का भी प्रदर्शन करती है, ललचाई हुई दृष्टि से तथा सलज्ज हंसी के साथ वह नायक को आकृष्ट करती तथा विभिन्न

१. काव्य निर्णय, पृ० १८। २. का० नि०, पृ० १९। ३. का० नि०, पृ० २०।
४. का० नि०, पृ० २०। ५. का० नि०, पृ० २१।

प्रकार के हाव भाव दिखाती हुई एकान्त कक्ष में प्रवेश करती है। इसका भाव यह है कि नायिका एकान्त में नायक के साथ विहार तथा आमोद प्रमोद की इच्छा व्यंजित कर रही है।

दस व्यंजकों के वर्णन में दास ने चेष्टा को दसवां व्यंजक माना है परन्तु मम्मट ने इसे 'प्रस्तावदेश कलादेः' पद में आये हुए आदि शब्द के अन्तर्गत माना है।[1]

दस व्यंजकों के वर्णन के पश्चात् दास ने मिश्रित विशेष का उल्लेख किया है। उन का कहना है कि वक्ता और बोधव्य की विशेषता से भी वाक्य में विशेषता आ जाती है।[2] मम्मट ने इसी को द्विक कहा है।[3] दास ने इसका बड़ा भावपूर्ण एवं ललित उदाहरण दिया है—

एहि सज्जा अज्जा रहै, एहि हौं चाहत सैन।
है रतौंधिहे बात यह, सैन समय भूलै न।[4]

यहां रात्रि में विश्राम चाहने वाले पथिक को कोई व्यभिचारिणी स्थान देने के लिए प्रस्तुत है। उसका पति बाहर है। वह पथिक से कह रही है 'हे रतौंधिये अभी समझ लो इस शैया पर मेरी सास सोती है और इस पर मैं। कहीं ऐसा न हो कि तुम रतौंधिये होने के कारण हम लोगों की शैया पर आकर पड़ जाओ।' यहां पथिक को रतौंधिया कहने से नायिका का यह अभिप्राय है कि सास बूढ़ी है उसे रात में कुछ दिखाई तो देता नहीं, फिर सास के अतिरिक्त यहां और कोई है भी नहीं, तुमने मेरी शैया देख ही ली है, अतः बेखटके रात को तुम मेरी ही शैया पर सोना।

दास ने यह भी कहा है कि जिस प्रकार वक्ता बोधव्य के समन्वय से अर्थ में विशेषता आती है उसी प्रकार और भी अन्य मिश्रण हो सकते हैं[5] जिन्हें रसिक लोग स्वयं ही समझ सकते हैं। मम्मट के द्विकादि कहने का भी यही अभिप्राय है।

निष्कर्ष—दास जी ने पदार्थ निर्णय के अन्तर्गत शब्द शक्तियों का सांगोपांग विवेचन किया है। इस विवेचन में अधिकतर उन्होंने आचार्यों के मतानुसार ही व्याख्याएं की हैं परन्तु वे सदा उनके मतों से सहमत रहे हों ऐसी बात नहीं है। जहां उन्होंने उचित समझा है वे उनसे भिन्न भी हो गये हैं जैसा लक्षणा विवेचन के भेदोपभेदों के वर्गीकरण में पूर्वपृष्ठों में दिखाया जा चुका है। कहीं कहीं उन्होंने भेदोपभेदों के नामों में भी, आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट नामों को देखते हुए, परिवर्तन कर लिया है जैसे लक्षणा के स्थान पर लक्षित लक्षणा। कहीं कहीं अपने विषय को अधिक स्पष्ट करने तथा उसे रसिकों एवं पाठकों के लिए अधिक बोधगम्य

---

१. आदिग्रहणाच्चेष्टादेः। तत्र चेष्टाया यथा— का० प्र०, पृ० ४७।
२. वक्ता अरु बोधव्य सों बरन्यो मिलित विसेष। का० नि०, पृ० २१।
३. द्विकादिभेदे वक्त्रबोधव्यभेदे। का० प्र०, पृ० ४६।
४. का० नि०, पृ० २२।
५. यों ही औरौ जानिहैं, जिनकी सुमति असेष। का० नि०, पृ० २१।

बनाने के लिए उन्हें सुन्दर कल्पनाओं का सहारा भी लेना पड़ा है। दास जी का निम्नलिखित पद इस बात का साक्षी है—

वाचक लच्छक भाजन रूप हैं व्यंजक को जल मानत ज्ञानी।
जानि परै न जिन्हैं तिन्ह के समुझाइबे को यह दास बखानी।
ये दोउ होत अव्यंग सव्यंग औ व्यंग इन्हैं बिनु लावै न बानी।
भाजन लाइय नीर विहीन न आइ सकै बिनु भाजन पानी।[१]

यहां पर वाचक, लक्षक और व्यंजक शब्दों का भेद दास जी ने दैनिक वस्तुओं की उपमा से सरलतापूर्वक समझाने का प्रयास किया है जिसमें वे सफल भी हुए हैं। उनका कथन है कि वाचक और लक्षक जलपात्र के समान हैं तथा व्यंजक जल के समान। मनुष्य की प्यास जल से बुझती है न कि जलपात्र से और जल पात्र में ही लाया तथा पिया जा सकता है। अतः व्यंजना-अभिव्यक्ति व उसका रसास्वादन वाचक और लक्षक द्वारा ही किया जा सकता है यद्यपि खाली पात्रों की भांति वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ का भी अपना उपयोग है। ये दोनों अव्यंग्य तथा सव्यंग्य होते हैं, परन्तु इनमें व्यंग्य का चमत्कार वाणी द्वारा ही पैदा होता है।

ध्वनि विवेचन

साहित्यदर्पण में कहा गया है कि जिस काव्य में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक चमत्कारक हो उसे ध्वनि कहते हैं और ध्वनिपूर्ण काव्य उत्तम काव्य होता है।[२] **ध्वन्यालोक** में भी प्रायः यही बात कही गयी है।[३] **मम्मट** का भी यही मत है। वे भी ध्वनि काव्य को उत्तम काव्य मानते हैं।[४] इन्हीं आचार्यों के मतानुसार 'दास' ने भी ध्वनि का होना वहीं बताया है जहां व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से अधिक चमत्कारपूर्ण हो।[५] यही ध्वनिपूर्ण काव्य उत्तम काव्य माना जाता है।

ध्वनि के भेद

ध्वन्यालोक में ध्वनि के भेद अविवक्षित तथा विवक्षितान्यपरवाच्य[६] तथा **साहित्य-दर्पण** में लक्षणामूलक और अभिधामूलक, जिनमें से प्रथम को अविवक्षित और दूसरे को विवक्षितान्यपरवाच्य कहते हैं, माने गये हैं।[७] इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर 'दास' ने भी ध्वनि

---

१. का० नि०, पृ० १५।
२. वाच्यातिशायिनि व्यंग्येध्वनिस्तत्काव्यमुत्तम। सा० द०, पृ० १७०।
३. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वार्थौ।
व्यंक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।
यत्रार्थो वाच्यविशेषः वाचक विशेषः शब्दो वा तमर्थ व्यंक्तः स काव्य विशेषो ध्वनिरिति। ध्वन्यालोक, पृ० ३३।
४. इदमुतममतिशायिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः। का० प्र०, पृ० ५।
५. वाच्य अर्थ तें व्यंग में चमत्कार अधिकार।
ध्वनि ताही को कहत हैं उत्तम काव्य विचार। का० नि०, पृ० ४६।
६. स चाविवक्षितवाच्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्चेति द्विविधः सामान्येन। ध्वन्यालोक
७. भेदौ ध्वनेरपि द्वाविदीरितौ लक्षणाभिधामूलौ।
अविवक्षितवाच्योऽन्यो विवक्षितान्यपरवाच्यश्च। सा० द०, पृ० २७०।

के दो भेद बताये हैं—(१) अविवक्षित वाच्य तथा (२) विवक्षित वाच्य।[1] अन्तर यह है कि विवक्षित वाच्य के लिए आचार्यों ने विवक्षितान्यपरवाच्य नाम का प्रयोग किया है। इनके मूल में क्रमशः लक्षणा और अभिधामूलक ध्वनि रहती है।

(१) अविवक्षित वाच्य

जहां वाणी के स्वभाव के कारण जिस वाच्य से व्यंग्य की प्रतीति होती हो उसे अविवक्षित वाच्य कहा जाता है। इसमें वाच्यार्थ से वक्ता के कहने का अभिप्राय नहीं जाना जाता[2] अपितु व्यंग्य से ही वास्तविक अर्थ की प्रतीति होती है[3], जैसा कि मम्मट का मत है। मम्मट, विश्वनाथ तथा जयदेव[4] की ही भाँति दास ने भी अविवक्षित वाच्य के दो भेद बताये हैं—(१) अर्थान्तरसंक्रमित और (२) अत्यंततिरस्कृती।[5]

१. अर्थान्तरसंक्रमित—जहां लक्षणा के कारण वाच्यार्थ का अपने दूसरे अर्थ में संक्रमण हो जाय वहां अर्थान्तरसंक्रमित अविवक्षितवाच्य ध्वनि होती है।[6] साहित्यदर्पणकार ने इसकी प्रायः यही परिभाषा की है अर्थात् जहां शब्द का मुख्य अर्थ प्रकरण में बाधित होने के कारण अपने विशेष स्वरूप अर्थान्तर में परिणत होता है वहां अर्थान्तरसंक्रमित वाच्य होता है।[7] फलतः दास का लक्षण साहित्यदर्पण के अनुसार है।

२. अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य—वहां होता है जहां मुख्य अर्थ त्याज्य हो जाता है अर्थात् वास्तव में वाक्य का एक सर्वथा भिन्न अर्थ हो जाता है जो परिस्थिति अथवा उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर प्रतीत होता है।[8] मम्मट के अनुसार

---

१. ध्वनि के भेद दुभांति को भनै भारती धाम।
अविवक्षितो विवक्षतो वाच्य दुहुन को नाम। का० नि०, पृ० ५०।

२. बकता की इच्छा नहीं बचनहिं को जु सुभाउ।
व्यंग कढ़ै तिहि वाच्य को अविवक्षित ठहराउ। का० नि०, पृ० ५०।

३. मम्मट ने अविवक्षित वाच्य वहां माना है जहां लक्षणामूलक गूढ़ व्यंग्य की मुख्यता होती है। द० नि उत्तम काव्य है इसमें प्रकरणानुसार जहां वाच्यार्थ ठीक ठीक न प्रतीत हो सकता हो वहाँ वह किसी दूसरे अर्थ में ही परिणत हो जाता है।
लक्षणामूलगूढ़व्यंग्यप्राधान्ये सत्येव अविवक्षितं वाच्यं यत्र स 'ध्वनौ' इत्यनुवादात्। ध्वनिरिति ज्ञेयः। तत्र च वाच्यं कचिदनुपयुज्यमानत्वादर्थान्तरेपरिणमितम्। का० प्र०, पृ० ५१।

४. देखिये का० प्र०, पृ० ५१, सा० द०, पृ० १७१ तथा चं० लो०, पृ० २३६।

५. अर्थान्तरसंक्रमित इक है अविवक्षितवाच्य।
पुनि अत्यंत तिरस्कृती दूजो भेद परावच्य। का० नि०, पृ० ५०।

६. अर्थान्तरसंक्रमित सो वाच्य जु व्यंग अतूल।
गूढ़ व्यंग यामें सही होत लक्षनामूल। का० नि०, पृ० ५०।

७. यत्र स्वयमनुयुज्यमानो मुख्योऽर्थः स्वविशेषे रूपेऽर्थान्तरे परिणमति तत्र मुख्यार्थस्य स्वविशेषरूपार्थान्तरसंक्रमितत्वादर्थान्तरसंक्रमितवाच्यत्वं। सा० द०, पृ० १७१।

८. है अत्यन्त तिरस्कृती निपट तजे ध्वनि होय।
समय लक्ष तें पाइये, मुख्य अर्थ को गोय। का० नि०, पृ० ५०।

कहीं कहीं वाच्यार्थ उपयुक्त न होने के कारण अत्यन्त तिरस्कृत समझा जाता है[1], और विश्वनाथ के अनुसार जहां शब्द अपने मुख्यार्थ को सर्वथा छोड़कर अर्थान्तर में परिणत होता है वहां वाक्य के अत्यन्त तिरस्कृत होने के कारण अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि होती है।[2] इन आचार्यों के मतों को देखते हुए कहा जा सकता है कि दास का मत उनसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। भिखारीदास ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है :

सखि तू नेकु न सकुच मन किये सबै मम काम।
अब आनै चित सुचितई सुख पैहै परिनाम।[3]

यहां किसी नायिका ने अपनी सखी को नायक को संदेश देने के लिए भेजा था परन्तु सखी ने संदेश न देकर नायक के साथ समागम किया तथा अस्तव्यस्त दशा में वह नायिका के पास पहुंची। नायिका भी वस्तुस्थिति ताड़ गई। अतः वह सखी से कहती है कि तू अपने मन में तनिक भी संकोच न कर। तूने मेरा सारा काम कर दिया है, अब अपने को व्यवस्थित कर। तुझे तेरे इस उपकार के, जो तूने मुझ पर किया है, परिणामस्वरूप सुख की प्राप्ति होगी। स्पष्ट है कि नायिका ने जो शब्द कहे हैं उनका यदि वाच्यार्थ लिया जाय तो कोई अर्थ समझ में न आयेगा क्योंकि प्रकरणानुसार वह अर्थ उपयुक्त नहीं है उपयुक्त अर्थ के एकदम विपरीत है। अतः यहां पर अत्यन्त तिरस्कृतवाच्य ध्वनि है।

(२) विवक्षित वाच्य

दास जी ने कहा कि जिस अर्थ की कवि अपेक्षा करे वह विवक्षित वाच्यध्वनि होती है।[4] मम्मट का कथन है कि जिस ध्वनि में वाच्यार्थ अन्वय के उपयुक्त अर्थ का बोध करा कर व्यंग्यार्थ का सहायक होता है वहाँ विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि होती है।[5] आचार्य विश्वनाथ ने विवक्षितान्यपरवाच्य में वाच्यार्थ का विवक्षित होना बताया है परन्तु विवक्षित होने पर भी यहां अभिधेयार्थ, प्रधानतया 'अन्यपरक' अर्थात् व्यंग्यार्थ का द्योतन करता है—इस ध्वनि में वाच्यार्थ अपने स्वरूप का प्रकाश करता हुआ व्यंग्यार्थ का प्रकाश करता है।[6] इन मतों के समक्ष दास की परिभाषा अपूर्ण प्रतीत होती है।

१. क्वचिदनुपपद्यमानतया अत्यन्तं तिरस्कृतम्। का० प्र०, पृ० ५२।
२. यत्र पुनः स्वार्थं सर्वथा परित्यजन्नर्थान्तरे परिणमतितत्र मुख्यार्थस्यात्यन्ततिरस्कृतत्वादत्यन्ततिरस्कृतवाच्यत्वम्। सा० द०, पृ० १७२।
३. काव्य निर्णय, पृ० ५१।
४. वहै विवक्षित वाच्य ध्वनि चाहि करै कवि जाहि। का० नि०, पृ० ५१।
५. विवक्षितं चान्यपरं वाच्यं यत्रापरस्तु सः।
अन्यपरं से अर्थ है 'व्यंग्य अर्थ का सहायक'
अन्यपरं व्यंग्यनिष्ठम्। का० प्र०, पृ० ५३।
६. विवक्षितान्यपरवाच्यस्त्वभिधामूलः। अतएवात्र वाच्यं विवक्षितम्।
अन्यपरं व्यंगनिष्ठम्। अत्र हि वाच्योऽर्थः स्वरूपं प्रकाशयन्नेवव्यंग्यार्थस्य प्रकाशकः।
सा० द०, पृ० १७०।

विवक्षित वाच्य ध्वनि के दो भेद होते हैं (१) असंलक्ष्य क्रम तथा (२) लक्ष्यक्रम। ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश तथा साहित्यदर्पण में भी इन भेदों का इन्हीं नामों से विवेचन हुआ है।[1]

१. **असंलक्ष्यक्रम** वहां होता है जहां रसपूर्णता की प्रतीति हो (रसपूर्णता की प्रतीति में विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों का महत्व एवं अस्तित्व रहता है क्योंकि इनके द्वारा रस की अभिव्यक्ति होती है। यद्यपि ये क्रमपूर्वक अवश्य होते हैं तथापि अतिशीघ्रता के साथ प्रतीत होने के कारण वे क्रमपूर्वक लक्षित नहीं हो सकते। अतः उन्हें असंलक्ष्यक्रम ध्वनि कहा गया है[2]) तथा रसभावादि के क्रम का पता न चले।[3] रसभावादि के भेदों की गणना नहीं हो सकती, अतः दास ने विश्वनाथ तथा मम्मट के आधार पर[4] ही इसका नाम 'रस व्यंग' रखा है।[5]

२. **लक्ष्यक्रम** का दास जी ने लक्षण नहीं दिया है पर कहा है कि यह शब्दशक्ति, अर्थशक्ति तथा शब्दार्थ शक्ति इन तीन शक्तियों से उत्पन्न व्यंग को सूचित करता है।[6] मम्मट, आनन्दवर्द्धन तथा विश्वनाथ ने संलक्ष्यक्रम ध्वनि के तीन भेद शब्दशक्तिमूलक, अर्थशक्तिमूलक तथा शब्दार्थोभय शक्तिमूलक किये हैं।[7] अतः दास का यह मत आचार्यसम्मत है।

(१) **शब्दशक्ति**—अनेकार्थमयशब्दों में शब्दशक्ति द्वारा अभिप्रेतार्थ की पहचान होती है। इसमें व्यंग्य दो प्रकार का होता है—वस्तु रूप तथा अलंकार रूप।[8] काव्य प्रकाशकार ने भी यही बात कही है।[9] जयदेव ने इनके चार रूप माने हैं, वस्तु से वस्तु, वस्तु से अलंकार,

१. देखिये ध्वन्यालोक, पृ० ६४, का० प्र०, पृ० ५३ तथा सा० द०, पृ० १७४।

२. न खलु विभावानुभावव्यभिचारिण एव रसः। अपितु रसस्तैरित्यस्ति क्रमः।
स तु लाघवान्न लक्ष्यते। — का० प्र०, पृ० ५३।

३. असंलक्ष्यक्रम व्यंग जहँ रसपूरनता चारु।
लखि न परै क्रम जेहि द्रवै सज्जन चित्त उदारु। — का० नि०, पृ० ५१।

४. तत्राद्यो रसभावादिरेक एवात्र गण्यते।
एकोऽपि भेदोऽनन्तत्वात्संख्येयस्तस्य नैव यत्। — सा० द०, पृ० १७५।
रसादीनामनन्तत्वाद्भेद एकोऽहि गण्यते। — का० प्र०, पृ० ६५।

५. रस भावन के भेद की गननि गनी न जाइ।
एक नाम सबको कह्यो रसै व्यंग ठहराइ। — का० नि०, पृ० ५१।

६. होत लक्ष्यक्रम व्यंग में तीनि भांति की व्यक्ति।
शब्द अर्थ की शक्ति है अरु शब्दारथ शक्ति। — का० नि०, पृ० ५१।

७. देखिये का० प्र०, पृ० ८१, ध्व० लो०, पृ० १०४, सा० द०, पृ० १७५।

८. कहूँ वस्तु से वस्तु की व्यंग होत कविराज।
कहूँ अलंकृत व्यंग है शब्द शक्ति द्वै साज। — का० नि०, पृ० ५२।

९. जहां अलंकार अथवा केवल वस्तु ही शब्दों द्वारा प्रकट हो वहां अलंकार अथवा वस्तु के भेद से दो प्रकार के शब्दशक्त्युद्भव व्यंग्य होते हैं।
अलङ्कारोऽथ वस्त्वेव शब्दाद्यत्रावभासते।
प्रधानत्वेन स ज्ञेयः शब्दशक्त्युद्भवो द्विधा। — का० प्र०, पृ० ८१।

अलंकार से वस्तु तथा अलंकार से अलंकार।[1] परन्तु दास ने इनका प्रौढ़ोक्ति तथा स्वतः-सम्भवी के अन्तर्गत उल्लेख किया है।

वस्तु से वस्तु व्यंग्य वहाँ होता है जहां सीधा सादा कथन हो। यहां वस्तु शब्द से अलंकार-रहित वस्तु का ग्रहण होता है।[2] इसमें व्यंग्य की व्यंजना चमत्कारपूर्ण होती है। 'दास' का यह लक्षण साहित्यदर्पण के अनुसार है।[3] दास ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

लाल चुरी तेरे लली लागत निपट मलीन।
हरियारी करि देउँगी हौं तो हुकुम अधीन।[4]

यहाँ साधारण अर्थ तो यह है कि दूती नायिका से कह रही है कि तुम्हारे हाथ में लाल चूड़ियाँ मलिन लगती हैं यदि आज्ञा मिले तो उनके स्थान पर हरी चूड़ियों की व्यवस्था कर दूं। परन्तु शब्दशक्ति द्वारा वस्तु से वस्तु व्यंग्य के रूप में उसका अर्थ निकलता है कि तेरी मलिनता अथवा खिन्नता को दूर करने के लिए यदि तू कहे तो तेरी मित्रता (यारी) हरि से करा दूँ।

(२) **अर्थ शक्ति**—के अन्तर्गत दास जी ने ध्वनि के स्वतःसंभवी तथा प्रौढ़ोक्ति ये दो भेद किये हैं। स्वतःसंभवी के अन्तर्गत उन्होंने वाचक लक्षक वस्तु तथा जगकहनावति को रखा है[5] जबकि मम्मट इसे वह ध्वनि मानते हैं जो केवल कवि के काव्य में ही नहीं अपितु बाह्य संसार में भी उचित रूप से संभाव्य हो।[6] स्पष्ट है कि दास का लक्षण मम्मट के बहुत निकट है। जो पदार्थ बाह्य संसार में न होकर केवल कवि कल्पना में मिलता हो उसमें प्रौढ़ोक्ति (अथवा कवि प्रौढ़ोक्ति) ध्वनि होती है। यह 'जग कहनावति' से भिन्न होती है तथा केवल काव्य में ही पायी जाती है[7], उदाहरणार्थ—

उज्जलताई कीर्ति की सेत कहै संसार।
तम छायो जग में कहै खुले तरुनि के बार।[8]

१. चत्वारो वस्त्वलङ्कारमलङ्कारस्तु वस्तु यत्।
अलङ्कारभलङ्कारौ वस्तु-वस्तु व्यनक्ति तत्। चं० लो०, पृ० २४०।
२. सूधी कहनावति जहाँ अलंकार ठहरै न।
ताहि वस्तु संज्ञा कहैं व्यंग होय कै बैन। का० नि०, पृ० ५२।
३. अलंकार शब्दस्य पृथगुपादानादनलंकारं वस्तुमात्रं गृह्यते
तत्र वस्तुरूपशब्दशक्त्युद्भवो व्यंग्यो— सा० द०, पृ० १७६।
४. का० नि०, पृ० ५२।
५. बाचक लच्छक वस्तु को जग कहनावति जानि।
स्वतः संभवी कहत हैं कवि पंडित सुख दानि। का० नि० पृ० ५३।
६. स्वतः संभवी न केवलं भणितिमात्रनिष्पन्नौ
यावद्बहिरप्यौचित्येन सम्भाव्यमानः। का० प्र०, पृ० ८५।
७. जग कहनावति तें जु कछु कवि कहनावति भिन्न।
तेहि प्रौढ़ोक्ति कहैं सदा जिन्ह की बुद्धि अखिन्न। का० नि०, पृ० ५३।
८. काव्य निर्णय, पृ० ५३।

अथवा—बरनत अरुन अबीर सों रवि सों तप्त प्रताप।
सकल तेजमय तें अधिक कहे विरह सन्ताप।[१]

यहाँ कीर्ति का रंग सफेद होना, तरुणि के बाल बिखरने पर संसार में अन्धकार छा जाना, रवि का प्रखर प्रताप लाल अबीर के समान होना तथा विरह का सन्ताप सभी तेजमय वस्तुओं से अधिक सन्तप्त करने वाला होना आदि कार्य पार्थिव जीवन में तो सम्भव नहीं, हाँ काव्य में अवश्य सुलभ हैं।

कुछ आचार्यों ने अर्थशक्ति के अन्तर्गत 'कविनिबद्ध वक्तृप्रौढ़ोक्ति सिद्ध' नामक एक और ध्वनि का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार इन आचार्यों ने स्वतः संभवी, कवि प्रौढ़ोक्ति तथा कविनिबद्ध वक्तृप्रौढ़ोक्ति सिद्ध ये तीन भेद किये हैं।[२]

दास जी ने स्वतः संभवी (अथवा प्रौढ़ोक्ति) के चार भेद किये हैं।[३]

(१) स्वतः संभवी (अथवा प्रौढ़ोक्ति) वस्तु से वस्तु व्यंग्य।
(२) स्वतः संभवी (अथवा प्रौढ़ोक्ति) वस्तु से अलंकार व्यंग्य।
(३) स्वतः संभवी (अथवा प्रौढ़ोक्ति) अलंकार से वस्तु व्यंग्य, तथा
(४) स्वतः संभवी (अथवा प्रौढ़ोक्ति) अलंकार से अलंकार व्यंग्य।

दास जी ने इन भेदों के उदाहरण मात्र दिये हैं। कहीं कहीं ये उदाहरण बहुत उत्तम बन पड़े हैं जैसे—

सुनि सुनि प्रीतम आलसी धूर्त सूम धनवंत।
नवल बाल हिय में हरष बाढ़त जात अनंत।[४]

यह स्वतः संभवी वस्तु से वस्तु का उदाहरण है। अपने प्रियतम को आलसी, धूर्त, धनवान तथा कन्जूस सुन कर किसी नवबाला का हृदय प्रसन्नता से भर गया है (क्योंकि इस बाला ने यह समझ लिया है कि ऐसा नायक तो मेरे ही योग्य है कारण कि यदि वह आलसी है तो कहीं जायगा नहीं सदा मेरे पास ही रहेगा, धूर्त है तो कामी होगा ही यह मेरे लिए मनचाही वस्तु है तथा धनवान होकर यदि कंजूस है तो आर्थिक दारिद्र्य का भय नहीं है।)

दास जी ने प्रौढ़ोक्ति वस्तु से वस्तु व्यंग्य का निम्नलिखित सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

---

१. काव्य निर्णय, पृ० ५३।
२. मम्मट का कथन है—
अर्थशक्त्युद्भवोऽप्यर्थो व्यञ्जकः सम्भवी स्वतः।
प्रौढोक्तिमात्रात्सिद्धो वा कवेस्तेनोम्भितस्य वा। का० प्र०, पृ० ८५।
विश्वनाथ का मत है—
वस्तु वालंकृतिर्वापि द्विधार्थः संभवीस्वतः।
कवेः प्रौढ़ोक्तिसिद्धो वा तन्निबद्धस्य चेति षट। सा० द०, पृ० १७८।
३. वस्तुव्यंग्य कहुँ चारु स्वतः संभवी वस्तु ते।
वस्तुहिं तें लंकार अलंकार तें वस्तु कहुं।
कहूं अलंकृत बात अलंकार व्यंजित करै।
योंही पुनि गनि जात चारि भेद प्रौढ़ोक्ति के। का० नि, पृ० ५४।
४. का० नि०, पृ० ५४।

दास के ईस जबै जस रावरो गावती देव बधू मृदु तानन।
जातो कलंक मयंक को मूँदि औ घाम तें काहू सतावतो भान न।
सीरो लगै सुनि चौंकि चितै दिगदन्तित कें तिरछौ दृग आनन।
सेत सरोज लगै कै सुभाय घुमाय कै सूँड़ मलै दुहुँ कानन।[1]

अर्थात् देव वधुओं द्वारा गाये जाने वाले यश को सुन कर चन्द्रमा का कलंक छिप गया तथा सूर्य की उष्णता कम हो गयी। इस कीर्ति को सुन कर दिग्गजों को शीतलता प्राप्त हुई और उन्होंने अपने मुख तथा नेत्रों को तिरछा करके सूँड़ को श्वेत सरोज के भ्रम से कानों पर फेरना आरंभ कर दिया। यहां पर यश की शीतलता से चन्द्रमा का कलंक छिपना, सूर्य का ताप कम हो जाना तथा दिग्गजों का अपने कानों पर अपनी सूंड़ फेरने लगना कवि कल्पित प्रौढ़ोक्तियां हैं। जिन दिग्गजों को गीत के अर्थ तक का ज्ञान नहीं उनके हृदय में श्वेत सरोज की बुद्धि उत्पन्न करने के कारण वर्णित कीर्ति अद्भुत चमत्कार पैदा करने वाली है, यह वस्तु ध्वनित होती है।

प्रौढोक्ति अलंकार से अलंकार व्यंग्य के उदाहरणस्वरूप दास का निम्नलिखित पद द्रष्टव्य है—

करै दासै दया वह बानी सदा कवि आनन कौल जु बैठी लसै।
महिमा जग छाई नवो रस को तन पोषक नाम धरै छ रसै।
जग जाके प्रसाद लता पर शैल ससी पर पंकज पत्र बसै।
करि भाँति अनेकन यों रचना जु बिरंचिहु की रचना को हँसै।[2]

(३) **शब्दार्थ शक्ति**—शब्दार्थ शक्ति के लक्षण के सम्बन्ध में दास का कथन है कि जहाँ शब्द शक्ति और अर्थशक्ति दोनों से मिल कर सुन्दर व्यंग्य का प्रकाशन होता हो वहाँ शब्दार्थ शक्ति से उद्भूत व्यंग्य होता है।[3] दास जी ने इसके कोई भेदादि नहीं किये हैं क्योंकि साहित्यदर्पणकार तथा मम्मट के अनुसार वह ध्वनि केवल वाक्य में ही होती है, शब्द या पद में नहीं। अतः इसके भेदादि नहीं होते अर्थात् यह एक ही प्रकार की होती है।[4]

पद प्रकाशित व्यंग्य—भिखारी दास के मतानुसार यद्यपि पदसमूह से वाक्य की रचना होती है और उनसे व्यंग्य भी प्रस्फुटित होता है परन्तु वाक्य में अकेले पद (शब्द) की इतनी शक्ति होती है कि वह भी सुन्दर ध्वनि की व्यंजना करने में पूर्ण समर्थ रहता है।[5]

१. काव्य निर्णय, पृ० ५५। २. काव्यनिर्णय, पृ० ५६।

३. शब्द अर्थ दुहुँ शक्ति मिलि व्यंग कढ़ै अभिराम।
कवि कोविद तेहि कहत हैं उभै शक्ति एहि नाम। का० नि०, पृ० ५७।

४. एकः शब्दार्थशक्त्युत्थे।
उभयशक्त्युद्भवे व्यंग्ये एको ध्वनेर्भेदः। सा० द०, पृ० १८२।
शब्दार्थोभय भूरेकः। का० प्र०, पृ० ९२।

५. पद समूह रचनानि को वाक्य विचारो चित्त।
तासु व्यंग बरनों सुनो पद व्यंजक अब मित्त।
छंद भरे में एक पद ध्वनि प्रकाश करि देइ।
प्रगट करौं क्रम ते बहुरि उदाहरन सब तेइ। का० नि०, पृ० ५८।

ध्वनिकार तथा मम्मट का भी यही मत है कि किसी एक पद से द्योत्य ध्वनि के द्वारा कवि की सम्पूर्ण वाणी उसी प्रकार सुशोभित होती है जैसे किसी एक अंग (नासिकादि) में पहिने हुए भूषण से कामिनी सुशोभित होती है। इससे स्पष्ट है कि अन्य पदों का सन्निधान होने पर भी एक ही पद व्यंजक होता है।[1] स्पष्ट है कि 'दास' की यह व्याख्या शुद्ध तथा तथ्यपूर्ण है। अपने मत के समर्थन में दास जी ने अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यपद, अत्यंततिरस्कृतवाच्यपद, संलक्ष्यक्रम रस व्यंग्य, शब्दशक्ति द्वारा वस्तु से वस्तु व्यंग्य, शब्दशक्ति द्वारा वस्तु से अलंकार व्यंग्य, स्वतः संभवी वस्तु से अलंकार व्यंग्य, स्वतः सम्भवी अलंकार से वस्तु व्यंग्य, स्वतः सम्भवी अलंकार से अलंकार व्यंग्य, प्रौढ़ोक्ति द्वारा वस्तु से वस्तु व्यंग्य, प्रौढ़ोक्ति द्वारा वस्तु से अलंकार व्यंग्य, प्रौढ़ोक्ति द्वारा अलंकार से वस्तु व्यंग्य तथा प्रौढ़ोक्ति द्वारा अलंकार से अलंकार व्यंग्य के क्रम से उदाहरण दिये हैं, जिनमें कुछ उदाहरण तो बहुत तथ्यपूर्ण एवं ललित बन पड़े हैं, उदाहरणार्थ—

अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यपदप्रकाशित ध्वनि का उदाहरण—

सुन्दर गुन मन्दिर रसिक पास खरे ब्रजराज।
आली कवन सयान है मान ठानिबो आज।[2]

यहां पर 'आज' शब्द से समागम का समय व्यंजित होता है। यहां अर्थान्तरसंक्रमित अभिप्राय यह है कि सौन्दर्य और गुण के निधान ब्रजराज तो सामने ही खड़े हैं अब देर काहे की अर्थात् रति केलि के समस्त विधान तो विद्यमान हैं ही, आज समागम काल बहुत उपयुक्त है।

शब्दशक्ति द्वारा वस्तु से वस्तु व्यंग्य का उदाहरण—

जेहि सुमनहि तू राधिकहि लाई करि अनुराग।
सोई तोरत साँवरो आपहि आयो बाग।[3]

यहां पर 'तोरत' शब्द से व्यंग्य निकलता है कि श्याम तुझसे प्रेम करते हैं (तो रत), वे स्वयं आ गये हैं और तुझ से मिलने के लिए लालायित हैं।

स्वतः सम्भवी से वस्तु व्यंग्य का उदाहरण—

हम तुम द्वै तन प्रान इक आज फुरचो बलवीर।
लग्यो हिये नख रावरे मेरे हिय में पीर।[4]

यहां असंगति अलंकार द्वारा 'आज' शब्द से परस्त्री विहारी होना वस्तु व्यंग्य का सूचक है।

प्रौढ़ोक्ति अलंकार से वस्तु व्यंग्य का उदाहरण—

हरि हरि हरि व्याकुल फिरै तजि सखियन को संग।
लखि यह तरल कुरंग दृग लटकनि मुकुत सुरंग।[5]

---

१. एकावयवसंस्थेन भूषणेनेव कामिनी।
पदद्योत्येन सुकवेर्ध्वनिना भाति भारती। सा० द०, पृ० १८५।
एकावयवस्थितेन भूषणेन कामिनीव पदद्योत्येन व्यंग्येन वाक्य व्यंग्यापि भारती भासते। का० प्र०, पृ० ६६।

२. का० नि०, पृ० ५८।
३. का० नि०, पृ० ५६।
४. का० नि०, पृ० ६०।
५. का० नि०, पृ० ६०।

'सुरंग' पद से नायिका का आसक्त होना व्यंजित होता है ।

प्रबन्ध ध्वनि--कभी-कभी ध्वनि उपर्युक्त ढंगों से व्यक्त होने के अतिरिक्त कथाप्रसंग से भी प्रकाशित होती है ।[1] इस सम्बन्ध में मम्मट का कथन है कि अर्थशक्तिमूलक ध्वनि वाक्य तथा पद से प्रकाश्य होने के अतिरिक्त प्रबन्ध के सम्बन्ध से भी प्रकाश्य है[2] और साहित्यदर्पणकार का कहना है कि अर्थशक्त्युद्भव ध्वनि प्रबन्ध में भी पायी जाती है ।[3] इससे स्पष्ट है कि दास जी की प्रबन्ध ध्वनि का लक्षण युक्तियुक्त है । दास ने इसके स्पष्टीकरण के लिए निम्नलिखित उदाहरण दिया है--

बाहिर कढ़ि कर जोरि कै रवि को करो प्रनाम ।
मनइच्छित फल पाइकै तब जइयो निज धाम ।[4]

उक्त पंक्तियों का सम्बन्ध उस प्रसंग से है जिसमें कृष्ण ने स्नान के समय गोपिकाओं का चीर हरण किया था । इस प्रसंग के अभाव में अभिप्रेतार्थ की प्रतीति एवं शब्दजनित व्यंग्य सम्भव नहीं ।

स्वयं लक्षित व्यंग्य--स्वयंलक्षित व्यंग्य की परिभाषा करते हुए दास जी ने कहा है कि स्वयंलक्षित ध्वनि वहां होती है जहाँ एकमात्र वही बात कही जाय जो अत्युपयुक्त हो तथा वहां पर उसके समान दूसरी बात खप न सके ।[5] इसकी अभिव्यक्ति शब्द, वाक्य, पद, पद के एकदेश तथा वर्ण में होती है ।[6] मम्मट ने इस ध्वनि का कोई विशेष नाम नहीं दिया है, यद्यपि उन्होंने इसका विवेचन अवश्य किया है । उन्होंने इसका वर्णन इस प्रकार किया है

पदैकदेशरचनावर्णेष्वपि रसादयः ।[7]

अर्थात् 'पद के (सुबन्त, तिङन्त) प्रकृति, प्रत्यय और उपसर्ग रूप तीनों भागों तथा गौड़ी, पांचाली और वैधर्मी इन तीनों रचनाओं और वर्णों (क, ख, इत्यादि) से भी रसादि (रसभास, रसाभास, भावाभास, भावशक्ति, भावोदय, भावसन्धि, भाव-सबलता) की व्यंजकता होती है', और इसके ६ भेदों (वाक्य, पद, पद के एकदेश, रचना, वर्ण और प्रबन्ध) का उल्लेख किया है ।[8] स्पष्ट है कि दास का मत मम्मट से मिलता जुलता है ।

१. एकहि शब्द प्रकाश में उभय शक्ति न लखाइ ।
   अस सुनि होत प्रबन्ध ध्वनि कथा प्रसंगहि पाइ । का० नि०, पृ० ६१ ।
२. प्रबन्धेप्यर्थशक्तिभूः । का० प्र०, पृ० १०८ ।
३. प्रबन्धेऽपि मतौ धीरैरर्थशक्त्युद्भवो ध्वनिः । सा० द०, पृ० १९० ।
४. का० नि०, पृ० ६१ ।
५. वाही कहे बनै जु बिधि वा सम दूजो नाहिं ।
   ताहि स्वयं लच्छित कहै व्यंग समुझि मन माहिं । का० नि०, पृ० ६४ ।
६. शब्द वाक्य पद पदहु को एक देस पद बर्न ।
   होत स्वयं लच्छित तहाँ समुझै सज्जन कर्न । का० नि०, पृ० ६१ ।
७. का० प्र०, पृ० ११० । ८. देखिये का० प्र०, पृ० ११९ ।

दास ने उक्त पांचों प्रकार के स्वयंलक्षित व्यंग्य के उदाहरण दे दिये हैं जिन में से कुछ यहां पर उद्धृत किये जा रहे हैं—

हौं गँवारि गाँवहि बसी कैसो नगर कहन्त।
पै जान्यो आधीन करि नागरीन को कन्त।[1]

अर्थात् मैं गँवारिन हूँ (गाँव में मैंने जन्म लिया है), गाँव ही में बसती हूँ, नगर किसे कहते हैं यह जानती भी नहीं, किन्तु मैं नगरवासिनी स्त्रियों के पतियों को अपने वश में कर लेने की विद्या जानती हूं। यहाँ 'नागरीन' (नगर निवासिनी स्त्रियों के) शब्द से नायिका का चातुर्य-व्यापार ध्वनित होता है। अतः यह पद के एकदेश का उदाहरण है।

इस प्रकार दास ने काव्य निर्णय में ४३ प्रकार की मुख्य ध्वनियों का उल्लेख किया है।[2] साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया है कि यदि ध्वनि के अन्तर्गत सभी बातें तथा ध्वनिसंकर आदि भी ले लिये जाएँ तो ध्वनियों की संख्या वहुत अधिक हो जायगी।[3] आचार्यों ने तो इनकी संख्या दस हजार से अधिक मानी है।[4]

---

१. का० नि०, पृ ६३।

२. द्वै अविवक्षित वाच्य अरु रसै व्यंग इक लेखि
शब्द शक्ति द्वै आठ पुनि अर्थशक्ति अवरेखि
उभै शक्ति इक जोरि पुनि तेरह शब्द प्रकाश
इक प्रबन्ध धुनि पाँच पुनि स्वयं लच्छि गुन दास
ए सब तैंतिस जोरि दस व्यक्ति आदि पुनि ल्याइ
तैंतालीस प्रकार ध्वनि दीन्हों मुख्य गनाई — का० नि०, पृ० ६३।
(व्यक्ति आदि दस व्यंजकों का विवेचन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है)

३. सब बातन सब भूषनन सब संकरन मिलाइ।
गुनि गुनि गनना कीजिये तो अनन्त बढ़ि जाइ। — का० नि०, पृ० ६४।

४. शुद्ध ध्वनि की संख्याओं के सम्बन्ध में प्रमुख आचार्य इस बात में एक मत हैं कि वे ५१ होती हैं।
न केवलं शुद्धाएवैकपंचाशद्भेदा भवन्ति। — का० प्र०, पृ० १२१।
तदेवमेकपंचाशद्भेदास्तस्य ध्वनेमता। — सा० द०, पृ० १६४।
परन्तु तीन प्रकार के संकर तथा एक प्रकार की संसृष्टि भेदों से यह संख्या बहुत बढ़ जाती है। मम्मट ने यह संख्या १०४५५ बताई है—
वेदखाब्धिवियच्चन्द्राः। का० प्र०, पृ० १२१।
(वेद=४, ख=०, अब्धि=४, वियत्=० और चन्द्र=१)
'अंकानां वामतो गतिः' के अनुसार यह संख्या हुई १०४०४।
इसमें शुद्ध संख्या ५१ मिला देने से 'शुद्ध भेदैः सह' यह संख्या १०४५५ हो जाती है।
साहित्यदर्पण में ध्वनिसंख्या के विषय में निम्नलिखित कारिका मिलती है-—
वेदखाग्निशराः शुद्धैरिषुबाणाग्निसायकः— — सा० द०, पृ० १६४।
इसके अनुसार वेद=४, ख=०, अग्नि=३, शर=५ तथा 'अंकानां वामतो गतिः' के अनुसार यह भेद ५३०४ हुए, इनमें शुद्ध ५१ भेद मिला देने से इनकी संख्या ५३५५ हो जाती है।
अतः दास जी के अनुसार ध्वनि संख्या निश्चय ही अनन्त होती है। यह बात संस्कृत के आचार्यों के मतों से स्पष्ट हो जाती है।

गुणीभूत व्यंग्य

मम्मट ने गुणीभूत व्यंग्य का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है 'जो व्यंग्य कामिनी के कुम्भवत् स्तन के समान गूढ़ अर्थात् कुछ ढका हुआ और कुछ प्रकट रहता है वही चमत्कारजनक होता है किन्तु जो अगूढ़ अर्थात् वाच्यार्थ की भांति स्पष्ट रूप से प्रकट रहता है वह स्त्री के अनावृत्त स्तन के समान चमत्कारक नहीं होता। उसकी गणना मध्यम काव्य में होती है'।[1] मध्यम काव्य की व्याख्या करते हुए मम्मट आगे कहते हैं कि जब व्यंग्यार्थ वैसा, अर्थात् वाच्यार्थ की अपेक्षा अधिक, चमत्कारी न हो किन्तु गुणीभूत अर्थात् अप्रधान रूप से प्रतीयमान हो तो वह मध्यम काव्य होता है।[2]

साहित्यदर्पणकार गुणीभूत व्यंग्य का लक्षण देते हुए कहते हैं कि जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा उत्तम न हो अर्थात् उसके समान न हो या उससे कम हो वहाँ गुणीभूत व्यंग्य होता है। यह मध्यम काव्य होता है।[3]

ध्वनिकार का कथन है कि ध्वनि में ललना लावण्य की भांति व्यंग्यार्थ की प्रधानता होती है परन्तु जब व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ का पोषक बन जाता है तो वह गुणीभूत व्यंग्य हो जाता है।[4]

जयदेव ने कहा है कि जहां वाच्य की अपेक्षा व्यंग्यार्थ में कुछ चमत्कार न हो वहां गुणीभूत व्यंग्य होता है।[5]

दास जी ने गुणीभूत व्यंग्य वहां माना है जहां व्यंग्यार्थ में कुछ चमत्कार न हो। यह मध्यम काव्य होता है।[6] आचार्यों के मतों को देखते हुये भिखारीदास का गुणीभूत का लक्षण शुद्ध और ठीक है।

१. कामिनीकुचकलशवद् गूढं चमत्करोति, अगूढ़ं
तु स्फुटतया वाच्यायमानमिति गुणीभूतमेव। का० प्र०, पृ० १२४।
२. अतादृशि गुणीभूतव्यंग्यम् व्यंग्ये तु मध्यमम्। का० प्र०, पृ० ७।
३. अपरं तु गुणीभूतव्यंग्यं वाच्यादनुत्तमे व्यंग्ये।
अपरं काव्यम्। अनुत्तमत्वम् न्यूनतया साम्येन च संभवति। सा० द०, पृ० १६६।
४. प्रकारोऽन्यो गुणीभूतव्यंग्य: काव्यस्य दृश्यते।
यत्र व्यंग्यान्वये वाच्य चारुत्वं स्यात्प्रकर्षवत्। ध्वन्यालोक, पृ० २०५।
व्यंग्योऽर्थो ललना लावण्यप्रख्योय: प्रतिपादितस्तस्य प्राधान्ये ध्वनिरित्युक्तम्। तस्यैव तु गुणीभावेन वाच्यचारुत्वप्रकर्षे गुणीभूतव्यंग्यो नाम काव्यप्रभेद: प्रकल्प्यते। ध्वन्यालोक, पृ० २०५।
५. यद्व्यज्यमानं मनस: स्तैमित्याय स नो ध्वनि:।
अन्यथा तु गुणीभूतव्यंग्यमापतितं त्रिधा। चं० लो०, पृ० २५४–२५५।
६. व्यंगारथ में कछु चमत्कार नहिं होइ।
गुनीभूत सो व्यंग है मध्यम काव्यो सोइ। का० नि०, पृ० ६४।

'दास' जी ने गुणीभूत के ठीक वही आठ भेद (और उन्हीं नामों से) किये हैं जो संस्कृत के आचार्यों ने किये हैं।[१] दास के ये भेद हैं—

अगूढ़, अपरांग, तुल्यप्रधान, अस्फुट, काकु, वाच्यसिद्धचङ्ग, संदिग्ध और असुन्दर।[२]

'दास' ने इन सभी के लक्षण और कहीं कहीं उदाहरण भी दिये हैं।

(१) **अगूढ़**—दास जी ने अगूढ़ का लक्षण न बताते हुए केवल इतना ही कहा है कि इस व्यंग्य में अर्थान्तरसंक्रमित तथा अत्यंत तिरस्कृत, ये दो भेद प्रकट होते हैं।[३] आचार्यों ने अगूढ़ का पर्याप्त विवेचन किया है[४] परन्तु दास ने इसके केवल दो भेद माने हैं। अतः इनका विवेचन संस्कृत के आचार्यों की भांति इस क्षेत्र में व्यापक नहीं हो सका है।

(२) **अपरांग**—दास जी का कथन है कि रसवतादि तथा रसव्यंजकादि सभी मध्यम काव्य हैं और वे गुणीभूत व्यंग्य होते हैं तथा जो शब्द शक्ति उपमादि को दृढ़ करने के लिए होती है उसकी भी लोग अपरांग में गणना कर लेते हैं।[५] दास जी ने इसका अन्यत्र वर्णन किया है, इस स्थल पर नहीं।

(३) **तुल्य प्रधान**—का लक्षण जयदेव के ही आधार पर है।[६] दास जी का कथन है कि जहां पर व्यंग्यार्थ तथा वाच्यार्थ समान रूप से चमत्कारक हो वहां तुल्यप्रधान होता है[७], उदाहरणार्थ—

> **मानो सिर धरि लंकपति श्री भृगुपति की बात।**
> **तुम करिहौ तो करहिंगे वेऊ द्विज उत्पात।**[८]

१. देखिये का० प्र०, पृ० १२४। चं० लो०, पृ० २५५-२५६। तथा अष्टम् मयूख की कारिकाएं ३ से १० तक और साहित्यदर्पण, पृ० १९६।

२. गनि अगूढ़ अपरांग तुल्यप्रधानो अस्फुटहि।
काकु वाच्य सिद्धांग, संदिग्धोरु असुन्दरो।
आठौं भेद प्रकास गुनीभूत व्यंगहि गनो।
लगै सुहाई जासु वाच्यारथ की निपुनता। का० नि०, पृ० ६४।

३. अर्थान्तरसंक्रमित अरु अत्यन्त तिरस्कृत होइ।
दास अगूढ़ो व्यंग में भेद प्रकट ये दोइ। का० नि०, पृ० ६४।

४. मम्मट ने कहा है कि इसमें अर्थान्तरसंक्रमित, अत्यन्त तिरस्कृत, अर्थशक्तिमूलके भेद प्रकट होते हैं। देखिये का० प्र०, पृ० १२५, १२६, १२७।
जयदेव का भी कथन है कि अगूढ़ अर्थान्तरसंक्रमित आदि (अर्थात् अत्यन्त तिरस्कृत-वाच्य, पदगत शब्द व अर्थमूलक संलक्ष्यक्रम) में व्यक्त होता है। देखिये चं० लो०, पृ० २५६।

५. रसवतादि बरनन किये रस व्यंजक जे आदि।
ते सब मध्यम काव्य हैं गुनीभूत कहि बादि।
उपमादिक दृढ़ करन को शब्द शक्ति जो होइ।
ताहू को अपरांग गुनि मध्यम भाषत लोइ। का० नि०, पृ० ६५।

६. तुल्यप्राधान्यमिन्दुत्वमिव वाच्येन साम्यभृत्। चं० लो०, पृ० २६०।

७. चमत्कार में व्यंग अरु वाच्य बराबर होइ।
तुल्य प्रधान सुव्यंग है कहैं सकल कवि लोइ। का० नि०, पृ० ६५।

८. का० नि०, पृ० ६५।

हे लंकपति ! भृगुपति (परशुराम) की बात मान लो अन्यथा यदि तुम उत्पात करोगे तो वे भी उपद्रव करेंगे। यहां व्यंग्यार्थ यह है कि परशुराम राक्षसों का संहार करने में पूर्णतया समर्थ हैं। यही अभिप्राय वाच्यार्थ से भी प्रकट है। अतः यहाँ पर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यंग्य है।

(४) **अस्फुट**—इसका भी जयदेव की भांति[1] दास जी ने यह लक्षण दिया है कि अस्फुट व्यंग्य वहां होता है जहां बिना कहे हुए व्यंग्य जल्दी समझ में नहीं आता और यदि आ जाय तो फिर बड़ा सरल प्रतीत होता है।[2] दास ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

देखे दुरजन संग गुरुजन संकनि सों, हियो अकुलात दृग होत न तुखित हैं।
अनदेखे हू ते मुसुकानि बतरानि मृदु, बानिऐं तिहारी दुखदानि बिमुखित हैं।
दास धनि ते हैं जे वियोग ही में दुख पावैं, देखे प्रान पी के होति जियमें सुखित हैं।
हमें तो तिहारे नेह एकहू न सुख लाहु, देखेहू दुखित अनदेखेहू दुखित हैं।[3]

यहां पर यह व्यंग्य प्रतीत होता है कि आप कुछ ऐसा उपाय करिये जिससे आप अदृष्ट भी न रहें तथा हमें आपके वियोग का दुख भी न हो। इस प्रकार के व्यंग्यार्थ कठिनाई से ही बोधगम्य होते हैं।

(५) **काक्वाक्षिप्त**—जहां किसी सत्य बात को निषेध द्वारा प्रकट किया जाय वहां काक्वाक्षिप्त व्यंग्य होता है,[4] उदाहरणार्थ—

जहाँ रमै मन रैन दिन तहाँ रहौ करि मौन।
इन बातन पर प्रानपति, मान ठानती हौं न।[5]

(६) **वाच्यसिद्धयङ्ग**—जिस के लिए जो कुछ व्यंग्य किया जाय यदि वह वाच्य से ही सिद्ध हो जाय तो उसे वाच्य सिद्धयङ्ग गुणीभूत व्यंग्य कहते हैं।[6] यह लक्षण जयदेव के अनुसार है।[7] दास ने इसे स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

बरषा काल न लाल गृह गवन करो केहि हेत।
ब्याल बलाहक बिष बरषि बिरहिन को जिय लेत।[8]

१. अस्फुटं स्तनयोरत्र कोकसादृश्यवन्मतम्। चं० लो०, पृ० २५६।
२ जाको व्यंग कहे बिना बेगि न आवै चित्त।
जो आवै तो सरल ही अस्फुट सोई मित्त। का० नि०, पृ० ६६।
३. का० नि०, पृ० ६६।
४. साँच बात को काकु तें जहाँ नहीं करि जाइ।
काकुछिप्त सो व्यंग हैं जानि लेइ कबिराइ। का० नि०, पृ० ६७।
५. का० नि०, पृ० ६७।
६. जा लगि कीजत व्यंग सो बातहि में ठहरात।
कहत वाच्यसिद्धांग तेहि सकल सुमति अवदात। का० नि०, पृ० ६७।
७. तथा वाच्यस्य सिद्धयङ्गं नौरर्थोवारिधेर्यथा।
संश्रित्य तरणिं धीरास्तरन्ति व्याधिवारिधीन्। चं० लो०, पृ० २५८।
८. का० नि०, पृ० ६७।

मेघ रूपी सर्प से उत्पन्न होने वाला विष (जल, हलाहल) विरहिणी स्त्रियों को मरण अवस्था में पहुंचाता है। यहां पर विष का अर्थ हलाहल व्यंग्य है। वह व्याल रूपी वाच्यार्थ की सिद्धि का उपकारक है।

(७) **संदिग्ध प्रधान**—में जो अर्थ (वाच्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ) होते हैं उनमें से कोई भी दोषपूर्ण नहीं होता, अतः वहां संदिग्ध प्रधान गुणीभूत व्यंग्य होता है।[1] जयदेव के अनुसार संदिग्ध प्रधान गुणीभूत व्यंग्य वहां होता है जहां वाच्य और व्यंग्य की प्रधानता में सन्देह हो।[2] दास का निम्नलिखित उदाहरण जयदेव के लक्षण का अवश्य अनुमोदन करता है—

जैसे चन्द निहारि के इक टक तकत चकोर।
त्यों मन मोहन तकि रहे तिय बिंबाधर ओर।[3]

यहाँ पर मनमोहन ने 'तिय' के बिंबाधर का चुंबन करना चाहा यह व्यंग्य अभीष्ट है अथवा केवल आंख गड़ाए हुए तकना यह वाच्यार्थ, यह बात संदिग्ध होने के कारण ही यहां संदिग्धप्रधान गुणीभूत व्यंग्य है। इससे स्पष्ट है कि यद्यपि दास अपने इस लक्षण को अधिक स्पष्ट नहीं कर पाये हैं फिर भी उन्होंने उदाहरण द्वारा इसे विधिवत् समझा दिया है।

(८) **असुन्दर**—जहां बहुत जोर देने पर व्यंग्य की प्रतीति हो परन्तु वाच्यार्थ का संचार होता हो वहां असुन्दर गुणीभूत व्यंग्य होता है।[4] यहां भी व्याख्या कुछ स्पष्ट नहीं जान पड़ती क्योंकि जयदेव के अनुसार असुन्दर गुणीभूत व्यंग्य में व्यंग्यार्थ की अपेक्षा वाच्यार्थ अधिक रमणीय होता है।[5] यद्यपि 'दास' का यह लक्षण स्पष्ट नहीं हुआ है फिर भी उन्होंने उसके लिए जो उदाहरण दिया है उससे यह व्यंग्य स्पष्ट हो जाता है—

बिहँग सोर सुनि सुनि समुझि पछवारे की बाग।
जाति परी पियरी खरी प्रिया भरी अनुराग।[6]

यहां किसी नायिका ने किसी नायक से अपने घर के पिछवाड़े वाले उद्यान में मिलन स्थल निश्चित किया था। सहसा उसे वहां से पक्षियों का कोलाहल सुन पड़ा। मगर नायक के प्रेम में भरी हुई नायिका खड़ी-खड़ी पीली पड़ी जा रही है। यहां 'समुझि' शब्द से वाच्यार्थ यह प्रतीत होता है कि वह लोकलाज के भय का ध्यान आ जाने से खड़ी की खड़ी रह जाती है। यदि यहां यह व्यंग्यार्थ लिया जाय कि नायक ने किसी अन्य स्त्री के साथ किसी झाड़ी आदि में प्रवेश किया है, जिसके फलस्वरूप चिड़ियां शोर कर रही हैं तो

१. होइ अर्थ संदेह में पै नहिँ कोऊ दुष्ट।
सो संदिग्ध प्रधान है व्यंग कहै कवि पुष्ट। का० नि०, पृ० ६८।
२. संदिग्धं यदि संदेहो दैर्घ्याद्युत्पलयोरिव। चं० लो०, पृ० २५९।
३. का० नि०, पृ० ६८।
४. व्यंग कढ़े बहु तकन्ह पै वाच्य अर्थ संचार।
ताहि असुन्दर कहत कवि, करिकै हिये विचार। का० नि०, पृ ६८।
५. असुन्दरं यदि व्यङ्ग्यं स्याद्वाच्यादमनोहरम्। चं० लो०, पृ० २६०।
६. का० नि०, पृ० ६८।

इसकी अपेक्षा तो वाच्यार्थ ही अधिक चमत्कारपूर्ण है। अतः यह असुन्दर गुणीभूत व्यंग्य है।

दास जी ने गुणीभूत व्यंग्य के भेदों के विषय में यही बताया है कि इसके भेद उतने ही होते हैं जितने ध्वनि के होते हैं।[1]

अवर काव्य

'दास' जी ने अवर काव्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि जहां रचना केवल वाच्यार्थ की पोषक हो तथा उसमें तनिक भी व्यंग्य न हो वहां सरल होने के कारण अवर काव्य होता है।[2] इस सम्बन्ध में 'दास' का मत ठीक मम्मट के ही अनुसार है।[3] अवर काव्य के अन्तर्गत 'दास' ने वाच्य-चित्र तथा अर्थ-चित्र का वर्णन किया है परन्तु उन्होंने इनके लक्षण न देकर केवल उदाहरण दिये हैं। अधम काव्य के अन्तर्गत मम्मट तथा आनन्दवर्द्धन जैसे आचार्यों ने भी वाच्य-चित्र तथा अर्थ-चित्र का जो विवेचन किया है उससे 'दास' जी द्वारा प्रस्तुत विवचन की युक्तियुक्तता का आभास मिलता है।[4] दास का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है जिसमें उन्होंने अनुप्रास के सहारे वाच्यचित्र प्रस्तुत किया है।

चंद चतुराननं चखन के चकोरन को, चंचरीक चंडीपति चित्त चोप कारिये।
चहूँ चक्र चार्‌यौ जुग चरचा चिरानी चलै, दास चार्‌यौ फल देत पल भुज चारिये।
चोप दीजै चारु चरनन चित्त चाहिबे की, चेरनी को चेरो चीन्हि चूक को नेवारिये।
चक्रधर चक्कवय चिरी कै चढ़वैया चिंता, चूहरि को चित्त तें चपल चूरि डारिये।[5]

१. एहि बिधि मध्यम काव्य को जानि लेहु व्यवहार।
तितने यामें भेद हैं जितने ध्वनि विस्तार। का० नि०, पृ० ६८।

२. बचनारथ रचना जहाँ व्यंग न नेकु लखाइ।
सरल जानि तेहि काव्य को अवर कहैं कविराइ। का० नि०, पृ० ६८।

३. मम्मट ने अवर का अर्थ 'अधम' बताया है—
'अवरमधमम्' का० प्र०, पृ० ८।

४. मम्मट ने अधम काव्य का लक्षण इस प्रकार कहा है—
शब्द चित्रं वाच्य चित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम् का० प्र०, पृ० ८।
अर्थात् जिस काव्य में शब्दचित्र और वाच्यचित्र हों और व्यंग्यार्थ न हो उसे अधम काव्य कहते हैं।
ध्वनिकार का कथन है कि प्रधान और अप्रधान रूप से व्यंग्यार्थ के व्यवस्थित होने पर दो प्रकार के काव्य कहलाते हैं (ध्वनि और गुणीभूतव्यंग्य) तथा जो इनसे भिन्न हैं उन्हें चित्र कहते हैं। यह मुख्य काव्य नहीं होता।
प्रधानगुण भावाभ्यां व्यंग्यस्यैवं व्यवस्थिते।
काव्ये उभे ततोऽन्यद्यत्तच्चित्रमभिधीयते। ध्वन्यालोक, पृ० २२०।
शब्दार्थ भेद से इनके दो भेद होते हैं—शब्दचित्र और वाच्यचित्र
चित्रं शब्दार्थभेदेन द्विविधंच व्यवस्थितम्।
तत्र किंचिच्छब्दचित्रं वाच्यचित्रमतः परम्। ध्व० पृ० २२०।

५. का० नि०, पृ० ६९।

निष्कर्ष—ध्वनि वर्णन के अन्तर्गत दास जी ने काव्य के तीन गुणों—उत्तम, मध्यम तथा अधम—जो आचार्यसम्मत हैं, का क्रमशः ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य तथा अवर काव्य के अन्तर्गत विशद विवेचन किया है। जैसा हम इस विवेचन के अन्तर्गत देख चुके हैं, इस क्षेत्र में दास जी ने अधिकतर आचार्यों द्वारा प्रशस्त पथ का ही अनुसरण किया है। हाँ, कहीं कहीं उन्होंने अपनी बुद्धि द्वारा एवं साहित्य की आवश्यकतानुसार कुछ कमी अथवा वृद्धि कर ली है जो किसी भी आचार्य के लिए बहुत स्वाभाविक है। उनका ध्वनि-विवेचन युक्तियुक्त तथा संगत है। "ध्वनि सिद्धान्त को यद्यपि बहुत से आचार्यों ने लिया है पर उन सबसे अधिक सफलता भिखारीदास को ही मिली है यद्यपि इनके उदाहरण और लक्षण बहुत कुछ मम्मट के ही आधार पर है"।[1]

तुक वर्णन

"यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि तुक का वर्णन हिन्दी काव्य शास्त्र के अन्तर्गत दास जी का अनोखा प्रयत्न है। उस समय तुक हिन्दी काव्य का एक आवश्यक अंग होना चाहिए इस बात पर सब से पहले ध्यान आचार्य भिखारीदास का ही गया। अन्य अनेक विशेषताओं के साथ यह वर्णन भी उन्हें आचार्य की दृष्टि से सब से सुदृढ़ स्थान पर प्रतिष्ठित करता है। ······फिर भी कई स्थानों पर जैसे भाषा, अलंकारों के वर्गीकरण, तुकनिर्णय आदि के वर्णन में दास जी की मौलिकता है"।[2]

दास जी ने स्वयं कहा है कि जहां पर भाषा का वर्णन हो वहां तुक की विशेष रूप से आवश्यकता पड़ती है।[3] दास के अनुसार तुक तीन प्रकार का होता है—उत्तम, मध्यम तथा अधम।[4] उत्तम तुक की शोभा तीन प्रकार से होती है, अर्थात् उत्तम तुक के तीन भेद होते हैं—(१) समसरि, (२) विषमसरि तथा (३) कष्टसरि।[5] दास जी ने उत्तम तुक के तीनों भेदों के उदाहरणमात्र दिये हैं लक्षण नहीं। अतः इन उदाहरणों के आधार पर इनके भेदों के लक्षण समझे जा सकते हैं—

समसरि का उदाहरण निम्नलिखित है—

फेरि फेरि हेरि हेरि करि करि अभिलाख, लाख लाख उपमा विचारत हैं कहने।
बिधि ही मनावै जो घनेरे दृग पावै तौ, चहत याहि संतत निहारत ही रहने।
निमिष निमिष दास रीझत निहाल होत लूटे लेत मानों लाख कोटिन के लहने।
एरी बाल तेरे भाल चन्दन के लेप आगे लोपि जाते और के जराइन के गहने।[6]

१. डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० १३९।
२. डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० १४४-१४५। इस सम्बन्ध में श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र का वाङ्मय विमर्श, पृ० २९९ भी देखिये।
३. भाषा वर्णन में प्रथम, तुक चाहिये बिसेखि। का० नि०, पृ० २४४।
४. उत्तम मध्यम अधम सो तीनि भाँति को लेखि। का० नि०, पृ० २४४।
५. समसरि कहुँ कहुँ विषमसरि कहूँ कष्टसरि राज।
उत्तम तुक के होत हैं तीनि भांति के साज। का० नि०, पृ० २४४।
६. का० नि०, पृ० २४५।

यहां पर कहने, रहने, लहने और गहने तुकान्त सम हैं। ये शब्द पूर्णतया एक ही वज़न के होने के कारण समसरि उत्तम तुक के अन्तर्गत आते हैं।

विषमसरि का उदाहरण निम्नलिखित है—

कंज सकोचि गड़े रहैं कीच में मीनन बोरि दियो दहनीरनि।
दास कहै मृगहू को उदास कै बास दियो है अरण्य गँभीरनि।
आपुस में उपमा उपमेय ह्वै नैन ए निन्दत हैं कवि धीरनि।
खंजन हूँ को उड़ाइ दियो हलुके करि दीन्हों अनंग के तीरनि।[1]

इस उदाहरण में दहनीरनि, गँभीरनि, धीरनि तथा तीरनि में धीरनि तथा तीरनि तो सम तुकान्त हैं तथा उनकी तुलना में दहनीरनि और गँभीरनि एक ही वजन के न होने के कारण विषमसरि तुकान्त है। यहां विषम तुकान्त आ जाने के कारण ही विषमसरि उत्तम तुक प्रतीत होता है। दास जी ने इसका कोई लक्षण नहीं दिया और लक्षण के अभाव में इस तुक का स्पष्टीकरण भी यथातथ्य करना सम्भव नहीं प्रतीत होता।

कष्टसरि तुक का उदाहरण दास जी ने यह दिया है—

सात घरी हूँ नहीं बिलगात लजात सो बात गुने मुसुकात हैं।
तेरी सौं खात हौं लोचन रात ह्वै सारस पातहू ते सरसात हैं।
राधिका माधौ उठे परभात हैं नैन अघात हैं पेखि प्रभात हैं।
आरसगात भरे अरसात हैं लागि सो लागि गरे गिरि जात हैं।[2]

यहां पर मुसुकात, सरसात, प्रभात तथा जात तुकान्त में एक दूसरे की तुलना में सभी विषम हैं अर्थात् कोई भी दो एक वज़न के नहीं है। अतः कष्टसाध्य है। इसी कारण यहां कष्टसरि तुक है।

मध्यम तुक के दास जी ने तीन भेद दिये हैं—असंयोगमिलित, स्वरमिलित तथा तुर्मिल[3] जिनके उन्होंने लक्षण नहीं दिये हैं, केवल उदाहरण दिये हैं। अन्तिम अर्थात् तुर्मिल का तो 'दास' जी ने न लक्षण ही दिया है और न उदाहरण ही, अतः इसके विषय में जानकारी प्राप्त करने का कोई साधन नहीं।

असंयोगमिलित तुक का उदाहरण 'दास' जी ने निम्नलिखित दिया है—

मोहि भरोसो जाउँगी, स्याम किसोरहि व्याहि।
आली मो अँखियान तरु, इन्हैं न रहती चाहि।[4]

यहां पर व्याहि और चाहि असंयोगमिलित तुक के उदाहरण हैं क्योंकि यहां चाहि के स्थान पर व्याहि के वजन पर च्याहि होना चाहिए था, जो नहीं है।

१. का० नि०, पृ० २४५। २. का० नि०, पृ० २४५-२४६।
३. असंयोग मिलि स्वरमिलित तुर्मिल तीनि प्रकार।
मध्यम तुक ठहरावते जिनके बुद्धि अपार। का० नि०, पृ० २४६।
४. का० नि०, पृ० २४६।

दास जी ने स्वरमिलित का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

कछु हेरन के मिस हेरि उतै बलि आये कहा हौ महा बिसवै।
दृग वाके झरोखन लागि रहे सब देह दही बिरहागिन तै।
कहि दास बरैतो न एती भली समुझो वृषभानु लली वह है।
खरी झाँवरी होत चली तबतें जबतें तुम आये हौ भाँवरी दै।[1]

यहां पर बिसवै, तै, है तथा दै तुकान्तों में 'ऐं' स्वर होने के कारण स्वरमिलित मध्यम तुक हुआ। जहां पर तुकान्त में केवल स्वर का मेल हो वहां, दास जी के मतानुसार, स्वरमिलित तुक होता है।

स्वरमिलित के उदाहरण के पश्चात् दास जी ने 'स्वरमिलित' शीर्षक के नीचे ही एक उदाहरण और दिया है, जिसे देखने से प्रत्यक्षतया तो यह प्रतीत होता है कि यह स्वर-मिलित का ही उदाहरण है परन्तु हमारे विचार से वह स्वरमिलित का उदाहरण नहीं है। यह उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

चंद सों आनन राजत तीय को चाँदनी सों उतरीय महुज्जल।
फूल से दास झरैं बतियान में हाँसी सुधा सी लसै अति निर्मल।
बाफ ते कंचुकी बीच बनें कुच साफ ते तार मुलम्म औ श्रीफल।
ऐसी प्रभा अभिराम लखे हियरा में किये मनो धाम हिमंचल।[2]

सम्भव है यह उदाहरण भूल से स्वरमिलित उदाहरण में आगया हो। उदाहरण में महुज्जल, निर्मल, श्रीफल, हिमंचल तुकान्तों में ल मिलता है। होसकता है कि दास के अनुसार यह तुमिल का उदाहरण हो और यदि यह अनुमान ठीक है तो जहां पर केवल व्यंजन का मेल हो वहां तुमिल मध्यम तुक माना जा सकता है। परन्तु तुमिल का यह लक्षण निर्धारित करना हमें भी संदिग्ध प्रतीत हो रहा है क्योंकि स्वयं दास जी इस विषय में कुछ नहीं कहते।

अधम तुक—जहां पर अमिल-सुमिल, आदिमत्त अमिल तथा अन्तमत्त अमिल हों वहां अधम तुक होता है।[3] वस्तुतः अधम तुक के ये तीन भेद कहे जा सकते हैं।

अमिल-सुमिल, तुक दास द्वारा दिये गये उदाहरण के आधार पर, वहां होता है जहां पर सम तथा विषम दोनों ही प्रकार के तुकान्त हों। जैसे पलकें, अलकें, झलकें तथा छकैं[4], जिनमें प्रथम तीन सुमिल हैं और अन्तिम अमिल। अतः यहाँ अमिल-सुमिल तुक हुआ।

---

१. का० नि०, पृ० २४६।
२. का० नि०, पृ० २४६-२४७।
३. अमिल सुमिल मत्ता अमिल, आदि अन्त को होइ।
ताहि अधम तुक कहत हैं, सकल सयाने लोइ। का० नि०, पृ० २४७।
४. अति सोहति नींद भरी पलकैं।
अरु भीजि फुलेलन तें अलकैं।
श्रमबुन्द कपोलन में झलकैं।
अँखियाँ लखि लाल कि क्यों न छकैं। का० नि०, पृ० २४७।

दास जी द्वारा प्रस्तुत किये गये आदिमत्त अमल तथा अन्तमत्त अमल के उदाहरण स्पष्ट नहीं हैं। इसी प्रकार उनके निम्नलिखित कथन से भी विषय का स्पष्टीकरण नहीं होता।

होत वीपसा यामकी तुक अपने ही भाउ।
उत्तमादि तुक आगे ही है लाटिया बनाउ।[1]

हमारे मत से इसका अर्थ यह प्रतीत होता है कि भावानुसार तुक के दो भेद (१) वीप्सा तथा (२) यामकी और किये जा सकते हैं तथा उत्तमादि तुक में लाटिया का विधान होता है। वस्तुतः 'लाटिया' एक रीति है जिसका प्रतिपादन रुद्रट ने किया है परन्तु यहां पर उससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं लगता।

वीप्सा के अन्तर्गत दास जी ने जो उदाहरण प्रस्तुत किया है उसमें तुकान्त में धनु धनु, छनु छनु, तनु तनु, तथा बनु बनु आते हैं।[2] अतः इसका लक्ष यह हो सकता है कि जहां पर समसरि तुकान्तों का एक से अधिक बार प्रयोग हो वहां वीप्सा नामक तुक होता है। वीप्सा में शब्दों का आकार प्रकार तो एक सा प्रतीत होता है परन्तु उनका अर्थ भिन्न होता है। लाटिया में अर्थ की भिन्नता नहीं होती।

निष्कर्ष—इस में सन्देह नहीं कि सर्व प्रथम दास जी ने तुक निर्णय का विवेचन करने का प्रयास किया और इसके भेदोपभेद भी निर्धारित किये परन्तु उन्होंने इन भेदोपभेदों का न तो विशद विवेचन ही किया और न इनके लक्षण ही दिये। हां, उदाहरण अवश्य दिये हैं जिनके आधार पर इनके भेदोपभेदों का कुछ ज्ञान अवश्य किया जा सकता है, परन्तु वह ज्ञान कहां तक युक्तियुक्त एवं तर्कपूर्ण होगा यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। उदाहरण भी सभी जगह बहुत स्पष्ट नहीं हैं। कुछ भी हो, दास जी का तुक वर्णन उनका एक अनोखा प्रयत्न है और उनके आचार्यत्व की पुष्टि करता है।

छन्द निरूपण

छन्दशास्त्र हमारे साहित्य का सदा से ही एक महत्वपूर्ण विषय रहा है। वैदिक काल से लेकर आज तक इस शास्त्र का किसी न किसी रूप में अध्ययन होता रहा है। ऋक् प्रातिशाख्य तथा पिंगल छन्दःसूत्रम् में तो अनेक प्रकार के वैदिक छन्दों का उल्लेख मिलता है। छन्दशास्त्रीय वैदिककालीन परम्परा प्राकृत और अपभ्रंश काल में अक्षुण्ण बनी रही और अपभ्रंश तथा प्राकृत में छन्दशास्त्र के अनेक ग्रंथों की रचना हुई। रीतिकाल के पूर्व हिन्दी में छन्दग्रंथों के निर्माण के प्रयास प्रायः हुए ही नहीं थे। हां, १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में

१. का० नि०, पृ० २४८।

२. आजु सुरराइ पर कोप्यो तमराइ कछू, भेदन बढ़ाइ अपनाइ लै लै धनु धनु।
कीनी सब लोक में तिमिर अधिकारी तिमि, रारि को बेगारी लै भरावै नीर छनु छनु।
लोप दुतिवन्तन को देखि अति व्याकुल, तरैयाँ भाजि आईं फिरैं जोगना ह्वै तनु तनु।
इन्द्र की बधूटी सब साजन की लूटी खरी, लोहू घूँटि घूँटि वै बगरि रहीं बनु बनु।
का० नि०, पृ० २४८।

इस विषय पर अनेक रचनाएं हुईं जिनमें प्रमुख थीं चिन्तामणि त्रिपाठी और सुखदेव मिश्र की। इसी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में माखन, सोमनाथ, देव और 'दास' के छन्द सम्बन्धी ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि 'दास' का 'छन्दोर्णव पिंगल' छन्दशास्त्र के विषय पर एक वैज्ञानिक ग्रन्थ है, जिस में उन्होंने सभी सम्बन्धित विषयों जैसे लघु गुरु, मात्रा प्रस्तार, नष्ट उद्दिष्ट, विभिन्न मात्राओं के अन्तर्गत आने वाले छन्द, मात्रा मुक्तकछन्द, जाति छन्द, प्राकृत छन्द, संस्कृतयोग्य छन्द आदि का विशद विवेचन किया है। वर्णिक छन्दों के विवेचन में 'दास' जी ने छन्द विशेष का नाम प्रथम बार तो लक्षण बताते हुए दिया है और दूसरी बार उदाहरण में। हम नीचे छन्दशास्त्री के रूप में दास जी का मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे।

दास जी ने अपने छन्दोर्णव पिंगल में छन्दशास्त्रों के गणित (आलोचनात्मक) तथा मात्रिक (व्यवहारिक) इन दोनों पक्षों को लिया है और पद्य में इनका विवेचन किया है। उन्होंने मूल लयों के ज्ञान के लिए लघु गुरु के विवेचन के साथ द्विकल, त्रिकल, चौकल, पंचकल, तथा षट्कल का भी विवरण दिया है। उनके समय तक सप्तक, अष्टक, और नवम पर्वों की कल्पना नहीं की गयी थी। इनका विश्लेषण और विवेचन नवीन छन्दों और मुक्त छन्दों का विश्लेषण करने वाले छन्दशास्त्रियों ने किया है।[1]

वर्णिक गणों का लक्षण और शुभाशुभ विचार परम्परागत हैं। गणित पक्ष के विवेचन में केवल परिचयात्मक रूप से ही नष्ट, उद्दिष्ट, मेरु, मर्कटी और पताका का विवरण दिया गया है। 'दास' ने उसका गम्भीर विवेचन नहीं किया।

मात्रा छन्दों का वर्णन 'दास' जी ने मात्राओं की क्रमिक योजनानुसार बड़े वैज्ञानिक ढंग पर किया है। इसमें सबसे बड़ी विशेषता यह है कि दिये गये उदाहरण उनके निजी हैं और, जैसा कहा जा चुका है, उदाहरणों के पूर्व लक्षणों को भी दोहा या सोरठा के रूप में दे दिया गया है।

सुगीतिका, रूपमाला, गीता, शुभगीता, लीलावती आदि जिन मात्रिक छन्दों का विकास गणात्मक छन्दों से हुआ है उनके लिए दास ने मात्रा मुक्तक के रूप में एक अलग वर्ग ही मान लिया है। यह युक्ति उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा एवं छांदसिक अन्तर्दृष्टि की ही परिचायिका है।

जाति छन्दों के वर्णन में उन्होंने दोहा, उल्लाला, धुवानन्द, घत्ता आदि दो चरणों के छन्द, पद्मावती, दुर्मिल, त्रिभंगी, जलहरण, मनहरा आदि चार चरणों के छन्द तथा छप्पय, कुंडलिया, अमृतध्वनि और हुल्लास आदि मिश्र वर्ग के छन्दों को भी एक ही अध्याय में रख दिया है जो वर्गीकरण की दृष्टि से अवैज्ञानिक प्रतीत होता है। साथ ही इस वर्ग में चौपइया छन्द त्रिभंगी रूप में आया है जिसका नामकरण चौपाई से मिलने के कारण भ्रम उत्पन्न करता है क्योंकि चौपाई छन्द से चौपइया का लक्षण भिन्न है।

१. पुत्तुलाल शुक्ल : आधुनिक हिन्दीकाव्य में छन्द योजना, अध्याय ४, पर्व विश्लेषण (अप्रकाशित थीसिस)।

प्राकृत के अर्द्धसम छन्द हिन्दी में बहुत ही कम प्रयुक्त हुए हैं। अतः उन्होंने प्राकृत छन्दों का वर्णन एक अलग तरंग में ही किया है जिससे इस प्रकार के छन्दों का ऐतिहासिक महत्व सिद्ध होता है और साथ ही 'दास' के वैज्ञानिक विश्लेषण का भी परिचय मिलता है।

संस्कृत की छन्द परम्परा का समाहार करने में 'दास' जी ने हिन्दी में अधिकांशतः अप्रचलित संस्कृत वृत्तों, जैसे तिर्ना, धरा, शंखनारी, जोहा, रुक्मवती, वातोर्मी आदि, का परिचय दिया है।[1] इन छन्दों के विवेचन में छन्दशास्त्र के प्राचीन ग्रंथों का आधार लिया गया है।

वर्णिक छन्दों में सवैया प्रकरण में उन्होंने बहुत कुछ नवीनता का परिचय दिया है। उन्होंने १४ प्रकार के सवैयों का वर्णन किया है जो हमारे विचार से हिन्दी के समस्त छन्द शास्त्रियों में सवैया छन्द के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्व की देन है क्योंकि इनके पूर्व सवैयों के भेद किसी भी कवि ने स्थापित नहीं किये थे। ये छन्द मूलतः संस्कृत के ही हैं परन्तु हिन्दी की वृत्ति में इतना रम गये हैं कि अब इनका सम्बन्ध केवल हिन्दी से ही माना जाता है।

समवृत्तों के अतिरिक्त 'दास' जी ने अर्द्धसम और विषम वृत्तों का भी वर्णन किया है। संस्कृत के मुक्तक वर्णिक छन्द अनुष्टुप के साथ हिन्दी के रूप घनाक्षरी को रखना इस बात का द्योतक है कि अज्ञात रूप से दास ने घनाक्षरी छन्द की विकास परम्परा का भी अनुभव कर लिया था।

अन्तिम तरंग में वर्णिक दण्डकों का वर्णन हुआ है जिसमें कुंडलिया पद्धति पर निर्मित वर्णिक छन्द का विवरण देना इनकी अपनी नवीन उद्भावना प्रतीत होती है।

'दास' जी ने छन्दों के कुछ ऐसे नाम दिये हैं जो हिन्दी और संस्कृत की पूर्वपरम्परा में नहीं मिलते। हमारे विचार से उन्होंने उनका संग्रह जनगीतों के आधार पर किया है जैसे अहिर छन्द, जिसका उदाहरण दास जी ने इस प्रकार दिया है—

कौतुक सुनहु न वीर। न्हान धसी तिय नीर।
चीर धर्‌यौ लखि तीर। लै भजि गयो अहीर।[2]

यह छन्द ११ मात्राओं का है।

पंकावलि, दृढ़पट, बला आदि कुछ ऐसे छन्द भी हैं जो छन्दशास्त्र के प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलते।

कन्द और मोटन ऐसे वृत्त हैं जिनका प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता। दास के अनुसार कन्द छन्द का लक्षण चार यगण और लघु हैं।[3] इसी नाम से मिलता-जुलता कुन्द

---

१. छ० पिं०, पृ० ७८ से ८६ तक तथा पृ० ९१ से ११४ तक।

२. छ० पिं०, पृ० २७।

३. छ० पिं०, पृ० ८४।

छन्द वृत्त रत्नाकर में मिलता है[1] जो वर्णिक षटपदी का एक भेद है। परवर्ती काल में आचार्य 'भानु' ने इस छन्द को अपनाया है और इसका लक्षण चार यगण लघु दिया है जो इस प्रकार है—

कुन्द— यचौ लाइकै चित्त आनन्द कन्दाहिं ।[2]

दण्डक कुण्डलिया का भेद संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिलता और न हिन्दी के किसी कवि ने ही दिया है। अतः यह इनकी मौलिक उद्भावना मालूम पड़ती है।

मुक्तक छन्दों में वर्ण झूलना छन्द इनकी अपनी उद्भावना जान पड़ती है, क्योंकि इसका उदाहरण दूसरे ग्रन्थों में नहीं मिलता।

दास जी ने सेनिक वृत्त का लक्षण जगण, रगण, गुरु लघु दिया है[3] परन्तु छन्दोमंजरी में श्येनी का उदाहरण रगण, जगण, रगण, लघु गुरु दिया है—

श्येन्युदीरिता रजौ रलौ गुरुः ।[4]

अतः स्पष्ट है कि सैनिक और श्येनी में नाम साम्य होते हुए भी लक्षणों में अन्तर है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कहीं दास जी ने चली आती हुई परम्परा का अनुकरण किया है, कहीं वे उससे भिन्न होगये हैं और कहीं उन्होंने नवीन उद्भावनाओं की स्थापना की है। छन्दशास्त्री के रूप में दास के विषय में स्वर्गीय डा० जानकी नाथ सिंह ने लिखा है कि—

'दास ने विभिन्न अध्यायों (तरंगों) में प्रत्यय के वर्णिक और मात्रिक रूपों का संक्षेप में विवेचन किया। यह विवेचन किसी भी पूर्णकृति के लिए अनिवार्य है और दास भी इसे छोड़ न सके। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वे इन बातों को बहुत अधिक महत्व नहीं देते हैं।

व्यवहारिक पक्ष के विवेचन में तो उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति ही लगा दी और यह विवेचन इतना सुन्दर बन पड़ा है कि इस विषय में उनके आचार्यत्व की प्रतिभा तथा प्रकांड पांडित्य की सराहना किये बिना नहीं रहा जा सकता। उन्होंने पद्य द्वारा ही विषय का विवेचन करने की पद्धति अपनायी जैसी उनके समय तक परम्परा थी। प्रथम काल में प्रत्यय का जो अध्ययन प्रचलित था वह द्वितीय काल के पूर्वांश में उपेक्षित रहा परन्तु इस अध्ययन के पुनस्संस्थापन का श्रेय 'दास' और उनके काल को है। ऐसा प्रतीत होता है कि

१. देखिये वृत्त रत्नाकर, पृ० १५४।
२. जगन्नाथ प्रसाद भानु : छन्द प्रभाकर, पृ० १६०।
३. छ० पिं०, पृ० ८२।
४. छन्दोमंजरी, पृ० ४३।

इसके अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव दास के काल में होने लगा था।[1]

छन्दोर्णव पिंगल के सिंहावलोकन से स्पष्टतः यह निष्कर्ष निकलता है कि दास जी की छन्दस् साधनीमूलक अन्तर्भेदिनी दृष्टि और विशाल चिन्तनधारा समस्त भारतीय पूर्व-परम्परा का ही समाहार नहीं करती अपितु सामयिक युग चेतना से निर्मित नवीन छन्दों के विश्लेषण, वर्गीकरण एवं भविष्यद्धारा का निर्देश करने की भी क्षमता रखती है। इससे उनके कवित्व और आचार्यत्व की ही सूचना नहीं मिलती परन्तु मौलिक चिन्तक, अन्वेषक और उद्भावक के रूप में भी उनका व्यक्तित्व सामने आता है।

काव्य दोष

आचार्य जयदेव ने सुकाव्य की रचना के लिए कुछ मान्यताएं निर्दिष्ट की हैं। उनके अनुसार दोषों से शून्य, लक्षणों से युक्त, रीतियों से विभूषित, अलंकारों से चमत्कृत तथा शब्दवृत्तियों से सम्बद्ध रचना को काव्य कहते हैं।[2] अतः निर्दोष होना काव्य का एक अनिवार्य लक्षण माना गया है और इसी कारण आचार्यों ने काव्य में कौन कौन दोष होते हैं तथा उन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है आदि बातों का मनन एवं अध्ययन किया और इस विषय में अपने सिद्धान्त निश्चित किये। 'दास' जी ने भी काव्य की निर्दोषिता पर बल दिया और कहा है—

... न दोषन्ह पंथ कहूं गति जाकी।
उत्तम ताको कवित्त बनै करै कीरति भारती यों अतिताकी।[3]

1. Das briefly explained the Varnik and Matrik side of Pratyaya in different chapters called Tarangs. Unavoidable in a complete work, he could not leave them aside. It may be inferred that he does not attach much importance to such things.

To the practical side he has diverted all his energies and has so nicely treated it that his scholastic insight and deep knowledge cannot but be appreciated by scholars of this Science. The style adopted here is the same style of versifying the subject matter as has been prevalent upto his days. The credit of reviving the study of Pratyaya which was prevalent in the first period but neglected during the earlier part of the second part of the second period goes to Dass and his time. It appears that the importance and necessity of this kind of study was realised in the time of Dass.

Dr. Janki Nath Singh 'Manoj', Thesis for D. Phil. (unpublished), pp. 178-179.

२. निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक्काव्यनामभाक्। चं० लो०, पृ० ६।

३. का० नि०, पृ० ७।

'दास' ने चार प्रकार के काव्य दोष बताये हैं—शब्द दोष, वाक्य दोष, अर्थ दोष और रस दोष।[1] उनका कथन है कि सज्जन तथा सुयोग्य कवि इन दोषों का परित्याग करते हैं। दोषों के वर्णन में साहित्यदर्पणकार ने पदांश दोष की वृद्धि करके इनकी संख्या पांच कही है।[2] जयदेव ने इनकी संख्या ७ बतायी है।[3] परन्तु व्यापक रूप से देखने पर ये ५ या ७ दोष 'दास' द्वारा बताये गये चारों दोषों में ही आ जाते हैं क्योंकि पदांश, वाक्यांश तथा प्रबन्ध का समावेश एक प्रकार से पद तथा वाक्य में हो जाता है।

(१) शब्द दोष

काव्यप्रकाशकार के ही अनुसार[4] 'दास' जी ने भी शब्ददोषों के १६ प्रकार कहे हैं[5] अर्थात् (१) श्रुतिकटु, (२) भाषाहीन, (३) अप्रयुक्त, (४) असमर्थ, (५) निहितार्थ, (६) अनुचितार्थ, (७) निरर्थक, (८) अवाचक, (९) अश्लील, (१०) ग्राम्य, (११) संदिग्ध, (१२) अप्रतीत, (१३) नेयार्थ, (१४) क्लिष्ट, (१५) अविमृष्ट विधेय तथा (१६) विरोधमान। 'दास' ने इनके लक्षण और उदाहरण दिये हैं जो अधिकतर आचार्य-सम्मत हैं। उनका कथन है कि कहीं पर ये दोष समास शब्दों तथा कहीं पर एक दो अक्षरों के कारण भी हो जाते हैं। हम इनके तथा संस्कृत के अन्य आचार्यों की तुलना द्वारा इस विषय में दास जी की सफलता असफलता का मूल्यांकन करने का प्रयास करेंगे—

---

१. दोष शब्द हूँ वाक्य हूँ, अर्थ रसहु में होइ।
तेहि तजि कबिताई करें, सज्जन सुमती जोइ। का० नि०, पृ० २४९।

२. साहित्यदर्पणकार ने रस के अपकर्ष अर्थात् रस की हीनता अथवा विच्छेद के कारणों को दोष बताया है।
रसापकर्ष दोषाम्। सा० द०, भाग २, पृ० १।
ये दोष पद, पदांश, वाक्य, अर्थ और रस में रहने के कारण ५ प्रकार के होते हैं।
ते पुनः पंचधामताः।
पद तदंशे वाक्येऽर्थे सम्भवन्ति रसेऽपि यत्। सा० द० (भाग २), पृ० २।

३. चंद्रालोक के टीकाकार ने पद, पदांश, वाक्य, वाक्यांश, अर्थ, प्रबन्ध और रस में दोषों के रहने के कारण दोष ७ प्रकार के बताये हैं।
देखिये चन्द्रालोक: पृ० २३, टीकाकार साहित्यचार्य श्री नन्दकिशोर शर्मा।

४. मम्मट ने दोषों के १६ प्रकार बताये हैं—
दुष्टं पदं श्रुतिकटु च्युतसंस्कृत्यप्रयुक्तमसमर्थम्।
निहितार्थमनुचितार्थं निरर्थकमवाचकं त्रिधाश्लीलम्।
सन्दिग्धमप्रतीतं ग्राम्यं नेयार्थमथ भवेत्क्लिष्टम।
अविमृष्ट विधेयांशं विरुद्धमतिकृत्समासगतमेव। का० प्र०, पृ० १६८।

५. श्रुतिकटु भाषाहीन अप्रयुक्तो असमर्थहि।
तजि निहितारथ अनुचितार्थ पुनि तजो निरर्थहि।
अवाचको अश्लील ग्राम्य संदिग्ध म कीजै।
अप्रतीत नेयार्थ क्लिष्ट को नाम न लीजै।
अविमृष्ट विधेय विरुद्धमति छंदस दुष्ट ये सब्द कहि।
कहुँ सब्द समासहि के मिले कहूँ एक द्वै अक्षरहि। का० नि, पृ० २४८।

१. श्रुतिकटु—वह दोष है जो कानों को कटु प्रतीत हो।[1] 'दास' का यह लक्षण मम्मट के अनुसार है।[2] उदाहरणार्थ—

त्रिया अलक चच्छुश्रवा डसैं परत हीं दृष्टि।[3]

इस उदाहरण में 'चच्छुश्रवा' में चकार, छकार और रकार के मिल जाने से कर्णकटुता का अनुभव होता है। दृष्टि शब्द भी कर्णकटु है। अतः यहां पर श्रुतिदोष स्पष्ट है।

२. भाषाहीन—मम्मट ने 'च्युत संस्कृति' के नाम से जिस दोष का उल्लेख किया है उसी को 'दास' ने भाषाहीन दोष कहा है। मम्मट ने च्युतसंस्कृति दोष वहां माना है जहां वाक्य रचना व्याकरण के नियमों के अनुकूल न हो।[4] दास के अनुसार भाषाहीन दोष वहां होता है जहां बिना किसी नियम के शब्दों को बदल बदल कर रख दिया जाय अथवा उन्हें घटा बढ़ा दिया जाय।[5] स्पष्ट है कि दास की परिभाषा मम्मट के बहुत निकट है। उन्होंने इसे समझाते हुए निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

वा दिन बैसन्दर चहूँ बन में लगी अचान।
जीवत क्यों ब्रज बाँचतो जौ ना पीवत कान।[6]

यहां वैस्वानर को बदल कर "वैसन्दर" कहना, चहूं दिशि को घटा कर 'चहूं' कहना तथा पीना शब्द जल के लिए न कह कर कान के लिए कहना रीति विरुद्ध होने के कारण भाषाहीन दोष माना जाता है।

दास ने इस दोष का नाम-परिवर्तन करके उसे संस्कृत के नहीं भाषा के अनुरूप कर कर दिया है। यह नाम-परिवर्तन इस बात का परिचायक है कि दास जी क्लिष्ट शब्दों को बदल कर उन्हें भाषा के प्रवाह के अनुकूल बना लेने में हिचकते न थे। यह गुण किसी भी स्वतंत्र प्रकृति के आचार्य के लिए स्वाभाविक है।

३. अप्रयुक्त दोष—दास के अनुसार वहां होता है जहां यद्यपि शब्द तो 'सत्य' (अथवा ठीक प्रयुक्त हुआ) हो परन्तु कवियों ने उसका उल्लेख न किया हो।[7] काव्यप्रकाश-कार की इस दोष की व्याख्या यह है कि अप्रयुक्त अर्थात् व्याकरण आदि के नियमों से शुद्ध होने पर भी कवियों ने जिन शब्दों का प्रयोग न किया हो ऐसे पदों का प्रयोग दोषयुक्त माना जाता है।[8]

१. कानन को जो कटु लगै, दास सो श्रुतिकटु सृष्टि। का० नि० पृ० २४६।
२. श्रुतिकटु परुषवर्णरूपं दुष्टं। का० प्र०, पृ० १६६
३. का० नि०, पृ० २४६।
४. च्युतसंस्कृति व्याकरणलक्षणहीनं। का० प्र०, पृ० १६६।
५. बदलि गये घटि बढ़ि भये मत्तबरन बिन रीति।
भाषा हीनन में गनै जिन्हें काव्य पर प्रीति। का० नि०, पृ० २५०।
६. का० नि०, पृ० २५०।
७. सब्द सत्य नहिँ कवि कह्यो अप्रयुक्त सो ठाउ। का० नि०, पृ० २५०।
८. अप्रयुक्तं तथा आम्नोतमपि कविभिर्नादृतम्। का० प्र०, पृ० १७०।

४. **असमर्थ**—असमर्थ दोष वहाँ होता है जहाँ यद्यपि शब्द का अर्थ तो होता है परन्तु उस अर्थ के बोध कराने की शक्ति उस शब्द में नहीं होती।[१] मम्मट का मत है कि यह दोष वहां होता है जहां जिस अर्थ-बोध के लिए किसी शब्द का पाठ तो कोशादि में दिया गया हो परन्तु उस शब्द में उस अर्थ के बोध की शक्ति न हो।[२] अतः दास का लक्षण मम्मट के लक्षण के अनुसार ही है।

५. **निहितार्थ**—दास के अनुसार यह दोष वहां होता है जहां किसी शब्द के दो अर्थ होते हों—एक प्रसिद्ध तथा दूसरा अप्रसिद्ध—और कवि ने उनका प्रयोग अप्रसिद्ध अर्थ में किया हो परन्तु उससे प्रसिद्ध अर्थ ही का बोध होता हो।[३] मम्मट ने निहितार्थ का बिल्कुल यही लक्षण दिया है।[४] अतः दास का लक्षण मम्मट के अनुसार है। इस लक्षण को स्पष्ट करते हुए दास ने निम्नलिखित उदाहरण दिया है:

रे रे सठ नीरद भयो, चपला बिधु चित लाउ।
अब मकरध्वज तरन को, नाहिँ न और उपाउ।[५]

इसका अर्थ यह है कि अरे शठ अब तो तेरे दांत टूट चुके हैं, अब तो लक्ष्मी तथा विष्णु की सेवा में मन लगा क्योंकि संसार रूपी सागर को पार करने के लिए इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। परन्तु यहां नीरद, चपला, बिधु तथा मकरध्वज के प्रसिद्ध अर्थों अर्थात् बादल, बिजली, चन्द्रमा तथा कामदेव का ही बोध होता है। अतः यहां निहितार्थ दोष है।

६. **अनुचितार्थ**—दोष वहां होता है जहां उचित शब्द का प्रयोग न किया गया हो।[६] जयदेव का मत है कि जहां पद अनुचित अर्थ का बोध कराये वहां अनुचितार्थ दोष होता है।[७] अतः दास का लक्षण जयदेव के लक्षण के अनुरूप है। दास ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

जेहि जावक अँखियाँ रँगे दई नखक्षत गात।
रे पिय सठ क्यों हठ करै वाही पै किन जात।[८]

यहां पर 'रँगे' के स्थान पर 'रँगी' तथ 'दई' के स्थान पर 'दयो' न होने और साथ ही पिय के साथ उसी के लिए 'सठ' का प्रयोग करने के कारण अनुचितार्थ दोष है।

---

१. शब्द धर्‌यो जा अर्थ को, तापर तासु न सक्ति।
चित दौरे पर अर्थ को, सो असमर्थ अभक्ति। का० नि०, पृ० २५०।
२. असमर्थं यत्तदर्थं पठ्यते न च तत्रास्य शक्तिः। का० प्र०, पृ० १७१।
३. अर्थ शब्द में राखिये अप्रसिद्ध हो चाहि।
जानो जाइ प्रसिद्ध ही निहितारथ सो आहि। का० नि०, पृ० २५१।
४. निहितार्थं यदुभयार्थमप्रसिद्धेऽर्थे प्रयुक्तं। का० प्र०, पृ० १७१।
५. का० नि०, पृ० २५१।
६. अनुचितार्थ कहिये जहाँ उचित न सब्द अकाल। का० नि०, पृ० २५१।
७. व्यनक्त्यनुचितार्थं यत् पदमाहुस्तदेव तत्। चं० लो०, पृ० २७।
८. का० नि०, पृ० २५१।

७. निरर्थक--दोष वहां होता है जहां किसी छन्द को पूरा करने के लिए कुछ शब्दों का प्रयोग किया जाय परन्तु वस्तुतः उनका अर्थ कुछ भी न हो।[१] मम्मट कहते हैं कि निरर्थक उन पदों को कहते हैं जो श्लोक के चरण पूरा करने भर के लिए प्रयुक्त होते हैं। उनका कुछ और प्रयोजन नहीं होता।[२] दास का यह लक्षण मम्मट के अनुसार है। उदाहरणार्थ--

अरी हनत दृग तीर सों तोहि पई रन ईर।[३]

यहां पर 'ईर' निरर्थक होने के कारण निरर्थक दोष है।

८. अवाचक--दोषपूर्ण शब्द वह होता है जिसका रीति प्रतिकूल कुछ विशेष अर्थ मान लिया जाय परन्तु उससे उस अर्थ का बोध न होता हो। इन अर्थों को कवि भी नहीं मानते।[४] मम्मट ने अवाचक दोष का लक्षण न देते हुए केवल उदाहरण दिया है।[५] जयदेव के अनुसार अवाचक दोष उपसर्ग के होने न होने पर निर्भर करता है। उनका मत है कि जिस उपसर्ग के साहचर्य से जिस धातु का जो अर्थ हो उस उपसर्ग के बिना ही उसी अर्थ में उसी धातु के प्रयोग को अवाचक दोष कहा जाता है। इसे जयदेव ने उदाहरण द्वारा समझाया ।[६] दास का लक्षण मम्मट के उदाहरण के आधार पर ही बनाया गया प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ--

प्रगट भयो लखि विषम हय, विष्णु धाम सानन्दि।
सहसपान निद्रा तज्यो खुलो पीत मुखवन्दि।[७]

यहां पर कमल के लिए शुद्ध शब्द सहस्रपत्र न कहकर सहसपान कहना अथवा (प्रथम पंक्ति में) शरद के लिए 'सप्तहय' न कहकर 'विषमहय' कहना अवाचक दोष है। इसके साथ ही यहां पर पीतमुख भ्रमर तथा विष्णुधाम आकाश के लिए प्रयुक्त हुए हैं। इनका प्रयोग किसी ने नहीं किया, अतः ये अवाचक दोष हैं। आनन्दित होने को सानन्दि कहना भी अवाचक दोष है।

१. छन्दहि पूरन को परै, शब्द निरर्थक धीर। का० नि०, पृ० २५२।
२. निरर्थकं पादपूरणमात्र प्रयोजनं चादिपदम्। का० प्र०, पृ० १७२।
३. का० नि०, पृ० २५२।
४. वहै अवाचक रीति तजि लेइ नाम ठहराइ।
कह्यो न काहू जानि यह नहिं मानें कविराइ। का० नि०, पृ० २५२।
५. अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना न जातहार्देन न विद्विषादरः का० प्र०, पृ० १७३।
अत्र जन्तुपदमदातर्यर्थे विवक्षितन्तत्र च नाभिधायकम्।
अर्थात् उदाहरण में आये हुए जन्तु (जिसका अर्थ जीव होता है) का 'अदाता' (दान न देने वाला) के अर्थ में प्रयोग हुआ है परन्तु 'जन्तु' से अदाता का बोध नहीं होता इसी कारण यहां अवाचक दोष है।
६. अर्थे विदधदित्यादौ दधदाद्यमवाचकम्। चं० लो०, पृ० २८।
अर्थात् 'वि' उपसर्ग सहित 'धा' धातु का अर्थ होता है 'करना'। यदि 'वि' उपसर्ग रहित 'धा' धातु का 'करना' अर्थ में प्रयोग हो तो अवाचक दोष होता है।
७. का० नि०, पृ० २५२।

९. अश्लील—दोष वहां होता है जहां घृणा, अमंगल तथा लज्जा के भावों का प्रकाशन हो।[१] मम्मट का कथन है कि लज्जा, घृणा और अमंगल के भावों के प्रकाशक होने से तीन प्रकार के अश्लील पद होते हैं।[२] अतः दास का लक्षण मम्मट से बिल्कुल मिलता जुलता है। मम्मट ने घृणा, अमंगल तथा लज्जा के लिए अलग अलग उदाहरण दिये हैं[३] परन्तु दास ने एक ही उदाहरण देकर उसमें तीनों का समावेश कर दिया है।

जीमूतन दिन पितृगृह, तियपग यह गुदरान।[४]

यहां 'मूत' शब्द घृणास्पद, पितृगृह (पितृलोक) अशुभ तथा गुद तथा रान लज्जास्पद हैं। तीनों ही अश्लील दोष हैं। निश्चय ही यह उदाहरण दास की आचार्य प्रतिभा का द्योतक है।

१०. ग्राम्य—दोष वहां होता है जहां केवल लोक प्रसिद्ध शब्दों का ही काव्य में प्रयोग हो।[५] ठीक यही बात मम्मट ने भी कही है।[६] अतः यह लक्षण मम्मट के अनुसार है। उदाहरणार्थ—

क्या झल्लै टुक गल्ल सुनि भल्लर भल्लर भाइ।[७]

यहां झल्लै, टुक, गल्ल, भल्लर भल्लर शब्द केवल लोक ही में प्रसिद्ध हैं काव्य में नहीं। अतः यहां ग्राम्य दोष है।

११. संदिग्ध—जिस शब्द के अर्थ के विषय में संदेह बना रहे वहां संदिग्ध दोष होता है।[८] जयदेव ने कहा है कि जहां एक पद से दो अर्थों का बोध हो वहां संदिग्ध दोष होता है।[९] इस दृष्टि से दास का लक्षण जयदेव के ही समकक्ष है। उदाहरणार्थ—

वंद्या तेरी लक्ष्मी करै बन्दना तासु।[१०]

यहां वन्द्या के अर्थ हो सकते हैं बलात्कार द्वारा अपहृत महिला तथा वन्दनीया। यहां किस अर्थ से प्रयोजन है यह सन्दिग्ध होने के कारण सन्दिग्ध दोष है।

१२. अप्रतीत—जो शब्द एक ही स्थान पर सुना गया हो वह अप्रतीत दोष युक्त होता है।[११] दास जी की यह व्याख्या मम्मट से बहुत कुछ मिलती है। क्योंकि काव्यप्रकाश-कार का कथन है कि अप्रतीत पद वह है जो केवल एक ही शास्त्र में प्रसिद्ध हो।[१२] उदाहरणार्थ—

१. पदश्लील कहिये जहाँ घृना असुभ लज्जान। का० नि०, पृ० २५२।
२. त्रिधेति व्रीडाजुगुप्साऽमङ्गल व्यञ्जकत्वात्। का० प्र०, पृ० १७४।
३. देखिये का० प्र०, पृ० १७५–१७६।
४. का० नि०, पृ० २५२।
५. केवल लोकप्रसिद्ध को, ग्राम्य कहैं कविराय। का० नि०, पृ० २५३।
६. ग्राम्यं यत्केवले लोके स्थितम्। का० प्र०, पृ० १७७।
७. का० नि०, पृ०२५३।
८. नाम धरचो संदिग्ध पद, शब्द संदेहिल जासु। का० नि०, पृ० २५३।
९. स्यौद्द्वयर्थमिह संदिग्धं। चं० लो०, पृ० ३१।
१०. का० नि०, पृ० २५३।
११. एकहि ठौर जु कहि सुन्यो, अप्रतीत सो गाउ। का० नि०, पृ० २५३।
१२. अप्रतीतं यत्केवले शास्त्रे प्रसिद्धं। का० प्र०, पृ० १७६।

रे शठ कारे चोर के चरनन सों चित लाउ ।[1]

यहां पर 'कारे चोर' का प्रयोग श्री कृष्ण के लिए हुआ है वह भी केवल कालिदास के काव्य में और शृंगार रस के प्रसंग में।

१३. **नेयार्थ**—दोष वहां होता है जहां किसी न किसी प्रकार लक्ष्यार्थ की प्रतीति हो जाय।[2] यह लक्षण स्पष्ट नहीं जान पड़ता। इस सम्बन्ध में आचार्य मम्मट ने कुमारिल भट्ट के मत को उद्धृत करते हुए कहा है कि 'शक्ति विशिष्ट सामर्थ्य से प्रसिद्ध अथवा शब्द स्वभाव ही से सिद्ध अनादिकाल वाली कुछ लक्षणाएं होती हैं और कुछ प्रयोजन के अनुसार बना ली जाती हैं। इन रूढ़ि और प्रयोजनवती लक्षणाओं को छोड़कर शक्तिहीन होने से और लक्षणाएं स्वीकार नहीं की जाती हैं।' इस प्रकार जो रूढ़ि और प्रयोजनवती लक्षणा से भिन्न लाक्षणिक शब्द हैं उन्हीं की संज्ञा नेयार्थ है।[3] 'दास' जी ने इसका उदाहरण अवश्य ठीक दिया है।

चन्द्र चारि कौड़ी लहै, तव आनन छबि देखि ।[4]

अर्थात् तुम्हारे मुख के सौंदर्य को देखकर चन्द्रमा चार कौड़ी का हो जाता है। यहां अभिप्राय यह है कि चन्द्रमा तेरे मुख की समता नहीं कर सकता।

नेयार्थ दोष के अन्तर्गत दास ने निम्नलिखित उदाहरण में समास दोष का भी उल्लेख किया है।

है दुपंचस्यंदन सपथ सै हजार मन तोहि ।
बल आपनो देखाउ जो मुनि करि जानै मोहि ।[5]

यह लक्ष्मण परशुराम संवाद का एक प्रसंग है। यहाँ दुपंचस्यंदन दशरथ का तथा सै हजार मन लक्ष्मण का नाम है जिसमें से प्रथम तो सम्पूर्ण तथा दूसरा शब्द विपर्यय के कारण समास दोष है।

१४. **क्लिष्ट दोष**—वहां होता है जहां सीढ़ी की भाँति अनेक सोपान पार करके अर्थ की प्रतीति होती हो।[6] मम्मट के अनुसार जहां अर्थ-प्रतीति में बाधा होने के कारण कष्ट हो तथा जहाँ अर्थ विलम्ब से ध्यान में चढ़े वहाँ क्लिष्ट दोष होता है।[7] अतः दास का लक्षण अपेक्षाकृत शिथिल प्रतीत होता है।

१५. **अविमृष्टविधेय**—दोष वहां होता है जहां पद किसी विधान से अपनी प्रधानता का परित्याग कर दे।[8] मम्मट ने अविमृष्ट विधेयांश उस पद को कहा है जिसमें

---

१. का० नि०, पृ० २५३।
२. नेअरथ लक्ष्यार्थ जहँ, ज्यों त्यों लीजै लखि। का० नि०, पृ० २५३।
३. नेयार्थं निरूढा लक्षणाः काश्चित्सामर्थ्यादभिधानवत्। क्रियन्ते सांप्रतं काश्चित्काश्चिन्नैव त्वशक्तितः। इति यन्निषिद्धं लाक्षणिकम्। का० प्र० टी०, पृ० १७७।
४. का० नि०, पृ० २५३।   ५. का० नि०, पृ० २५३।
६. सीढ़ी सीढ़ी अर्थ गति, क्लिष्ट कहावै ऐन। का० नि०, पृ० २५४।
७. क्लिष्टं यतोऽर्थप्रतिपत्तिर्व्यवहिता। का० प्र०, पृ० १७८।
८. है अविमृष्ट विधेय पद छोड़ै प्रगट विधान। का० नि०, पृ० २५४।

विधेय रूप अंश प्रधानतया अनुक्त ही रहकर छूट जाय (अर्थात् जहां पर विधेय समास के अन्तर्गत होकर छिप जाय या अप्रधान बन जाय)।[1] जयदेव के अनुसार अविमृष्ट विधेयांश दोष वहां होता है जहां दूसरे पद के साथ समास करने से प्रधान पद की प्रतीति स्फुट न हो।[2] मम्मट तथा जयदेव के लक्षणों को देखते हुए दास का लक्षण पूर्ण नहीं प्रतीत होता।

१६. विरुद्धमति—दोष वहां होता है जहां अर्थ की प्रतीति वर्णित विषय के विरुद्ध होती हो।[3] इस सम्बन्ध में जयदेव का कथन है कि जहां अपराधीन जैसे शब्दों से 'जो पराधीन न हो' इस अर्थ के साथ ही साथ अपर अधीन 'दूसरों के अधीन' जैसे अर्थों का बोध हो अर्थात् जो वर्णित विषय के विरुद्ध अर्थ की प्रतीति कराएं वे विरुद्धमति दोष के अन्तर्गत आते हैं।[4] अतः दास का लक्षण मम्मट के मतानुसार है।

भाल अम्बिकारमन के बाल सुधाकर देख।[5]

यहां अम्बिकारमण के अर्थ महादेव के अतिरिक्त एक विरुद्ध अर्थ 'माता के साथ रमण करने वाला व्यक्ति' भी भासित होता है।

(२) वाक्य दोष

वाक्यदोषों के अन्तर्गत 'दास' जी ने निम्नलिखित १७ दोषों का उल्लेख किया है[6]—

(१) प्रतिकूलाक्षर, (२) हतवृत्त, (३) विसन्धि, (४) न्यूनपद, (५) अधिकपद, (६) पतत्प्रकर्ष, (७) पुनरुक्ति, (८) समाप्तपुनराप्त, (९) चरणान्तर्गत पद, (१०) अभवन्मतयोग, (११) अकथितकथनीय, (१२) अस्थानपद, (१३) संकीर्ण पद, (१४) गर्भित, (१५) अमतपरार्थ, (१६) प्रकरणभंग, (१७) प्रसिद्धहत।

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि स्वयं संस्कृत के आचार्य भी इन दोषों की संख्या के सम्बन्ध में एकमत नहीं रहे हैं तथा उनके द्वारा निर्दिष्ट कतिपय नाम भी एक से नहीं हैं।[7] 'दास' जी ने कुछ दोषों के नाम संस्कृत के आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट नामों से भिन्न रख

१. अविमृष्टः प्राधान्येनानिर्दिष्टो विधेयांशो यत्र तत्। — का० प्र०, पृ० १७९।
२. अविमृष्ट विधेयांशः समासपिहिते विधौ। — चं० लो०, पृ० ३५।
३. सो विरुद्धमति कृत सुने लगै विरुद्ध विसेख। — का० नि०, पृ० २५५।
४. अपराधीन इत्यादि विरुद्धमतिकृन्मतम्। — चं० लो०, पृ० ३६।
५. का० नि०, पृ० २५५।
६. प्रतिकूलाक्षर जानि मानि हतवृत्तानि सन्ध्यनि।
न्यूनाधिक पद कथित शब्द पुनि पतित प्रकर्षनि।
तजि समास पुनराप्त चरन अन्तर्गत पद गहि।
पुनि अभवन्मत योग जानि अकथित कथनीयहि।
पदस्थानस्थ संकीरनो गर्भित अमित परारथहि।
पुनि प्रकरनभंग प्रसिद्ध हत, छन्द सवाक्य दूषण तजहि। का० नि०, पृ० २५५, २५६।
७. काव्यप्रकाश में २० वाक्य दोषों का विवरण है। देखिये काव्यप्रकाश, पृ० २०३। चंद्रालोक में १८ दोषों का उल्लेख है। देखिये चंद्रालोक पृ० ३७ से ५० तक। साहित्यदर्पण में २३ दोषों का उल्लेख है। देखिये सा० द०, पृ० १६ (भाग २)।

लिये हैं जैसे चरणान्तर्गतपद और अकथित कथनीय। स्वयं संस्कृत के आचार्यों ने भी अनेक स्वनिर्मित नामों से काम चलाया है। चंद्रालोक के विकृत, अर्धान्तरपदापेक्षि तथा अस्थानस्थ समास; साहित्य दर्पण के संधिविश्लेष, संध्यश्लील, संधिकष्ट, वाच्यस्थानभिधान, अस्थानस्थ-पदता तथा अस्थानस्थसमासता; और काव्य प्रकाश के अनभिहितवाच्य तथा अपदस्थपदसमास इन ग्रन्थों के आचार्यों द्वारा स्वनिर्मित नाम हैं।[१]

हम इन दोषों पर एक विहंगम दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे।

(१) **प्रतिकूलाक्षर**--जहां पद के योग्य अक्षरों का प्रयोग न हुआ हो वहां प्रतिकूलाक्षर दोष होता है।[२] मम्मट का कथन है कि किसी रस के वर्णन करने में जो जो वर्ण गुणप्रद तथा अपेक्षित होते हैं उनसे भिन्न वर्ण जो किसी रस के बाधक होते हैं प्रतिकूलवर्ण कहे जाते हैं।[३] मम्मट के लक्षण की तुलना में दास का लक्षण अधिक स्पष्ट नहीं हो पाया है। हां, इस लक्षण को स्पष्ट करने के लिए 'दास' जी ने जो उदाहरण दिया है वह बिल्कुल शुद्ध हुआ है :

पिय तिय लुट्टत हैं सुरस ठट्टि लपट्टि लपट्टि।[४]

इस उदाहरण में लुट्टत, ठट्टि तथा लपट्टि शब्द श्रृंगार रस के लिए, जिसका यहाँ प्रसंग है, प्रतिकूलाक्षर दोष हैं।

(२) **हतवृत**--जहां छंदभंग की प्रतीति हो अथवा जहां रीत्यनुसार 'सुमिल' (यथावत्) पदों का अभाव हो वहां हतवृत्त दोष होता है।[५] चंद्रालोककार ने यह दोष वहाँ बताया हैं जहां सुनने मात्र से ही छन्द का दोष प्रतीत हो जाय।[६] काव्यप्रकाशकार ने इस व्याख्या को और भी व्यापक बनाते हुए कहा है कि जहाँ छन्दशास्त्र के नियमों का अनुसरण करने पर भी वाक्य सुनने में भद्दा लगे, जहां अप्राप्त गुरु भाव लघु हो अथवा जहां रस के अनुकूल वृत्त न हो, वहां हतवृत्त दोष होता है।[७] इन आचार्यों के हतवृत्त के लक्षण को देखते हुए दास का लक्षण अधिक स्पष्ट नहीं हो पाया है।

(३) **विसन्धि**--दोष वहां होता है जहां सँवार कर अथवा बिगाड़ कर, जैसी भी कवियों की इच्छा हो, सन्धि का प्रयोग किया जाय।[८] मम्मट विसन्धि उस दोष को कहते हैं जहां

१. देखिये पिछले पृष्ठ की अन्तिम पाद टिप्पणी।
२. अक्षर नहिँ पद योग सों प्रतिकूलाक्षर ठट्टि। का० नि०, पृ० २५६।
३. रसानुगुणत्वं वर्णानां वक्ष्यते तद्विपरीतं प्रतिकूलवर्णम्। का० प्र०, पृ० २०४।
४. का० नि०, पृ० २५६।
५. ताहि कहत हतवृत्त जहँ, छंदोभंग सुवर्न।
यहो कहत हतवृत्त जहँ नहीं सुमिल पद रीति। का० नि०, पृ० २५६।
६. हतवृत्तमनुक्तोऽपिच्छन्दोदोषश्चकास्ति चेत्। चं० लो०, पृ० ४०।
७. हतं लक्षणाऽनुसरणेऽप्यश्रव्यम्अप्राप्तगुरुभावान्तलघु
रसाननुगुणं च वृत्तं यत्र तत् हतवृत्तम्। का० प्र०, पृ० २०८।
८. सो बिसन्धि निज रुचि धरै, सन्धि बिगारि संवारि। का० नि०, पृ० २५६।

सन्धि में वैरूप्य (भद्दापन) अर्थात् असन्धि, अश्लीलता और उच्चारण का कष्ट हो।[१] दास का यह लक्षण अधिक संक्षिप्त तथा अस्पष्ट प्रतीत होता है। यदि दो शब्दों के बीच कोई कुपद (अश्लील शब्द) पड़ जाय तो भी, दास के अनुसार, विसन्धि दोष होता है।

प्रीतमजू तिय लीजिये भली भांति उर लाइ।[२]

यहां पर जूतिय शब्द विसन्धि दोष है। यह उदाहरण मम्मट के लक्षणों के अनुरूप है।

(४), (५), (६) **न्यून, अधिक तथा पुनरुक्ति**—दोष क्रमशः वहां होते हैं जहां कुछ शब्द कहने को रह जाय, अकारण अधिक शब्द आ जाय अथवा एक ही शब्द बार-बार आये।[३] इनमें कोई नवीनता नहीं प्रतीत होती।

(७) **पतत्प्रकर्ष**—दोष वहां होता है जहां उस रीति का निर्वाह हो सके जिसका आरम्भ किया जा चुका हो।[४] जयदेव का कथन है कि जहां पूर्वभाग में आरम्भ किये गये अनुप्रासादि का उत्तरभाव में अभाव हो वहां पतत्प्रकर्ष दोष होता है। सारांश यह कि किसी अंश के प्रारम्भ से अन्त तक एक साथ ही अनुप्रास आदि की रचना होनी चाहिए।[५] 'दास' का लक्षण जयदेव के ही अनुसार है। उदाहरणार्थ—

कान्ह कृष्न केशव कृपा सागर राजिवनैन।[६]

यहां क से आरम्भ होने वाले शब्दों का अनुप्रास रूप में अन्त तक निर्वाह नहीं हो सका है।

(८) **समाप्तपुनराप्त**—दोष वहां होता है जहां किसी विषय को समाप्त करके फिर उसे आगे बढ़ाया जाय।[७] जयदेव तथा मम्मट का कथन है कि वाक्य समाप्त होने के बाद जहां फिर से उठाया गया हो वहां समाप्तपुनराप्त दोष होता है।[८] दास का लक्षण इन आचार्यों से मिलता है।

(९) **चरणान्तर्गत**—दोष वहां होता है जहां कोई शब्द दो चरणों के बीच पड़ गया हो।[९] दास जी का यह लक्षण अस्पष्ट है। वस्तुतः इसका लक्षण जैसा आचार्य मम्मट ने कहा

१. विसन्धि सन्धेर्वैरूप्यम् विश्लेषोऽश्लीलत्वं कष्टत्वं च। का० प्र०, पृ० २०६।
२. का० नि०, पृ० २५६।
३. सब्द रहै कछु कहन को, वहै न्यूनपद मूल।
सोइ अधिक पद जहँ परै अधिक सब्द बिनु काज।
कह्यो फेरि कहि कथित पद औ पुनरुक्ति कहीय। का० नि०, पृ० २५७।
४. सो है पतत्प्रकर्ष जहँ लई रीति निबहै न का० नि०, पृ० २५७।
५. पतत्प्रकर्षं हीनाऽनुप्रासादित्वे यथोत्तरम्। चं० लो०, पृ० ४२।
६. का० नि०, पृ० २५७।
७. करि समाप्त बातहि कहै, फिरि आगे कछु बात
सो समाप्तपुनराप्त है, दूषन मति अवदात। का० नि०, पृ० २५७।
८. समाप्तपुनरात्तं स्यादेव। का० प्र०, पृ० २१२ तथा चं० लो०, पृ० ४३।
९. चरनान्तर्गत एक पद, द्वै चरनन के माँझ। का० नि०, पृ० २५८।

है यह है "अर्द्धगतैकवाचक (जिसका नाम भिखारीदास ने चरणान्तर्गत दिया है) दोष वहां होता है जहां किसी श्लोक (पद) के पूर्वार्द्ध वाक्य का कुछ अंश उत्तरार्द्ध में चला जाय।"[1]

(१०) **अभिवन्मतयोग**—दोष दास के अनुसार वहां होता है जहां मुख्य के लिए मुख्य कहा जाय।[2] चन्द्रालोककार का कथन है कि अभवन्मतयोग वहां होता है जहां पदों का वह सम्बन्ध न हो जो कवि को अभिप्रेत हो[3], यही बात अर्थात् जहां इष्टार्थ का सम्बन्ध न हो वहां अभिवन्मतयोग होता है आचार्य मम्मट ने भी कही है।[4] श्री रामदहिन मिश्र ने अपने काव्यदर्पण में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है कि "जिस पद में वर्णित पदार्थ का सम्बन्ध ठीक नहीं बैठता वहां यह दोष होता है।[5]" इन लक्षणों को देखते हुए 'दास' का लक्षण अस्पष्ट है क्योंकि उनके लक्षण से कोई अर्थ नहीं निकलता।

(११) **अकथित कथनीय**—आचार्यों ने इसका अनभिहितवाच्य के नाम से विवेचन किया है। 'दास' जी ने इसका लक्षण देते हुए कहा है कि जहां अवश्य कहने वाली बात हो किन्तु उसका उल्लेख न किया जाय वहां अकथित कथनीय दोष होता है।[6] दास जी ने इस दोष के नाम में परिवर्तन करके इसे हिन्दी भाषा के अनुरूप बना लिया है। मम्मट का कथन है कि यह दोष वहां होता है जहां कोई अवश्य कहने योग्य विषय कहने से छूट जाय।[7] अतः दास का यह लक्षण मम्मट के लक्षण के अनुसार ही है।

(१२) **अस्थानस्थपद**—दोष वहां होता है जहां कोई शब्द अपने उचित स्थान पर न हो।[8] जयदेव तथा मम्मट ने इस दोष का यही लक्षण बताया है।[9] अतः 'दास' का लक्षण इन्हीं आचार्यों के मतानुसार है।

(१३) **संकीर्ण**—दोष वहां होता है जहां दूरस्थ शब्दों से ज्यों त्यों करके अभिप्रेत अर्थ की प्रतीति हो जाय,[10] जैसे—

तजि प्रीतम पाँइन परचो अजहूं लखि तिय मान।[11]

१. द्वितीयार्द्धगतैकवाचक शेष प्रथमार्द्धे। — का० प्र०, पृ० २१३।
२. मुख्यहि मुख्य जो गनत कहि, सो अभवन्मतयोग। — का० नि०, पृ० २५८।
३. अभवन्मतयोगः स्यान्न चेदभिमतोऽन्वयः। — चं० लो०, पृ० ४४।
४. अभवन्मतः (इष्टः) योगः (सम्बन्धः) यत्र तत्। — का० प्र०, पृ० २१४।
५. देखिये रामदहिन मिश्र : काव्यदर्पण, पृ० ३८५।
६. नहि अवस्य कहिबौ कहै, सो अकथित कथनीय। — का० नि०, पृ० २५८।
७. अवश्यवक्तव्यमनुक्तं यत्र। — का० प्र०, पृ० २१८।
८. सो है अस्थानस्थ पद, जहँ चहिये तहँ नाहिँ। — का० नि०, पृ० २५९।
९. अस्थानस्थपदं। — का० प्र०, पृ० २१९।
अस्थानस्थ समासं। — चं० लो०, पृ० ४६।
१०. दूरि दूरि ज्यों त्यों मिलै, संकीरन पद जान। — का० नि०, पृ० २५९।
११. का० नि०, पृ० २५९।

इसका अर्थ यह हुआ कि 'ऐ तिय! प्रियतम को पैरों पर पड़ा हुआ देख कर मान छोड़ दे'। अतः होना चाहिए था 'लखि प्रीतम पांयन परयो अजहूं तजु तिय मान'।

काव्यप्रकाशकार के अनुसार संकीर्णदोष वहां होता है जहां एक वाक्यांश के पद दूसरे वाक्यांश में सम्मिलित हो गये हों।[1] इस लक्षण को देखते हुए दास द्वारा बताया गया लक्षण अस्पष्ट प्रतीत होता है, यद्यपि उनका उदाहरण ठीक है।

(१४) **गर्भित**--दोष वहां होता है जहां किसी वाक्य के बीच में अन्य वाक्य देकर वाक्य-रचना की जाय।[2] मम्मट का कथन है कि जहां एक वाक्य के भीतर कोई वाक्य सन्निविष्ट हो जाय वहां गर्भित दोष होता है।[3] अतः दास का लक्षण मम्मट के अनुसार है।

गर्भित दोष का उदाहरण दास जी ने इस प्रकार दिया है--

साधु संग औ हरिभजन विषतरु यह संसारु।
सकल भाँति दुख सों भरयो है अमृत फल चारु।[4]

यहां उक्त लक्षण के अनुसार गर्भित दोष है। इसका शुद्ध उदाहरण इस प्रकार होना चाहिए--

सकल भाँति दुख सों भरयो, विष तरु यह संसारु।
साधु संग औ हरिभजन द्वै अमृत फल चारु।[5]

(१५) **अमतपरार्थ**--दोष वहां होता है जहां किसी रस विशेष के लिए उपयुक्त कोई बात अन्य किसी रस के प्रसंग में कही जाय।[6] मम्मटाचार्य का मत है कि यह दोष वहां होता है जहां प्रकरण प्राप्त रस के विरुद्ध किसी और रस का व्यंजक कोई अन्य अर्थ निकलता हो।[7] अतः दास का लक्षण बहुत कुछ काव्यप्रकाशकार के अनुसार है।

(१६) **प्रकरणभंग**-- दोष वहां होता है जहां विधिवत् बात न कही जाय।[8] काव्यप्रकाशकार के अनुसार यह दोष वहां होता है जहां वर्ण्यविषय का क्रम टूट जाय।[9] दास का यह लक्षण अस्पष्ट है।

दास जी ने प्रकरण दोष वहां भी माना है जहां किसी बात का समान रूप से कथन न हो।[10] यह लक्षण मम्मट से कुछ कुछ मिलता है। उदाहरणार्थ—

---

१. संकीर्णम् यत्र वाक्यान्तरस्य पदानिवाक्यान्तरमनुप्रविशन्ति — का० प्र०, पृ० २२१।
२. और वाक्य द्वै बीच जो, वाक्य रचै कवि कोइ।
गर्भित दूषन कहत हैं, ताहि सयाने लोइ। — का० नि०, पृ० २५६
३. गर्भितं यत्र वाक्यस्य मध्ये वाक्यान्तरमनुप्रविशति। — का० प्र०, पृ० २२२
४. का० नि०, पृ० २५६। — का० नि०, पृ० २६०
६. औरै रस में राखिये, औरै रस की बात।
अमत परारथ कहत हैं लखि कविमत को घात। — का० नि०, पृ० २६०
७. अमतः प्रकृतविरुद्धः परार्थो यत्र। — का० प्र०, पृ० २३१
८. सो है प्रकरनभंग जहँ बिधि समेत नहिं बात। — का० नि०, पृ० २६०
९. भग्नः प्रक्रमः प्रस्तावो यत्र। — का० प्र०, पृ० २२४
१०. सोऊ प्रकरन भंग जहँ नहीं, एक सम बैन। — का० नि०, पृ० २६०

तू हरि की अँखियाँ बसी, कान्ह बसे तुव नैन ।[1]

यहां पर प्रकरणभंग दोष इस कारण है कि यहां पर समान रूप से कथन नहीं हुआ है। वस्तुतः होना चाहिए था—

कान्ह नयन में तू बसी कान्ह बसे तुव नैन ।

(१७) प्रसिद्ध हत—मम्मट ने इस दोष का 'प्रसिद्धमतिक्रान्त' के नाम से उल्लेख किया है और इसका लक्षण न देकर केवल उदाहरण दिया है[2], जिसको देखते हुए दास का लक्षण और उदाहरण दोनों ही शुद्ध और युक्तियुक्त प्रतीत होते हैं। दास के अनुसार यह दोष वहां होता है जहां पर प्रसिद्ध मत (अर्थात् वह मत जो काव्य तथा लोक में मान्य है) का परित्याग कर दिया जाय।[3] दास जी ने इसको स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित सुन्दर उदाहरण दिया है :

कूजि उठे गोकरभ सब जसुमति सावक देखि ।[4]

अर्थ यह है कि यशोदा के पुत्र (कृष्ण) को देखते ही सभी बछड़े रँभाने लगे। यहां पर गोकरभ का प्रयोग गौ के बछड़े के लिए हुआ है। करभ वस्तुतः हाथी के बच्चे के अर्थ में प्रयुक्त होता है। शावक मृगादि के बच्चों के लिए प्रयुक्त होता है मनुष्य के बच्चों के लिए नहीं। कूज उठना पक्षियों के कलरव के लिए आता है बछड़े के रँभाने के अर्थ में नहीं। इन्हीं कारणों से उक्त उदाहरण में प्रसिद्ध हत दोष है।

(३) अर्थदोष

दास जी ने अर्थ दोष के अन्तर्गत निम्नलिखित २२ दोषों का उल्लेख किया है :

(१) अपुष्टार्थ, (२) कष्टार्थ, (३) व्याहत, (४) पुनरुक्त, (५) दुष्क्रम, (६) ग्राम्य, (७) संदिग्ध, (८) निर्हेतु, (९) अनवीकृत, (१०) नियम परिवृत्त, (११) अनियम-परिवृत्त, (१२) विशेष परिवृत्त, (१३) सामान्य परिवृत्त, (१४) साकांक्षा, (१५) विधि अयुक्त, (१६) अनुवाद अयुक्त, (१७) प्रसिद्धिविरुद्ध, (१८) विद्याविरुद्ध, (१९) प्रकाशित-विरुद्ध, (२०) सहचरभिन्न (२१) अश्लीलार्थ, (२२) व्यक्तपुनःस्वीकृत।[5]

१. का० नि०, पृ० २६०।
२. देखिये का० प्र०, पृ० २२३।
३. परसिधहत परसिद्ध मत, तजै एक फल लेखि। का० नि०, पृ० २६१।
४. का० नि०, पृ० २६१।
५. अपुष्टार्थ कष्टार्थ व्याहतो पुनरुक्तोजित।
दुक्रम ग्राम्य सन्दिग्ध अपर निर्हेतु अनविकृत।
नियम अनियम प्रवृत्त विसेष समान प्रवृति कहि।
साकांक्षा रु अयुत्त सविधि अनुवाद अयुक्तहि।
जु विरुद्ध प्रसिद्ध प्रकासितन्ह सहचर भिन्नोश्लील ध्वनि।
है त्यक्तपुनः स्वीकृत सहित अर्थ दोष बाईस पुनि। का० नि०, पृ० २६१।

काव्यप्रकाशकार ने उपर्युक्त दोषों तथा अपदयुक्त दोष का उल्लेख किया है परन्तु 'दास' जी की सूची में अपदयुक्त दोष का कोई उल्लेख नहीं हुआ है। 'दास' ने काव्यप्रकाश के 'अविशेष परिवृत्त' दोष का नाम बदल कर सामान्य परिवृत्त रख दिया है। अर्थ की दृष्टि से दोनों नामों में कोई अन्तर नहीं है।

(१) **अपुष्टार्थ**––दोष वहां होता है जहां अर्थ का का बोध कराने के लिए प्रौढ़ उक्ति से काम लिया गया हो।[1] वस्तुतः, जैसा साहित्यदर्पणकार का कथन है, अपुष्टार्थ दोष वहां होता है जहां कोई उक्ति मुख्य अर्थ की उपकारी न हो।[2] इस लक्षण को देखते हुए दास का लक्षण स्पष्ट नहीं प्रतीत होता। परन्तु दास जी ने इस दोष को व्यक्त करने के लिए जो निम्नलिखित उदाहरण दिया है वह युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

उयो अति बड़े गगन में, उज्वल चारु मयंक।[3]

यहां गगन 'अति बड़ा' है तथा मयंक उज्ज्वल है यह कहना व्यर्थ है। अतः यहां अपुष्टार्थ दोष है।

(२) **कष्टार्थ**––दोष वहां होता है जहां प्रतीत होने वाला अर्थ उस अर्थ से भिन्न हो जो प्रयुक्त अक्षरों से निकलता हो।[4] जयदेव का कथन है कि जहां अर्थ शब्दों में रहता हुआ भी न रहते हुए के समान हो और इसी कारण स्पष्ट अर्थ की प्रतीति कराने में असमर्थ हो वहां कष्टार्थ दोष होता है।[5] 'दास' का लक्षण जयदेव के लक्षण से भी अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। 'दास' ने इसका निम्नलिखित सुन्दर उदाहरण दिया है––

तोपर वारौं चार मृग, चार विहंग फल चार।[6]

यहां पर 'तुम पर चार मृग, चार विहंग तथा चार फल निछावर करने' से स्पष्ट अर्थ की प्रतीति नहीं होती। किन्तु इसका वास्तविक अर्थ है 'नयन पर मृग, घूंघट पर हय, गति पर गज, कटि पर सिंह ये चार मृग, बैन पर कोकिल, ग्रीवा पर कपोत, केश पर मोर, नासिका पर शुक ये चार विहंग, दन्त पर दाड़िम, कुच पर श्रीफल, अधर पर बिम्बाफल, कपोल पर मधूक ये चार फल हैं'।[7] इस प्रकार कष्ट से अर्थ प्रकट होना कष्टार्थ दोष है।

(३) **व्याहत**––सावधानी न रखने के कारण जहां एक ही उक्ति से सत्य तथा असत्य दोनों ही बातें एक साथ कही जांय वहां व्याहत दोष होता है।[8] चन्द्रालोककार का

१. प्रौढ़ उक्ति जहँ अर्थ है अपुष्टार्थ सो बंक। का० नि०, पृ २६१।
२. अत्रापुष्टत्वं मुख्यानुपकारित्वम्। सा० द०, भाग २, पृ० २८
३. का० नि०, पृ० २६१।
४. अर्थ भिन्न अक्षरन ते, कष्टारथ सुबिचार। का० नि०, पृ० २६१।
५. कष्टः स्पष्टावबोधार्थमक्षमो वाच्य सन्निभः। चं० लो०, पृ० ५२।
६. काव्यनिर्णय, पृ० २६१।
७. काव्य निर्णय, पृ० २६२।
८. सत असतहु एकै कहै, व्याहत सुधि बिसराइ। का० नि०, पृ० २६२।

कथन है कि जहां पूर्व तथा उत्तर कथन में विरोध हो वहां व्याहत दोष होता है।[1] जयदेव के इस लक्षण की तुलना में दास का लक्षण स्पष्ट नहीं प्रतीत होता। उदाहरणार्थ--

चन्द्रमुखी के बदन सम, हिमकर कह्यो न जाइ।[2]

यहां पहले शब्द से नायिका को 'चन्द्रमा के मुख वाली' कहा, फिर कवि कहता है कि उस नायिका के मुख के समान चन्द्रमा को नहीं कह सकते। यहां एक ही साथ दो विरोधी बातें आ गयी हैं। अतः व्याहत दोष है।

मम्मट तथा जयदेव ने निम्नलिखित अर्थदोषों के लक्षण न देकर उदाहरणों की सहायता से ही उन्हें समझाने का प्रयास किया है। 'दास' ने प्रायः इन सभी दोषों के लक्षण और उदाहरण दिये हैं।

(४) **पुनरुक्ति**--जहां बार बार अनेक शब्दों के रखने पर भी एक ही अर्थ की प्रतीति होती है वहां पुनरुक्ति दोष होता है[3], उदाहरणार्थ--

मृदु बानी मीठी लगै, बात कविन की उक्ति।[4]

यहां बानी, बात तथा उक्ति एक ही अर्थ के द्योतक हैं। अतः पुनरुक्ति दोष है।

(५) **दुष्क्रम**--जहां क्रम के विचार से क्रम न रखकर उसे अनुचित ढंग से रखा जाय वहाँ यह दोष होता है[5], जैसे--

बर बाजी कै वारनै, दैहै रीझि दयाल।[6]

यहां बाजी के बाद हाथी का उल्लेख होना दुष्क्रम दोष है।

(६) **ग्राम्य**--जहां चतुर व्यक्तियों की भांति बात न कही जाय वहां ग्राम्य दोष होता है।[7] वस्तुतः यह दोष वहां होता है जहां गंवार भाषा का प्रयोग किया जाय।[8] उदाहरणार्थ--

अली पास पौढ़ी भले, मोहिँ किन पौढ़न देति।[9]

यहां नायिका से यह कहना कि तेरे पास तेरी सखी सो रही है अतः मुझे क्यों नहीं लेटने देती भद्देपन (गंवारपन) का द्योतक होने के कारण ग्राम्यदोषयुक्त है।

(७) **संदिग्ध**--जहां अनेक अर्थों में से एक भी निश्चयपूर्वक न कहा जा सके वहां संदिग्ध दोष होता है।[10]

१. व्याहतश्चेद्विरोधः स्यान्मिथः पूर्वपरार्थयोः। चं० लो०, पृ० ५२।
२. का० नि०, पृ० २६२।
३. उहै अर्थ पुनि पुनि मिलै, सब्द और पुनरुक्ति। का० नि०, पृ० २६२।
४. काव्य निर्णय, पृ० २६२।
५. क्रमबिचार क्रम को कियो दुक्रम है यहि काल। का० नि०, पृ० २६२।
६. काव्य निर्णय, पृ० २६२।
७. चतुरन की सी बात नहिँ ग्राम्यारथ सो चेति। का० नि०, पृ २६२।
८. कन्हैयालाल पोद्दार : काव्य कल्पद्रुम, पृ० ३६२।
९. काव्य निर्णय, पृ० २६२।
१०. संदिग्धार्थ जु अर्थ बहु, एक कहत सन्देह। का० नि०, पृ० २६३।

(८) **निर्हेतु**—जहां बिना हेतु के कोई बात कही जाय वहां निर्हेतु दोष होता है।[1] जैसे—

सुमन झरचो मानों अली, मदन दियो सर डारि।[2]

यहां कामदेव ने वाण डाल दिये इसका तो उल्लेख है, परन्तु वाण डालने का क्या हेतु है इसका पता नहीं चलता, अतः निर्हेतु दोष है।

(९) **अनवीकृत**—यह दोष वहां होता है जहां कोई वाक्य नये अर्थ को न धारण करे।[3] इसका 'दास' जी ने निम्नलिखित अच्छा उदाहरण दिया है।

कौन अचम्भो जो पावक जारै तौ कौन अचम्भो गरू गिर भाई।
कौन अचम्भो खराई पयोनिधि कौन अचम्भो गयन्द कराई।
कौन अचम्भो सुधा मधुराई औ कौन अचम्भो विषो करुआई।
कौन अचम्भो बहै बृष भार औ कौन अचम्भो भले हि भलाई।[4]

'कौन अचम्भो' के बाद के वाक्य वास्तविक अर्थों के द्योतक हैं। परन्तु इन सबके कहने के पश्चात् भी कोई नयी बात (अर्थात् ये सब उदाहरण देने के पश्चात् कवि किस निष्कर्ष पर पहुँचना चाहता है) नहीं ज्ञात होती। अतः यहां पर अनवीकृत दोष है।

दास ने निम्नलिखित उदाहरण में उक्त दोष का परिहार किया है—

कौन अचम्भो जो पावक जारै गरू गिरि है तौ कहा अधिकाई।
सिन्धुतरंग सदैव खराई नई न है सिन्धुर अंग कराई।
मीठो पियूष करू बिष रीत पै दास जू यामें न निंद बड़ाई।
भार चलावहि आपुहि बैल भलेनि के अंग सुभावै भलाई।[5]

यहां पर नवीन बात यह है कि भले लोगों की शोभा भलाई करने से ही होती है।

(१०), (११) **नियम अनियम परिवृत्त**—जहां वह बात, जिसे नियम से कहना चाहिए, नियम से न कही जाय वहां नियम परिवृत्त दोष होता है तथा जहां वह बात जिसे नियम से न कहना चाहिए नियम से कही जाय वहां अनियम परिवृत्त दोष होता है।[6] दास द्वारा दिये गए इन दोषों के लक्षण शुद्ध हैं।[7]

(१२), (१३) **विशेष परिवृत्त तथा सामान्य परिवृत्त**—जहां सामान्य का वर्णन होना चाहिए वहां यदि विशेष का वर्णन किया जाय तो वह विशेष परिवृत्त दोष कहलाता

१. बात कहै बिनु हेतु की, सो निर्हेतु बिचारि। का० नि०, पृ० २६३।
२. काव्य निर्णय, पृ० २६३।
३. जो न नये अर्थहि धरै, अनविक्रित सुविसेखि। का० नि०, पृ० २६३।
४. काव्य निर्णय, पृ० २६३।
५. का० नि०, पृ० २६३-२६४।
६. अनियम थल नेमहि गहै, नियम ठौर जु अनेम।
   नियम अनियम प्रवृत्त है दूषन दुओ अप्रेम। का० नि०, पृ० २६४।
७. देखो कन्हैयालाल पोद्दार : काव्य कल्पद्रुम, पृ० ३६५।

है।[1] इसी प्रकार जहां विशेष का वर्णन होना चाहिए यदि वहाँ सामान्य का वर्णन हो तो वह सामान्य परिवृत्त दोष होता है।[2]

यहां पर 'दास' जी ने लक्षणों को उलट दिया है। जहां विशेष परिवृत्त का लक्षण देना चाहिए वहां तो उन्होंने सामान्य परिवृत्त का लक्षण दिया है और जहां सामान्य परिवृत्त का लक्षण देना चाहिए वहां उन्होंने विशेष परिवृत्त का लक्षण दिया है। यह बात आचार्यों के मतों से स्पष्ट है।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट नामों को जानबूझ कर बदल देने का प्रयत्न किया है और ऐसा करना किसी भी आचार्य के लिए—यदि वह उसे युक्तियुक्त समझता है—अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

(१४) **साकांक्ष्य**—दोष वहां होता है जहां किसी शब्द की आकांक्षा जान पड़े।[4] उदाहरणार्थ—

परम विरागी चित्त निज, पुनि देवन को काम।
जननी रुचि पुनि पितु बचन क्यों तजिहैं वन राम।[5]

यहां साकांक्ष्य दोष है क्योंकि आकांक्षा तो ऐसे शब्दों की है जिनसे वनगमन का अर्थ प्रकट हो। अतः यहां 'क्यों तजिहैं वन राम' के स्थान पर होना चाहिए था 'क्यों न जाँय वन राम'।

---

१. जहाँ ठौर सामान्य को कहैं विशेष अयान।
ताहि विशेष प्रवृत्त गनि, दूषित कहैं सुजान। का० नि०, पृ० २६४।

२. जहाँ कहत सामान्य ही थल विशेष को देखि।
सो सामान्य प्रवृत्त है दूषन दृढ़ अवरेखि। का० नि०, पृ० २६५।

३. चन्द्रालोक के टीकाकार का कथन है—

सामान्येति। सामान्यार्थबोधकपदापेक्षत्वे सत्यनपेक्षितविशेषार्थबोधकपदोपादानत्वं सामान्यपरिवृत्तित्वम्। सामान्यार्थ प्रतिपादनापेक्षायां विशेषार्थप्रतिपादनत्वमिति यावत्।

अर्थात् सामान्य अर्थ के बोधकपद की आवश्यकता में जहां विशेष अर्थ के बोधक पद का प्रयोग किया गया हो वहां सामान्यपरिवृत्त दोष होता है। सामान्य पद का परिवर्तन करना इसका यौगिक अर्थ है। चं० लो०, पृ० ५८।

कन्हैयालाल पोद्दार ने इसकी व्याख्या निम्नलिखित की है—

विशेष परिवृत्तता—जिस अर्थ के लिए विशेष शब्द का प्रयोग करना चाहिए उसके लिए सामान्य शब्द का प्रयोग करना।

कन्हैयालाल पोद्दार : रस मंजरी, पृ० ३६६।

आचार्य मम्मट ने भी विशेष तथा अविशेष परिवृत्त के जो उदाहरण दिये हैं उनसे भी यही बात प्रकट होती है। देखिये, काव्य प्रकाश, पृ० २४२-२४३।

४. आकांक्षा कछु सब्द की जहाँ परत है जानि।
सो दूषण साकांक्ष है सुमति कहैं उर आनि। का० नि०, पृ० २६५।

५. काव्य निर्णय, पृ० २६५।

(१५) (१६)—**विधि अयुक्त** तथा **अनुवाद अयुक्त** के दास जी ने कोई लक्षण नहीं दिये।

(१७) (१८)—**प्रसिद्ध** तथा **विद्या विरुद्ध** दोष वहां होते हैं जहां लोक, वेद, कविरीति तथा देशकाल से भिन्न कोई बात कही जाय।[1] उदाहरणार्थ—

> **कौल खुले कच गूँदती मूँदती चारु नखक्षत अंगद के तरु।**
> **दोहद में रति के श्रम भार बड़े बल कै धरती पग भूधरु।**
> **पंथ असोकन कोप लगावती है जस गावती सिंजित के भरु।**
> **भावती भादौं की चाँदनी में जगी भावते संग चली अपने घरु।**[2]

यहां नखक्षत को अंगद (अर्थात् विजायठ पहनने का अंग) में लगा कहना शास्त्र विरुद्ध है।[3] दोहद (गर्भिणी) के साथ रति वेद विरुद्ध है, भादों में चांदनी का वर्णन कविरीति विरुद्ध है। अतः यहां पर प्रसिद्ध विरुद्ध तथा विद्या विरुद्ध दोनों ही दोष हैं।

(१९) **प्रकाशित विरुद्ध**—दोष वहां होता है जहां जो लक्षण कहना अपेक्षित हो उससे विरुद्ध अर्थ की प्रतीति हो[4], उदाहरणार्थ—

> **हँसनि तकनि बोलनि चलनि सकल सकुच मय जासु।**
> **रोष न केहूँ कै सकै सुकवि कहैं सुकियासु।**[5]

यही लक्षण परकीया का भी प्रतीति होता है। अतः यहां पर प्रकाशित विरुद्ध दोष है।

(२०) **सहचर भिन्न**—दोष वहां होता है जहां विवेक से संगति की उपयुक्तता का ध्यान न रखा गया हो[6] उदाहरणार्थ—

> **निसि ससि सों जल कमल सों मूढ़ व्यसन सों मित्त।**
> **गज मद सों नृप तेज सों शोभा पावत नित्त।**[7]

यहां पर निशि की शशि से तथा जल की कमल से मित्रता जिस उच्च भाव का प्रकाशन करती है वह मूढ़ तथा व्यसन में उपलब्ध नहीं। अतः यहां सहचरभिन्न दोष है।

---

१. **लोक वेद कवि रीति अरु, देस काल ते भिन्न।**
   सो प्रसिद्ध विद्यानि के, हैं विरुद्ध मति खिन्न। का० नि०, पृ० २६६।

२. काव्यनिर्णय, पृ० २६७।

३. काव्यप्रकाशकार का कथन है कि कामशास्त्र के मतानुसार स्त्री के केयूरपद स्थान में नखक्षत नहीं होता :
   अत्रकेयूरपदे नखक्षतं न विहितमिति एतत्कामशास्त्रेण। का० प्र०, पृ० २३९।

४. **जो लच्छन कहिये परै तासु विरुद्ध लखाइ।**
   वहै प्रकासित बात को है विरुद्ध कबिराइ। का० नि०, पृ० २६७।

५. का० नि०, पृ० २६७।

६. **सो है सहचरभिन्न जहँ संग कहत न विवेक।** का० नि०, पृ० २६७।

७. का० नि०, पृ० २६८।

(२१) **अश्लीलार्थ**–दोष वहां होता है जहां कुछ भोंडापन दिखायी पड़े।[1] स्वाभाविक है कि इसमें अश्लीलता होती है।

(२२) **त्यक्तपुनः स्वीकृत**—दोष वहां होता है जहां छोड़ी हुई बात फिर से उठायी जाय।[2]

दोषोद्धार वर्णन

दास जी का कथन है कि कहीं कहीं शब्दालंकार, छंद, तुक तथा प्रकरण में दिखलायी पड़ने वाले दोषों को दोष नहीं माना जाता, प्रत्युत कहीं कहीं दोष गुणों की खान समझे जाते हैं। इसके विपरीत कुछ स्थलों पर अदोष (अर्थात् जहां पर कोई दोष न दिखाई पड़े) भी दोष माने जाते हैं।[3] दास के दोषोद्धार वर्णन का आधार अधिकतर काव्यप्रकाश प्रतीत होता है क्योंकि इस ग्रन्थ में एतद्विषयक विशद विवेचन प्राप्त होता है। हम निम्न-लिखित पंक्तियों में काव्यप्रकाश के दो एक सूत्रों को उद्धृत करेंगे जिससे दास की उपर्युक्त उक्ति स्पष्ट हो जायगी।

(१) ख्यातेऽर्थे निर्हेतोरदुष्टता।[4]
अर्थात् प्रसिद्ध अर्थ के प्रकाशन में 'निर्हेतु' नामक दोष दोष नहीं माना जाता।

(२) वक्त्राद्यौचित्यवशाद्दोषोऽपि गुणः क्वचित्क्वचिन्नोभौ।[5]

अर्थात् वक्ता आदि के यथोचित प्रकार के होने से कभी कभी दोष भी गुण होते हैं और कभी कभी न गुण ही होते हैं और न दोष ही माने जाते हैं।

इसी बात को आचार्य मम्मट ने कुछ और स्पष्ट कर दिया है—

वक्तृप्रतिपाद्यव्यंग्यवाच्यप्रकरणादीनां महिम्ना दोषोऽपि क्वचिद् गुणः क्वचिन्न दोषो न गुणः। तत्र वैयाकरणादौ वक्तरि प्रतिपाद्ये च रौद्रादौ च रसे व्यंग्ये कष्टत्वं गुणः।[6]

"अर्थात् वक्ता, श्रोता, व्यंग्य, वाच्य, प्रकरण इत्यादि कारणों से वाक्य की महिमा द्वारा कहीं कहीं दोष भी गुण हो जाता है, कहीं कहीं न दोष होता है न गुण। उनमें से यदि वक्ता और श्रोता दोनों व्याकरणवेत्ता हुए अथवा जहां पर रौद्र आदि रस व्यंग्य हों वहां कष्टत्व गुण माना जाता है।"

१. कहियै असलीलार्थ जहँ भोंड़ो भेद लखाइ। का० नि०, पृ० २६८।

२. त्यक्तपुनः स्वीकृत कहैं, छोड़ि बात पुनि लेत। का० नि०, पृ० २६८।

३. कहुँ शब्दालंकार कहुँ छन्द कहूँ तुक हेतु।
कहूँ प्रकरन बस दोषहूँ, गनैं अदोष सचेतु।
कहूँ अदोषौ दोष कहुँ दोष होत गुन खानि। का० नि० पृ०, २६८।

४. का० प्र० पृ० २५१। ५. का० प्र०, पृ० २५२।

६. काव्य प्रकाश, पृ० २५२-२५३।

(३) **अनुकरणे तु सर्वेषाम् ।**[1]

अर्थात् अन्य का अनुकरण करने में (कथित शब्दों को दुहराने में) सभी दोष दूषण-रहित हो जाते हैं ।

मम्मट ने इस भाव को कुछ और स्पष्ट कर दिया है—

सर्वेषां श्रुतिकटु प्रभृतीनां दोषाणाम् ।[2]

अर्थात् सभी शब्दों से यहां 'श्रुतिकटु' इत्यादि (पदगत,देशगत, वाक्यगत तथा अर्थगत) दोषों से तात्पर्य है ।

मम्मटाचार्य ने अपने उक्त सूत्रों की पुष्टि अनेकानेक उदाहरणों द्वारा की है । इसी प्रकार 'दास' जी ने भी अपने कथन की पुष्टि में कई उदाहरण दिये हैं । अतः स्पष्ट है कि दास जी का एतद्विषयक विवेचन बहुत कुछ मम्मट के आधार पर है ।

(४) **रस दोष वर्णन**—अपने ही शब्द (शब्द वाच्य) द्वारा रस, स्थायीभाव तथा संचारी भाव कथन रस-दोष माना जाता है[3], क्योंकि रस की प्रतीति व्यंजना द्वारा ही होनी चाहिए न कि शब्द वाच्यता द्वारा, ऐसा संस्कृत के आचार्यों का मत है ।[4] दास ने रस, स्थायीभाव तथा संचारीभाव में वाचक शब्दों से उत्पन्न होने वाले रसों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं । एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

अञ्चल ऐंचि जु सिर धरत, चंचलनैनी चारु ।
कुच कोरनि हिय कोरि कै, भरयो सुरस शृंगारु ।[5]

यह निश्चय ही शृंगार रस का वर्णन है परन्तु यहां पर शृंगार रस का नाम ले देने से रस दोष आ गया है । दास जी ने उक्त पद की दूसरी पंक्ति का संशोधन भी किया है जिसमें उक्त दोष का परिहार हो गया है ।

कुच कोरनि हिय कोरि कै, दुख भरि गई अपार ।[6]

कहीं कहीं पर वाचक शब्द आ जाने से रस दोष दोष नहीं भी रहता है, उदाहरणार्थ—

जात जगायो है न अलि अँखिन आयो भानु ।
रसभीयो सोयो दोऊ प्रेम समोयो प्रानु ।[7]

१. काव्य प्रकाश, पृ० २५२ ।
२. काव्य प्रकाश, पृ० २५२ ।
३. रस अरु चिर थिर भाव की सब्द वाच्यता होइ ।
ताहि कहत रस दोष हैं कहूं अदोषिल सोइ । का० नि०, पृ० २७२ ।
४. देखिये साहित्य दर्पण, पृ० ३५ ।
५. काव्य निर्णय, पृ० २७२ ।
६. का० नि०, पृ० २७२ ।
७. का० नि०, पृ० २७४ ।

यहां पर रस और प्रेम की शब्द वाच्यता है परन्तु इन शब्दों के रसिकता तथा प्रतीति के द्योतक होने के कारण यहां पर रस दोष नहीं

अन्य दोषों के वर्णन के अन्तर्गत दास ने विभाव तथा अनुभाव की कष्टकल्पना, व्यक्ति, भाव तथा रसों की प्रतिकूलता, बार बार एक ही रस की उद्दीप्ति, बिना अवसर की उक्ति तथा अनुक्ति, अंगी को भुलाना, तथा अंगों एवं प्रकृति विपर्यय का भी वर्णन किया है। ये दोष काव्य प्रकाश में भी वर्णित हैं।[1] दास ने मम्मट द्वारा वर्णित 'अनंग' नामक अन्तिम रस दोष का वर्णन नहीं किया है।

दास के इन दोषों के विवेचन में कोई विशेषता नहीं प्रतीत होती। अधिकतर यह विवेचन मम्मट के मतानुसार हुआ है। हम विस्तारभय से यहां केवल एक ही दोष का विवेचन कर रहे हैं।

प्रकृति विपर्यय दोष--प्रकृति अर्थात् नायक तीन प्रकार के होते हैं दिव्य, अदिव्य तथा दिव्यादिव्य।[2] देवता दिव्य, मनुष्य अदिव्य तथा मनुष्य के रूप में अवतार लेने वाले देवता दिव्यादिव्य के अन्तर्गत आते हैं।[3]

नायक चार प्रकार के होते हैं और प्रत्येक का वर्णन रस विशेष में होता है[4], जैसे धीरोदात्त का वर्णन वीर रस में, धीरोद्धत का क्रोध में, धीर ललित का शृंगार में तथा धीरप्रशान्त का शान्त रस में होना चाहिए।[5] यदि इन नायकों का वर्णन इन निर्दिष्ट रसों

१. कष्टकल्पनया व्यक्तिरनुभावविभावयोः।
प्रतिकूलविभावादिग्रहो दीप्तिः पुनः पुनः।
अकाण्डे प्रथनच्छेदौ अंगस्याप्यतिविस्तृतिः।
अंगिनोऽननुसन्धानं प्रकृतीनां विपर्ययः।
अनंगस्याभिधानं च रसे दोषाः स्युरीदृशाः। का० प्र०, पृ० २६६।

२. तीन भांति कै प्रकृति है दिव्य अदिव्य प्रमान।
तीजौ दिव्यादिव्य यह जानत सुकवि सुजान। का० नि०, पृ० २७९।

३. देव दिव्य करि मानिये, नर अदिव्य करि लेखि।
नर अवतारी देवता, दिव्यादिव्य विशेखि। का० नि०, पृ० २७९।

४. चारि भाँति नायक कह्यो तिन्हैं चारि रस मूल।
किये और को और में प्रकृति विपर्यय तूल। का० नि०, पृ० २७९।

५. धीरोदात्त सुबीर में धीरोद्धत रिसवन्त।
धीर ललित शृंगार सों शान्त धीर पर सन्त। का० नि०, पृ० २७९।

में न करके अन्य रसों में किया जाय तो प्रकृति विपर्यय दोष होता है। दास जी का यह मत काव्य प्रकाशकार के मतानुसार ही है।[1]

दास का कथन है कि यदि शोक, रति, हास तथा अद्भुत का अदिव्यपात्र के समान दिव्यादिव्य में वर्णन किया जाय तो दोष नहीं है किन्तु दिव्य में इनका योग नहीं होता।[2] काव्यप्रकाशकार का कथन है कि रति, हास, शोक और अद्भुत ये भाव अदिव्य उत्तम पात्र के सदृश दिव्य उत्तम पात्रों में भी होते हैं, किन्तु संभोग श्रृंगार रूप रति उत्तम देवता के विषय में कभी भी वर्णन के योग्य नहीं मानी जाती।[3] इसका वर्णन माता पिता के संभोग वर्णन के समान अत्यंत अनुचित माना जाता है। दिव्य के साथ श्रृंगार रस का वर्णन अनुचित है यही बात दास जी ने भी कही है।[4]

इस प्रकार रस दोषों का उल्लेख करते समय दास जी ने यत्र तत्र ऐसे उदाहरण भी दिये हैं जहां पर दोष दोष नहीं रहता। परन्तु इन में कोई विशेषता नहीं प्रतीत होती।

निष्कर्ष—काव्यदोष सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दास जी ने संस्कृत के प्राचीन आचार्यों के मतानुसार काव्य दोषों का विशद विवेचन किया है। यह विवेचन वैज्ञानिक पद्धति पर तथा सुलझा हुआ है। वाक्य तथा रस दोषों के उल्लेख में चन्द्रालोक, साहित्यदर्पण तथा काव्यप्रकाश आदि ग्रन्थों के निर्माताओं ने अनेक स्थानों पर दोषों के अलग लक्षण न देकर केवल उदाहरणों से ही काम चलाया है परन्तु दास जी ने यथासम्भव इन सबके लक्षण देकर विषय को बोधगम्य एवं सरल बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है। कहीं-कहीं तो उन्होंने आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट नामों को भी अपनी इच्छानुसार (और कदाचित् उसे हिन्दी के प्रवाह के अनुकूल बनाने के लिए) बदल दिया है। जहां कहीं उन्होंने उचित समझा है, उन्होंने आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों में उलट फेर कर लिया है। हम इन सब बातों का पिछले पृष्ठों में विवेचन कर आये हैं। हमें यह मानने में तनिक भी संकोच नहीं कि दास द्वारा प्रस्तुत काव्य दोष विवेचन विषय का पूर्ण स्पष्टीकरण करने में समर्थ है।

---

१. देखिये काव्य प्रकाश, पृ० २७१।

२. सोक हास रति अद्भुतहि लीन अदिव्ये लोग।
दिव्यादिव्यनि में सकति, नहीं दिव्य में योग। का० नि०, पृ० २७६।

३. देखिये काव्य प्रकाश, पृ० २७१।

४. ज्यों बरनत पितु मातु को नहिँ श्रृंगार रस लोग।
त्यों सुर आदिक दिव्य में बरनत लगै अयोग। का० नि०, पृ० २७६।

रस विवेचन

रस वर्णन के अन्तर्गत दास जी ने सर्वप्रथम आठ स्थायी भावों का उल्लेख किया है—प्रीति, हँसी (हास्य), शोक, रिस (क्रोध), उत्साह, भय, घिन (घृणा) तथा विस्मय[1] और फिर तत्सम्बन्धी रसों का वर्णन किया है, जो क्रमशः इस प्रकार है—शृंगार, हास्य, करुण, रुद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत। 'दास' ने यह भी कहा है कि भरत मुनि ने तो इन्हीं आठ रसों का उल्लेख किया है किन्तु शान्त नामक एक अन्य रस भी अन्यत्र माना गया है।[2] मम्मट भी उक्त आठ रस ही मानते हैं।[3] अतः ज्ञात होता है कि दास जी ने उक्त रसों के विषय में मम्मट तथा भरत मुनि का अनुकरण किया है।[4] भरत मुनि रस सिद्धान्त

१. प्रीति हँसी अरु सोक रिस, उत्साहौ भव मित्त।
घिन विस्मय थिर भाव ये, आठ बसैं सुभ चित्त। — का० नि०, पृ० ३१।

२. नाटक में रस आठ ही, कह्यो भरत ऋषि राइ।
अनत नवम किय सान्त रस तहँ निर्वेदै थाइ। — का० नि०, पृ० ४१।

३. शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः।
वीभत्साद्भुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः। — का० प्र० पृ, ६६

मम्मट ने इनके स्थायी भावों का भी उल्लेख किया है :

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तितः। — का० प्र०, पृ० ७३।

४. वस्तुतः भरत ने नाटक में ८ ही रस माने हैं :
'अष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः' — नाट्यशास्त्र, भाग १, पृ० २६८।

इस सम्बन्ध में हरिऔध जी लिखते हैं :

महामुनि भरत भी पहले चार रस की ही उत्पत्ति मानते हैं और उनसे अन्य रसों की। वे लिखते हैं" तेषामुत्पत्तिहेतवश्चत्वारो रसाः शृंगारो रौद्रो वीरो वीभत्स इति" उनके (रसों) उत्पत्ति के हेतु चार रस हैं—शृंगार, रौद्र, वीर और वीभत्स। इनके उपरान्त वे यह कहते हैं :

शृंगाराद्धि भवेद्धास्यो रौद्राच्चं करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्वीभत्साच्च भयानकः।
शृंगारानुकृतिर्यातु स हास्यस्तु प्रकीर्तितः।
रौद्रस्यैव च यत्कर्म स ज्ञेयः करुणो रसः।
वीरस्यापि च यत्कर्म सोऽद्भुतः परकीर्तितः।
वीभत्सदर्शनं यच्च ज्ञेयः स तु भयानकः।

शृंगार से हास्य, रौद्र से करुण, वीर से अद्भुत और वीभत्स से भयानक की उत्पत्ति हुई। शृंगार की अनुकृति हास्य का, रौद्र का कर्म करुण का, वीर का कार्य अद्भुत का और वीभत्स दर्शन भयानक का जनक है।

हरिऔध : रसकलस, पृ० ४०।

का प्रतिपादन करने वाले प्रमुख आचार्य माने जाते हैं।[1]

भरत ने नाटक में शान्त रस की स्थिति अस्वीकार की है।[2] मम्मट[3] तथा जयदेव[4] दोनों ने ही शान्त रस को नवम रस कहा है तथा उसका स्थायीभाव निर्वेद बताया है। 'दास' ने शान्त रस को माना है और उसका विवेचन भी किया है।

रस की व्याख्या करते हुए 'दास' का कथन है कि रस वहां समझना चाहिये जहां हृदय भाव, विभाव, अनुभाव, चर (संचारी भाव) तथा थिर (स्थायी) भावों से परिपुष्ट होकर तन्मयता का अनुभव करे।[5] पंडितराज जगन्नाथ का मत है कि अधिक विभावादिकों से उत्पन्न हुए रति आदि स्थायी भाव होते हैं और वे ही जब थोड़े विभावादिकों से उत्पन्न होते हैं तो व्यभिचारी कहलाते हैं। इस तरह मान लेने पर वीर रस के प्रधान होने पर क्रोध, रौद्ररस के प्रधान होने पर उत्साह और शृंगार रस के प्रधान होने पर हास व्यभिचारी होते हैं और बिना उसके वे रस रहते ही नहीं। यह भी सिद्ध है। प्रधान रस को पुष्ट करने के लिए उस (अंगभूत भाव, क्रोध आदि) को भी अधिक विभावादिकों से अभिव्यक्त किया जाता है।[6] मम्मट का कथन है कि साधारणतया भरत के मतानुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के सम्बन्ध से रस का प्रकाश होता है परन्तु भट्ट, लोल्लट आदि विद्वानों ने इसका अर्थ यह दिया है "विभावों (ललनादि आलंबन और उद्यानादि उद्दीपन कारणों) से जो स्थायी रत्यादिक भाव उत्पन्न किया जाता है, अनुभावों (कटाक्ष, भुजाक्षेप आदि कार्यों) से जो प्रतीति के योग्य किया जाता है तथा निर्वेदादि व्यभिचारी भावों की सहायता से जो पुष्ट किया जाता है और वास्तविक सम्बन्ध से नाटक में राम सीता आदि के रूप धारण करने वाले द्वारा उन्हीं की वेशभूषा वार्तालाप तथा चेष्टा आदि के दिखलाने से जो व्यंजना व्यापार

---

१. रस सम्प्रदाय का आद्य प्रवर्तक कौन था (?) इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। उपलब्ध रस सिद्धान्त भरत मुनि के नाम से सम्बद्ध है। भरत ही रस सम्प्रदाय के सबसे आदि तथा सर्वश्रेष्ठ आचार्य हैं।

बलदेव उपध्याय : भारतीय साहित्यशास्त्र, भाग २, पृ० २३८।

२. भरत तथा धनंजय ने नाटक में शान्त रस की स्थिति अस्वीकार की है (शममपि केचित् प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य दशरूपक ४/३५)। नाटक अभिनय के द्वारा ही प्रदर्शित किया जाता है और शान्त रस सब कार्यों का विरामरूप है। ऐसी दशा में शान्त का प्रयोग नाटक में हो नहीं सकता।

बलदेव उपाध्याय : भारतीय साहित्य शास्त्र, भाग २, पृ० २०।

३. निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः। — का० प्र०, पृ० ७४।

४. निर्वेदस्थायिकः शान्त सत्संगादिविभवभूः।
क्षमादिकानुभावोऽयं स्तम्भादिव्यभिचारिकः। — चं० लो०, पृ० २१४।

५. लखि विभाव अनुभाव ही, चिर थिर भावै नेकु।
रस सामग्री जो रमै रसै गनै धरि टेकु। — का० नि०, पृ ३२।

६. हिन्दी रस गंगाधर, पृ० ८७–८८।

द्वारा प्रकट किया जाता है उसी स्थायी भाव को रस कहते हैं।[1]

साहित्यदर्पणकार का मत है कि सहृदय पुरुषों के हृदय में स्थित वासना रूप रति आदि स्थायीभाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त होते हैं।[2] इस विवेचन से स्पष्ट है कि रस की व्याख्या के सम्बन्ध में दास ने जो कुछ कहा है वह आचार्य-सम्मत है।

दास ने स्थायीभाव को रस का बीज माना है, जिसका कारण विभाव तथा कार्य अनुभाव होता है।[3] साहित्यदर्पणकार ने कहा है कि केवल वही भाव जो रस की अवस्था तक पहुँचे स्थायीभाव कहलाता है।[4] दास का मत आचार्य विश्वनाथ के लक्षणानुसार है। दास ने विभाव के अन्तर्गत नायक, नायिका, चन्द्रमा, सुमन, सखि, दूती आदि रखे हैं यद्यपि रस के अन्तर्गत और भी अनेक बातें आ जाती हैं।[5] साहित्यदर्पण में विभाव के दो भेद आलंबन तथा उद्दीपन किये गये हैं और साथ ही इसके अन्तर्गत नायकों तथा प्रतिनायकों को रखा गया है।[6] ऐसा प्रतीत होता है कि 'दास' ने यहां भी साहित्यदर्पण का आधार लिया है।

दास ने विभाव का एक उदाहरण दिया है जिसमें विविध प्राकृतिक सौन्दर्यों द्वारा उद्दीपन वस्तुओं को चित्रित किया गया है।

धीर धुनि बोलैं थँभि थँभि झर खोलैं मंडैं करत कलोलैं बारिवाहक अकास मैं।
नृत्यत कलापी झिल्ली पिक हैं अलापी विरही जन विलापी हैं मिलापी रस रास मैं।
सम्पा को प्रकाश बक अवली अकाश अरु, बूढ़नि विकाश दास देखिबे को पास मैं।
बनिता बिलास मन कीन्हें हैं मुनीशन्ह के, नीप नीको बास लहि फैली निज बास मैं।[7]

१. उक्तं हि भरतेन "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः" इति। एतद्विवृण्वते "विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः रत्यादिको भावो जनितः अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः व्यभिचारिभिर्निर्वेदादिभिः सहकारीभिरुपचितो मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्ये तद्रूपतानुसंधानान्नर्तकेऽपि प्रतीयमानो रसः" इति भट्टलोल्लटप्रभृतः।
का० प्र०, पृ० ५५।

२. विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायीभावः सचेतसाम्। सा० द०, पृ० ६०।

३. तातें थाई भाव को, रस को बीज गनाव।
कारन जानि विभाव अरु, कारज है अनुभाव। का० नि०, पृ० ३२।

४. रसावस्थः परं भावः स्थायितां प्रतिपद्यते। सा० द०, पृ० १३७।

५. देखिये का० नि०, पृ० ३२।

६. आलंबनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।
आलम्बनो नायिकादिस्तमालम्ब्य रसोद्‌गमात्।
"आदि" शब्दान्नायिका प्रतिनायिकादयः सा० द०, पृ० ८५।

७. काव्य निर्णय, पृ० ३३।

दास जी ने मम्मटाचार्य के ही मतानुसार[1] कहा है कि व्याघ्र आदि विभाव भयानक रस की भांति रुद्र और वीर के भी विभाव (आलंबन और उद्दीपन) कारण हो सकते हैं। अतः इनके परस्पर इस प्रकार सम्मिलित होने के कारण इन्हें नियमों में बांध कर इनका उल्लेख करना सम्भव नहीं।[2]

अनुभावों के अन्तर्गत दास जी ने सात्विकों का वर्णन किया है जो औरों से भिन्न होते हैं। इनके अन्तर्गत उन्होंने स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप तथा वैवर्ण्य का उल्लेख किया है[3] जबकि साहित्यदर्पणकार ने इसमें अश्रु तथा प्रलाप और बढ़ा दिये हैं।[4] 'दास' ने इन सात्विकों के न तो लक्षण दिये है और न उदाहरण ही। हां उन्होंने अनुभाव स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित उदाहरण अवश्य दिया है।

जी बँधि ही बँधि जात है ज्यों ज्यों सु नीबी तनीनि को बाँधति छोरति।
दास कटीले ह्वै गात कँपै बिहँसौंहीं लजौहीं लसै दृग लों रति।
भौहें मरोरति नाक सिकोरति चीर निचोरति औ चित चोरति।
प्यारे गुलाब के नीर में बोरे प्रिया पलटे रस भीर में बोरति।[5]

शृंगार रस वर्णन

शृंगार रस की परिभाषा देते हुए 'दास' जी का कथन है कि नायक और नायिका के बीच जो प्रेम होता है वही शृंगार रस के अन्तर्गत आता है परन्तु 'रति' भाव का जो प्रादुर्भाव बालक, मुनि, महिपाल तथा देवता के विषय में होता है वह रस की संज्ञा नहीं होता भाव ही कहलाता है।[6] शृंगार के दो भेद होते हैं—(१) वियोग शृंगार तथा (२) संयोग शृंगार।

वियोग शृंगार

वियोग शृंगार पांच प्रकार का होता है—(१) अभिलाष, (२) प्रवास, (३) विरह, (४) असूया और (५) शाप।[7] यह वर्गीकरण मम्मट के मतानुसार है।[8]

१. व्याघ्रादयो विभावाभयानकस्येववीराद्भुतरौद्राणाम्। का० प्र०, पृ० ६३।
२. सिंह विभाव भयानकहुँ रुद्र वीरहू होइ।
ऐसी सामिल रीति में नेम कहै क्यों कोइ। का० नि०, पृ० ३२।
३. स्तंभ स्वेद रोमांच स्वरभंग कंप वैवर्न।
सब ही के अनुभाव ये सात्विक औरो अर्न। का० नि०, पृ० ३२।
४. स्तम्भ स्वेदोऽथ रोमांचः स्वर भंगोऽथ वेपथुः।
वैवर्नयमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः। सा० द०, पृ० १२३।
५. काव्य निर्णय, पृ० ३३-३४।
६. प्रीति नायिका नायकहि, सो सिंगार रस ठाउ।
बालक मुनि महिपाल अरु, देव विषे रति भाउ। का० नि०, पृ० ३४।
७. एक होत संयोग अरु पाँच वियोगहि थाप।
सो अभिलाष प्रवास अरु विरह असूया साप। का० नि०, पृ० ३४।
८. अपरस्तु अभिलाषविरहेर्ष्याप्रवास शापहेतुक पंचविधः। का० प्र०, पृ० ६७।

अभिलाष—इसे कुछ विद्वान पूर्वानुराग भी कहते हैं।[1] जहां श्रवण अथवा दर्शन से दम्पति (नायक, नायिका में से किसी एक या दोनों) के हृदय में प्रीति उत्पन्न हो वहां पूर्वानुराग अथवा अभिलाष विप्रलंभ शृंगार होता है।[2] साहित्यदर्पणकार ने पूर्वानुराग विप्रलंभ का बहुत विस्तृत विवेचन किया है और कहा है कि सौन्दर्य आदि गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक और नायिका की समागम से पूर्व की दशा का नाम पूर्वानुराग है।[3] 'दास' जी ने भी इसे साहित्यदर्पण की ही भांति दर्शन और श्रवण दो प्रकार का कहा है तथा दर्शन के अन्तर्गत उन्होंने प्रत्यक्ष, स्वप्न, छाया, माया तथा चित्र दर्शन का उल्लेख किया है।[4] दास जी के ये भेद साहित्यदर्पण के अनुसार हुए भी हैं।[5] दास का स्वप्न दर्शन का निम्नलिखित उदाहरण अवलोकनीय है—

स्वप्न दर्शन—मोहन आयो यहां सपने मुसुकात औ खात बिनोद सो बीरो।
बैठी हुती परजंक में हौंहूं उठी मिलबे कहँ कै मन धीरो।
ऐसे में दास बिसासिन दासी जगायो डोलाय किवार जँजीरो।
झूठो भयो मिलिबो ब्रजनाथ को ऐरी गयो गिरि हाथ को हीरो।[6]

श्रुति दर्शन—के अन्तर्गत दास ने गुण श्रवण तथा पत्रप्राप्ति ये दो भेद कहे हैं।[7] गुण-श्रवण का उनका निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

जब जब रावरो बखान करै कोऊ तब तब छबि ध्यान कै लखोई उनमानते।
जाने पतिया न पतियान की प्रवीनताई बीन सुर लोन ह्वै सुरन उर आनते।
चन्द अरबिन्दनि मलिन्दनि सो दास मुख नैन कच कान्ति से सुनेही नेह ठानते।
तन मन प्रानन बसोये सो रहति हौ कहति हौ कि कान्ह मोहि कैसे पहिचानते।[8]

---

१. सुने लखे जहँ दंपतिहि उपजै प्रीति सुभाग।
अभिलाषै कोऊ कहै कोउ पूरब अनुराग। का० नि०, पृ० ३४।

२. सो पूरबानुराग जहँ बढ़े मिले बिन प्रीति।
आलम्बन ताको गनै सज्जन दरसन रीति। शृं० नि०, पृ० ६५।

३. श्रवणाद्दर्शनाद्वापि मिथः संरूढरागयोः।
दशाविशेषोयोऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते। सा० द०, पृ० १४०।

४. दृष्टि श्रुतौ द्वै भाँति के दरसन जानो मित्र।
दृष्टि दरस परतछ सपन छाया माया चित्र। शृं० नि०, पृ० ६५।

५. साहित्यदर्पण में इन भेदों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है।
श्रवणं तु भवेत्तत्र दूत वन्दी सखीमुखात्।
इन्द्रजाले च चित्रे च साक्षात् स्वप्ने च दर्शनम्। सा० द०, पृ० १४०।

६. शृं० नि०, पृ० ९६।

७. गुनन सुने पत्री मिले जब तब सुमिरन ध्यान।
दृष्टि दरस बिन होत है श्रुत दरसन यों जान। शृं० नि०, पृ० ९७।

८. शृं० नि०, पृ० ९७-९८।

प्रवास विप्रलंभ—वहां होता है जहां प्रियतम के गमन करने के कारण नायिका विरह से व्यथित हो। इसमें विरह व्यथा का प्रकाश, पत्र तथा सखियों के संदेशों से किया जाता है।[1] विप्रलंभ के अन्तर्गत अन्य तीनों भेदों अर्थात् **विरह, असूया** और **शाप** के दास ने लक्षण नहीं दिये हैं केवल उदाहरण दिये हैं।

रति भाव के अन्तर्गत दास जी ने लक्षण न देते हुए केवल बाल तथा मुनि विषयक रति भाव का उल्लेख किया है। बाल विषयक रति भाव का निम्नलिखित उदाहरण दर्शनीय है।

> **चूंमिबे के अभिलाषन्हि पूरिकै दूरि तें माखन लीन्हे बुलावति।**
> **लाल गोपाल की चाल बँकंग्रन दास जू देखत ही बनि आवति।**
> **ज्यों ज्यों हँसै बिकसैं दतियाँ मृदु आनन अंबुज में छबि छावति।**
> **त्यों त्यों उछंग लै प्रेम उमंग सों नन्द की रानि अनन्द बढ़ावति।**[2]

विप्रलंभ शृंगार के अन्तर्गत आचार्यों ने जो दस कामदशाएँ मानी हैं[3] दास जी ने भी उनका विशद वर्णन किया है। ये दश कामदशाएं हैं—लालसा (अभिलाष), चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता तथा मरण।[4] दास जी ने इन दशाओं के लक्षण इस प्रकार दिये हैं—

१. लालसा—जहां शारीरिक सम्पर्क की इच्छा हो।[5]
२. चिन्ता—जहां मिलने के लिए संकल्प विकल्पों के साथ उपाय किये जांय।[6]
३. स्मृति—जहां एकाग्र चित्त होकर प्रिय का ध्यान किया जाय।[7]

---

१. प्रीतम गये विदेस जौ, बिरह जोर सरसाइ।
वही प्रवास वियोग है, कहैं सकल कविराइ। का० नि०, पृ० ३५।
पिय बिदेस प्यारी सदन दुस्सह दुःख प्रवास।
पत्री संदेसनि सखी दुहुँ दिसि करै प्रकास। शृं० नि०, पृ० ९९।

२. का० नि०, पृ० ३६-३७।

३. अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसंप्रलापाश्च।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जड़ता मृतिरिति दशात्र कामदशाः। सा० द०, पृ० १४०।

४. लालस चिन्ता गुनकथन स्मृति उद्वेग प्रलाप।
उन्मादहि व्याधिहि गनो जड़ता मरन सँताप। शृं० नि०, पृ० १००।

५. नैन बैन मन मिलि रहे चाह्यो मिलन सरीर।
कथन प्रेम लालसदसा उर अभिलाख गँभीर। शृं० नि०, पृ० १००।

६. मनसूबनि तें मिलन को जहँ संकल्प विकल्प।
ताहि कहैं चिन्तादसा जिनकी बुद्धि अनल्प। शृं० नि०, पृ० १०१।

७. जहँ इकाग्रचित करि धरै मन भावन को ध्यान।
सुस्मृति दसा तेहि कहत हैं लखि लखि बुद्धिनिधान। शृं० नि०, पृ० १०३।

४. **गुणकथन**—जहां प्रिय का स्मरण करके उल्लास के साथ अंग अंग का वर्णन हो।[1]

५. **उद्वेग**—जहाँ सुखदायक वस्तु दुखप्रद लगे तथा कहीं भी रहना अच्छा न लगे।[2]

६. **प्रलाप**—चित्त में संताप होने के कारण जहां अटपटी बातें बकी जांय।[3]

७. **उन्माद**—जहां बौरई (पागलपन) की दशा हो।[4]

८. **व्याधि**—जहां ताप (उष्णता आदि), दौर्बल्य, दीर्घश्वास आदि हों तथा नायिका इस प्रकार हाय हाय करे जिसे देखकर सब त्राहि त्राहि करने लगें।[5]

९. **जड़ता**—जहां सभी आचरण अनायास विस्मृत हो जांय तथा जहां निद्रा, बोलना, हंसना, भूख-प्यास, दुख-सुख का अनुभव न हो।[6]

१०. **मरण**—जहां पर निराशा के कारण मृत्यु हो जाय। इसमें रसभंगता बचाने के लिए जीवित व्यक्ति को भी मृत कह कर वर्णन करना पड़ता है।[7]

साहित्यदर्पणकार ने कामदशाओं के ये लक्षण दिये हैं—इच्छा का नाम है अभिलाष, प्राप्ति के उपायादि की खोज का नाम है 'चिन्ता', जड़ चेतन का विवेक न रहना 'उन्माद' है, चित्त के बहकने से उत्पन्न अटपटी बातों को 'प्रलाप' कहते हैं, दीर्घ निश्वास, पांडुता, दुर्बलता आदि 'व्याधि' कहलाती है, अङ्गों तथा मन के चेष्टाशून्य होने का नाम 'जड़ता' है और मरण को 'मृति' कहते हैं।[8]

---

१. दास दसा गुन कथन में सुमिरि सुमिरि तिय पीय।
अँग अंगनि बरनै सहित रस रंगनि रमनीय।　　शृं० नि०, पृ० १०२।

२. जहाँ दुःखरूपी लगै सुखद जु वस्तु अनेग।
रहिबो कहुँ न सोहात सो दुसह दसा उद्वेग।　　शृं० नि०, पृ० १०४।

३. सखिजन सो कै जड़नि सो तनमन भर्यौ सँताप।
मोह बैन बकिबो करै ताको कहत प्रलाप।　　शृं० नि०, पृ० १०५।

४. सो उनमाद दसा दुसह धरै बौरई साज।
रोइ रोज बिनवत उठै करै मोह में काज।　　शृं० नि०, पृ० १०६।

५. ताप दुबरई स्वास अति व्याधि दसा में लेखि।
आहि आहि बकिबो करै त्राहि त्राहि सब देखि।　　शृं० नि०, पृ० १०७।

६. जड़ता में सब आचरन भूलि जात अभ्यास।
तम निद्रा बोलनि हँसनि भूख प्यास रस त्रास।　　शृं० नि०, पृ० १०८।

७. मरन दसा सब भांति सो ह्वै निरास मरि जाय।
जीवन मृत कै बरनिये तहँ रस भंग बराय।　　शृं० नि०, पृ० १०९।

८. अभिलाषः स्पृहा चिन्ता प्राप्त्युपायादिचिन्तनम्।
उन्मादश्चापरिच्छेदश्चेतनाचेतनेष्वपि।
अलक्ष्यवाक्प्रलापः स्याच्चेतसो भ्रमणाद्भृशम्।
व्याधिस्तु दीर्घनिःश्वास पांडुताकृशतादयः।
जड़ताहीनचेष्टत्वमङ्गानां मनसस्तथा।　　सा० द०, पृ० १४०-१४१।

संयोग शृंगार—संयोग शृंगार के अन्तर्गत दास जी ने क्रमशः आलम्बन तथा उद्दीपन विभावों का विशद विवेचन किया है। आलम्बन के अन्तर्गत उन्होंने नायक नायिका भेद तथा उद्दीपन के अन्तर्गत सखि, दूतिका, षड्ऋतु वर्णन आदि का विवेचन किया है। दास जी का नायिका भेद चित्रण इतना विशद एवं युक्तियुक्त हुआ है कि केवल इसी के बल पर वे आचार्य की कोटि में आने के अधिकारी हो जाते हैं। हमारे विचार से भिखारीदास के आचार्यत्व का महत्व काव्य के अन्य अंगों की अपेक्षा नायिका भेद के कारण विशेष है। अतः आगे के पृष्ठों में आलम्बन तथा उद्दीपन के अन्तर्गत आने वाली उन सभी बातों का विवेचन करने का प्रयास किया गया है जिनका संयोग शृंगार के अन्तर्गत दास जी ने उल्लेख किया है।

नायिका भेद वर्णन

भिखारीदास ने नायिकाभेद विषय का जितना उत्कृष्ट चित्रण किया है उतना उत्कृष्ट चित्रण अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगा। इसमें सन्देह नहीं कि अनेक कवियों जैसे कृपाराम, नन्ददास, रहीम, केशवदास, सुन्दर, चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति, सुखदेव, देव, सुरति, श्रीपति, सोमनाथ, तोष, रघुनाथ, रसलीन, पद्माकर, बेनी, प्रवीन, प्रतापसिंह, ग्वाल, सेवक, सरदार, लछिराम, नन्दराय, विहारीलाल भट्ट, और हरिऔध आदि ने नायिका भेद पर ललित पदों की रचना की है और कुछ ने तो उनका स्पष्ट विवेचन करने का भी प्रयास किया है, परन्तु क्रमबद्ध रूप से वैज्ञानिक विवेचन में रसलीन और दास ये दो आचार्य अधिक सफल हुए हैं। केशव, मतिराम और देव ने भी इस क्षेत्र में बहुत कुछ कार्य किया है।

संस्कृत साहित्य में भी, जो हिन्दी साहित्य के रीतिकाल में इतनी विकसित दशा को पहुंच चुका था, नायिका भेद का क्रमबद्ध विवेचन करने की प्रवृत्ति नहीं मिलती। प्रभुदयाल मीतल का इस सम्बन्ध में यह मत ध्यान देने योग्य है।

"आश्चर्य की बात है कि इस महत्वपूर्ण विषय पर संस्कृत और ब्रजभाषा के किसी आचार्य अथवा कवि का ध्यान नहीं गया और उन्होंने नायिकाओं की विकसित मनोदशा के अनुसार उनको किसी निश्चित क्रम से रखने की चेष्टा नहीं की। संस्कृत साहित्य में इस विषय के चार प्रमुख आचार्य भरत, धनंजय, विश्वनाथ और भानुदत्त हैं और सबका क्रम एक दूसरे से भिन्न है। क्रम की भिन्नता किसी सिद्धान्त पर आधारित नहीं है, बल्कि प्रत्येक आचार्य ने बिना किसी विशेष कारण के अपनी इच्छानुसार चाहे जिस नायिका को आगे पीछे लिख दिया है"।[1]

किन्तु हमारे विचार से दास ने नायिकाओं का वर्गीकरण आदि करके क्रमबद्ध रूप से इस विषय का जितनी सुन्दरता के साथ प्रतिपादन किया है उससे ब्रजभाषा कवियों के सम्बन्ध में मीतल जी के उक्त मत का खंडन अवश्य हो जायगा। हम इस क्रम की वैज्ञानिकता पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

१. प्रभुदयाल मीतल : ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद, पृ० १६१।

नायिकाभेद का वर्गीकरण

नायिकाओं को प्रायः निम्नलिखित पांच वर्गों में विभाजित किया जाता है—

(१) जात्यनुसार, (२) धर्मानुसार, (३) दशानुसार, (४) अवस्थानुसार और (५) गुणानुसार।

दास ने नायिका भेद का विवेचन अपने दो ग्रन्थों—रससारांश और शृंगारनिर्णय—में किया है। इनमें से रस सारांश एतद्विषयक इनकी प्रथम कृति है और शृंगारनिर्णय अन्तिम। ऐसी दशा में नायिकाभेद का जो भी विवेचन रस सारांश में हुआ है वह उनका आरम्भिक और शृंगारनिर्णय का पुष्ट एवं ठोस माना जा सकता है। हम इन दोनों ग्रन्थों के अन्तर्गत आये हुए एतद्विषयक विवेचनों को लेकर ही अपने मत की स्थापना करेंगे।

(१) जात्यनुसार

दास ने जात्यनुसार नायिकाओं के निम्नलिखित भेद किये हैं—

१. **पद्मिनी**—जिसका शरीर पद्म के समान सुवासित हो।

२. **चित्रिनी**—जो चित्र के समान लगती हो।

३. **शंखिनी** तथा (४) **हस्तिनी**—ये ग्राम्य नारियां हैं।[1]

ये भेद जात्यनुसार एवं शारीरिक सौंदर्यक्रम से हुए हैं जो समीचीन जान पड़ते हैं, और क्रमानुसार उपयुक्त भी हैं। परन्तु आचार्यों ने इन नायिकाओं का वर्णन करना अधिक उपयुक्त नहीं समझा। अतः दास ने भी इनका विशेष वर्णन नहीं किया है और यही कारण दिया है—

इन्हें शुभ्र शोभामई काव्य के बीच केहू नहीं बरनिबो चित्त दीजै।[2]

(२) धर्मानुसार नायिकाएं

आचार्यों द्वारा इस वर्ग की नायिकाओं को बहुत महत्व दिया गया है और इनका विवेचन भी बड़ा हृदयग्राही हुआ है। साहित्यदर्पण में तीन प्रकार की नायिकाएं बतायी गयी हैं—साधारण स्त्री, अपनी स्त्री तथा अन्य की स्त्री।[3] भानुदत्त ने नायिका के तीन भेद स्वकीया, परकीया तथा सामान्या बताये हैं[4] और यही भेद रसार्णव सुधाकरकार ने भी कहे हैं।[5] दास ने क्रमानुसार इनके भेदों को इस प्रकार रखा है—

---

१ भई पद्म सौगंध सो अंग जाकी वही पद्मिनी नाइका बर्न कीजै।
रली राग चित्रोपमा चित्रिनी है सबै भेद तौ कोक सो जानि लीजै।
कहै शंखिनी हस्तिनी नाम जो है सो तौ ग्राम्य नारी वही मैं गनीजै।
इन्हें शुभ्र शोभामई काव्य के बीच केहू नहीं बरनिबो चित्त दीजै।
र० सा०, पृ० ३८।

२. र० सा०, पृ० ३८।

३. अथ नायिकात्रिभेदा स्वान्यासाधारणीस्त्रीति। सा० द०, पृ० ९४।

४. सा च त्रिविधा स्वीया, परकीया सामान्य वनिता चेति।
भानुदत्त: रसमंजरी, पृ० ११।

५. स्वकीया, परकीया च सामान्या चेति सा त्रिधा। रसार्णव सुधाकर, पृ० २१।

१. **साधारण**—इस क्रम को दास ने एक ऐसी साधारण स्त्री से आरम्भ किया है जिसमें स्वकीयापन अथवा परकीयापन न हो, जो युवा, सुन्दरी तथा गुणशीला हो और जो शोभा, कान्ति और दीप्तियुक्त और साथ ही नख से शिख तक सौंदर्य की मूर्ति हो।[1] स्पष्ट है कि प्रारम्भ में प्रत्येक यौवना की यही स्थिति रहती है। इस स्थिति के पूर्व उसमें स्वकीयापन अथवा परकीयापन के भाव नहीं आ पाते। दास एक ऐसी ही सर्वांग सुन्दरी नायिका के सौंदर्य पर सारे उपमान निछावर करने को उद्यत है।

अलक पै अलिवृन्द भाल पै अरधचन्द भ्रू पै धनु नैनन पै वारों कुंज दल मैं।
नासा कीर मुकुर कपोल बिम्ब अधरन दार्‌यो वार्‌यो दसिनि ठोढी अम्बफल मैं।
कंजु कंठ भुजन मृनाल कुच कोक तृबली तरंग वारों भौंर नाभिथल मैं।
अचल नितम्बन पै जंघन कदलि खंभ बाल पगतल वारों लाल मखमल मैं।[2]

२. **स्वकीया**—साधारण स्त्री का जब विवाह हो जाता है तब पति पत्नी दोनों प्रणयसूत्र में आबद्ध हो जाते हैं। जब स्त्री मनसा, वाचा, कर्मणा अपने पति के सुख को सुख और उसके दुख को दुख मानती है तो वह स्वकीया हो जाती है। दास ने स्वकीया को आदर्श पत्नी माना है। वह पार्वती, सीता और सती से भी उच्च है, महान है, उसमें शील सुघड़ता और गुणों का सामंजस्य है। उसका शरीर स्वर्णकांति के समान तथा सुहाग से आवृत्त है।[3] वह खान पान आदि से अपने पति को सन्तुष्ट कर लेने के बाद ही स्वयं कुछ खाती पीती है। उसमें लज्जा है, संकोच है, बड़ों के प्रति आदर भाव है और मर्यादा है। वह सभी जगह अपने पति से कल्लोलें नहीं करती फिरती।[4] साहित्यदर्पणकार ने स्वकीया का लक्षण देते हुए कहा है कि विनय, सरलता आदि गुणों से युक्त काम काज में तत्पर पतिव्रता स्त्री स्वकीया कहलाती है।[5] आचार्य विश्वनाथ ने स्वकीया का निम्नलिखित एक सुंदर

---

१. **जामे स्वकिया परकिया रीति न जानी जाय।**
सो साधारण नायिका बरनत सब कविराय।
जुवा सुन्दरी गुन भरी तीन नायिका लेखि।
सोभा कान्ति सुदीप्तियुत नखशिख प्रभा विसेखि। शृं० नि०, पृ० ८-९।

२. शृं० नि०, पृ० २१-२२।

३. **मनसा वाचा कर्मना करि कान्हर सो प्रीत।**
पारवती सीता सती रीति लई तूँ जीत।
शील सुधरई सुघरई शुभ गुन सकुच सनेह।
सुवरण वरणि सुहाग सो सनी बनी तू देह। र० सा०, पृ० ७।

४. **पान औ खान तें पी को सुखी लखै आप तबै कछू पीवति खाति है।**
दास जू केलि थलीहि में ढीठो बिलोकति बोलति औ मुसकाति है।
सूने न खोलति बेनी सुनैनी ब्रती ह्वै बितावति बासर राति है।
आली वो जाने न ये बतियाँ यों तिया पिय प्रेम निबाहति जाति है।
शृं० नि०, पृ० २२-२३।

५. विनयार्जवादियुक्त गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वकीया। सा० द०, पृ० ९४।

उदाहरण भी दिया है जिससे उसकी प्रकृति का बहुत कुछ अनुमान हो सकता है—

लज्जा पर्याप्त प्रसाधनानि परभर्तृनिष्पिपासानि ।
अविनवदुर्मेधांसि धन्यानां गृहे कलत्राणि ।[1]

अर्थात् लज्जा जिनका पर्याप्त भूषण है, जो परपुरुष की तृष्णा से शून्य हैं, अविनय करना जिन्हें आता ही नहीं ऐसी सौभाग्यवती रमणी किन्हीं धन्य पुरुषों के घर में होती है।

भानुदत्त तथा रसचंद्रिकाकार ने भी स्वकीया को उत्कृष्ट गुणों वाली नायिका माना है।[2]

उक्त आचार्यों के मतों को देखते हुए दास जी का स्वकीया का लक्षण न केवल आचार्य-सम्मत और शुद्ध ही है अपितु अपेक्षाकृत अधिक व्यापक भी है।

दास के नीचे लिखे छंद में एक स्वकीया और पतिपरायणा नायिका का चित्रण इस प्रकार हुआ है—

केसरिया निज सारी रँगे लखि केसरि खौरि गोपाल के गातनि ।
दास चितै चित कुञ्जबिहारी बिछावति सेज नये तरु पातनि ।
आवत जानि के आपने भौन मिलै पहिलै लै बिरी अवदोतनि ।
बीतै बिचारते भावती को दिन भावतो की मनभावति बातनि ।[3]

यहां पर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि दास के समय में हिन्दुओं में बहु विवाह प्रथा थी जो आज भी है। कभी कभी वैभवशाली लोग रखेलियां भी रख लिया करते थे। इन बहुपत्नियों तथा रखेलियों में भी वे समस्त गुण पाये जाते थे जो प्रायः स्वकीया में मिलते हैं। अतः ऐसी अनेक पत्नियों अथवा रखेलियों को भी दास ने स्वकीया ही माना है।[4] ऐसी स्त्रियों को दास जी ने स्वकीया मान कर स्वकीया के क्षेत्र को और भी अधिक व्यापक बनाने का प्रयास किया है। उनका यह प्रयास इस क्षेत्र में एक मौलिक एवं नवीन प्रयास है।

दास ने स्वकीया के क्रमानुसार निम्नलिखित लक्षण बताये हैं[5]—

(१) पतिव्रता (२) उद्दारिजा (३) माधुर्या

वस्तुतः स्वकीया के ये तीन गुण हैं जिनका अपना अपना किन्तु अलग अलग स्थान है। दास ने उक्त लक्षणों से युक्त स्वकीया के उदाहरण अवश्य दिये हैं किन्तु उन्होंने इनकी परिभाषा अथवा व्याख्या नहीं की है। पतिव्रता पति की अनुगामिनी, उसे सुख देने वाली तथा

१. सा० द०, पृ० ६४।
२. सम्पत्काले विपत्काले या न मुंचति वल्लभम्।
शीलार्जव गुणोपेता सा स्वीया कथिता बुधैः। रसमंजरी, पृ० २१।
तत्र पतिमात्र विषयकानुरागवती स्वीया। पतिश्च विवाहजन्य संस्कार विशेषवान्। उभयानुरक्तायामतिव्याप्तिवारणाय मात्रेति। रसचंद्रिका, पृ० १-२।
३. शृं० नि०, पृ० ४७।
४. श्री भामिन के भौन जो भोग भामिनी और।
तिनहूं को स्वकियाहु में गनें सुकबि सिर मौर। शृं० नि०, पृ० २२।
५. कुलजाता कुलभामिनी स्वकिया लच्छन चारु।
पतिब्रता, उद्दारिजो, माधुर्जालंकारु। शृं० नि, पृ० २२।

मर्यादा के अन्दर रहने वाली है[1], उद्दारिजा पति का भला चाहने वाली और उसके लिए अपनी बहुमूल्य वस्तु तक को कुछ न समझ कर निछावर कर डालने वाली[2] तथा **माधुर्या** अपने प्रियतम की प्रियपात्र एवं सच्चरित्रा के रूप में प्रसिद्ध स्वकीया नायिका को कहते हैं।[3] स्वकीया के ये तीनों गुण भारतीय संस्कृति तथा आदर्श के ही अनुरूप हैं और दास ने इनकी मर्यादा को सुरक्षित रख कर स्वकीया के चरित्र को बहुत ऊँचा उठा दिया है।

एक नायक की अनेक पत्नियां होने पर सभी स्वकीया की श्रेणी में आती हैं, किन्तु नायक अपने स्वभाववश अथवा प्रकृति वश सब को एक समान प्रेम नहीं करता, किसी को अधिक और किसी को कम अथवा किसी को बिल्कुल नहीं करता है। अतः इस दृष्टि से इस नायिका के दास ने दो भेद और किये हैं—(१) **ज्येष्ठा** अर्थात् जिसे नायक अधिक प्यार करे, और (२) **कनिष्ठा** जिसे वह अपेक्षाकृत कम प्यार करे अथवा बिल्कुल प्यार न करे।[4] रसमंजरीकार तथा रसचंद्रिकाकार ने भी ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा उन्हीं परिणीता पत्नियों को कहा है जिन्हें नायक क्रमशः अधिक और कम प्यार करता हो।[5]

नायक के स्वभावानुसार एवं साहित्य में वर्णित भेदों के अनुसार दास ने ज्येष्ठा कनिष्ठा नायिका के निम्नलिखित ६ भेद और किये हैं।[6]

१. साधारण ज्येष्ठा, २. दक्षिण नायक की ज्येष्ठा कनिष्ठा, ३. शठ नायक की ज्येष्ठा, ४. शठ नायक की कनिष्ठा, ५. धृष्ट नायक की ज्येष्ठा, और ६. धृष्ट नायक की कनिष्ठा।

उपर्युक्त क्रम स्वयं दास का ही क्रम है जो नायक भेद के वैज्ञानिक क्रम अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट पर ही आधारित है। जिस प्रकार भेदानुसार नायक की प्रकृति में

१. देखिये पृ० २४० की अन्तिम पादटिप्पणी।

२. हेम को कंकन हीरा को हार छोड़ावती दै दै सोहाग असीसनि।
दास लला को निछावरि बोलि जु मागै सु पाय रहै बिस बीसनि।
द्वार में पीतम जौलों रहै सनभानत देसनि के अवनीसनि।
भीतरी ऐबो सुनाय जनी तबलों लहि जाती घनी बकसीसनि।
शृं० नि०, पृ० २३।

३. प्रीतम प्रीतिमई अनुमानै परोसिन जानै सुनीतिन सों ठई।
लाज सनी है बड़ीनि भनी बरनारिन में सिरताज गनी गई।
राधिका को ब्रज की युवती कहैं याहि सोहाग समूह दई दई।
सोती हलाहल सौती कहैं औ सखी कहैं सुन्दर सील सुधामई।
का० नि०, पृ० १०६-१०७।

४. जाहि करै पिय प्यार अति वही ज्येष्ठा जानि।
जा पर कछु घटि प्रीति है ताहि कनिष्ठा मानि। र० सा० १६।
प्यारी ज्येष्ठा प्यार बिन कहे कनिष्ठा बाम। शृं० नि०, पृ० २४।

४. परणीतत्वे सति भर्तुरधिकं स्नेह ज्येष्ठा।
परणीतत्वे सति भर्तुर्न्यूनस्नेहा कनिष्ठा।
परिणाय कनिष्ठोत्कृष्ट स्नेह विषयभूता ज्येष्ठा। र० मं०, पृ० ५७।
तादृशापकृष्टस्नेहविषय भूता कनिष्ठा। र० चं०, पृ० ८।

६. देखिये शृं० नि०, पृ० २४, २५, २६।

अन्तर आता जाता है उसी प्रकार ज्येष्ठा कनिष्ठा के प्रति उसके प्यार में भी चढ़ाव उतार के लक्षण दिखायी पड़ने लगते हैं।

३. **परकीया**—पर पुरुष से छिप कर प्रेम करने वाली स्त्री को परकीया कहते हैं।[1] यह लक्षण रसमंजरीकार के अनुसार है।[2] इस का स्थान स्वकीया के बाद आता है। इसमें सन्देह नहीं कि नैतिक दृष्टि से इसका चरित्र उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता, परन्तु समाज में लुक छिप कर और कभी कभी डंके की चोट पर-पुरुष से प्रेम करने वाली स्त्रियों का अभाव न होने के कारण उनकी गतिविधियों का मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में अध्ययन करके आचार्यों ने परकीयाओं को भी साहित्य में स्थान दिया है।

दास ने परकीया नायिका के अनेक भेदोपभेदों द्वारा उनका विशेष रूप से विस्तार किया है। परकीया के भेदोपभेदों का यह वर्णन दास ने अपने ग्रन्थों—'रस सारांश' और 'श्रृंगारनिर्णय'—में अलग अलग किया है। अतः इनका विवेचन इन ग्रन्थों के आधार पर पृथक पृथक करना ही उपयुक्त होगा।

'रस सारांश' के अनुसार परकीया के भेदोपभेद

परकीया परपुरुष से प्रेम करने के कारण लोकलाज वश अपने प्रेम को दूसरों पर यथाशक्ति प्रकट नहीं होने देना चाहती। विवाहिता नायिका को जो परपुरुष से प्रेम करे ऊढ़ा तथा अविवाहिता को अनूढ़ा कहते हैं।[3] परकीया नायका के दास ने क्रमानुसार दो भेद और किये हैं—(१) उद्बुद्धा अर्थात् जो स्वयं नायक से मिलने के साधन (पेंच) करे तथा (२) उद्बोधिता अर्थात् जिसमें मिलन नायक द्वारा अपनाये गये साधनों से हो।[4]

प्रायः परकीया नायिका को अपने नायक पर अपना प्रेम प्रकट करने के लिए लोकलाज को निबाहने के निमित्त कुछ चातुरी से भी काम लेना पड़ता है। कभी यह चातुरी उसके वचन द्वारा और कभी क्रिया द्वारा प्रकट होती है। अतः दास ने (१) क्रिया चतुर तथा (२) वचन चतुर परकीयाओं के साथ साथ इनके अन्तर्गत दृष्टिचेष्टा नामक एक और परकीया की कल्पना की है।[5] इस अन्तिम नायिका को गुरुजनों के सामने नायक द्वारा चुपके से स्पर्श कर लिये जाने पर प्रसन्नता होती है[6] और यह स्पर्श प्रायः नायिका के संकेतों पर होता है। स्थिति

१. दुरे दुरे पर पुरुष ते प्रेम करै परकीय। — श्रृं० नि०, पृ० २७।
परनायक अनुराग तिय परकीया सों लेखि। — र० सा०, पृ० १६।

२. अप्रकट परपुरुषानुरागा परकीया। — र० मं०, पृ० ६४।

३. ऊढ़ा ब्याही और सों प्रीति और सों जाहि।
बिन ब्याहे पर पुरुष रत वहै अनूढ़ा आहि। — र० सा०, पृ० १७।

४. मिलन पेंच आपुहि करै उद्बुद्धा है सोइ।
जो नायक पेंचनि मिलै उद्बोधिता सो होइ। — र० सा०, पृ० २०।

५. परनायक अनुराग तिय परकीया सो लेखि।
चीन्हि चतुर बातें क्रिया दृष्टिचेष्टा देखि। — र० सा०, पृ० १६।

६. तुरत चतुरता करत अति गुरजन संग लखै न।
परसि जात हरि गात है सरसि जात तिय नैन। — र० सा०, पृ० १६।

के अनुसार परकीया के दो भेद दास ने और किये हैं--(१) असाध्या तथा (२) साध्या।

(१) **असाध्या**—कभी कभी नायिका को अनेक अनिवार्य कारणों से प्रियमिलन से बचना पड़ता है, उस समय यह नायिका असाध्या परकीया अथवा अधम स्वकीया कहलाती है।[1] असाध्या परकीया के दास ने निम्नलिखित पाँच भेद किये हैं।[2]

१. **गुरुजन भीता**--जो गुरुजनों पर अपने प्रेम को प्रकट न करना चाहे और जो उनसे सभीत रहती हो।

२. **दूती वर्जिता**-जिसे दूती में आस्था न हो।

३. **धर्म सभीता**--जो धर्मभीरुता के कारण प्रिय से न मिल सके।

४. **अतिकांत्या**- जो अधिक सौंदर्य के कारण एकांत प्रिय हो।

५. **खलवेष्टिता**--जो प्रपंचियों के मध्य (अथवा उनके ग्राम में) हो।

दास ने इन भेदों के लक्षण न देकर उदाहरणमात्र दिये हैं[3] जिनके आधार पर उपर्युक्त लक्षण निश्चित किये जा सकते हैं।

(२) **साध्या**—साध्या के लक्षणों में दास ने वृद्धवधू, रोगी वधू, बालक वधू, ग्राम वधू आदि का उल्लेख किया है।[4] उदाहरणार्थ—

छैल छबीले रसीले हौ तौ तुम आपनी प्यारी के भाग के भाय सों।
आपने भालहि काहे को दूखिये और को चंदन चाहि बनाय सों।
लाल कहा तुमको छति लाभ हमैं चित चाव सों औ बिन चाव सों।
बावरो, बूढ़ो, बुरो, बहिरो तौ हमारो है प्यारो तिहारी बलाय सों।[5]

---

१. प्यार मिलन सों बचि रहै ताहि कहत कवि लोइ।
कोऊ असाध्या परकिया अधम सुकीया कोइ। र० सा०, पृ० १७।

२. गुरुजनभीता दूतिका बर्जित धर्म सभीत।
अतिकांत्या खलवेष्टिता गनो असाध्या मीत। र० सा०, पृ० १७।

३. गुरुजनभीता--बसत नयन पुतरीन में मोहन बदन मयंक।
उर दुरजन ह्वै अड़ि रही गुर गुरजन की संक।
धर्मसभीता----सखि शोभा सरबर निरखि मनु गयंद बलवान।
जोरिन करि तोरन चहत कुल को ग्यान अलान।
दूती वर्जिता---तुम सी सो हिय की कहत रही रहत जिय भीति।
मोहि अलीनि जु छाँह की नहि परती परतीति।
अतिकांत्या----मुख को डरें चकोर तें सुक ते अधर सुदंत।
स्वाँस लेत भौंरनि डरें नवला रहे एकंत।
खलवेष्टिता---इहाँ बचै को बावरी कान्ह नाम लै रंच।
चरचि चरचि चरचनि बिना रचै पंच परपंच।
रस सारांश, पृ० १७-१८।

४. वृद्ध बधू रोगी बधू बालक बधू बखानि।
ग्राम बधू आदिक सकल साध्या लक्षण जानि। र०सा०,पृ० १८।

५. र० सा०, पृ० १८-१९।

इस परकीया का जब अपने नायक (परपुरुष) से बड़े यत्नादि करके मिलन होता है तो वह दुखसाध्या होती है।[1] जब दुखसाध्या की कामना सफल हो जाती है तब वह साध्या हो जाती है। यही दुखसाध्या की अन्तिम अवस्था है।

प्रकृति के अनुसार दास ने परकीया नायिका के निम्नलिखित भेदोपभेद और किये हैं।[2]

१. **गुप्ता**—जो अपनी सुरति छिपाने का प्रयत्न करे। यह तीन प्रकार की होती है।

(क) भूतगुप्ता (ख) भविष्य गुप्ता, और (ग) वर्तमान गुप्ता।

२. **विदग्धा**—जो चतुराई का आश्रय ले। यह दो प्रकार की होती है।

(क) **वचन विदग्धा**—जो वचन द्वारा चतुराई करे।

(ख) **क्रिया विदग्धा**—जिसके कार्यों से चतुराई का बोध हो।

३. **कुलटा**—जो बहुत नायकों से प्रसन्न रहे।

४. **मुदिता**—जिसे इच्छित वस्तु (नायक आदि) प्राप्त हो।

५. **लक्षिता**—जिसमें 'सुरति का हेतु' नायिका की सखियों पर प्रकट हो जाय।

६. **अनुशयना**—जिसका सहेट (मिलनस्थल) नष्ट हो गया हो। यह तीन प्रकार की होती है—

(क) प्रथम अनुशयना—जिसका सहेट नष्ट हो गया हो।

(ख) द्वितीय अनुशयना—जिसे अपने नायक (परपुरुष) से भविष्य में न मिल सकने की आशंका हो।

(ग) तृतीय अनुशयना—जो किसी कारण वश सहेट पर प्रिय से मिलने न जा सकने के कारण पछताती हो।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि दास ने अपने 'रस सारांश' ग्रंथ में, जो कालक्रमानुसार प्रथम रचना होने के कारण बहुत प्रौढ़ नहीं कही जा सकती, परकीया के अनेक

१. बड़े जतन यारहि मिलै दुखसाध्या है सोइ।
साभादिकौ उपाय सब यामें शोभित होइ। र० सा०, पृ० १९।

२. सुनियें परकीयानि में प्रकृति जो षटविधि होइ।
तिनके बारह नाम धरि बरनत हैं जिय जोइ।
गुप्ता सुरति छपाउ भयो, होने बरतमानहि।
नारि विदग्धा वचन, क्रिया चतुराई ठानहि। र० सा०, पृ० २०।

३. कुलटा बहु मित्रिणी मुदित मुदिता बाँछित लहि।
सुरति हेतु लखि सखिन प्रगट लच्छिता प्रकासहि।
संकेत मिट्यो अब क्यों मिलिहि हौं न गई जहँ गयो पिय।
कवि त्रिबिध अनुसयना कहँ तीन भाँति पछितात हिय।
र० सा०, पृ० २०-२१।

भेदोपभेद किये हैं। उन्होंने दोहों और कवित्तों (सवैयों आदि) में इन विभिन्न प्रकार की नायिकाओं के उदाहरण भी दिये हैं।

श्रृंगार निर्णय में परकीयाओं का अच्छा किन्तु प्रौढ़ विवेचन है। अतः जहां तक निर्दिष्ट नायिकाक्रम का प्रश्न है यह क्रम श्रृंगार निर्णय के अनुसार ही शुद्ध मानना उचित होगा।

श्रृंगार निर्णय के अनुसार परकीया के भेदोपभेद

परकीया के सर्वप्रथम गुणानुसार दो भेद दास जी ने कहे हैं—

(१) प्रगल्भा, और (२) धीरा।[1]

प्रगल्भा उस परकीया को कहते हैं जिसका प्रेम दूसरे न जान सकें और धीरा उसे कहते हैं जिसका प्रेम दूसरों पर प्रगट हो जाय और फिर नायिका लज्जा का परित्याग करके बातें करे।[2] स्वकीया तथा परकीया दोनों नायिकाओं के वर्णन में दास जी ने ऊढ़ा और अनूढ़ा का उल्लेख किया है।

स्वयं अविवाहित होने पर जो नायिका पर पुरुष से प्रेम करे वह अनूढ़ा और विवाहिता होने पर यदि वह परपुरुष से प्रेम करे तो ऊढ़ा कहलाती है।[3] दास जी ने इन दोनों नायिकाओं का सुन्दर चित्रण किया है—

अनूढ़ा—जानति हौं विधि मीच लिखी हरि वाकी तिहारे बिछोह के बानन।
जौ मिलि देहु दिलासो मिलाप को तौ कछू वाकै परै कल प्रानन।
दास जू जाहि घरी तें सुनी निज ब्याह उछाह की चाह की कानन।
वाही घरी ते न धीर धर्‌यो परै पीरो ह्वै आयो पियारी को आनन।[4]

ऊढ़ा—इहि आनन चंद मयूखन सों अँखियान की भूख बुझैबो करो।
तन स्याम सरोरुह दास सदा सुख दानि भुजानि भरैबो करौ।
डर दास न सास जेठानिन को किन गांव चबाव चलैबो करौ।
मन मोहन जौ तुम एक घरी इन भांतिन सों मिलि जैबो करौ।[5]

दास ने अनूढ़ा के अन्तर्गत परकीया के दो भेद (१) उद्बुद्धा और (२) उद्बोधिता और किये हैं। दास जी का कथन है (और यह सत्य भी है) कि जिस अनूढ़ा के हृदय में अपने प्रेमी के लिए सच्ची और निश्चल प्रीति हो वह शकुन्तला की भांति स्वकीयत्व को

---

१. दुरे दुरे पर पुरुष ते प्रेम करै परकीय।
प्रगल्भता पुनि धीरता भूषन द्वै रमनीय। श्रृं० नि०, पृ० २७।

२. निधरक प्रेम प्रगल्भता जौं लों जानि न जाइ।
जानि गये धीरत्व है बोलै लाज बिहाइ। श्रृं० नि०, पृ० २७।

३. होति अनूढ़ा परकिया बिन ब्याहे पर लीन।
प्रेम अनत ब्याही अनत ऊढ़ा तरुनि प्रबीन। श्रृं० नि०, पृ० २८।

४. श्रृं० नि०, पृ० २८-२९। ५. श्रृं० नि०, पृ० २९।

प्राप्त होती है । ऐसी स्त्री प्रथम तो अपने प्रेमी से अनुराग करती है जो प्रेम मार्ग का प्रथम चरण है और फिर उस पर प्रेमासक्त हो जाती है ।[1]

उद्बुद्धा वह है जो अच्छा पात्र देख कर स्वयं उस पर रीझ जाय और उससे प्रेम करने लगे । उपपति के रूप पर रीझ कर स्वयं उपपति की चतुराई द्वारा (जैसे दूती आदि की सहायता से) प्रकट किये हुए प्रेम को समझ कर जो नायिका उससे प्रेम करने लगे उसे उद्बोधिता कहा जाता है ।[2] दास ने उद्बुद्धा के दो भेद (१) अनुरागिनी और (२) प्रेमासक्ता किये हैं । उद्बुद्धा के हृदय में जब उपपति के लिए प्रेम उत्पन्न होता है, कुछ आकर्षण पैदा होने लगता है तब वह उससे मन ही मन अनुराग करती है जो कालान्तर में बढ़ते बढ़ते इतना दृढ़ हो जाता है कि अन्ततः वह प्रेमासक्त हो जाती है । दास जी ने अनुरागिनी तथा प्रेमासक्ता के लक्षण न देकर उन्हें उदाहरणों से ही स्पष्ट किया है। उद्बोधिता के दास ने तीन भेद किये हैं--असाध्या, दुखसाध्या और साध्या । ये स्थितियां उद्बोधिता की क्रमशः बढ़ती हुई दशाएं कही जा सकती हैं और इस क्रमिक विकास के मनोवैज्ञानिक कारण हैं। गुरुजन, समाज तथा लोकभय आदि के कारण नायिका नायक से मिलने नहीं पाती। उसकी अभिलाषाएं उसी के हृदय में रह जाती हैं। ऐसी स्थिति में वह असाध्या मानी जाती है । जब नायक को यह बात ज्ञात होती है तो वह दूतिका, पाती आदि की सहायता से अपनी प्रेमिका को समझाता है । परन्तु प्रेम की ज्वाला से जल रही इस नायिका के हृदय में धैर्य कहां ? उसे तो शीतल पदार्थ भी काटने दौड़ते हैं, सुखदायक वस्तुएं भी दुखदायक हो जाती हैं। इस स्थिति में वह दुखसाध्या बन जाती है ।[3] दास द्वारा प्रस्तुत असाध्या, ऊढ़ा और दुखसाध्या के ये दो सुन्दर चित्र दर्शनीय हैं--

असाध्या ऊढ़ा---

> **देवर की त्रासन कलेवर कँपत है न सासु डर आसिनि उसास लै सकति हौं ।**
> **बाहिर के घर के परोस नरनारिन के नैनन में कांटे सी सदा ही कसकति हौं ।**
> **दास नहि जानौं हौं बिगारो कहा सबही को याही पीर बीर नित पेट पकरति हौं ।**
> **मोहि मनमोहन मिलाय इत देती तुम मैं तो वह ओर अवलोकति जकति हौं ।**[4]

१. उद्बुद्धा उद्बोधिता है परकिया बिसेखि ।
निज रीझै सुपुरुष निरखि उद्बुद्धा सो लेखि ।
अनूढ़ानि को चित्त जो निबसै निहचल प्रीति ।
तौ स्वकियन की गति लहै संकुतला की रीति ।
प्रथम होइ अनुरागिनी प्रेम असक्ता फेरि ।
उद्बुद्धा तेहि कहत हैं परम प्रेम रस घेरि । शृं० नि०, पृ० २६ ।

२. जा छबि लखि नायक कोऊ लावै दूती घात ।
उद्बोधिता सो परकिया वह असाध्य कहि जात । शृं० नि०, पृ० ३१ ।

३. प्रथम असाध्या सी रहै दुखसाध्या पुनि होय ।
साध्य भए पर आप ही उद्बोधिता सु होय । शृं० नि०, पृ० ३१ ।

४. शृं० नि०, प० ३२ ।

दुखसाध्या—

अब तौ बिहारी के वे बानक गये री तेरी तनदुति केसरि को नैन कसमीर भौ।
श्रोन तुव बानी स्वाति बुंदनि को चातक भौ स्वासनि को भरिबो द्रुपदजा को चीर भौ।
हिय की हरख मरुधरनि को नीर भौ री जियरो मदन तीरगन को तुनीर भौ।
एरी बेगि करि कै मिलाप थिर थाप न तो आप अब चाहत अतन को सरीर भौ।[1]

यहाँ दुखसाध्या के दुखों के लिए कितनी सुन्दर व्यंजना है? इस दुख साध्या के दुखों का भी अन्त होता ही है और तब मिलन होने पर वह साध्या हो जाती है। एक ऐसी ही नायिका का चित्रण दास जी ने इस प्रकार दिया है—

नायक हौ सब लायक हौ जु करौ सो सबै तुमकों पचि जाहीं।
दास हमें तो उसास लिये उपहास करैं सब या बृज माहीं।
आय परैगी कहूं ते कोऊ तिय गैल में छैल गहौ जिन बाहीं।
द्वै ही दिना की तिहारी है चाह गई करि जाहु निबाहिहौ नाहीं।[2]

प्रकृति के अनुसार परकीया के भेद—रस मंजरीकार ने प्रकृत्यनुसार परकीया के ये भेद किये हैं—गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयना और मुदिता।[3] दास जी ने शृंगारनिर्णय में कुलटा को छोड़कर अन्य इन सभी भेदों का विवेचन किया है। उन्होंने प्रकृति के अनुसार परकीया के जो भेद किये हैं वे इस प्रकार हैं[4]—

१. विदग्धा का दास जी ने लक्षण नहीं दिया है। रसमंजरीकार के ही आधार[5] पर उन्होंने भी इसके वचनविदग्धा और क्रियाविदग्धा ये दो ही भेद किये हैं—

इसके पश्चात् दास जी ने उस स्त्री को **गुप्ता** कहा है जो किसी बहाने से सुरति को छिपाये।[6] गुप्ता तीन प्रकार की होती है—

(क) भूत गुप्ता (ख) भविष्य गुप्ता और (ग) वर्तमान गुप्ता

रसमंजरीकार ने गुप्ता नायिकाओं के यही तीन प्रकार बताये हैं। परन्तु भेदों के नामों में यह अन्तर है कि रसमंजरीकार ने इनके नाम संस्कृत-बहुल भाषा में रखे हैं जबकि

१. शृं० नि० पृ० ३३। २. शृं० नि०, पृ० ३४।

३. गुप्ता विदग्धालक्षिताकुलटाऽनुशयनामुदिता प्रभृतीनां परकीयायाभेदाऽन्तर्भावः। र० मं०, पृ० ६६।

४. परकीया के भेद पुनि चार बिचारो जाहिं।
होत बिदग्धा लच्छिता मुदिता अनुसयनाहिं।
द्विबिध बिदग्धा कहत हैं कीनें कवित विवेक।
वचन बिदग्धा एक है क्रिया बिदग्धा एक। शृं० नि०, पृ० ३४।

५. विदग्धा च द्विविधा। वाग्विदग्धा क्रिया विदग्धा च। र० मं०, पृ० ७१।

६. जब तिय सुरति छपावही करि बिदग्धता बाम।
भूत भविष बरतमान सो गुप्ता ताको नाम। शृं० नि०, पृ० ३५।

दास ने इन्हें सरल हिन्दी में कर लिया है[१]—

२. लक्षिता—जहां नायिका का 'सुरति हेतु' दूसरों पर प्रकट हो जाय वहां लक्षिता होती है।[२] रसमंजरीकार का भी कथन है कि जहां नायिका का परपुरुष अनुराग दूसरों पर प्रकट हो जाय वहां नायिका लक्षिता कहलाती है।[३] दास ने इसके सुरति लक्षिता और हेतु लक्षिता ये दो भेद बतलाये हैं।

३. मुदिता—जब इच्छित बात बन आये और परिणामतः नायिका को प्रसन्नता हो तब नायिका मुदिता होती है।[४] रसमंजरीकार का कथन है कि नायक से मिलने की सम्भावना आदि से प्रसन्न एवं आनन्दित नायिका को 'मुदिता' कहते हैं।[५] दास के लक्षण में 'निश्चय' का भान होता है और रसमंजरीकार में सम्भावना की बात कही गयी है। यही दोनों में अन्तर है।

४. अनुशयना—इसके दास जी ने लक्षण न देकर केवल भेद दिये हैं।[६] वस्तुतः रसचन्द्रिकाकार के अनुसार संकेतस्थल नष्ट होने के दुख से दुखी नायिका को अनुशयना कहते हैं।[७] रसमंजरीकार के अनुसार भी अनुशयना तीन प्रकार की होती है (१) वर्तमान निर्दिष्ट मिलनस्थल के नष्ट होने पर दुखी होने वाली, (२) भावी सहेट के अभाव की चिन्ता करने वाली तथा (३) स्वनिर्दिष्ट संकेतस्थल पर नायक के गमन का अनुमान करके दुखी होने वाली।[८] दास ने भी यही तीन अनुशयनाएं मानी हैं अर्थात्—

(क) केलिस्थान विनाशिता, (ख) भावीस्थान अभाव और (ग) संकेत निःप्राप्यता।

अनुशयना के इन तीनों भेदों का उल्लेख उन्होंने क्रमशः प्रथम अनुशयना, दूसरी अनुशयना और तीसरी अनुशयना के नाम से अपने रस सारांश में किया है।[९] उपर्युक्त

---

१. रस मंजरीकार ने गुप्ता के ये भेद कहे हैं—
वृत्तसुरतगोपना, वर्तिष्यमाणसुरतगोपना वृत्त वर्तिष्यमाण सुरतगोपना च। र० मं०, पृ० ७१।

२. लक्षितासु जाको सुरति हेत प्रगट ह्वै जात।
सखी व्यंग्य बोलै कहै निज धीरज धरि बात। शृं० नि०, पृ० ३६।

३. लक्षिता विदग्धां विदित पर पुरुषाऽनुरागेत्यर्थः। र० मं०, पृ० ७५।

४. वहै बात बनि आवई जो चित चाहत होइ।
तातें आनन्दित महा मुदिता कहिये सोइ। शृं० नि०, पृ० ३८।

५. नायकलाभ सम्भावनादिमत्तयाऽऽनन्दवतीत्यर्थः। र० मं०, पृ० ८३।

६. केलिस्थानि बिनासिता भावस्थान अभाव।
अरु संकेतनिप्राप्यता अनुसयनी त्रै नाव। शृं० नि०, पृ० ३८।

७. संकेत विघटनदुःखवत्यनुशयना। र० मं०, पृ० ११।

८. वर्तमानस्थान विघटनेन भाविस्थान भावशंकया स्वानिधिष्ठित संकेतस्थलं प्रतिभर्तुर्गमनाऽनुमानेनाऽनुशयाना त्रिधा। र० मं०, पृ० ७९।

९. देखिये पृ० संख्या २४५।

विवेचन से स्पष्ट है कि इन भेदों की परिभाषाएं प्रायः वही हैं जो रसमंजरीकार ने रखी हैं। यही परिभाषाएं दूसरे शब्दों में दास के रस सारांश ग्रंथ में भी मिलती हैं।

दास जी ने उपर्युक्त भेदोपभेदों के कहीं कहीं लक्षण देते हुए उन्हें उदाहरणों से समझाने का प्रयत्न किया है। वास्तविकता तो यह है कि इन नायिकाओं का चित्रण दास जी ने बड़ी सफलता के साथ किया है। इनमें से हम दास जी द्वारा दिये गये गुप्ता परकीया के उदाहरण उद्धृत करेंगे जिनसे स्पष्ट प्रतीत होगा कि भावव्यंजना तथा विषय को ललित शब्दों में प्रकट करने की वे कहां तक क्षमता रखते हैं।

नायिका बड़ी चतुर है। अपनी सुरति को छिपाने के लिए उसने कैसा सुन्दर बहाना गढ़ लिया है। वह माँ (देवि) से उपालंभ के रूप में कह रही है "तुम मुझे गाय दुहाने भेजती हो, नहीं जाती हूं तो क्रोध करती हो। आज जानती हो क्या हुआ ? जैसे तैसे उसको पकड़ कर तो ले आई हूं किन्तु इसके लिए मुझे कितना श्रम उठाना पड़ा, दौड़ते दौड़ते थक गयी, सारा शरीर चूर हो गया, बरोटें लग गयीं, चूड़ियां फूट गयीं, देह धूलधूसरित हो गयी, यह मोती का हार टूट गया, यह लो इसे संभालो" इस उक्ति से दास के वाक्चातुर्य एवं विषय प्रतिपादन कला का ज्ञान होता है।

पठावत धेनु दुहावन मोहि न जाहुं तो देवि करो तुम तेहु।
छुड़ाय गयो बछरा यह बैरि मरू करि हौं गहि ल्याई हौं गेहु।
गई थकि दौरत दौरत दास बरोट लगे भई बिह्वल देहु।
चुरी भई चूरि भरी भई धूरि परो ढुरि मुक्तहरो यह लेहु।[1]

यह थी भूत गुप्ता। अब जरा भविष्य गुप्ता पर भी दृष्टि डालिए। अपनी भावज से कह रही है "भाभी यदि तू कहे तो सिर उतार कर तुझे दे दूं परन्तु ऊख के खेत की रखवाली के लिए नहीं जाऊंगी। इस कारण कि यदि मैं वहां किसी डरावने जानवर को देख लूंगी तो उससे बचने के लिए खेत के बीच में छिपना होगा और इसका परिणाम यह होगा कि पत्तों के छरोर लगने से सारे कपड़े फट जायंगे। मगर डर के मारे जाना तो पड़ेगा ही और यदि घरवालों ने मुझे दोष लगाया तो मैं मौन न रहूंगी तेरा ही नाम लगा दूंगी"।

दै हौं सकौं सिर तो कहे भाभी पै ऊख को खेत न देखन जैहौं।
जैहौं तो जीव डरावन देखिहौं बीचहि खेत के जाय छपैहौं।
पैहौं छरोर जो पातन को फटिहैं पट क्योंहूँ तो हौं न डरैहौं।
रैहौं न मौन जो गेह के रोस करैंगे सु दोस में तेरोई दैहौं।[2]

अन्त में इस वर्तमान गुप्ता का भी वाक्चातुर्य देखने की चीज है। वह अपनी सखी से कह रही है "अभी थोड़ी ही देर की बात है। मैं यमुना में नहा रही थी। अचानक गहरे में चली गयी जहां एक ग्राह ने मेरा पैर पकड़ लिया और वह मुझे अथाह जल में ले जाने

१. शृं० नि०, पृ० ३५।
२. शृं० नि०, पृ० ३६।

लगा किन्तु सौभाग्य से मनमोहन ने दूर से देख लिया। झट वे पानी में कूद पड़े और तैरते हुए मेरे पास आये तथा उन्होंने उस ग्राह से लड़कर मुझे छुड़ाया। मैं बच गयी। यह कहो आज तो मेरा नया जन्म हुआ है। अतः इस जीवन की रक्षा के लिए कृतज्ञता प्रकाशनार्थ पहले तो मैं मनमोहन से भेंटूंगी और फिर प्यारी सखी तुझसे"। इन पंक्तियों में कितना चातुर्य भरा है।

अब ही की है बात हौं न्हात हुती अचका गहिरे पग जात भयो।
मोहि ग्राह अथाह को लै ही चल्यो मनमोहन दूरिहि तें चितयो।
द्रुत दौरि कै पौरि कै दास बरोरि कै छोरि कै मोहि बचाय लयो।
इन्हें भेंटती भेंटिहौं तोहिं अली भयो आज तो मो अवतार नयो।[1]

दास का मत है कि कभी कभी मुदिता और अनुशयना में भी विदग्धता का सम्बन्ध हो जाता है और तब भावसबलता होती है।[2]

इस प्रकार परकीया के भेदोपभेदों का दास जी के दो ग्रंथों, अर्थात् रस सारांश और शृंगार निर्णय, के आधार पर यथातथ्य विवेचन हो चुका है। जहां तक परकीया के ऊढ़ा, अनूढ़ा, उद्बुद्धा, उद्बोधिता, असाध्या, साध्या आदि भेदों का संबंध है दास जी का मत मूलतः दोनों ग्रंथों में समान है। यह बात दूसरी है कि दोनों ग्रंथों में इनके विवेचन के लिए अलग अलग शब्दों का प्रयोग हुआ है जो किसी भी ग्रंथकार के लिए नितान्त स्वाभाविक है। थोड़े बहुत और भी साधारण अन्तर (जैसे असाध्या परकीया के पांच भेद) इन ग्रंथों में देखने को मिलते हैं किन्तु वे अधिक महत्व के नहीं, वे केवल अपने विषय को अधिक ग्राह्य एवं बोधगम्य बनाने के लिए हैं।

नायिकाओं की प्रकृति के अनुसार दास जी ने रस सारांश और शृंगार निर्णय में उनका एक क्रम निर्धारित किया है जिसमें निम्नलिखित अन्तर दिखायी पड़ता है। इन दोनों ग्रन्थों में नायिकाओं का जो क्रम मिलता है उसे नीचे उद्धृत किया जाता है—

रस सारांश	शृंगार निर्णय
१. गुप्ता	१. विदग्धा, जिसके अन्तर्गत गुप्ता को ले लिया गया है।
२. विदग्धा	२. लक्षिता
३. कुलटा	३. मुदिता
४. मुदिता	४. अनुशयिना
५. लक्षिता	
६. अनुशयना	

उपर्युक्त क्रम पर एक दृष्टि डालने से दास के विषय में इस बात का अनुमान हो सकता है कि उचित लगने पर वे एक बार निश्चित किये हुए मत को संशोधित अथवा परिवर्तित

१. शृं० नि०, पृ० ३६।

२. मुदिता अनुसयनाहुँ में बिदग्धाहु मिलि जाय।
सबल भाव इहि भाँति बहु बरनत हैं कबिराय। शृं० नि०, पृ० ३९।

कर देना असंगत न समझते थे। किसी कवि के लिये यह एक बड़े गुण की बात है। शृंगार निर्णय में उन्होंने जो उपर्युक्त मत स्थिर किया है वह बड़ा वैज्ञानिक है और उसमें क्रमानुसार नायिकाओं की विकसित होती हुई दशा का आभास मिलता है। भिन्न भिन्न परिस्थितियों में पड़ी हुई नायिकाओं की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जो मानसिक दशाएं देखने में आती है उनका समावेश भी इसमें हो गया है। अतः शृंगार निर्णय वाला उनका क्रम अधिक युक्तिसंगत, प्रौढ़ एवं श्रेष्ठ है। हम इसका विवेचन करके इस बात को और भी अधिक स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

दास द्वारा निर्दिष्ट प्रकृत्यनुसार नायिकाओं का वैज्ञानिक विवेचन

परकीया नायिका छिपकर पर पुरुष से प्रेम करती है। छिपकर प्रेम करने के लिए जब तक कोई आधार न होगा तब तक नायिका लोक और समाज के आदर्श नियमों की उपेक्षा करने का साहस न करेगी। ऊढ़ा, जिसका विवाह हो चुका है, के लिए तो यह बन्धन और भी दृढ़ है। उसे तो हर समय पति, सास, ससुर, देवर, देवरानी, जेठ, जेठानी आदि का भय बना रहता है। किसी पर भी उसके परपुरुष प्रेम प्रकट हो जाने पर उसका भावी जीवन ही दुरूह हो जायगा। अतः यदि उसमें परिस्थितिवश अथवा अपनी प्रकृति अथवा अन्य किसी कारण से पर पुरुष के लिए प्रेम का उदय होता है तो यह एक स्वाभाविक सी बात है कि वह इस आग से सबकी आंखों के सामने न खेलेगी। उसे भली भांति इस बात का ज्ञान हर समय बना रहेगा कि वह एक अनैतिक, असामाजिक तथा अनादृत कार्य की ओर बढ़ रही है जिसकी फलप्राप्ति में कोई भी सच्चरित्र व्यक्ति उसकी सहायतार्थ तत्पर नहीं होगा। उसके अन्तस् में एक हूक, एक कसक तथा चोरी करने के लिए जाते समय चोर जैसी प्रवृत्ति बनी रहेगी। अतः यदि उसने इस दुष्कर मार्ग पर चलना ही निश्चित कर लिया है तो वह इस पर फूंक फूंक कर पैर रखेगी। अब इसमें एक कठिनाई और पड़ सकती है। संभव है वह जिस पुरुष से प्रेम करती हो उसे इस विषय में कुछ पता ही न हो। इस दशा में नायिका का मनोरथ पूरा होना अपेक्षाकृत कठिन होगा। यदि नायक नायिका के प्रेम की बात जानता है और वह भी नायिका से प्रेम करता है तब तो वह भी नायिका की गली के चक्कर लगायेगा ही और किसी तिकड़म से अथवा किसी साधन से वह सबकी नजर बचा कर नायिका से मिलेगा ही। इस प्रकार नायिका को मिलन के लिए अनेक साधनों को जुटाने की झंझट से भी मुक्ति मिल जायगी। पर यदि ऐसा न हुआ तो ? यदि उसे नायक से मिलने के उपाय करना ही पड़े तो पहले तो वह ऐसे अवसरों की बाट जोहेगी जब वह नायक को, दूर ही से सही, देखे। फिर वह उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने की युक्ति करेगी। सम्भव है वह यह कार्य संकेतों से करे, सम्भव है वह इसमें वचनों का प्रयोग करे। उसे तो अपना कार्य-साधन करना है। बस यही परकीया की प्रथम अवस्था है और ऐसी नायिका **विदग्धा** कहलाती है। संकेतों आदि की क्रियाओं से अपने मन्तव्य की पूर्ति करने वाली विदग्धा क्रिया विदग्धा तथा वचनों का सहारा लेने वाली को वचन विदग्धा कहते हैं। दास ने परकीया नायिका का क्रम विदग्धा से ही आरम्भ किया है और उपर्युक्त विवेचन तथा नायिका की मानसिक स्थिति की पृष्ठभूमि में यह युक्तियुक्त लगता है।

जब इस नायिका ने सुअवसर का लाभ उठाकर क्रिया अथवा वचन द्वारा अपनी मनोभिलाषा की पूर्ति के लिए प्रयास किया ही है तो पहली बार, दूसरी बार, तीसरी बार कभी न कभी तो वह नायक से मिल ही लेगी। जब एक बार यह मिलन हो गया तो फिर पुनः मिलने के वचन भी लेगी। सम्भवतः कुछ और भी आगे बढ़ जाय। लोगों की दृष्टि बचा कर रात बिरात अथवा किसी ऐसे अवसर पर, जब लोगों को उसकी ओर से सन्देह न हो, वह नायक के साथ विहार आदि के लिए भी चली जायगी और यदि ऐसा हुआ तब तो उसे सुरति सम्भोग आदि के भी अवसर मिल सकते हैं। यहीं से यह परकीया **'गुप्ता'** हो जाती है। उक्त अवसर प्राप्त होने के बाद तो उसका साहस और भी खुल जायगा। अब तो वह बार बार ऐसे अवसरों की टोह में रहेगी। अतः सुरति क्रमानुसार उसकी तीन स्वाभाविक श्रेणियां हो जाती हैं—भूत गुप्ता, भविष्य गुप्ता, तथा वर्तमान गुप्ता। कभी कभी उसमें सुरति चिह्न भी प्रकट हो ही जाएँगे यद्यपि वह इस बात का विशेष ध्यान रखेगी कि घर पहुंचने के पूर्व वह उन चिह्नों को मिटा डाले और अपनी सामान्य स्थिति में आ जाय।

परन्तु यह चोरी कितने दिन चलेगी? इन्द्रियों पर से जितना ही नियंत्रण ढीला होता जायगा नायिका उतनी ही उद्धत और निडर तथा समाज के नैतिक सिद्धान्तों की उपेक्षा एवं अवहेलना करने वाली होती जायगी। और एक दिन वह भी आजायगा कि उसकी करनी लाख छिपाने पर भी न छिपेगी। लोग उसके गुप्त भेदों को जान लेंगे और उसकी भर्त्सना करेंगे क्योंकि आज भी हमारा समाज पाश्चात्य संस्कृति से नहीं स्वयं अपनी ही संस्कृति से स्फूर्ति एवं प्रेरणा पा रहा है और वह अपनी संस्कृति तथा अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए कटिबद्ध है। समाज इन गुप्ता परकीयाओं की स्थिति को कदापि सहन नहीं कर सकता, इसे न केवल सामाजिक अपितु गुप्ता परकीयाएं भी भली भांति जानती है। अस्तु, गुप्ता का प्रेम सब पर प्रकट हो जाने पर वह **लक्षिता** हो जाती है। यह एक स्वाभाविक विकासक्रम है।

जो भी हो हमारा समाज चाहे या न चाहे परकीयाएं अवश्य बनी रहेंगी। यह बात दूसरी है कि ठोकरें खाने पर वे पुनः स्वकीया हो जायं और यह भी संभव है कि वे सुधरने के स्थान पर गर्त की ओर ही चलती चली जांय। यदि वे न सुधरीं तो उनमें नैतिकता के समावेश की आशा करना दुराशा मात्र सिद्ध होगी। वे तो जिस मार्ग पर चल पड़ी हैं उन्हीं में उन्हें शारीरिक सुख मिलेगा। जब भी उन्हें वांछित परपुरुष से मिलने का सुयोग मिलेगा, उनके हृदय में गुदगुदी पैदा होने लगेगी। वे उसमें प्रसन्न रहेंगी भले ही सारा संसार उनकी थुड़ी उड़ाये। इस प्रकार यह नायिका गुप्ता की स्थिति से **मुदिता** की स्थिति में पहुंचती है।

मुदिता की स्थिति में पहुंच कर वह एक प्रकार से स्वतंत्र एवं स्वच्छंद हो जाती है। वह सदा उन अवसरों की ताक में रहती है जब वह निश्चित समय एवं निश्चित स्थान (सहेट) पर अपने प्रेमी से मिलने के लिए चल पड़े। सहेट पर जाने के पूर्व वह बहुत कुछ सतर्कता बरतती है। घरवालों की दृष्टि बचा कर और गुरुजनों तथा परिजनों से आंख

छिपा कर वह ऐसा करती है। अनेक बार तो यह क्रम निर्बाध रूप से चलता रहता है परन्तु कभी कभी कुछ कारणों से मिलन के ये स्थल नष्ट हो जाते हैं और फिर इन प्रेमियों के लिए नयी समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। कहां मिलेंगे ? यह समस्या फिर नवीन रूप से उनके सामने खड़ी हो जाती है। मिलन स्थलों के नष्ट होने पर नायिका **अनुशयना** कहलाती है जिसकी आचार्यों ने तीन दशाएं—पहली, दूसरी और तीसरी —वर्णित की हैं। जिस नायिका का सहेट नष्ट होगया है उसे **प्रथम अनुशयना, केलिस्थान विनाशिता** अथवा **स्थानविघट्टना** आदि नामों से जाना जाता है। दूसरी अनुशयना वह है जो भविष्य में अपने प्रेमी से निश्चित सहेट पर किसी कारण वश न मिलने से व्यथित होती है। इसके अन्य नाम भी हैं जैसे **भावी स्थान अभावा, भावी स्थान साधना**। तीसरी अनुशयना वह है जो निश्चित स्थान एवं निश्चित समय पर किसी कारणवश न जा सके। इसे **संकेतस्थलनष्टा** भी कहा गया है। अनुशयना की यही तीनों स्थितियां क्रम से होती है, जिनका उल्लेख दास द्वारा दिये गये लक्षणों के अनुसार पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है।

इसके उपरान्त परकीया की अन्तिम अवस्था वह है जब वह लाज और शर्म का एकदम परित्याग कर देती है और चाहे इन्द्रिय सुख के कारण अथवा अन्य कारण से वह प्रत्येक से सम्भोग के लिए तैयार रहती है। कुलटा ऐसी ही स्त्री को कहते हैं। हमारे साहित्य में इन कुलटाओं के वर्णन को असंगत माना गया है। 'दास' ने इनका नाममात्र उल्लेख अपने 'रससारांश' में किया है परन्तु श्रृंगारनिर्णय में उसे बिल्कुल ही छोड़ दिया गया है जो साहित्य की मर्यादा बनाये रखने के लिए समीचीन है।

उपर्युक्त विवेचन को देखने से ज्ञात होगा कि दास ने परकीया में विदग्धा, लक्षिता, मुदिता तथा अनुशयना का जो क्रम निश्चित किया है उसका आधार मनोवैज्ञानिक है। अतः यह क्रम पूर्णतया वैज्ञानिक प्रतीत होता है।

वय के अनुसार नायिकाओं के भेद

श्रृंगार निर्णय में स्वकीया परकीया विवेचन कर लेने के उपरान्त दास ने नायिकाओं के वयः क्रमानुसार निम्नलिखित भेद किये हैं।

(१) मुग्धा

जो शैशव और यौवन के संधिकाल में हो उसे मुग्धा नायिका कहते हैं।[1] रसमंजरीकार का कथन है कि जिसका यौवन अंकुरित हो रहा हो वह मुग्धा नायिका होती है। यह दो प्रकार की होती है—ज्ञातयौवना और अज्ञात यौवना।[2] अतः दास का मत रसमंजरीकार

१. त्रिबिधि जु बरनी नायिका तेऊ त्रिबिधि बिसेखि।
मुग्धा मध्या कहत पुनि प्रौढ़ा ग्रन्थन देखि।
सैसव जोबन सन्धि जिहि सो मुग्धा अवदात।
बिन जाने अज्ञात है जाने जानो ज्ञात। श्रृं० नि०, पृ० ४१।

२. तत्रांऽकुरित यौवना मुग्धा। सा च ज्ञात यौवनाऽज्ञातयौवना च। र० मं०, पृ० १६।

के आधार पर है। सौंदर्य की दृष्टि से नायिका के लिए यही सबसे अच्छा काल कहा जा सकता है। वयःसंधि का दास द्वारा प्रस्तुत नायिका का यह उदाहरण देखिए—

> घटती इकङ्क होन लागी लङ्क बासर की केस सम बंस को मनोरथ फलीन भो।
> बढ़ि चले कानन लौं नीके नैन खंजन औ बैठि रहिबे को जनु सैसव अलीन भो।
> साँझ तरुनापन बिकास निरखत दास आनँदे लला के नैन कैरव कलीन भो।
> दुलही बदन इन्दु उलही अनूप दुति सौति मुख अरबिन्द अतिही मलीन भो।[1]

नायिका के वर्गानुसार दास ने तीन भेद किये हैं—

(क) साधारण मुग्धा, (ख) स्वकीया मुग्धा और (ग) परकीया मुग्धा।

थोड़ी अवस्था की होने के कारण इनके पुनः दो भेद होते हैं—

(अ) अज्ञात यौवना—इस नायिका में दास ने भेदानुसार साधारण, स्वकीया तथा परकीया तीनों ही में अज्ञातयौवनाएं मानी हैं। दास ने इस नायिका का बड़ा हृदयग्राही वर्णन किया है क्योंकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ऐसी स्त्री की, जो शैशव पार करके युवावस्था में प्रवेश कर रही हो, मानसिक भावना को, और वह भी ऐसे समय जब उसे अपने यौवन का भान न हो रहा हो, व्यक्त करना साधारण कार्य नहीं है। दास की इस अज्ञात यौवना स्वकीया को देखिए। कितना सुन्दर चित्रण है?

> सखि तैहूँ हुती निसि देखत ही जिन पै वै भई हौं निछावरियां।
> तिन पानि गह्यो हुतो मेरो तबै सब गाय उठीं ब्रज गाँवरियां।
> अँसुवां भरि आवत मेरे अजौं सुमिरे उनकी पग पाँवरियां।
> कहि को हैं हमारे वे कौन लगैं जिनके संग खेली हौं भांवरियां।[2]

(आ) ज्ञात यौवना—इसके भी दास जी ने तीन भेद अर्थात् साधारण ज्ञातयौवना, स्वकीया ज्ञातयौवना और परकीया ज्ञातयौवना किये हैं। दास की इस ज्ञातयौवना का आकर्षण अवलोकनीय है—

> आनन में मुसकानि सोहावनी बँकुरता अँखियान छई है।
> बैन खिले मुकुले उरजात जकी बिथकी गति ठौन ठई है।
> दास प्रभा उछलै सब अंग सुरंग सुबासती फैल गई है।
> चन्दमुखी तन पाय नवीनो भई तरुनाई अनन्दमई है।[3]

(२) मध्या

यह पूर्णयौवना नायिका है जिसमें स्त्रीसुलभ लज्जा तथा काम लालसा दोनों ही समान रूप से पाये जाते हैं।[4] इसके लक्षण रसमंजरीकार के ही आधार पर हैं।[5] इसके दास

१. शृं० नि०, पृ० ४२। २. शृं० नि०, पृ० ४३। ३. शृं० नि०, पृ० ४४।

४. नवजोबन पूरनवती लाज मनोज समान।
तासो मध्या नायिका बरनत सुकवि सुजान। शृं० नि०, पृ० ४५।

५. समान लज्जा मदना मध्या। र० मं०, पृ० ३१।

जी ने नायिकानुसार निम्नलिखित तीन भेद बताये हैं—

१. साधारण मध्या, २. स्वकीया मध्या और ३. परकीया मध्या।

दास की यह साधारण मध्या वास्तव में अवलोकनीय है—

> द्वै कुच भारनि मन्द गती करैं माते गयन्दन को मद भूरो।
> आनन ओप अनूप लखे मिटि जात मयंक गुमान समूरो।
> दास भरी नख तें सिख लाज पै काम को साज बिलोकिये पूरो।
> काम के रंग मनो रँगि अंग दई दयो लाज को रोगन रूरो।[1]

(३) प्रौढ़ा

जो स्त्री अपने प्रिय से प्रेम करने में प्रवीण हो उसे प्रौढ़ा कहते हैं।[2] इसमें लज्जा की मात्रा बहुत कम तथा काम वासना की अधिक होती है। रसमंजरीकार ने इस नायिका को प्रौढ़ा न कह कर प्रगल्भा कहा है। उनके अनुसार यह नायिका प्रियतम के साथ केलि कलाप मे प्रवीण होती है।[3]

इस नायिका के क्रमानुसार तीन भेद होते हैं—

१. साधारण प्रौढ़ा, २. स्वकीया प्रौढ़ा और ३. परकीया प्रौढ़ा।

दास की यह परकीया प्रौढ़ा दर्शनीय है—

> झूलनि लागी लता मृदु भाइनि फूलनि लागी गुलाब कली अब।
> दास सुबास झकोरन झोरत भौंर की बाय बहाय चली अब।
> जागि के लोग बिलोकिहैं टोकिहैं रोकिहैं राह सदार गली अब।
> ऐसे में सूने सखी के निलै चलि सोवो सभाग न बाग भली अब।[4]

रतिसंयोग से नायिकाओं के प्रकार

'संयोग' में मुग्धा नायिका नवोढ़ा कही जाती है।[5] रसमंजरीकार का कथन है कि जो नायिका रति के निमित्त क्रमशः लज्जा तथा भय के अधीन हो उसे नवोढ़ा कहते हैं।[6] इस मत को देखते हुए दास का लक्षण अस्पष्ट रह गया है। नवोढ़ा दो प्रकार की होती है[7]— (१) **विश्रब्ध नवोढ़ा** अर्थात् जिस नवोढ़ा का अपने पति पर कुछ अनुराग और विश्वास होने लगा हो तथा (२) **अविश्रब्ध नवोढ़ा** अर्थात् जिसका अपने पति पर विश्वास न जम

१. शृं० नि०, पृ० ४५।
२. प्रीतम प्रीति प्रवीन सु प्रौढ़ै। र० सा०, पृ० ८।
३. पतिमात्र विषयककेलिकलापकोविदा गल्भा। र० मं०, पृ० ३४।
४. शृं० नि०, पृ० ४७।
५. मुग्धा तिय संयोग में कही नवोढ़ा जाहि। शृं० नि०, पृ० ४८।
६. सैव क्रमशोलज्जाभयपराधीनरतिर्नवोढ़ा। र० मं०, पृ० १६।
७. अविश्रब्ध विश्रब्ध द्वै जे न पतिहि पतियाहि शृं० नि०, पृ० ४८।

सका हो। दास की इस विश्रब्ध नवोढ़ा को देखिये जो धोखा खा चुकने के पश्चात् भी रति प्रवीण पति पर विश्वास कर लेने को उत्सुक है।

> **हौं तो कह्यो कछु बातें करैगो प्रबीन बड़े बलदेव के भैया।**
> **ये गुन जानती तो यह सेजहि भूलि न सोवती बीर दोहैया।**
> **दास इते पर फेरि बोलावत यों अब आवति मेरी बलैया।**
> **आवती हौं जो कहो करि सौंहैं कि आज करैंगे न कालिह की नैया।[1]**

रस सारांश में दास ने स्वकीया के अन्तर्गत मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा तथा मुग्धा के अन्तर्गत ज्ञात यौवना, अज्ञात यौवना तथा नवोढ़ा आदि का उल्लेख किया है। दास ने मध्या के पुनः भेदोपभेद किये हैं[2]—

(१) प्रगल्भ वचना—जो नायक से बातों ही बातों में अपनी क्रोध प्रकट करे।[3]

(२) धीरादि—जिसके अन्तर्गत मान भेद के अनुसार निम्नलिखित भेद होते हैं।[4]

(क) धीरा—जो व्यंग्य द्वारा अपना क्रोध प्रकट करे।

(ख) अधीरा—जो अधीर होकर प्रकट रूप से क्रोध करे।

(क) धीराधीरा—जो कुछ गुप्त और कुछ प्रकट रूप से अपना क्रोध प्रदर्शित करे।

दास जी के धीरा, अधीरा और धीराधीरा के लक्षण भानुदत्त के ही अनुसार हैं।[5] उपर्युक्त तीनों भेद—अर्थात् धीरा, अधीरा और धीराधीरा—मध्या और प्रौढ़ा दोनों ही में होते हैं।

दास ने सर्वप्रथम वय–क्रमानुसार नायिकाओं के जो भेदोपभेद रससारांश में स्वकीया के अन्तर्गत रखे थे उनका बाद में उन्होंने अपने शृंगारनिर्णय ग्रंथ में स्वकीया और परकीया दोनों ही में समावेश कर दिया। अपने मत को इस प्रकार बदलने का कारण यह ज्ञात होता है कि सर्वप्रथम नायिका भेद विवेचन करने पर कदाचित् वे अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के, जिन्होंने उक्त भेदों को अधिकतर स्वकीया के अन्तर्गत ही वर्णित किया है, पदचिह्नों पर चले होंगे और तत्पश्चात् उन्होंने नायिकाओं की विकसित होती हुई मनोदशा की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में अपने पूर्व निर्दिष्ट क्रम में कुछ हेर–फेर आवश्यक समझा होगा। अतः उन्होंने बाद की अपनी प्रौढ़ रचना शृंगार निर्णय में अपना परिवर्तित मत व्यक्त कर दिया है।

१. शृं० नि० पृ० ४६।

२. मान भेद ते तीनि विधि मध्या प्रौढ़ा मानि।
धीरा और अधीर तिय धीराधीरा जानि। र० सा०, पृ० १३।

३. जो नायक सो रस लिये मध्या बोलै बोल।
प्रगल्भ बचना कहत हैं तासों सुमति अमोल। र० सा०, पृ० १३।

४. व्यंगि वचन धीरा कहैं प्रगट रिसाइ अधीर।
तीजी मध्या दुहूँ मिलित बोले ह्वै दलगीर। र० सा०, पृ० १३।

५. व्यंग्यकोपप्रकाशा धीरा। र० मं०, पृ० ४१।
अव्यंग्य कोप प्रकाशा अधीरा। र० मं०, पृ० ४१।
व्यंग्याऽव्यंग्य कोप प्रकाशा धीराऽधीरा। र० मं०, पृ० ४२।

वय-क्रमानुसार निर्दिष्ट नायिकाओं का वैज्ञानिक विवेचन

नायिका का क्रमिक विकास वस्तुतः उस समय से आरम्भ होता है जब वह शैशव को छोड़ कर यौवनावस्था में प्रवेश करती है। यह संधि काल स्त्रियों के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बड़े महत्व का है, क्योंकि एक ओर तो आने वाला यौवन अपना प्रभाव डालता है और दूसरी ओर शैशव अपना कौमार्यसुलभ चापल्य सहसा उसका साथ नहीं छोड़ता। इन्हीं गत और आगत अवस्थाओं के बीच बेचारी नायिका झूलती है। यही है **मुग्धा** नायिका जिसका आचार्यों ने (और भिखारीदास ने भी) सर्व प्रथम उल्लेख किया है। अनेक आचार्यों ने इसका स्वकीया के अन्तर्गत उल्लेख किया है और प्रारम्भ में भिखारीदास ने इसे स्वकीया के अन्तर्गत माना भी था। परन्तु यह तो एक स्पष्ट भूल है कि ईश्वर की वह देन जो सभी को समान रूप से सुलभ है आचार्यों द्वारा सीमित बना कर केवल स्वकीया के निमित्त ही निश्चित कर दी जाय। भिखारीदास ने आचार्यों की इस भूल को सुधार लिया है और इसका उल्लेख उन्होंने साधारण, स्वकीया तथा परकीया नायिकाओं का विवेचन कर लेने के पश्चात् ही किया है तथा स्पष्ट कहा है कि वय-क्रमानुसार नायिकाएं (न केवल मुग्धा अपितु मध्या तथा प्रौढ़ा भी) साधारण, स्वकीया और परकीया, तीनों में होती हैं। वस्तुतः नायिकाओं के अन्तर्गत वय के अनुसार ये तीन भेद हैं कोई अलग अलग नायिकाएं नहीं।

मुग्धा नायिका दो प्रकार की होती है (और यह स्वाभाविक भी है) एक तो वह जो यौवनावस्था में प्रवेश तो कर चुकी हो किन्तु जिसे इसका ज्ञान न हो, इसे आचार्यों ने **अज्ञात यौवना** कहा है, दूसरी वह जिसे अपने यौवन का ज्ञान हो चुका हो। यह है **ज्ञात यौवना**। इन दोनों प्रकार की नायिकाओं में पाये जाने वाले मानसिक कौतूहल को आचार्यों ने बड़ी पटुता के साथ चित्रित किया है। ज्ञात यौवना में काम की मात्रा नाम मात्र को ही होती है लज्जा की अधिक। वह शृंगार प्रसाधनों की ओर आकृष्ट होती है और उसे यौवन-चिह्नों का प्रकट होना अपने लिए अत्यंत लज्जा की बात लगती है।

कालान्तर में संसार का कुछ अनुभव हो जाने के पश्चात् मुग्धा की लज्जा में कमी आने लगती है और कामवासना उत्तरोत्तर जागृत होती रहती है। ऐसा होना अवस्था बढ़ने के साथ साथ स्वाभाविक होता है। जब उसमें लज्जा और काम की मात्रा प्रायः समान रूप से पायी जाने लगे तो फिर वह मुग्धा न रह कर **मध्या** कही जाती है। अब वह ताकती झांकती है, अपने प्रियतम से मिलने के लिए भाँति भाँति के साधन जुटाती है और अपनी सखियों से प्रेमवार्ता सुनने में उसे आनन्द आता है।

कुछ समय के पश्चात् इस नायिका में लज्जा की मात्रा में बहुत कुछ कमी हो जाती है और अब वह अपने नायक के साथ कामक्रीड़ा में संलग्न हो जाती है। कुछ तो बढ़ती हुई अवस्था के कारण, कुछ अनुभव और कुछ पटु सखि-संसर्ग के कारण उसमें काम की भावना बहुत कुछ जागृत हो जाती है और वह अधिक रतिप्रिय एवं रतिकला प्रवीणा हो जाती है। यह **प्रौढ़ा** है जो अपनी कामवासना को तृप्त करने के लिए कभी कभी नायक को भुलावे में भी डाल देती है। ऐसी ही एक कामप्रिय नायिका का चित्रण करते हुए दास ने नायिका से नायक

को रोकने के लिए कितने सुन्दर बहानों का प्रयोग कराया है—

दीपक जोति मलीनी भई मनिभूषन जोति की आतुरिया है।
दास न कौल कली बिकसी निज मेरी गई मिलि आँगुरिया है।
सीरी लगे मुकतावलि तेऊ कपूर की धूरिन सो पुरिया है।
पौढ़े रहो पट ओढ़े इती निसि बोले नहीं चिरियां चुरियां हैं।[1]

इस प्रकार दास ने वय-क्रमानुसार नायिकाओं का जो क्रम निश्चित किया है उसमें और प्राचीन तथा पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निश्चित क्रम में कोई अन्तर नहीं। परन्तु दास ने मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा तीनों का जो समावेश धर्मानुसार निश्चित नायिकाओं अर्थात् साधारण, स्वकीया और परकीया में कर दिया है वह अवश्य नवीन, वैज्ञानिक एवं युक्तियुक्त है।

वय के अनुसार नायिकाओं के अन्तर्गत दास ने अपने रस सारांश ग्रंथ में उनके जो भेदोपभेद किये हैं वे उस स्थल पर उपयुक्त नहीं जंचते क्योंकि स्पष्टतः वे खंडिता नायिका के विवेचन के साथ ही उचित प्रतीत होते हैं। अतः दास ने अपने शृंगारनिर्णय में खंडिता नायिका के विवेचन के साथ ही धीरादि भेदों का पुनः विशद विवेचन किया है और हम भी उनके क्रम की वैज्ञानिकता पर उसी प्रसंग में यथास्थान उनकी संगति, असंगति की परीक्षा करेंगे।

दशानुसार नायिकाएं

संस्कृत के आचार्यों ने नायिकाओं के दशानुसार तीन भेद किये हैं[2]—
(१) गर्विता, (२) अन्य सम्भोगदुःखिता और (३) मानवती।

परन्तु दास जी ने अपने रस सारांश ग्रन्थ में वय के अनुसार नायिकाओं के भेदों का विवेचन कर चुकने के पश्चात् यह कह कर, कि कभी कभी कुछ अन्तर होने के कारण नायिकाओं के और भेद भी हो जाते हैं[3], कामवती, अनुरागिनी, प्रेमासक्ता, तीन प्रकार की गर्विता (रूप गर्विता, प्रेम गर्विता और गुण गर्विता), मानिनी तथा सुरति दुःखिता (अन्य सम्भोगदुःखिता) भेदों का सोदाहरण उल्लेख किया है।[4]

कामवती, अनुरागिनी तथा प्रेमासक्ता के रस सारांश में उदाहरणमात्र दिये गये हैं। अनुरागिनी तथा प्रेमासक्ता का विवेचन दास जी ने शृंगार निर्णय में उद्बुद्धा के साथ किया है क्योंकि उनके अनुसार ये दोनों भेद उद्बुद्धा नायिका के होते हैं। गर्विता, मानिनी

१. शृं० नि०, पृ० ५०-५१।

२. रसमंजरीकार ने इसके तीन भेद—अन्यसंभोग दुःखिता, वक्रोक्ति गर्विता और मानवती किये हैं।
एता अन्य सम्भोगदुःखिता वक्रोक्तिगर्विता मानवत्यश्चेति तिस्त्रो भवन्ति।
र० मं०, पृ० ९३।

३. कछु पुनि अंतर भाव ते कही नायिका जांहि।
बिना नियम सब तियन में सुनी कबीसन पांहि। र० सा०, पृ० २५।

४. कामवती अनुरागिनी प्रेमअसक्ता धन्य।
तीनि गर्विता माननी सुरत दुख्यता अन्य। र० सा०, पृ० २५।

तथा सुरतिदु:खिता के भी दास जी ने उदाहरण रस सारांश में दिये हैं किन्तु इनका युक्तियुक्त विवेचन उन्होंने अपने शृंगार निर्णय में ही किया है। यह उल्लेखनीय है कि दास ने ये भेद स्वतंत्र रूप से न लिख कर गर्विता का स्वाधीनपतिका के अन्तर्गत, सुरतिदु:खिता (अन्य संभोग दु:खिता) का विप्रलब्धा के अन्तर्गत तथा मानवती का खंडिता के अन्तर्गत विवेचन किया है, जिसका उल्लेख हम अवस्थानुसार नायिका भेद के अन्तर्गत करेंगे।

अवस्थानुसार नायिकाएं

अवस्थानुसार दास ने रस सारांश में ८ नायिकाएं मानी हैं[१]—स्वाधीनपतिका, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, उत्कंठिता, अभिसारिका, प्रोषितपतिका, प्रवत्स्यत्प्रेयसी तथा आगतपतिका।[२]

शृंगारनिर्णय में अवस्थानुसार निर्दिष्ट नायिकाओं का दास ने विशद चित्रण किया है। वास्तव में नायिका भेद के आचार्यों ने इन नायिकाओं का अनेक भेदोपभेद सहित विवेचन किया है। स्वयं दास ने भी इन नायिकाओं के अनेक भेदोपभेद आदि देकर विषय को बहुत स्पष्ट एवं रोचक बना दिया है। अवस्थानुसार नायिकाओं को दास ने दो वर्गों में—अर्थात् संयोग शृंगार और वियोग शृंगार के वर्गों में—विभाजित किया है। संयोग शृंगार के अन्तर्गत उन्होंने निम्नलिखित नायिकाओं को रखा है।

१. संयोग शृंगार[३]

१. स्वाधीन पतिका

२. वासकसज्जा

३. अभिसारिका

और **वियोग शृंगार** के अन्तर्गत दास ने निम्नलिखित नायिकाएं रखी हैं—

१. उत्कंठिता

२. खंडिता

१. आठ अवस्था भेद ते दश बिधि बरणी नारि।
लक्षण सब के देखि कै क्रम ते लक्ष्य निहारि। र० सा०, पृ० २८

२. पीउ बस्य स्वाधीन मिलै बहु रमि खंडित पति।
विप्रलब्ध संकेत सून देखति दुख प्रगटति।
पिय आगम सुख शोच वासकसज्जा उत्कांतिय।
कलही झंखि पछिताइ मिलन साधै अभिसारिय।
दै अवधि गयो परदेस पिय प्रोषित पतिका सहत दुख।
दुख चलत प्रवत्स्यतप्रेयसी आगतपति आगमन सुख। र० सा०, पृ० २८।

३. तिय संजोग शृंगार की कारण तीनों जानि।
स्वाधिन पतिका अपर है बासक सज्जा मानि।
अभिसारिका अनेक पुनि बरनत हैं कबि राव।
स्वकीया परकीयान मिलि होत अनेकन भाव। शृं० नि०, पृ० ५१।

३. कलहंतरिता

४. विप्रलब्धा और

५. प्रोषितभर्तृका

हम क्रम से इन नायिकाओं का उसी रूप में विवेचन करेंगे जैसा स्वयं दास जी ने किया है।

१. स्वाधीनपतिका--जिस नायिका का नायक सदा उसके वश में रहे उसे स्वाधीनपतिका कहते हैं।[1] साहित्यदर्पणकार का कथन है कि रति गुण से आकृष्ट प्रियतम जिसका साथ न छोड़े विचित्र विलासों से युक्त ऐसी नायिका स्वाधीनपतिका कहलाती है।[2] स्पष्ट है कि दास का लक्षण साहित्यदर्पण की भाँति व्यापक नहीं है। यह नायिका स्वकीया और परकीया दोनों ही में हो सकती है। आचार्यों द्वारा स्वाधीनपतिका का वर्णन बहुत ही सुन्दर एवं हृदयग्राही बन पड़ा है। दास ने स्वाधीनपतिका को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में विभाजित किया है—

१. रूपगर्विता--जिसे अपने रूप पर गर्व हो।

२. गुण गर्विता--जिसे अपने गुण का गर्व हो, और

३. प्रेम गर्विता--जिसे अपने प्रेम का गर्व हो।

दास की ये तीनों गर्विताएं अपने अपने क्षेत्र में अद्भुत हैं।

दास की इस रूपगर्विता को तो अपने रूप पर इतना गर्व है कि वह अपने रूप के लिए नायक द्वारा एकत्र किये गये सुन्दर सुन्दर उपमानों के नाम सुनकर कह उठती है कि 'यदि मेरा मुख चन्द्रमा के समान है तो जाओ चन्द्रमा को देखकर ही अपना कलेजा ठण्डा करो, मेरे अधरों को बिम्बाफल के समान कहते हो तो यहां काहे को आये हो उसी का रसपान करो, यदि मेरे उरोज तुम्हारी दृष्टि में श्रीफल की भांति हैं तो उसी को हृदय से लगाओ और यदि मेरी दीप्ति (प्रभा) दीपक के समान है तो उसी को बैठकर टुकुर टुकुर निहारो'।

चंद सो आनन मेरो बिचारो तौ चंदही देखि सिराओ हियो जू।
बिम्ब सो जौ अधरान बखानो तौ बिम्बहि को रस पीओ जिओ जू।
श्रीफल ही क्यों न अंक भरौ जो पै श्रीफल मेरे उरोज कियो जू।
दीपति मेरी दिये सी है दास तौ जाऊँ हौं बैठि निहारो दियो जू।[3]

और उनकी इस प्रेमगर्विता का गर्व भी दर्शनीय है जिसकी सेवा के लिए नायक सदा हाथ बांधे तैयार रहता है—स्नान के समय जब बेचारा शृंगार सामग्री लेकर बैठता है तो नायिका उसे समझाती है कि आपके योग्य यह कार्य नहीं परन्तु नायक माने तब न, वह तो नायिका को अपने हाथ से शृंगार भी नहीं करने देता। इतना ही नहीं बेचारा अपनी मर्यादा

१. स्वाधिन पतिका है वहै जाके बस है पीउ।
होय गर्बिता रूप गुन प्रेम गर्ब लहि जीउ। शृं० नि०, पृ० ५१

२. कान्तो रति गुणाकृष्टो न जहाति यदन्तिकम्।
विचित्र विभ्रमासक्ता सा स्यात्स्वाधीनभर्तृका। सा० द०, पृ० १०४।

३. शृं० नि०, पृ० ५२।

को भी भूल बैठा है क्योंकि वह पैरों में महावर भी लगा देता है—

न्हान समै जब मेरो लखै तब साज लै बैठत आनि अगाऊँ।
नायक हौ जू न रावरो लायक यों कहि हौं कितनो समुझाऊं।
दास कहा कहौं पै निज हाथ ही देत न हौंहूं सवारन पाऊं।
मोहि तौ साध महा उर में जो महाउर नाइन तोसों दिवाऊं।[1]

यहां पर यह उल्लेखनीय है कि दास ने नायक की मर्यादा को भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के प्रतिकूल चित्रित किया है। यदि वे तनिक संयम से काम लेते तो वे कवि सेनापति की भांति इस स्थिति को बचा सकते थे और नायक से नायिका के पैरों में महावर न लगवा कर उसकी मर्यादा की रक्षा कर सकते थे।[2] परन्तु प्रतीत होता है कि वे भी अनेक कवियों की भांति रीतियुग में भारतीय संस्कृति की महत्ता को पूर्णतया अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए लालायित न थे अन्यथा उनमें मर्यादा की इतनी भी हीनता दृष्टिगोचर न होती।

२. वासकसज्जा—जब नायिका को पता चलता है कि उसका नायक आने वाला है उस समय वह साज श्रृंगार आदि को एकत्र करती है।[3] ऐसी नायिका वासकसज्जा कही जाती है। साहित्यदर्पणकार ने कहा है कि सजाये हुए महल में सखी जिस नायिका का श्रृंगार आदि करती हो (अर्थात् अलंकारों से सज्जित नायिका) और उस नायिका को प्रिय समागम का निश्चय हो, वह 'वासकसज्जा' कहलाती है।[4] इससे स्पष्ट है कि दास का मत साहित्य-दर्पणकार के अनुसार ही है। दास ने निम्नलिखित स्वकीया वासकसज्जा का कितने ललित शब्दों में चित्रण किया है। यह नायिका विहारस्थल पर अपने प्रियतम का आगमन सुन कर श्रृंगार करती है, वन्दनवार से घर सजाती है, फूलों से शैया को सुसज्जित करती है और एक अद्भुत आनन्द की कल्पना में विभोर हो जाती है।

जानि जानि आवै प्यारो प्रीतम बिहारभूमि मानि मानि मंगल सिँगारन सिँगारती।
दास दृग कंजन, बँदनवार तानि तानि छानि छानि फूले फूले सेजहिँ सँवारती।
ध्यान ही में आनि आनि पी को गहि पानि पानि ऐंचि पट तानि तानि मैनमद झारती।
प्रेम गुन गानि गानि पीउ बनि सानि सानि बानि बानि खानि खानि बैनन बिचारती।[5]

१. शृं० नि०, पृ० ५३।

२. फूलन सों बाल की बनाय गुही बैनी लाल भाल दई बेंदी मृग मद की असित है।
भांति भांति भूषन बनाये ब्रजभूषन सु बीरी निज कर सों खवाई करि हित है।
ह्वै कै रस बस जब दीबे को महाउर के 'सेनापति' लाल गह्यौ चरन ललित है।
चूमि हाथ नाह के लगाय रही आंखिन सों एहो प्राननाथ! यह अति अनुचित है।
सेनापति : कवित्त रत्नाकर पृ० ३७।

३. आवन्ती जहँ कंत की निज गृह जानै दार।
वासकसज्जा तिहि कहत साजै सेज सिँगार। शृं० नि०, पृ० ५३।

४. कुरुते मंडनं यस्याः सज्जिते वास वेश्मनि।
सा तु वासकसज्जा स्याद्विदति प्रिय संगमा। सा० द०, पृ० १०७।

५. शृं० नि०, पृ० ५४।

वासकसज्जा के अन्तर्गत दास ने आगतपतिका को भी ले लिया है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि वासकसज्जा में वह नायिका (आगतपतिका) भी आ जाती है जिसका पति परदेश से आने वाला हो क्योंकि प्रिय आगमन का समाचार सुनते ही उसे अनिर्वचनीय प्रसन्नता होती है।[1] उनकी यह नायिका दर्शनीय है—

भावतो आवत ही सुनि कै उड़ि ऐसो गई हद छामता जौ गुनी।
कंचुकी हूं में नहीं मढ़ती बढ़ती कुच की अब तो भई दौ गुनी॥
दास भई चिकुरारन में चटकीलता चामर चारु तें चौ गुनी।
नौगुनी नीरज तें मृदुता सुखमा मुख में ससि तें भई सौ गुनी॥[2]

३. **अभिसारिका**—संयोग शृंगार के अन्तर्गत दास ने तीसरी और अन्तिम नायिका अभिसारिका मानी है। अभिसारिका वह नायिका है जो मिलन के साधन जुटा कर या तो स्वयं नायक के पास जाय अथवा उसे अपने पास बुलाये।[3] साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण देते हुए कहा है कि काम के वशीभूत होकर जो नायक को किसी संकेतस्थान पर बुलाये अथवा स्वयं जाय वह अभिसारिका होती है।[4] अतः दास का लक्षण साहित्यदर्पण के अनुसार है। दास ने स्वकीया तथा परकीया दोनों ही के अन्तर्गत इसका वर्णन किया है। इसके शुक्लाभिसारिका तथा कृष्णाभिसारिका ये दो भेद होते हैं। इन दोनों भेदों का दास ने उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण किया है किन्तु उन्होंने इसके लक्षण नहीं लिखे हैं। दास की इस कृष्णाभिसारिका को देखिये जो भादों की निपट अन्धेरी रात में श्याम वस्त्रों में लपटी हुई अपने नायक से मिलने के लिए मस्त हाथी की चाल से चली जा रही है। पवन के झँकोरों से जब उसकी ओढ़नी उड़ने लगती है तो लोगों को नायिका का तो सन्देह नहीं होता परन्तु जब उसके मुख पर से ओढ़नी हट जाती है तो उसके सौंदर्य की छटा से लोग बरबस कह उठते हैं 'अरे बिजली चमक रही है' ?

जलधर ढारैं जलधारन की अंधिकारी निपट अँधारी भारी भादव की जामिनी।
तामें स्याम बसन बिभूखन पहिर स्यामा स्याम पै सिधारी प्यारी मत्त गजगामिनी॥
दास पौन लागे उपरैनी उड़ि उड़ि जाति तापर न क्योंहूं भांति जानी जाति भामिनी।
चारु चटकीली छबि चमकि चमकि उठै लोग कहैं दमकि दमकि उठै दामिनी॥[5]

१. **पिय आगम परदेश तें आगतपतिका भाउ।**
है बासकसेज्जाहि मै वहै बढ़ै चित चाउ। शृं० नि०, पृ० ५४।

२. **शृं० नि०, पृ० ५५।**

३. **मिलन साज सब करि मिलै अभिसारिका सुभाय।**
पियहिं बोलावै आप कै आपुहि पिय पै जाय। शृं० नि०, पृ० ५५।

४. **अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।**
स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका। सा० द०, पृ० १०४।

५. **शृं० नि०, पृ० ५६।**

वियोग शृंगार

१. उत्कंठिता—नायक के प्रेम में ओतप्रोत होकर उत्सुकतापूर्वक उसकी प्रतीक्षा करने वाली नायिका उत्कंठिता कहलाती है और जब नायक के आने में विलम्ब होता है तो इस नायिका के हृदय में अनेक प्रकार के तर्क वितर्क होने लगते हैं।[1] साहित्यदर्पणकार का कथन है कि आने का निश्चय करके भी दैववश जिसका प्रिय न आ सके उसके न आने से खिन्न होने वाली उसकी नायिका विरहोत्कंठिता कहलाती है।[2] स्पष्ट है कि दास का मत साहित्यदर्पणकार के आधार पर है। प्रतीक्षित नायक नहीं आ रहा है, उसके आने में विलम्ब हो रहा है इधर नायिका उसकी प्रतीक्षा कर रही है, उसे विश्वास नहीं होता कि उसका नायक अन्य किसी स्त्री पर मोहित हो गया है क्योंकि वही क्या कम सुन्दर है? लगता है नायक इस ओर की गली भूल गया है और कहीं इधर उधर भटक रहा है। दास की एक ऐसी उत्कंठिता अवलोकनीय है—

> **जौ कहो काहू के रूप सों रीझे तौ और को रूप रिझावनवारी ?**
> **जौ कहो काहू के प्रेम पगे हैं तो और को प्रेम पगावनहारी ?**
> **दास जू दूसरी बात न और इती बड़ी बेर बितावनवारी।**
> **जानति हौं गई भूलि गोपाल गली यहि ओर की आवनवारी।**[3]

२. खंडिता—जिस नायिका का नायक कहीं अन्यत्र रात्रि व्यतीत करके प्रातःकाल अपनी नायिका के पास आये ऐसी नायिका खंडिता कहलाती है।[4] साहित्यदर्पणकार का मत है कि अन्य स्त्री के संसर्ग चिह्नों से युक्त नायक जिसके पास जाय वह ईर्ष्या से कलुषित नायिका खंडिता कहलाती है।[5] ऐसी नायिका की दशा का वर्णन कवियों ने बड़ी मार्मिकता से साथ किया है क्योंकि जब नायिका यह देखती है कि रात में जगने के कारण उसके नायक के नेत्र रक्ताभ हो रहे हैं, भाल पर महावर की अरुणिमा झलक रही है, शरीर में परस्त्री के नखों के चिह्न हैं, ओठ में अंजन की रेखा है तो उसकी क्या दशा होती होगी? इसका जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है वह कोई नायिका के हृदय से ही पूछे? दास ने एक ऐसी ही उत्कंठिता का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। प्रातःकाल परस्त्रीरमण के बाद उसका नायक उसके सम्मुख आता है। नेत्र लाल हैं, मस्तक पर जावक शोभायमान है, उस समय

१. प्रेम भरी उत्कंठिता जोहै प्रीतम पन्थ।
बेर लगे त्यों त्यों बढ़ै मनसूबन के ग्रन्थ। शृं० नि०, पृ० ५७।

२. आगन्तुं कृतिचित्तोऽपि दैवान्नायाति चेत्प्रियः।
तदनागमदुःखार्ता विरहोत्कंठिता तु सा। सा० द०, पृ० १०७।

३. शृं० नि०, पृ० ५७–५८।

४. प्रीतम रैनि बिहाय कहुँ ~~जावै~~ आवै प्रात।
सु है खंडिता मान में कहै करै कछु बात। शृं० नि०, पृ० ५७।

५. पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्य संभोगचिह्नितः।
सा खंडितेति कथिता धीरैरीर्ष्याकषायिता। सा० द०, पृ० १०४।

दो दो अंगों पर लाली देखकर वह कह उठती है कि नायक के मन में स्वच्छ अरुणोदय का सौंदर्य ही निखर पड़ा है और परस्त्री ने नायक के शरीर पर जो अंगराग लगा दिया है उसने उसके शरीर को सुवासित एवं कान्तियुक्त कर दिया है। छाती पर नखक्षत विधु-रेख के समान प्रतीत होती है तथा ओठों पर अंजन तो ऐसा लगता है कि कमलदल पर भौंरा बैठा हुआ है। ऐ प्यारे! कितने सुन्दर रूप में तुमने मुझे दर्शन दिये हैं। मालूम होता है कि प्रभात के पीछे प्रकट होने वाली अरुणिमा को ही शरीर पर बिखेर लाये हो। कितनी मार्मिकता है, कितना व्यंग्य, कितनी वेदना?

लोचन सुरंग भाल जावक को रंग मन सुखमा उमंग अरुनोदै अवदीत की।
भावती को अंगराग लाग्यो है सभाग तन छबि सी छपन लागी महातम गात की।
दास बिधु रेख सो नखच्छत सुबेख ओठ अंजन की रेख अलिनी सी कंजपात की।
प्यारे मोहि दीन्हों आनि दरस प्रभात प्रभा तन मैं लै दरस पीछे के प्रभात की।[1]

धीरादि भेद—दास ने नायिका के धीरादि भेदों को खंडिता के अन्तर्गत रखा है। रात्रि में परस्त्री-रमण के उपरान्त प्रातःकाल नायिका के समक्ष आने वाले नायक को देख कर नायिका के अन्तस् में जो भाव उठते हैं उन्हीं को दृष्टि में रखते हुए दास ने खंडिता के तीन भेद किये हैं।

(१) **धीरा**—जो नायक के शरीर पर रति-चिह्न-देख कर गुप्त कोप करे और इस कोप को व्यंग्य द्वारा प्रकट करे। दास ने एक धीरा का कितना सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है जिसे देख कर हृदय पुलकित हो उठता है। उनकी इस धीरा ने नायक के अंगों पर रतिचिह्न देख कर उसमें नवरसों की कल्पना करके कितना सुन्दर व्यंग्य किया है—

अंजन अधर भ्रुव चंदन सुबेंदी बाहु सुखमा सिंगार हास करुना अकस की।
नख है न अंगराग कुंकुम न लाग्यो तन रौद्र बीर भयवारी झलक रहस की।
पलन की पीक पर बसन हरा अलीक दास छबि घन अद्भुत संत जस की।
पहिले भुलानी अब जानी मैं रसिकराय रावरे के अंगनि निसानी नवरस की।[2]

(२) **अधीरा**—यह वह नायिका है जो नायक में परस्त्री-रमण सूचक चिह्नों को देखकर अधीर हो उठे और प्रकट रूप से नायक पर अपना कोप प्रकट करे। दास ने इस नायिका के लक्षण न देकर केवल उदाहरण दिये हैं जिनमें कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

(३) **धीराधीरा**—वह नायिका है जो अपने नायक के शरीर पर परस्त्री-रमण के चिह्न देखकर कुछ गुप्त और कुछ प्रकट रूप से अपना क्रोध प्रकट करे।[3] नायिका नायक के प्रति यह कोप या तो रोकर अथवा मानप्रदर्शन द्वारा प्रकट करती है। दास की इस धीराधीरा को देखिए जो व्यंग्य ही व्यंग्य में नायक को यह कहकर फटकार रही है कि यदि 'गली पथ' से होकर आना ही था तो मस्तक पर लगे हुए जावक को तथा ओठ के अंजन को पोंछ कर

१. शृं० नि०, पृ० ५९।
२. शृं० नि०, पृ० ५९-६०।
३. रामचन्द्र वर्मा : संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर, पृ० ५९३।

चलते, शरीर के 'नखच्छेत' को छिपा कर चलते। ऐसा न करने से तो बदनामी ही हाथ लगती है, हां यदि तुम्हें अपनी बदनामी का भय नहीं है और इसी में तुम्हें सुख है तो फिर तुम्हारे ही सुख में मुझे भी सुख है। और क्या कहूं ?

भाल को जावक ओठ को अंजन पोछि के होते गली पथगामी।
ठोढ़ी को गाढ़ नखच्छत मूंदो न दास जू होती यों बेसुधि कामी।
कंस कुठाकुर नंद अहीर परोसिनि देत डरै बदनामी।
यातें कछू डर लागै न तौ हमै रावरे ही सुख सों सुख स्वामी।[1]

प्रौढ़ा नायिका में धीरादि भेदों के समावेश का उल्लेख करते हुए दास जी का मत है कि यह नायिका नायक से अत्यधिक प्रेम करने में प्रौढ़ है, उसके मुंह से क्रोध के शब्द तो नहीं फूटते, हां, उसके कार्यों में उसके कोप का आभास अवश्य मिलता है।[2] दास की यह प्रौढ़ा नायिका वस्तुतः दर्शनीय है जिसने होली की रात्रि परस्त्री-संसर्ग में बिता कर प्रातःकाल आये हुए अपने नायक को गुलाल की मार से रक्तवर्ण करके रति-चिह्नों को ही गुलाल में डुबो दिया है।

होरी की रैनि बिहाय कहूं उठि भोरहीं भावतो आवत जोयो।
नेकु न बाल जनाई भई जऊ कोप को बीज गयो हिय बोयो।
दास जू दै दै गुलाल की मारनि अंकुरिबो उहि बीज को खोयो।
भावते भाल को जावक ओठ को अंजन ही को नखच्छत गोयो।[3]

दास ने इसी सम्बन्ध में यह भी कह दिया है कि प्रौढ़ा में धीरा, अधीरा तथा धीरा-धीरा तीनों भेद मिलते हैं।[4]

३. **मानिनी**—अपने प्रियतम के अपराध को देखकर जो नायिका मान कर बैठती है उसे मानिनी कहते हैं। मान का वर्गीकरण करते हुए दास ने कहा है कि मान तीन प्रकार का होता है—लघु मान, मध्यम मान और गुरु मान।[5] दास का यह मत भानुदत्त के अनुसार है।[6] इन तीनों मानिनी नायिकाओं के दास जी ने उदाहरण दिये हैं।

दास की यह मध्यम मानिनी अवलोकनीय है जो रतिचिह्नांकित नायक के आगमन को अपने लिए जले पर नमक छिड़कना कहती है और इसी कारण रूठी हुई है—

तब और की ओर निहारिबे को करो नित्तहिं मेरी दुहाइयै जू।
सु लख्यो हम आपने नैनन सों कहा कीबो करो चतुराइयै जू।
बतलात हौ लाल जिते तित ही अब जाइ सुखै बतलाइयै जू।
इत जोरी जो रावरी सो न जुरै न जरै पर लोन लगाइयै जू।[7]

१. शृं० नि०, पृ० ६०।
२. तिय जु प्रौढ़ अति प्रेम में सो न सकै कहि बात।
ता रिस ताकी क्रियन तें जानैं मति अवदात। शृं० नि०, पृ० ६१।
३. शृं० नि०, पृ० ६१।
४. प्रौढ़ा धीरादि के तीनों भेद याही में हैं। शृं० नि०, पृ० ६१।
५. पियऽपराध लखि मान को किये मानिनी नाम।
लघु मध्यम गुरु मान को उदै होत जा काम। शृं० नि०, पृ० ६१।
६. प्रियाऽपराधसूचिका चेष्टा मानः। स च लघुर्मध्यमो गुरुश्च। र० मं०, पृ० ६६।
७. शृं० नि०, पृ० ६२।

४. कलहांतरिता—मान करके अपने नायक का अपमान कर उसके लिए पश्चात्ताप करने वाली नायिका को कलहांतरिता कहते हैं और उसे तभी शान्ति मिलती है जब वह अपने नायक को मना लेती है।[1] साहित्यदर्पणकार ने इस नायिका का लक्षण देते हुए कहा है कि चाटुकारी करते हुए अपने प्रियतम को जो क्रोध के कारण रुष्ट कर दे और पीछे से पश्चात्ताप करे वह कलहांतरिता कहलाती है।[2] दास का लक्षण बहुत कुछ साहित्यदर्पणकार के अनुसार है। जैसा ऊपर कहा गया है नायिका को क्रमानुसार लघु, मध्यम अथवा गुरु मान होता है और दास ने कलहांतरिता के अंतर्गत इन तीनों मानों की शान्ति के ललित उदाहरण दिए हैं। पश्चात्ताप करती हुई दास की इस नायिका को देखिए जो मनमोहन की ही सेज पर सोने की आकांक्षा प्रकट कर रही है—

आज तें नेह को नातो गयो तुम नेम गहो हौंहूं नेम गहौंगी।
दास जू भूलि न चाहिये मोहि तुमै अब क्यौंहूं न हौंहूं चहौंगी।
वा दिन मेरे प्रजंक पैं सोये हौ हौं वह दांव लहौं पै लहौंगी।
मानो बुरो कि भलो मनमोहन सेज तिहारी मैं सोइ रहौंगी।[3]

५. विप्रलब्धा—जिस नायिका को उसका नायक मिलने का विश्वास दिला कर न मिले तथा और से प्रेम करे उस दुखिता नायिका को विप्रलब्धा कहते हैं।[4] साहित्यदर्पणकार का कथन है कि संकेत करके भी प्रिय जिसके पास न जाये वह नितान्त अपमानित विप्रलब्धा होती है।[5] अतः स्पष्ट है कि दास का लक्षण साहित्यदर्पणकार से बहुत कुछ मिलता जुलता है। दास की यह विप्रलब्धा अवलोकनीय है जिसके लिए नायक से न मिल सकने के कारण शृंगार भी अंगारों की भांति दुखदायक हो गये हैं—

जानि कै सहेट गई कुंजन मिलन तुमैं जान्यो ना सहेट के बदैया ब्रजराज से।
सूनो लखि सदन सिँगार ज्यों अँगार भए सुख देन वारे भए दुखद समाज से।
दास सुखकंद मंद सीतल पवन भए तन ते सुज्वाले उपजावन इलाज से।
बाल के बिलापन बियोग तन तापन सो लाज भई मुकुत मुकुत भए लाज से।[6]

दास ने विप्रलब्धा के ही अन्तर्गत अन्यसंभोगदुःखिता का भी उल्लेख किया है। उन्होंने इस नायिका के उदाहरण मात्र दिये हैं लक्षण नहीं। वस्तुतः अन्यसंभोगदुःखिता उस

१. कलहन्तरिता मान कै चूक मानि पछिताय।
सहज मनावन की जतन मान सांति ह्वै जाय। शृं० नि०, पृ० ६३।
२. चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या।
पश्चात्तापमवाप्नोति कलहांतरिता तु सा। सा० द०, पृ० १०५।
३. शृं० नि०, पृ० ६४।
४. मिलन आस दै पति छलो औरहि रत ह्वै जाइ।
बिप्रलब्ध सो दुःखिता परसंभोग सुभाइ। शृं० नि०, पृ० ६५।
५. प्रियः कृत्वापि संकेतं यस्या नायाति संनिधिम्।
विप्रलब्धा तु सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता। सा० द०, पृ० १०६।
६. शृं० नि०, पृ० ६५।

नायिका को कहते हैं जो अपने प्रियतम के रति-चिह्नों को अन्य स्त्री के शरीर पर देख कर दुखित हो। दास की यह नायिका दर्शनीय है जिसने अपनी पड़ोसिन की ढीली वेणी को देख कर ही भांप लिया है कि यह वेणी तो उसी के प्रेमी द्वारा गूंथी गई है परन्तु जब उसने पड़ोसिन के नारे की गांठ देखी तब तो उसे पूरा विश्वास हो गया कि दाल में कुछ काला अवश्य है क्योंकि उस प्रकार की गांठ का उसे पूरा अनुभव है। इन चिह्नों को देख कर बेचारी नायिका उच्छ्वास लेकर रह जाती है और उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हैं—

> ढीली परोसिनि बेनी निहारि कै जानि गई यह नायक गूंदी।
> औरै बिचार बढ़ो बहुरचो लखि आपनी भांति की नीबी की फूंदी।
> दासपनो अपनो पहिचानत जानी सबै जु हुती कछु मूंदी।
> ऊभि उसास गही तरुनी बरुनीन में छाय रही जल बूंदी।[१]

६. **प्रोषितभर्तृका**—अपने पति को परदेश गया हुआ जानकर नायिका को वियोगजन्य दुख होता है। ऐसी दुःखिता नायिका को प्रोषितभर्तृका कहते हैं।[२] साहित्य-दर्पणकार तथा रसार्णवसुधाकरकार ने प्रोषितभर्तृका के लक्षण इस प्रकार दिये हैं कि अनेक कार्यों के वश होकर जिसका पति दूर देश को चला गया हो वह कामपीड़ित नायिका प्रोषितभर्तृका कहलाती है।[३] इस दृष्टि से दास का लक्षण आचार्य-सम्मत है। दास ने प्रोषितभर्तृका के चार भेद किये हैं।

(१) **प्रवत्स्यत्प्रेयसी**—प्रियतम के आने के समय भविष्यत् वियोग की आशंका से दुखित नायिका।

(२) **प्रोषितपतिका**—प्रियतम के प्रवास में रहने पर उसके वियोग से दुखित नायिका।

(३) **आगच्छत्पतिका**—जिसका नायक प्रवास से आने वाला हो।

(४) **आगतपतिका**—अपने प्रियतम के प्रवास से लौटकर आने पर प्रसन्न होने वाली नायिका।

दास ने इनके लक्षण नहीं दिये हैं परन्तु सोदाहरण इनका सुन्दर वर्णन किया है। उक्त लक्षण दास के उदाहरणों के आधार पर ही निर्मित हैं। हम इन सभी नायिकाओं का यहां विवेचन करेंगे।

---

१. शृं० नि०, पृ० ६५।

२. कहिये प्रोषितभर्तृका पति परदेसी जानि।
चलत रहत आवत मिलत चारि भेद उनमानि।
प्रथम प्रबत्स्यत्प्रेयसी प्रोषितपतिका फेरि।
आगच्छतपतिका बहुरि आगतपतिका हेरि। शृं० नि०, पृ० ६६-६७।

३. नानाकार्यवशाद्यास्या दूरदेशंगतःपति।
सा मनोभव दुःखार्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका। सा० द०, पृ० १०६।
दूरदेशंगते कान्ते भवेत् प्रोषितभर्तृका। र० सु०, पृ० ३१।

(१) प्रवत्स्यत्प्रेयसी—दास की यह प्रवत्स्यत्प्रेयसी अवलोकनीय है जो उसी समय से व्याकुल और कामबाणों से आहत हो रही है जब से नायक के प्रवास की बात चली है। इसी एक बात ने उससे उसकी भूख और प्यास छीन ली है, परन्तु उसके प्राण नहीं निकलते, जाने क्यों ?

बात चली वह है जब तें तबतें चले काम के तीर हजारन।
भूख औ प्यास चले मन तें अँसुआ चले नैनन तें सजि धारन।
दास चलीं कर तें बलया रसना चली लंक तें लाग्यो अवार न।
प्रान के नाथ चले अनते तनतें नहिं प्रान चले किहि कारन।[1]

(२) प्रोषितपतिका—दास की यह नायिका तो बड़ी ही विचित्र है जो अपने नायक को समीप के घाट पर स्नान करने के लिए जाने पर भी वियोग मानती है। उसके लिए नायक का प्रवास तो उसके प्राण हर लेने भर को पर्याप्त है। वह सन्ध्या तक के लिए निश्चित की गयी अवधि के बीत जाने पर कितनी व्याकुल हो रही है—

सांझ के ऐबे की औधि दै आये बितावन चाहत याहू बिहानहिं।
कान्ह जू कैसे दया के निधान हौ जानो न काहु के प्रेम प्रमानहिं।
दास बड़ोई बिछोह कै मानती जात समीप के घाट नहानहिं।
कोस के बीच कियो तुम डेरो तौ को सकै राखि पियारी के प्रानहिं।[2]

(३) आगच्छतपतिका—इस नायिका को अपने नायक के आगमन का संदेह सुन कर सहसा अच्छे शकुन भी झूठे प्रतीत हो रहे हैं, काग की बोली की भी उसे प्रतीति नहीं हो रही है, उसने तो प्रिय आगमन को भाग्य की बात समझ कर उसे भाग्य के ही भरोसे छोड़ दिया है—

बाम दई कियो बाम भुजा अँखिया फरके को प्रमान टरो सो।
झूठो सँदेसिया औ सगुनौती कहैयन को पर्‌यो एक परोसो।
दास जू प्रीतम की पतिया पतियात जो है पतियाइ मरो सो।
भाग भरोसोइ छोड़ि दियो हम का गहियै अब काग भरोसो।[3]

(४) आगतपतिका—प्रवास से लौटे हुए नायक को देख कर प्रसन्नता के मारे नायिका के नेत्र अश्रुपूर्ण हो जाते हैं, वह तो अपने नेत्रों को साफ करके ही अपने प्रियतम के रूप को देखना चाहती है।

देखि परै सब गात कटीले न ऐसे में ऐसी प्रिया सकै कोइ कै।
आदर हेत उठै प्रति रोम है दास यों दीनदयालता जोइ कै।
कन्त बिदेसी मिले सुख चाहिये प्रानप्रिया तू मिलै किमि रोइ कै।
जीवन नाथ सरूप लख्यो पै हमें मलिनी निज आंखिन धोइ कै।[4]

१. शृं० नि०, पृ० ६७। २. शृं० नि०, पृ० ६७।
३. शृं० नि०, पृ० ६७–६८। ४. शृं० नि०, पृ० ६८।

गुणानुसार नायिकाएं

दास ने नायिकाभेद-विवेचन के अन्त में नायिकाओं के उत्तमादि भेदों का उल्लख करते हुए उपर्युक्त सभी प्रकार की नायिकाओं को निम्नलिखित तीन वर्गों में रखा है—

(१) उत्तमा
(२) मध्यमा
(३) अधमा

रसार्णवसुधाकरकार ने भी यही कहा है कि सभी नायिकाएं तीन श्रेणियों में रखी जा सकती हैं—उत्तम, मध्यम तथा नीच।[1] दासजी ने नीच के स्थान पर 'अधम' कह दिया है। इन नायिकाओं का लक्षण देते हुए दास ने कहा है कि उत्तम मान नहीं करती, मध्यमा थोड़ा मान करती है किन्तु अधमा बिना अपराध के बहुत मान करती है।[2] दास ने इन तीनों के उदाहरण दिये हैं जिनमें कोई विशेषता प्रतीत नहीं होती।

अवस्थानुसार नायिकाओं के क्रम का वैज्ञानिक विवेचन

हम पिछले पृष्ठों में कह चुके हैं कि दास ने रस सारांश का आरंभ नायिका भेद से किया है और ऐसा करने में उन्होंने अपने काल की परम्परा का निर्वाह ही किया है क्योंकि उस समय कवि अथवा आचार्य-कवि प्रायः अपने ग्रंथों में नायिका भेद का उल्लेख अवश्य करते थे क्योंकि परिस्थितियों को देखते हुए यह एक प्रकार से समय की अनिवार्य मांग थी। रस सारांश में इस विषय का प्रतिपादन बहुत संक्षिप्त एवं अस्पष्ट रूप से हुआ है और दास जी ने, ऐसा प्रतीत होता है, काव्यनिर्णय की रचना के पश्चात् इस अभाव का अनुभव किया होगा, अतः उन्होंने शृंगारनिर्णय में विशेष रूप से नायिका भेद का ही विशद विवेचन किया है और नायिकाओं के भेदों को पूर्णतया वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने का श्लाघनीय प्रयास किया है।

रस सारांश में अवस्थानुसार नायिकाओं का उन्होंने उनकी विकसित होती हुई मनोदशा के अनुरूप वर्गीकरण करने का कोई प्रयास नहीं किया। परन्तु शृंगारनिर्णय में उन्होंने इन नायिकाओं को निम्नलिखित दो वर्गों में रखा है--

(१) संयोग शृंगार, और
(२) वियोग शृंगार

और ऐसा करने का स्पष्ट कारण यह था कि अवस्थानुसार नायिकाओं में दो वर्गों का प्रत्यक्ष आभास मिलता है, एक तो वह है जिसमें या तो नायिका का नायक से विछोह ही नहीं होता (जैसे स्वाधीन पतिका) अथवा जो प्रिय से मिलन की दशा में होती है और वह अपने प्रिय

---

१. उत्तमा मध्यमा नीचेत्येवं सर्वाः स्त्रियस्त्रिधा। र० सु०, पृ० ३६।

२. जितनी तिय बरनी ति सब तीन भांति की जानि।
तिन्हें उत्तमा, मध्यमा, अधमा नाम बखानि।
उत्तम मान बिहीन है लघु मध्यम मधि मान।
बिनऽपराध ही करत है अधम नारि गुरु मान। शृं० नि०, पृ० ६८।

से मिलती भी है (जैसे वासकसज्जा अथवा अभिसारिका) और दूसरी वह जो या तो प्रिय-मिलन से वंचित रहती है अथवा जिसका अधिकांश जीवन रोते धोते विरह वेदनाओं को सहन करते हुए व्यतीत होता है। वास्तविकता भी यही है कि इन नायिकाओं को मोटे तौर पर संयोग और वियोग अथवा मिलन और विरह इन्हीं दो विभागों में रखा जा सकता है। दास का यह वर्गीकरण उनकी पैनी सूझ का द्योतक है क्योंकि इस प्रकार का कोई भी प्रयास उनके पूर्व न तो संस्कृत के किसी आचार्य ने किया और न हिन्दी के ही आचार्य ने।

संयोग शृंगार—का प्रारंभ स्वाधीनपतिका से होता है। वास्तव में अवस्थानुसार नायिकाभेद का प्रारंभ होना भी इसी नायिका से चाहिए क्योंकि नायक और नायिका की प्रथम अवस्था वह है जब दोनों में एक दूसरे के प्रति प्रेम हो, आकर्षण हो तथा दोनों प्रेमाधिक्य के कारण एक दूसरे पर प्राण तक निछावर करने के लिए उद्यत हों। स्वाधीनपतिका को यह सब बातें प्राप्त रहती हैं उसे तो अपेक्षाकृत यह लाभ भी है कि नायक सदा उसके वश में रहता है, उसका शृंगार करता है और उसे अपनी सर्वप्रिय वस्तु समझता है। नायक के इतने समीप आने के कारण नायिका को प्रसन्नता तो होती है किन्तु साथ ही उसे यह भान होने लगता है कि नायक उसे इसीलिए तो प्रेम करता है कि उसमें रूप है, गुण है और उसके हृदय में नायक के लिये प्रेम है। नायिका के अन्तस् में छिपा हुआ यह भावांकुर समय पाकर पनपता है और नायिका को अपने इन गुणों पर (और यदि उसमें एक या दो गुण ही हुए तो उन्हीं एक या दो गुणों पर) गर्व हो जाता है। गर्व होना चाहिए या न होना चाहिए यह प्रश्न दूसरा है किन्तु उसमें नायक के प्रेमाधिक्य के कारण जो स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है उसके कारण वह गर्विता बनती है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस परिस्थिति में पड़ी हुई नायिका का गर्विता हो जाना अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता। अतः दास ने इस स्थान पर स्वाधीन-पतिका के अन्तर्गत नायिका के रूपगर्विता, प्रेमगर्विता तथा गुणगर्विता ये जो तीन भेद किये हैं वे उचित जँचते हैं। अस्तु, नायक और नायिका के प्रेम के इस वातावरण के मध्य कभी तो नायक को घुटने टेकने पड़ते हैं और वह पुरुष की मर्यादा का हनन करता हुआ स्त्री के पैरों में महावर तक लगाने को उद्यत रहता है और कभी स्त्री को अपना साज-शृंगार करके नायक से मिलने के लिए उसका स्वागत करने के निमित्त तैयारी करनी पड़ती है। यहीं से वह स्वाधीनपतिका से हट कर वासकसज्जा हो जाती है। यदि नायक परदेश से लौटकर आ रहा है तो उसके आगमन को सुन कर तो वह और भी प्रसन्न होती है और उसका स्वागत करने के लिए, उसे लुभाने के लिए वह अनेक प्रकार से साज-शृंगार करती है। इस स्थिति में वासकसज्जा आगतपतिका हो जाती है। यहां पर वासकसज्जा के साथ आगतपतिका को रख देना कुछ आलोचकों को अनुचित जान पड़ा है[1] क्योंकि आगतपतिका का पति परदेश से

१. आगतपतिका परदेश से आये हुए नायक का स्वागत करती है। इसलिए वासकसज्जा के अन्तर्गत उसका रखना उचित नहीं है।

प्रभुदयाल मीतल : ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद, पृ० १६५।

लौटता है। हमारा मत है कि दास ने जिस औचित्य को लेकर नायिकाओं को संयोग और वियोग शृंगार के अन्तर्गत रखा है उसमें संयोग में वे सभी नायिकाएं आ जानी चाहिए जिनका किसी न किसी प्रकार अपने नायक से संयोग होता है। इसी प्रकार 'वियोग' वर्ग में वे सभी नायिकाएं आनी चाहिए जिनका नायक से वियोग हो गया है। आगतपतिका से स्पष्ट ही नायक का मिलन होता है अतः इसका यहां उल्लेख असंगत नहीं।

एक बात और। रीतिकाल में 'परदेश' शब्द की व्याख्या कुछ निश्चित न थी। 'परदेश' के अन्तर्गत कितने मील का क्षेत्र लिया जाता था यह स्पष्ट न था। व्रज से दो कोस पर मथुरा में बसे हुए कृष्ण भी तो गोपिकाओं के लिए परदेश में बसते थे और स्वयं दास की प्रोषितपतिका भी अपने नायक को जो समीप के घाट पर नहाने गया है परदेश के बीच में समझती है।[1] अतः 'परदेश' शब्द का शाब्दिक अर्थ न लेकर लाक्षणिक अर्थ यह लेना चाहिए कि कुछ अवधि के लिए नायक नायिका की आँखों के आगे नहीं रहता। इस दृष्टि से देखने पर आगतपतिका को वासकसज्जा के अन्तर्गत रखना युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

अस्तु, वासकसज्जा अथवा प्रोषितपतिका नायक से मिलने के लिए उसके साथ केलि-क्रीड़ा करने के लिए अपना शृंगार करती है और सम्भोग सामग्री एकत्र करती है। कभी कभी ऐसा भी हो सकता है कि नायक स्वयं न आये, अतः नायिका को उसे बुलाने की व्यवस्था करनी पड़ती है अथवा वह मिलन के साधन जुटा कर और कभी कभी कामार्त होकर नायक के पास स्वयं जाती है। जाने के लिए विशेष घड़ी सायत की आवश्यकता नहीं, जब चाहे तब जा सकती है। यह है **अभिसारिका**। दिन में, कृष्णपक्ष की रात्रि तथा शुक्लपक्ष की रात्रि में नायक से मिलने के लिए जाने वाली कामातुर अभिसारिका क्रमशः दिवाभिसारिका, कृष्णाभिसारिका तथा शुक्लाभिसारिका कही जाती हैं परन्तु दास जी ने एतदर्थ केवल कृष्णाभिसारिका तथा शुक्लाभिसारिका को ही रखा है जैसा अन्य आचार्यों ने किया है। सम्भव है दिवाभिसारिका को अधिक निर्लज्जा समझ कर उन्होंने उसे यहां स्थान न दिया हो अथवा दिवाभिसारिका उनके ध्यान में ही न आई हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दास ने संयोगपक्ष के अन्तर्गत स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा (तथा आगतपतिका) और अभिसारिकाओं को रखकर उन्हें एक वैज्ञानिक क्रम से रखने का स्तुत्य प्रयास किया है।

वियोग शृंगार—नायिका के लिए एक ऐसा भी समय आता है जब उसे नायक का वियोग सहन करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में नायिका को विरह-वेदना का अनुभव होता है। नायक के प्रवास में रहने के कारण नायिका को उत्सुकतापूर्वक उसकी प्रतीक्षा में अपनी घड़ियां व्यतीत करनी पड़ती हैं और नायक के आने में होने वाले विलंब के लिए उसे अपने परितोष के निमित्त अपने से ही तर्क वितर्क करना होता है। यह स्थिति **उत्कंठिता** की होती है। ऐसा भी होता है कि जिस नायक पर भरोसा करके अपने समस्त अरमानों को अपने अन्तस् में संजोए नायिका उसकी प्रतीक्षा करती है वह अपनी धूर्ततावश अथवा प्रकृति या स्वभाववश

१. **देखिये प्रोषितपतिका का उदाहरण पृ० २६९।**

अन्यत्र परस्त्री-रमण में रात्रि व्यतीत कर प्रातःकाल परस्त्री-रमण रतिचिह्नों को लेकर अपनी नायिका के समक्ष आवे उस समय इस खंडिता नायिका के अन्तर में कौन कौन से भाव उठ सकते हैं इसका वर्णन तो कोई रसिक कवि ही कर सकता है। स्वाभाविक है कि अपने नैसर्गिक अबलापन के कारण वह हिंसात्मक हो नहीं सकती या नायक पर, जैसा छोटे बच्चों के लिए किया जाता है, हाथ नहीं छोड़ सकती। वह अधिक से अधिक अपने क्रोध को प्रकट कर सकती है अथवा फूट फूट कर रो सकती है। कोप प्रकट करने वाली नायिकाएं प्रकृत्यनुसार तीन प्रकार की हो सकती हैं—(१) गुप्त कोप करने वाली जो अधिकतर व्यंग्य का अवलंब लेती है अथवा केलिक्रीड़ा के प्रति उदासीन रहकर अपनी खिन्नता प्रकट करती है, (२) प्रकट कोप करने वाली जो प्रकट रूप से नायक को फटकारती है तथा (३) कुछ गुप्त एवं कुछ प्रकट कोप करने वाली जिसका मूल अस्त्र है रोना या रूठना। दास ने इनके धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा नाम दिये हैं। इन तीनों का उल्लेख खंडिता के अन्तर्गत नायिकाओं के क्रमिक विकास में वैज्ञानिकता की सृष्टि करता है। अतः इसे हम यहां पर उपर्युक्त कह सकते हैं। धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा नायिकाओं का स्वतंत्र विवेचन नायिकाओं के क्रमिक विकास में सहायक न होने के कारण विशेष उपयुक्त न होता। जहां नायिका क्रोध का सहारा नहीं लेती वहां उसका अन्तिम अस्त्र है मान करना अथवा रूठ जाना। इसलिए दास ने उसे मानिनी कहा है। स्वाभाविक है कि जिस नायक को नायिका चाहती है यदि उसने अपराध किया है तो नायिका या तो क्रोध करेगी अथवा मान करेगी क्योंकि उसके पास सामाजिक विवशताओं के कारण अन्य कोई मार्ग भी तो नहीं है। हां, जब कभी अपनी उग्रता अथवा उद्धतता के कारण नायिका मान ही मान में अपने नायक का अपमान कर बैठती है उस समय स्थिति बदल सकती है और शान्ति के क्षणों में नायिका को अपने कृत्यों पर दुख तथा पश्चात्ताप होता है। और तब वह नायक को मनाने के प्रयत्न करती है यह हुई **कलहांतरिता**। ऐसी स्थिति में कभी कभी क्रोधवश और कभी अपनी जान छुड़ाने के लिए नायक नायिका से फिर मिलने का वचन देकर चला जाता है, परन्तु वह नायिका से मिलता नहीं तथा कभी कभी अन्य स्त्री से प्रेम करने लगता है। इस समय वह नायिका **विप्रलब्धा** कहलाती है। इस अवस्था में उस नायक को अन्य स्त्री से सम्भोग करने में तनिक भी संकोच नहीं होता अतः जब नायिका किसी अन्य स्त्री के शरीर पर अपने पति के रतिचिह्न देखती है तब उसे गहन आन्तरिक पीड़ा होती है। यही नायिका अन्यसम्भोग दुःखिता है जिसका दास ने विप्रलब्धा के अन्तर्गत उल्लेख किया है।

प्रायः नायिका के समक्ष अनेक विषम अवसर उपस्थित हो जाते हैं। उसे पता चलता है कि उसका नायक परदेश जाने वाला है। इस कारण उसे नायक का भावी विरह सताने लगता है, उसका खाना पीना छूट जाता है और अनेक दुखद चिन्ताएं उसे घेर लेती हैं (**प्रवत्स्यत्प्रेयसी**)। जब नायक वास्तव में परदेश चला जाता है उस समय नायिका को प्रियतम के प्रवास के कारण विरहजन्य व्यथा होती है (**प्रोषितपतिका**)। जब नायिका प्रवास से नायक के आने का समाचार सुनती है तो वह प्रसन्नता से नाच उठती है

(आगच्छतपतिका) और जब सचमुच नायक परदेश से लौट आता है उस समय तो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना ही नहीं रहता (आगतपतिका)।

दास ने नायक के प्रवास में होने के कारण नायिकाओं को होने वाले दुखसुख के अनुसार प्रोषितभर्तृका के अन्तर्गत चार नायिकाओं—प्रवत्स्यत्प्रेयसी, प्रोषितपतिका, आगच्छतपतिका तथा आगतपतिका—का उल्लेख किया है। यह क्रम भी अत्यंत वैज्ञानिक प्रतीत होता है। इस क्रम की अन्तिम नायिका आगतपतिका का उल्लेख दास जी 'संयोग शृंगार' के अन्तर्गत भी कर चुके हैं परन्तु क्योंकि वियोग शृंगार में नायिकाओं के विरहक्रम की अन्तिम अवस्था मिलन है (जो संयोग पक्ष के ही अन्तर्गत आती है)। अतः इस स्थल पर आगतपतिका के उल्लेख से वियोगपक्षीय नायिकाओं के वैज्ञानिक क्रम को समर्थन ही मिलता है।

उपर्युक्त विवेचन की पृष्ठभूमि में हमारा तो यह मत है कि जहां वे अपने पूर्व ग्रन्थ 'रससारांश' के क्रम से विलग भी हुए हैं वहां उन्होंने शृंगार निर्णय में इस विषय को एक वैज्ञानिक क्रम देने में सफलता प्राप्त की है। वे किसी विषय का वर्गीकरण करके तब उसका वैज्ञानिक विवेचन करने के समर्थक थे। उन्होंने जिन विषयों को उठाया उनका वर्गीकरण करके तब उसका वैज्ञानिक विवेचन किया।

अन्त में हम दास के सम्बन्ध में श्री प्रभुदयाल मीतल का मत नीचे उद्धृत कर रहे हैं जिससे हम भी सहमत हैं—

"दास ने किसी भी आचार्य का अनुकरण न कर अपनी परिपाटी स्वतंत्र रूप से चलाई थी। उन्होंने देव और रसलीन की तरह अनेक प्रकार की नवीन नायिकाओं की उद्भावना की है और उनके भेदोपभेद-कथन में बड़ी कारीगरी दिखाई है। उनके कथन में स्वतंत्र उद्भावना के साथ मौलिकता की छाप है। इस दृष्टि से ब्रजभाषा नायिका भेद के कवियों में दास का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

उन्होंने आचार्यत्व की दृष्टि से भी नायिका भेद का महत्वपूर्ण कथन किया है और पूर्व आचार्यों से कई बातों में भिन्न मत रखते हुए उन्होंने अपना स्वतंत्र मत प्रकट किया है। यदि ब्रजभाषा साहित्य में संस्कृत साहित्य की तरह शास्त्रार्थ और खंडनमंडन की प्रणाली प्रचलित होती, तो दास को अपने मत की पुष्टि के लिए अन्य आचार्यों के मतों का खंडन करना पड़ता। उस समय उनके रचना-कौशल का महत्व और भी बढ़ जाता। इस प्रणाली के अभाव में उन्होंने अपना विशिष्ट मत तो प्रकट कर दिया, किन्तु उन्होंने ऐसा क्यों किया और किन कारणों से उनका मत पूर्वाचार्यों से भिन्न है यह जानने का कोई साधन नहीं है"।[1]

१. प्रभुदयाल मीतल : ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद, पृ० १२६।

नायक भेद वर्णन

दास जी के अनुसार तरुण, सुघड़, सुन्दर तथा सुहृद व्यक्ति नायक कहलाता है। इसके तीन भेद होते हैं—(१) साधारण, (२) पति तथा (३) उपपति।[1] रस सारांश में इन्होंने साधारण नायक के स्थान पर 'बैसिक' नायक रखा है।[2] दास के अनुसार नायक में अनेक गुण होते हैं—वह गुणी, ज्ञानी, धनी, धीर, दानी, दयालु सभी कुछ होता है।[3] साहित्यदर्पणकार ने भी नायक को दाता, कृतज्ञ, पंडित कुलीन, लक्ष्मीवानों का अनुरागपात्र रूप यौवन और उत्साह से युक्त तेजस्वी, चतुर और सुशील बताया है।[4] और इन्हीं सद्गुणों के कारण उसके ४ भेद बताये हैं, अर्थात् धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित तथा धीरप्रशान्त,[5] परन्तु दास जी ने इनका इन नामों से कहीं उल्लेख नहीं किया है।

उपर्युक्त तीनों नायकों—पति, उपपति तथा बैसिक—को दास जी ने क्रमशः अपनी ब्याही हुई दूसरी स्त्रियों के साथ तथा गणिका (वेश्या) से प्रेम करने वाला बताया है।[6] बैसिक नायक को चरका देकर धन ठग ले जाने वाली इस वेश्या को देखिये—

सुबरन बरनो लैगई बिहसति मन धन साथ।
कहा करौं कैसे जियौं कछू न मेरे हाथ।[7]

पति और उपपति दोनों ही प्रकार के नायकों के दास जी ने चार चार भेद किये हैं—अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट।[8] ये भेद संस्कृत के आचार्यों के अनुसार ही हैं।

(१) अनुकूल—वह नायक है जिसका प्रेम एक नारी से हो।[9] अनुकूल पति का

---

१. तरुन सुघर सुन्दर सुचित नायक सुहृद बखानि।
भेद एक साधारनै पति उपपति पुनि जानि। — शृं० नि०, पृ० २।
२. पति उपपति बैसिक त्रिबिधि नायक कहैं सुरीति। — र० सा०, पृ० ३९।
३. छबि मैं गुन मैं ग्यान मैं धन मैं धीर धुरीन।
नायक रन मैं रसनि मैं दान दया लौ लीन। — र० सा०, पृ० ३८।
४. त्यागी, कृती, कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता। — सा० द०, पृ० ८५।
५. धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च।
धीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमं चतुर्भेदः। — सा० द०, पृ० ८५।
साहित्यदर्पणकार ने इन चारों नायकों के चार चार भेद—दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ—और किये हैं, (परन्तु दास ने ये भेद पति और उपपति में ही किये हैं)
एभिर्दक्षिणधृष्टानुकूलशठरूपिभिस्तुषोडशधा। — सा० द०, पृ० ८६।
६. निज ब्याही तिय को रसिक पति ताको पहिचान।
आसिक और तियान को उपपति ताकों जान। — शृं० नि०, पृ० ३।
निज तिय सों परतियन सों अरु गणिका सों प्रीति।
पति उपपति बैसिक त्रिबिधि नायक कहैं सुरीति। — र० सा०, पृ० ३९।
७. र० सा०, पृ० ४०।
८. अनुकूलो दच्छिन सठो धृष्ठिति चोराचार।
इक नारी सों प्रेम जिहि सो अनुकूल बिचार। — शृं० नि०, पृ० ४।
९. दास का यह लक्षण साहित्यदर्पणकार के अनुसार ही है-
अनुकूल एक निरतः। — सा० द०, पृ० ८७।

दास जी ने निम्नलिखित एक सुन्दर उदाहरण दिया है--

> सम्भु सों क्यों कहिये जेहि ब्याही है पारबती औ सती तिय दोऊ।
> राम समान कह्यौ चहै जीय पै माया की सीय लिये रहे सोऊ।
> दास जू जौ यहि औसर होवतीं तेरोई नाह सराहतीं वोऊ।
> नारि पतिव्रत हैं बहुतै पतिनीव्रत नायक और न कोऊ।[1]

और अनुकूल उपपति का यह चित्र भी दर्शनीय है—

> तो बिन राग औ रंग वृथा तुव अंग अनङ्ग की फौजन की सौं।
> मुसक्यान सुधारस भौजन की तुव आनन आनँद खानिनि की सौं।
> दास के प्राण की पाहरू तू यह तेरे करेरे उरोजनि की सौं।
> तो बिन जीबो न जीबो प्रिया मुहिँ तेरई नैन सरोजन की सौं।[2]

(२) दक्षिण नायक--(यह भी पति और उपपति दोनों में होता है) वह होता है जो अनेक स्त्रियों से प्रेम तो करे परन्तु प्रीति सब में समान रखे। इसकी विशेषता यह है कि यह वचनचतुर तथा क्रियाचतुर होता है।[3] हमारे विचार से दक्षिण नायक में वचन तथा क्रिया के चातुर्य का समावेश दास जी की मौलिक उद्भावना है। दास के दक्षिण नायक का लक्षण साहित्यदर्पणकार के अनुसार है।[4]

दास के ये दोनों चतुर नायक अवलोकनीय हैं—

> वचन चतुर--भौन अँधेरेहू चाहि अँधेरे चमेली के कुंज के पुंज बने हैं।
> बोलत मोर करैं पिक सोर जहाँ तहँ गुंजत भौंर घने हैं।
> दास रच्यो अपने ही बिलास को मैन जू हाथन सो अपने हैं।
> कूल कलिन्दजा के सुखमूल लतान के बृन्द बितान तने हैं।[5]
>
> क्रिया चतुर--जित न्हानथली निज राधे करी तित कान्ह कियो अपनो खरको।
> जित पूजा करैं नित गौरि की वै तित जाय ये ध्यान धरैं हर को।
> इमि भेद न दास जू जानै कछू ब्रज ऐसो बसै बुधि को बर को।
> दधि बेचन जैबो जितै उनको एई गाहक हैं तितको घर को।[6]

(३) शठ--वह नायक होता है जो व्यभिचारी तथा महाकपटी हो और अपने आप चतुराई करके शठता का प्रदर्शन करे।[7] साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है कि जो अनुरक्त किसी अन्य में हो परन्तु अपनी नायिका में भी बाहरी अनुराग दिखाए और

१. शृं० नि०, पृ० ४। २. शृं० नि०, पृ० ४-५।

३. बहुनारिन को रसिक पै सब पै प्रीति समान।
बचन क्रिया में अति चतुर दच्छिन लच्छन जान। शृं० नि०, पृ० ५।

४. एषु त्वनेक महिला समरागो दक्षिण कथितः। सा० द०, पृ० ८६।

५. शृं० नि०, पृ० ६। ६. शृं० नि०, पृ० ६।

७. निज मुख चतुराई करै सठता बिरचै आन।
व्यभिचारी कपटी महा नायक सठ पहचान। शृं० नि०, पृ० ६।

प्रच्छन्न रूप से उसका अप्रिय करे।[1] दास का लक्षण अधिक व्यापक प्रतीत होता है। दास ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

> **मिलिबे को करार करौ हम सों मिलि औरन सों नित आवत हौ।**
> **इन बीतन हौंहीं गई करती तुम दास जू धोखो न लावत हौ।**
> **नटनागर हौ जू सही सब ही अँगुरी के इसारे नचावत हौ।**
> **पै दई हमहूं विधि थोरी घनी बुधि काहे को बातें बनावत हौ।**[2]

(४) **धृष्ट**—जिसे मार खाने तथा गाली दी जाने पर भी लज्जा न आये तथा दोष दिखलाई पड़ने पर भी जो उसे न माने वह धृष्ट नायक होता है।[3] इस संबंध में साहित्यदर्पणकार का कथन है कि जो अपराध करके भी निःशंक रहे, झिड़कियां खाने पर भी लज्जित न हो और दोष दिखलाई पड़ने पर भी झूठ बोलता जाय वह धृष्ट नायक होता है।[4] अतः दास का मत साहित्यदर्पणकार से बहुत कुछ मिलता जुलता है। दास के धृष्ट नायक का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

> **उपरैनी धरे सिर भावती की प्रति रोम पसीनेन यों निकसै।**
> **मुसुकात इतै पर दास सबै गुरु लोगनि के ढिग ह्वै निकसै।**
> **गुन हीन हरा उर में उपट्यो तिहि बीच नखच्छत छ्वै निकसै।**
> **गृह आवत हैं बृजराज अली तन लाज को लेस न ध्वै निकसै।**[5]

रस सारांश में दास जी ने पहले तो नायक के मानी, प्रोषित, वचनचतुर, तथा क्रिया चतुर ये चार भेद[6] (जिनमें से वचन चतुर और क्रिया चतुर का उल्लेख उन्होंने शृंगार निर्णय में दक्षिण नायक के अन्तर्गत किया है जैसा ऊपर कहा जा चुका है) और बाद को उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन भेद किये हैं।[7]

नायक सखा वर्णन

दास ने आलंबन विभाव के अन्तर्गत ही नायक के सखाओं का भी वर्णन किया है।

---

१. शठोऽयमेकत्र बद्ध भावो यः।
दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढ़माचरति। सा० द०, पृ० ८८।

२. शृं० नि०, पृ० ७-८।

३. लाजरु गारी मार की छोड़ दई सब त्रास।
देख्यो दोष न मानई नायक धृष्ट प्रकास। शृं० नि०, पृ० ७।

४. कृतागा अपि निःशंकस्तर्जितोऽपि न लज्जितः।
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्टनायकः। सा० द०, पृ० ८७।

५. शृं० नि०, पृ० ८।

६. मानी ठानै मान जो बिरही प्रोषित जानि।
बचन बिदग्धा कृय चतुर नायक चतुर बखानि। र० सा०, पृ० ४२।

७. उत्तम मन हितिन करै मानै मानिन संक।
मध्यम समयी अधम निज अरथी निलज निसंक। र० सा०, पृ० ४४।

नायक के चार सखा होते हैं : १. पीठमर्द, २. विट, ३. चेट तथा ४. विदूषक।[1] दास के अनुसार इनके लक्षण इस प्रक ।

१. **पीठमर्द**—जो झूठा मान करे।[2] साहित्यदर्पण के अनुसार इस नायक की व्याख्या है कि "नायक के बहुदूरव्यापी प्रसंग प्राप्त चरित में नायक के सामान्य गुणों से कुछ न्यून गुणों वाला नायक का सहायक पीठमर्द कहलाता है।"[3]

२. **विट**—जो काम-कला में निपुण हो।[4] इस सम्बन्ध में साहित्यदर्पणकार का कथन है कि "भोगविलास में अपनी सम्पत्ति खो चुकने वाला, धूर्त, नृत्यगीतादि कलाओं के एक अंश को जानने वाला, वेश्याओं की आवभगत करने में होशियार, बातचीत करने में चतुर, मधुरभाषी और गोष्ठी में समादृत पुरुष विट कहलाता है"।[5]

३. **चेटक**—वस्तुतः यह दास होता है। परन्तु दास ने इसका लक्षण स्पष्ट नहीं कहा है।[6] स्वयं साहित्यदर्पणकार ने भी 'चेट प्रसिद्ध इव' (चेट तो प्रसिद्ध ही है) के अतिरिक्त इसका अन्य कोई उल्लेख नहीं किया है।[7]

४. **विदूषक**—जो परिहास करे।[8] इस सम्बन्ध में साहित्यदर्पणकार का मत है "कि किसी फूल अथवा वसन्तादिक पर जिस का नाम हो और जो अपनी क्रिया, देह, वेष और भाषा आदि से हँसाने वाला हो, दूसरों को लड़ाने में प्रसन्न रहता हो और अपने मतलब का पूरा हो, अर्थात् अपने खाने पीने की बात कभी न भूले वह विदूषक है"।[9]

यहां यह उल्लेखनीय है कि इन सखाओं का वर्णन दास जी ने केवल 'रस सारांश' में ही किया है जो उनका काव्यकला सम्बन्धी उत्कृष्ट ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। जैसा ऊपर कहा जा चुका है नायक सखाओं के उपर्युक्त लक्षण साहित्यदर्पणकार की तुलना में युक्ति-संगत नहीं जान पड़ते।

१. पीठिमर्द विट चेटक विदुषक औ अनभिग्य।
चतुर सखा नायक तिन्हैं जानत कबिता बिग्य। — र० सा०, पृ० ४५।

२. पीठिमर्द करै झूठ मान जो है फुरो। — र० सा०, पृ० ४५।

३. दूरानुवर्तिनि स्यात्तस्य प्रासंगिकेतिवृत्ते तु।
किंचित्तद्गुणहीनः सहाय एवास्य पीठमर्दाख्यः। — सा० द०, पृ० ८८।

४. सो विट जो अति काम कला बिच चातुरो। — र० सा०, पृ० ४५।

५. सम्भोगहीन सम्पद्विटस्तु धूर्तः कलैकदेशज्ञः।
वेशोपचारकुशलो वाग्मी मधुरोऽथ बहुमतो गोष्ठ्याम् — सा० द०, पृ० ८६।

६. चेटक देइ भुलाइ करै जु सुपास को। — र० सा०, पृ० ४५।

७. देखिये सा० द०, पृ० ८६।

८. तौन विदूषक जौन करै परिहास को। — रा० सा०, पृ० ४५।

९. कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः। — सा० द०, पृ० ८६।

उद्दीपन विभाव

पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत चन्द्रमा, पुष्प, सखी, दूती आदि रस का उद्दीपन करने वाली प्रायः सभी वस्तुओं का समावेश हो जाता है।[1] दास जी ने उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत इन सभी का उल्लेख किया है।

सखी—दास जी के अनुसार उद्दीपन में सर्वप्रथम सखी और दूती का ही वर्णन होता है।[2] सखी वह होती है जो नायक और नायिका दोनों की हितैषिणी हो।[3] यह तीन प्रकार की होती है—अन्तर्वर्तिनी, विदग्धा तथा सहचरी।[4] दास जी ने इनके लक्षण न देकर केवल उदाहरण दिये हैं। दास की यह विदग्धा सहचरी अवलोकनीय है—

> **आंवत अंजन अधर दै भाल महाउर लाल।**
> **हँसी खिसी ह्वै जाइ जो सही गुनै कहुँ बाल।**[5]

दास जी ने जात्यनुसार सखियों की भी एक सूची दी है जो इस प्रकार है—[6] नाइन, नटी, परोसिन, चुरिहारिन, पटइनि, बरइनि, गन्धरयिनी, सन्यासिनी, चितेरिनी, धोबइनि, रंगरेजिन, कुदेरिनि, बैदिनि, गन्धिनि तथा मालिन। साहित्यदर्पण में दूती का कार्य करने वाली स्त्रियों की सूची में सखी, नटी, दासी, धाई की पुत्री, पड़ोसिनि, बालिका, सन्यासिनी, धोबिन, रंगरेजिन, तमोलिनि तथा चित्र बनाने वाली का उल्लेख मिलता है[6] जिसे देखने से दास जी की सूची की व्यापकता में सन्देह नहीं रह जाता। दास ने इनमें से कुछ के लक्षण मात्र दिये हैं, कुछ के उदाहरणमात्र और कुछ के लक्षण तथा उदाहरण दोनों ही दिये हैं। उदाहरणों में कहीं कहीं जात्यनुसार विशेषताएं दिखलायी पड़ती हैं—

> **चितेरिनी—बहु दिन ते आधीन लखि मैं लिखि दियो बनाइ।**
> **चित्र चितै तुव चित्रिनी भये चित्र पदुराइ।**[7]
> **मालिनी—जो सुमनहि तू राधिके लायी करि अनुराग।**
> **सोई तोरत सांवरो आपुहि आयो बाग।**[8]

यहां यह उल्लेखनीय है कि 'विभिन्न जाति की स्त्रियों को आलंबन रूप में रखना अन्यत्र भले ही उपयुक्त हो किन्तु लक्षणग्रन्थों में यह दोष ही है। अतः दास ने इनको दूती

---

१. देखिये पृष्ठ संख्या २३३।

२. सखी दूतिका प्रथम ही उद्दीपन में जानि। र० सा०, पृ० ४६-४७।

३. तिय पिय की हितकारिनी सखी कहैं कविराय। शृं० नि०, पृ० ७०।

४. तिय पिय की हितकारिनी अन्तरवर्तिनि होइ।
और बिदग्धा सहचरी सखी कहावै सोइ। र० सा०, पृ० ५२।

५. रस सारांश, पृ० ५३। ६. देखिये, रस सारांश, पृ० ४७ से ५२ तक।

६. दूत्यः सखी नटी दासी धात्रेयी प्रतिवेशिनी,
बाला प्रव्रजिता कारूः शिल्पिन्याद्याः स्वयं तथा। सा० द०, पृ० १२०।

७. र० सा०, पृ० ४९। ८. र० सा०, पृ० ५१।

बना कर दोष का कुछ परिमार्जन करने की चेष्टा की है'।[1] दूती के सम्बन्ध में दास जी का कथन है कि जो दूसरों द्वारा भेजी हुई आवे उसे दूती कहते हैं तथा जो अपनी भेजी हो उसे बान दूतिका कहते हैं।[2] दूती तीन प्रकार की होती हैं—उत्तम, मध्यम और अधम।[3] दास जी ने इन दूतियों के उदाहरण दिये हैं। इनकी यह उत्तमा दूती दर्शनीय है जो नायक को सुख पहुंचाने के लिए अतिव्यग्र है—

> **मोहि सो भूल भई सिगरी बिगरी सब आजु सँवार करौंगी।**
> **बीर की सौं बलवीर बलाय ल्यों आज सुखी इक बार करौंगी।**
> **दास निसा लों निसा करिये दिन बूड़ते ब्यौंत हजार करौंगी।**
> **आज बिहारी तिहारी पियारी तिहारे मैं हीय की हार करौंगी।[4]**

दास की यह अधम दूती भी दर्शनीय है जो नायक की कुरूपता का ढिंढोरा उसी के आगे पीट रही है—

> **किल कंचन सी वह अंग कहाँ कहँ रंग कंदंबन के तुम कारो।**
> **कहँ कंजकली बिकसी वह होइ कहाँ तुम सोइ रहो गहि डारो।**
> **नित दास हा ल्याव ही ल्याव कहो कछु आपनो वाको न भेद बिचारो।**
> **वह कौंल सी गोरी किसोरी कहाँ औ कहां गिरिधारन पानि तिहारो।[5]**

बान दूती के दास जी ने तीन भेद किये हैं—हिता, हिताहिता तथा अहिता, जो क्रमशः हित की, हित तथा अहित दोनों की और अहित की ही बातें करती है।[6] उनकी यह हिता बानदूती द्रष्टव्य है जो नायक का नायिका से मिलन करा देने के लिए व्यग्र है।

> **कियौ चहो बन माल जौ आजु रहो इहि धाम।**
> **फूल माल को आइहै फूलमाल सी बाम।[7]**

दूती अथवा सखियों के कर्तव्यों में दास जी ने मण्डन (शृंगार), दर्शन, परिहार संघट्टन (मिलन), मानप्रवर्जन, पत्रिका दान तथा अन्य अनेक बातें जैसे उपालम्भ, शिक्षा, स्तुति, विनय, विरह-निवेदन आदि बताई हैं। यदि स्वयं नायिका अवसर पाकर ये कार्य करे

१. विश्वनाथप्रसाद मिश्र : वाङ्मय विमर्श, पृ० २९८।
२. पठई आवै और की दूती कहिये सोइ।
   अपनी पठई होत है बानदूतिका जोइ। र० सा०, पृ० ५३।
३. उत्तम अरु मध्यम अधम प्रगट दूतिका भाव। शृं० नि०, पृ० ७०।
४. शृं० नि०, पृ० ७२।
५. शृं० नि०, पृ० ७२-७३।
६. हित की हित अरु अहित की अरु अहितै की बात।
   कहै बान दूतीन के गुन तीन्यों गनि जात। र० सा०, पृ० ५४।
७. र० सा०, पृ० ५४-५५।

तो वह स्वयंदूतत्व कहलाता है।[1] दास जी ने इनके उदाहरण भी दिये हैं जिनमें से कुछ तो बहुत सुन्दर बन पड़े हैं।

संघट्टन कर्म—आपने आपने गेह के द्वार तें देखा देखी कै रहे हिलि दोऊ।
त्योंही अँध्यारो कियो झपि मेघनि मैन के बान गये खिलि दोऊ।
दास चितै चहुँधा चित चाय सो औसर पाय चले पिलि दोऊ।
प्रेम उमंडि रहे रसमंडित अन्तर की मड़ई मिलि दोऊ।[2]

विनय कर्म—जात भए गृह लोग कहूं न परोसहू को कछु आहट पैये।
दीन दयाल दया करि कै बहु द्योसनि को तन ताप बुझैये।
दास ये चन्दन चाँदनी चौसर औसर बीते न औसर पैये।
गोहन छाँड़ि कछू मिस कै मनमोहन आज यहां रहि जैये।[3]

अन्य प्रकार के उद्दीपन विभाव

उद्दीपन की अन्य अनेक वस्तुओं में दास ने सुन्दर ऋतु, सुगन्ध, फलफूल, अवलोकन तथा आलाप भी गिनाये हैं।[4] इनके अतिरिक्त दास ने नायिका के अलंकारों का भी वर्णन किया है। नायिका-अलंकार के अन्तर्गत दास ने हाव तथा हेला के भेदों का वर्णन किया है।

हाव—जहां क्रिया, वचन और चेष्टा का वर्णन किया जाता है वहां हाव होता है चाहे वहां अनुभाव हो या न हो।[5] साहित्यदर्पण के अनुसार भृकुटि तथा नेत्रादि के विलक्षण व्यापारों के सम्भोगाभिलाष का सूचक, मनोविकारों का अल्प प्रकाशक भाव ही 'हाव' कहलाताहै।[6] इसकी स्थिति संयोग शृंगार में होती है।[7] दास जी ने दस प्रकार के हावों का

---

१. मण्डन सन्दरसन हँसी संघट्टन सुभ धर्म।
मान प्रबर्जन पत्रिकादीन सखिन के कर्म।
उपालम्भ सिच्छा स्तुती विनय यदृक्षा उक्ति।
बिरह निवेदनजुत सुकवि बरनत हैं बहु जुक्ति।
इन बातनि पिय तिय करै जहाँ सुऔसर पाय।
वहै स्वयंदूतत्व है सो हौं कहौं बनाय। शृं० नि०, पृ ७३।

२. शृं० नि० पृ० ७५। ३. शृं० नि०, पृ० ७८।

४. सुरितु चन्द सुरबास शुभ फल अरु फूल समाजु।
अवलोकन आलाप मृदु सब उद्दीपन साजु। र० सा०, पृ० ५५।

५. कृया बचनु अरु चेष्टै जहँ बरनत कवि कोइ।
ताहू को हावै कहै अनुभाव होइ न होइ। र० सा०, पृ० ६७।

६. भ्रूनेत्रादिविकारैस्तु सम्भोगेच्छा प्रकाशकः।
भाव एवाल्पसंलक्ष्यविकारो हाव उच्यते। सा० द०, पृ० ८४।

७. अलंकार बनितान के पाय सँजोग सिँगार।
होत हाव दस भांति को ताको सुनो प्रकार। शृं० नि०, पृ० ८४।

उल्लेख किया है--लीला, ललित, बिलास, किलकिञ्चित, विहृत, विच्छित्ति, मोट्टाइत, कुट्टमित, बिब्बोक तथा विभ्रम ।[1] उन्होंने इन सभी भावों का तो सलक्षण एवं सोदाहरण वर्णन किया ही है साथ ही उन्होंने पांच हावों--अर्थात् मौग्ध्य, विक्षेप (विच्छेप), कुतूहल, चकित और केलि-का विवेचन और किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उन्होंने कुल १५ हावों का सविस्तार वर्णन किया है। साहित्यदर्पण में १८ हावों का वर्णन हुआ है जिनमें से १५ तो ऊपर दिये हुए हैं तथा तीन--मद, तपन तथा हसित-और है।[2] दास ने अपने रस सारांश ग्रन्थ में सभी १८ हावों का वर्णन किया है परन्तु उन्होंने साहित्यदर्पण में दिये गए 'तपन' हाव के स्थान पर उद्दीप्त का नाम दिया है।[3] अन्य कोई अन्तर नहीं। अतः हाव वर्णन में दास की मौलिकता एवं नवीनता प्रकट नहीं होती।

हेला--दास जी के अनुसार हेला वहां होता है जहां हावों में प्रेम प्रकाशित होता हो।[4] साहित्यदर्पण के अनुसार इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है कि मनोविकार के अति स्फुटता से लक्षित होने पर उसी भाव को हेला कहते हैं।[5] हमारे विचार से दास का लक्षण अधिक स्पष्ट है।

दास के ग्रन्थों में अन्य रसों का विवेचन तथा चित्रण

हास्य--जिस रचना को सुनकर चित्त प्रसन्न हो जाय और हँसी आ जाय उसे हास्य रस कहा गया है।[6] दास ने इसकी सांगोपांग व्याख्या नहीं की है और न इसके भेदादि बताये हैं। हास्य रस के विवेचन में दास की कोई विशेषता नहीं दिखायी पड़ती। हां, यत्र तत्र बिखरे हुए उनके हास्य रस सम्बन्धी कुछ उदाहरण अवश्य मिलते हैं। दास के निम्नलिखित

---

१. लीला ललित बिलास किलकिंचित बिहित बिछित्त ।
मोट्टाइत कुट्टमिति बिब्बोक बिमोहित मित्त । शृं० नि०, पृ० ८४ ।

२. लीला बिलासो विच्छित्तिर्विव्वोकः किलकिञ्चितम् ।
मोट्टायितं कुट्टमितं विभ्रमो ललितं मदः ।
विहृतं तपनं मौग्ध्यं विक्षेपश्च कुतूहलं ।
हसितं चकितं केलिरित्यष्टादश संख्यकाः । सा० द०, पृ० १०६ ।

३. देखिये रस सारांश, पृ० ६८-७८ ।

४. हावन में जहँ होत है निपट प्रेम प्रकाश ।
तासों हेला कहत हैं सकल सुकविजन दास । शृं० नि०, पृ० ६४ ।

५. हेलात्यन्तसमालक्ष्यविकारः स्यात्स एव तु । सा० द०, पृ० ११० ।

६. हँसी भर्‍यो चित हँसि उठै, जो रचना सुनि दास ।
कवि पंडित ताको कहें यह पूरन रस हास । का० नि०, पृ० ३१ ।

पद में कूबरभक्ति की महिमा का कथन है जिसमें हास्य रस का सुन्दर परिपाक देखने को मिलता है।

ऊधो तहाँई चलो लै हमैं जहँ कूबरी कान्ह बसैं इक ठोरी।
देखिये दास अघाइ अघाइ तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी।
कूबरी सों कछु पाइये मंत्र लगाइये कान्ह सों प्रेम की डोरी।
कूबर भक्ति बढ़ाइये बृन्द चढ़ाइये चन्दन वन्दन रोरी।[1]

वीर—जो हृदय में उत्साह पैदा कर दे वही वीर रस होता है।[2]

करुण—जिस कवित्त के श्रवण से हृदय शोकाभिभूत होकर करुणा से द्रवीभूत हो जाय उसे करुण रस कहा गया है।[3] इस सम्बन्ध में दास का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

बतियाँ हुतीं न सपनेहूँ सुनिबे की सो सुनी में जो हुती न कहिबे की सो कह्योई में।
रोवैं नरनारी पक्षी पसु देहधारी सबै परम दुखारी ऐसे सूलनि सह्योई में।
हाय अपलोक ओक पंथहि गह्यो पै विरहागिनि दह्यो मैं सोकसिंधुनि बह्योई में।
हाय प्रान प्यारे रघुनन्दन दुलारे तुम बन को सिधारे प्रान तन लै रह्योई में।[4]

इसके अनन्तर दास ने रौद्र, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत रसों के अत्यंत सक्षेप में लक्षण दिये हैं—जैसे क्रोध होने से रौद्र, भय लगने से भयानक, घृणा से वीभत्स तथा विस्मय से अद्भुत रस का प्रादुर्भाव होता है।[5] इन सब के दास ने उदाहरण दिये हैं।[6] रौद्र रस का निम्नलिखित उदाहरण सुन्दर बन पड़ा है—

क्रुद्ध दसानन बीस भुजानि सों लै कपि रीछ अनी सर बट्टत।
लच्छन तच्छन रत्त किये दृग लच्छ विपच्छिन के सिर कट्टत।
मारु पछारु पुकार दुहूँ दल रुंड झपट्टि दपट्टि लपट्टत।
रुंड लरैं भट मत्थनि लुट्टत जोगिनि खप्पर ठट्ठनि ठट्टत।[7]

१. का० नि०, पृ० ४६।

२. जो उत्साहिल चित्त में देत बढ़ाइ उछाह।
सो पूरन रस बीर है रचैं सुकवि करि चाह। का० नि०, पृ० ३२।

३. सोक चित्त जाके सुनत करुनामय ह्वै जाइ।
ता कविताई को कहैं करुना रस कविराइ। का० नि०, पृ० ३१।

४. का० नि०, पृ० ३७-३८।

५. ह्वै रिस बाढ़े रुद्र रस, भयहि भयानक लेखि।
घिन ते है बीभत्स रस अद्भुत विस्मय देखि। का० नि०, पृ० ३२।

६. देखिये का० नि०, पृ० ३८—३६।

७. का० नि०, पृ० ३८।

शांत--वैराग्यपूर्ण मानसिक स्थिति में जब शुभ और अशुभ बातें समान प्रतीत होती हों उस समय निर्वेद की उत्पत्ति होती है जिसके बढ़ने से शान्त रस का आविर्भाव होता है।[1] अन्य आचार्यों का यही मत है।[2] दास जी ने शान्त रस का निम्नलिखित सुन्दर उदाहरण दिया है--

> भूखे अघाने रिसाने रसाने हितू अहितून्ह सों स्वच्छ मने हैं।
> दूषण भूषण कंचन काँच जु मृत्तिका मानिक एक गने हैं।
> सूल सों फूल सों माल प्रवाल सों दास हिये सम सुक्ख सने हैं।
> राम के नाम सों केवल काम तेई जग जीवन मुक्त बने हैं।[3]

व्यभिचारी भाव वर्णन--जो भाव स्थायीभाव से विमुख न रह कर उनकी सहायता करते हैं उन्हें व्यभिचारी भाव कहते हैं। इन्हें संचारी भाव भी कहते हैं। वे स्थायी भाव में सदा इस प्रकार स्थित रहते हैं जैसे समुद्र में लहर और समुद्र की लहर की ही भांति वे स्थायी-भाव के मध्य कुछ काल के लिए प्रकट होते रहते हैं। इनकी संख्या ३३ है--निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, विषाद, उत्कंठा, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विवोध, अमर्ष, अवहित्थ, गर्व, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क।[4] दास द्वारा दी गयी संचारियों की यह सूची आचार्यसम्मत है।[5] दास ने इन संचारियों के लक्षण नहीं दिये। निम्नलिखित उदाहरण में संचारियों का जुटाव बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है जो दास जी की प्रतिभा का सूचक है--

> **सुमिरि सकुचि न थिराति शंक त्रसित तरकि उग्र बानि सगलानि हरषाति है।**
> **उनिदति अलसाति सोअति सधीर चौंकि चाहि चिन्त श्रमित सगर्व इरखाति है।**
> **दास पिय नेह छिन छिन भाव बदलति, स्यामा सविराग दीन मति कै मखाति है।**
> **जल्पति जकति कहँरति कठिनाति मति मोहति मरति बिललाति बिलखाति है।**[6]

१. मन विराग सम शुभ अशुभ सो निर्वेद कहन्त।
ताहि बढ़े ते होत है शान्त हिये रस सन्त। काο निο, पृο ४१।

२. मम्मट ने शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद बताया है :
निर्वेद स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः। काο प्रο, पृο ७४।
साहित्यदर्पणकार के अनुसार इसका स्थायी भाव शम है--
शान्तः शमस्थायिभाव उत्तम प्रकृतिर्मतः। साο दο, पृο १५६।
चन्द्रालोक में भी शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद माना गया है।
निर्वेदस्थायिकः शान्तः सत्संगादिविभावभूः। चंο लोο, पृο २१४।

३. काο निο, पृο ४१।

४. देखिये काव्यनिर्णय, पृ ४०। ५. देखिये काव्यप्रकाश, पृο ७३।

६. काο निο, पृο ४६।

भावाभास वर्णन— दास का कथन है कि जहां भाव का अनौचित्य के साथ वर्णन होता है वहां भावाभास होता है।[1] इस सम्बन्ध में साहित्यदर्पणकार का मत है कि जहां रस और भाव अनौचित्य से प्रवृत्त हुए हों वहां क्रमशः रसाभास और भावाभास होता है। ठीक यही मत काव्यप्रकाशकार का भी है।[2] स्पष्ट है कि दास की भावाभास की यह व्याख्या संस्कृत के आचार्यों के मतानुसार है। साहित्यदर्पणकार के ही अनुसार दास का भी कथन है कि भावोदय, भावसन्धि, भावसबलता, भावशान्ति, भावाभास, तथा रसाभास रस ही होते हैं।[3] दास ने इनका संक्षेप में विवेचन करते हुए उदाहरण भी दिये हैं।

भावोदय तथा भावसन्धि क्रमशः वहां होते हैं जहां किसी भाव का उदय हो अथवा जहां दो भावों की एक साथ सन्धि हो।[4] दास जी ने भावोदय का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

देखि री देखि अली सँग जाइ धौं कौन है का घर में बतराति है।
आनन मोरि कै नैनन जोरि अबै गई ओझल कै मुसकाति है।
दास जू जा मुख जोति लखे तें सुधाधर जोति खरी सकुचाति है।
आगि लिये चली जाति सु मेरे हिये बिच आगि दिये चली जाति है।[5]

भावसबलता वहां होती है जब बहुत से भाव मिल कर एक रंग हो जायं[6], उदाहरणार्थ—

हरि संगति सुखमूल सखि, ये परपंची गाउँ।
तू कहि तौ तजि संक उत दृग बचाइ द्रुत जाउँ।[7]

यहां उत्कंठा, शंका, दीनता, धृति, आवेग आदि संचारी भावों के अवहित्था के साथ आने के कारण भावसबलता है।

भावशांति वहां होती है जहां अन्य भावों की शान्ति हो जाय।[8] दास के भावोदय,

१. भाव जु अनुचित ठौर है सोई भावाभास। — का० नि०, पृ० ४२।
२. अनौचित्य प्रवृत्तत्व आभासो रस भावयोः। — सा० द०, पृ० १६५।
तदाभासा अनौचित्य प्रवर्तितः। — का० प्र०, पृ० ७६।
यहां आभास से तात्पर्य रसाभास तथा भावाभास दोनों से है·
तदाभासा रसाभासा भावाभासाश्च। — का० प्र०, पृ० ७६।
३. भाव उदै संध्यौ सबल सान्तिहु भावाभास।
रसाभास ये मुख्य हैं होत रसहि लौं दास। — का० नि०, पृ० ४१।
देखिये सा० द०, पृ० १६३।
४. उचित बात तच्छन लखे उदै भाव की होइ।
बीचहि में द्वै भाव के भावसन्धि है सोइ। — का० नि०, पृ० ४१।
५. का० नि०, पृ० ४२।
६. बहुत भाव मिलि कै जहाँ, प्रगट करैं इक रंग।
सबल भाव तासों कहैं जिनकी बुद्धि उतंग। — का० नि०, पृ० ४२।
७. का० नि०, पृ० ४२।
८. भाव सान्ति सो है जहां मिटत भाव अन्यास। — का० नि०, पृ० ४२।

भावसन्धि, भावसबलता, भावशान्ति आदि के लक्षण साहित्यदर्पणकार के आधार पर ही हैं।[1]

भावाभास तथा रसाभास का उदाहरण देते हुए दास जी ने उनमें अनौचित्य की झलक दिखाई है।

भावाभास—दरपन में निज छाँह सँग, लखि प्रीतम की छाँह।
खरी ललाई रोस की, ल्याई अँखियन मांह।[2]

अपने प्रियतम की छांह को अपने साथ देख कर क्रोध करना उचित नहीं कहा जा सकता।

इसी प्रकार निम्नलिखित उदाहरण में नायिका को बहुत से नायकों को वश में करने के कारण रसाभास है।

सुधा सुराधर तुव नजरि, तू मोहनी सुभाइ।
अछकन्ह देत छकाइ है मार मरेन्ह को जाइ।[3]

अपरांग वर्णन

जहां पर रसादि तथा भावादि दोनों परस्पर एक दूसरे के अंग हो जाते हैं वहां अपरांग होता है। कुछ लोग इसे अलंकार भी कहते हैं।[4] मम्मट ने अपरांग (अपरस्यांग) का लक्षण देते हुए बतलाया है कि जहां किसी पराये रस आदि का अथवा वाच्यार्थ का अंग कोई और रसादिक बन गया हो अथवा अनुरणनरूप सलक्ष्यक्रम व्यंग्य ही हो वहां अपरस्यांगम समझना चाहिये।[5] अतः दास का लक्षण मम्मट के आधार पर ही है। इसके अन्तर्गत रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्वि तथा समाहित अलंकार और भावोदयवत्, भावसन्धि तथा भावसबलवत आते हैं।[6]

रसवतालंकार वहां होता है जहां पर कोई रस किसी अन्य रस अथवा भाव का अंग

१. साहित्यदर्पणकार ने कहा है कि जहां किसी भाव की शान्ति, उदय, सन्धि अथवा मिश्रण होता है वहां क्रमशः भावशान्ति, भावोदय, भावसन्धि तथा भावशबलता होती है—
भावस्य शान्तावुदये सन्धि मिश्रित योः क्रमात्।
भावस्य शान्तिरुदयः सन्धि शबलेता मता। सा० द०, पृ० १६८।

२. का० नि०, पृ० ४३।

३. का० नि०, पृ० ४३।

४. रस भावादिक होत जहँ, युगल परस्पर अंग।
तहं अपरांग कहैं कोऊ, कोउ भूषन इहि ढंग। का० नि०, पृ० ४३।

५. अपरस्यरसादेर्वाच्यस्य वा (वाक्यार्थी भूतस्य) अंगम् रसादि अनुरणनरूपं वा।
का० प्र०, पृ० १२७।

६. रसवत प्रेया ऊर्जशी समाहितालंकार।
भावोदयवत् सन्धिवत और सबलवत सार। का० नि०, पृ० ४३।

हो जाय।[1] दास का यह लक्षण साहित्यदर्पण के अनुसार है।[2]

बादि छयो रस व्यंजन खाइबो बादि नवो रस मिश्रित गैबो।
बादि जराउ प्रजंक बिछाइ प्रसून घने परि पायल ठैबो।
दास जू बादि जनेस महेस धनेस फनेस गनेस कहैबो।
या जग में सुखदायक एक मयंकमुखीन को अंक लगैबो।[3]

यहां शान्त रस शृंगार रस के अंग में रहने से शान्तरसवत् है।

प्रेयस् अलंकार—जहां भाव किसी रस अथवा भावादि का अंग हो वहां प्रेयस् अलंकार होता है।[4] साहित्यदर्पणकार के मतानुसार अधिक प्रिय होने के कारण इसे प्रेयस् कहते हैं।[5] दास ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

मोहन आपन राधिका को विपरीत को चित्र बिचित्र बनाइ कै।
डीठि बचाइ सलोनी की आरसी में चपकाइ गयो बहराई कै।
घूमि घरीक में आइ कह्यो कहा बैठी कपोलनि चन्दन लाइकै।
दर्पन त्यों तिय चाह्यो तहीं मुसुकाइ रही दृग मोरि लजाइ कै।[6]

ऊर्जस्वि अलंकार—जहां रसाभास और भावाभास एक दूसरे के अंग हों वहां ऊर्जस्वि अलंकार होता है।[7] इस सम्बन्ध में साहित्यदर्पणकार का मत है कि "जहां अनौचित्य से प्रवृत्ति में ऊर्जस् अर्थात् बलात्कार रहे उसे ऊर्जस्वि अलंकार कहते हैं। यह अलंकार वहां होता है जहां रसाभास और भावाभास एक दूसरे के अंग हों"[8] दास ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

ऊधो तहाँई चलो लै हमैं जहँ कूबरी कान्ह बसैं इक ठोरी।
देखिय दास अघाइ अघाइ तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी।
कूबरी सों कछु पाइये मंत्र लगाइये कान्ह सों प्रेम की डोरी।
कूबर भक्ति बढ़ाइये बृन्द चढ़ाइये बन्दन चन्दन रोरी।[9]

१. जहँ रस को कै भाव को, अंग होत रस आइ
तेहि रसवत भूषन कहैं, सकल सुकवि समुदाइ — का० नि०, पृ० ४३।
२. रसयोगाद्रसवदलंकारो। — सा० द०, भाग २, पृ० २२३।
३. का० नि०, पृ० ४३-४४।
४. भावै जहँ ह्वै जात है रस भावादिक अंग।
सो प्रेयालंकार है बरनत बुद्धि उतंग। — का० नि०, पृ० ४५।
५. एवमन्यत्रापि। प्रकृष्ट प्रियत्वात्प्रेयः। — सा० द०, पृ० २२५।
६. का० नि०, पृ० ४५।
७. काहू को अँग होत रस भावाभास जु मित्त।
ऊर्जस्वी भूषन कहें ताहि सुकवि धरि चित्त। — का० नि०, पृ० ४५।
८. ऊर्जो बलम्। अनौचित्य प्रवृत्तौ तदत्रास्तीत्यूर्जस्वि। सा० द०, पृ० २२४।
९. का० नि०, पृ० ४६।

समाहितालंकार—जहां भावों की शांति किसी का अंग हो वहां समाहितालंकार होता है।[1] साहित्यदर्पणकार का कथन है कि समाहित का अर्थ है परिहार अर्थात् दूर होना। इसे देखते हुए दास का लक्षण अधिक व्यापक प्रतीत होता है।[2] उदाहरणार्थ—

राम धनुष टंकोर सुनि फैल्यो सब जग सोर।
गर्भ श्रवहिँ रिपु रानियाँ, गर्व श्रवहि रिपु जोर।[3]

यहां भयानक रस का गर्वभाव शान्ति अंग है।

भावसन्धिवत्—यदि किसी भाव की सन्धि अनायास किसी (रसभावादि) का अंग हो जाय तो वहां भावसन्धिवत् होता है।[4]

भावोदयवत्—यदि भावोदय रस भावादिक का अंग हो जाय तो वहां भावोदयवत् होता है।[5]

भावसबलवत्—जहां पर भावसबलता किसी (रस भावादि) का अंग हो वहां भावसबलवत् होता है।[6] साहित्यदर्पणकार ने भावोदय, भावसंधि और भावसबलता नामक अलंकारों का होना वहां कहा है जहां क्रमशः भाव उदय हों, उनकी सन्धि हो अथवा वे मिश्रित रूप में पाये जांय। अतः दास के लक्षण साहित्यदर्पणकार के अनुसार ही हैं।[7] दास ने भावसबलवत् का निम्नलिखित सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

मेरो पग आवत हौ भावतो सलोनो एहो, हँसि कही बालम बिताई कित रतियां।
इतनो सुनत रूसि जात भयो पीछे, पछिताइहौं मिलन चली गोये भेष भतियां।
दास बिनु भेंट हौं दुखित फिरि आई सेज, सजनी बनाई बूझि आइबे की घतियां।
बार लागे लागी मग जोहै हौं किवार लागी, हाय अब तिन को सन्देसऊ न पतिया।[8]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दास का अपरांग वर्णन आचार्य सम्मत बन पड़ा है।

---

१. काहू को अंग होत है जहँ भावन की सांति।
समाहितालंकार तहँ कहँ सुकवि बहु भांति। का० नि०, पृ० ४७।

२. समाहितं परीहारः। सा० द०, पृ० २२४।

३. का० नि०, पृ० ४७।

४. भावसन्धि अंग होइ जो काहू को अनयास।
भावसन्धिवत तेहि कहँ, पंडित बुद्धि बिलास। का० नि०, पृ० ४७।

५. रस भावादिक को जु कहुँ भाव उदय अंग होय।
भावोदयवत तेहि कहँ, दास सुमति सब कोय। का० नि०, पृ० ४८।

६. भाव सबलता दास जो काहू को अंग होय।
भाव सबलवत तेहि कहँ कवि पंडित सब कोय। का० नि०, पृ० ४८।

७. भावस्य चोदये सन्धौ मिश्रित्वे च तदाख्यकाः।
तदाख्यका भावोदय भावसन्धि भावशबलताभानोऽलंकाराः। सा०द०, भाग २, पृ० २२४।

८. का० नि०, पृ० ४८।

अलंकार विवेचन

दास जी ने अलंकारों का विवेचन बड़े विस्तार के साथ किया है। दास के अनुसार केवल अलंकारयुक्त काव्य अधम (अवर) काव्य होता है, व्यंग्यहीन परन्तु रस गुण तथा अलंकारयुक्त काव्य मध्यम है तथा जहां रस, अलंकार, गुण और व्यंग्य सभी हों वह काव्य उत्तम काव्य की कोटि में आता है।[1] अतः अलंकार वर्णन के इस प्रसंग में दास एक मात्र अलंकारों का होना ही उत्तम काव्य के लिए अनिवार्य नहीं समझते, उत्तम काव्य के लिए अलंकारों के साथ साथ रस, गुण, व्यंग्य आदि अन्य बातें भी होनी चाहिए।

उपमादि वर्ग

दास जी ने अलंकारों को वर्गों में विभाजित करके उनके लक्षण तथा उदाहरण देकर उनका विवेचन किया है। सर्वप्रथम दास ने उपमान के आधार पर उपमादि वर्ग में निम्नलिखित अलंकारों को रखा है—

उपमा (पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा), अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, विकस्वर, निदर्शना, तुल्ययोगिता तथा प्रतिवस्तूपमा।[2]

दास का कथन है कि उपमादि वर्ग में १२ अलंकार आते हैं। परन्तु ये १२ तभी होते हैं जब उपमा के साथ पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा सम्मिलित कर ली जाँय तथा श्रोती उपमा को अलग अलंकार मान लिया जाय। वास्तव में श्रोती उपमा अलग अलंकार न होकर उपमा ही का एक प्रकार है जैसा दास जी ने स्वयं कहा है—

जहँ उपमा उपमेय है, सो उपमा विस्तार।
होत आरथी श्रोतियो ताको दोइ प्रकार।[3]

१. **अवर हेतु नहि केवलै अलंकार निरबाहु।**
कबिपंडित गनि लेत हैं, अवर काव्य में ताहु।
अलंकार रस बात गुन, ये तीनों दृढ़ जाहि।
अवर व्यंग्य कछु नाहिं तौ, मध्यम कविता आहि।
रुचिर हेतु रस को बहुरि, अलंकारजुत होय।
चमत्कार गुन जुक्त है, उत्तम कविता सोय। का० नि०, पृ० ७०।

२. **उपमा पूरन अर्थ लुप्त उपमान अनन्वय।**
उपमेयोपम अरु प्रतीत श्रोती उपमाचय।
पुनि दृष्टान्त बखानि जानि अर्थान्तरन्यासहि।
विकस्वरो निदरसना तुल्यजोग्यता प्रकासहि।
गनि लेहु सु प्रतिवस्तूपमा, अलंकार बारह बिवित।
उपमान और उपमेय को, है विकार समुझो सुचित। का० नि०, पृ० ७०।

३. **का० नि०, पृ० ७०।**

वस्तुतः इस वर्ग में दास ने दस अलंकार ही रखे हैं।

इस स्थल पर दास जी के अलंकार सम्बन्धी वर्गीकरण पर विचार कर लेना असंगत न होगा। अलंकार के क्षेत्र में अलंकारों का वर्गीकरण करके तब उनका विवेचन करना दास का नवीन प्रयास नहीं कहा जा सकता। दास के पूर्व भी संस्कृत के अलंकारशास्त्रियों ने वर्गीकरण का प्रयास किया था और वे उसमें सफल भी हुए थे। सर्वप्रथम आचार्य रुद्रट ने अलंकारों का वर्गीकरण किया। उन्होंने यह वर्गीकरण चार वर्गों, अर्थात् वास्तव, औपम्य, अतिशय तथा श्लेष, में किया था।[1] दास जी ने जिन अलंकारों का उपमादि वर्ग में उल्लेख किया है उनमें से अनेक तथा अन्य अर्थात् उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, संशय, समासोक्ति, मत, उत्तर, अन्योक्ति, प्रतीप, अर्थान्तरन्यास, भ्रान्तिमान, आक्षेप, प्रत्यनीक, दृष्टान्त, पूर्व, सहोक्ति, समुच्चय, साम्य तथा स्मरण ये २१ अलंकार रुद्रट ने वास्तव वर्ग में रखे हैं।[2] रुद्रट के औपम्य श्रेणी में वही अलंकार हैं जिनमें एक वस्तु के स्वरूप का दूसरी वस्तु के सादृश्य द्वारा तुलनात्मक प्रतिपादन किया जाता है।[3] आचार्य रुय्यक ने अलंकारों को सादृश्य अथवा औपम्य वर्ग में रखा है। इस भेद के अन्तर्गत उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण आदि २८ अलंकार आते हैं।[4] अप्पय दीक्षित का तो कथन है कि जिस प्रकार नाटक में एक ही नटी अनेक रूप धारण करके लोगों को आनन्दित करती है उसी प्रकार एक ही उपमालंकार के अनेक भेद सहृदयों को आनन्दित करते हैं।[5] अतः उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, प्रतीप, स्मरण, रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रांतिमान, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, समासोक्ति, श्लेष तथा अप्रस्तुत अलंकार उपमा के ही रूपान्तर हैं।[6]

संस्कृत के आचार्यों द्वारा प्रस्तुत उपर्युक्त वर्गीकरण को देखते हुए यह अवश्य कहा जा सकता है कि हिन्दी में दास द्वारा अलंकारों का वर्गीकरण निश्चय ही एक सुप्रयास है, यद्यपि इसका आधार संस्कृत के आचार्यों द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण ही प्रतीत होता है।

१. अर्थस्यालंकारा वास्तवमौपम्यतिशयः श्लेषः।
एषामेव विशेषा अन्ये तु भवन्ति निःशेषाः। काव्यालंकार, पृ० ७६।

२. उपमोत्प्रेक्षारूपकमपह्नुतिः संशयः समसोक्ति।
मतमुत्तरमन्योक्तिः प्रतीपमर्थान्यासः।
उभयन्यीस, भ्रान्तिमदाक्षेपप्रत्यनीकदृष्टान्ताः।
पूर्वसहोक्ति समुच्चयसाम्य स्मरणानि तद्भेदाः। काव्यालंकार, पृ० ६८।

३. सम्यक् प्रतिपादयितुंस्वरूपतो वस्तु तत्समानमिति।
वस्त्वन्तरमभिदध्याद्वक्ता यस्मिंस्तदौपम्यम्। काव्यालंकार, पृ० ६८।

४. कन्हैयालाल पोद्दार : काव्यकल्पद्रुम, पृ० १।

५. उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिका भेदान्।
रंजयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः। अप्पयदीक्षित : चित्रमीमांसा, पृ० ५।

६. एवमुक्तानेकालंकार विवर्तवतीयमुपमा। अप्पयदीक्षित : चित्रमीमांसा, पृ० ५।

उपमा—अलंकार के अन्तर्गत दास ने पूर्णोपमा, मालोपमा तथा लुप्तोपमा का विशद विवेचन किया है, वैसे इस विवेचन में कोई विशेषता नहीं है। दास जी ने उपमेय, वाचक-धर्म-लुप्तोपमा के अन्तर्गत कहा है कि जहाँ यह तीनों (उपमेय, वाचक तथा धर्म) लुप्त होते हैं वहां रूपकातिशयोक्ति होती है।[1] और अपने समर्थन में उन्होंने निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

नभ ऊपर सर बीच जुत, कहा कहौं ब्रजराज।
तापर बैठो हौं लख्यो चक्रवाक युग आज।[2]

इस उदाहरण में केवल उपमान है, न धर्म है, न उपमेय और न वाचक। अतः यह रूपकातिशयोक्ति का विषय है। केवल उपमान का होना रूपकातिशयोक्ति का विषय है। अतः न तो ये उदाहरण लुप्तोपमा के हैं और न धर्म, उपमेय और उपमावाचक शब्द के लोप में उपमा हो ही सकती है।[3]

मालोपमा के अन्तर्गत दास ने भिन्नधर्मा तथा एकधर्मा (अभिन्नधर्मा) मालोपमा का विवेचन किया है।[4]

दास जी के निम्नलिखित उदाहरण में पांचों प्रतीपों का समावेश हो गया है। इस प्रकार के उदाहरण हिन्दी साहित्य में बहुत कम देखने को मिलते हैं। इससे दास जी के प्रकांड पांडित्य तथा काव्यकलाकौशल का परिचय मिलता है—

चन्द कहैं तिय आनन सों जिनकी मति बाँके बखान सों है रली।
आनन एकता चन्द लखै मुख के लखे चन्द गुमान घटै अली।
दास न आनन सों कहैं चन्द दई सों भई यह बात न है भली।
ऐसो अनूप बनाइ कै आनन राखिबे को ससिहू की कहा चली।[5]

अर्थात् चन्द्रमा को तिय आनन कहना प्रथम प्रतीप, चन्द्रमा का मुख की समता की अपेक्षा करना द्वितीय प्रतीप, मुख के देखने से चन्द्रमा का गर्व घटना तृतीय प्रतीप, चन्द्रमा को मुख के समान न कह सकना चतुर्थ प्रतीप तथा अनुपम मुख के सामने चन्द्रमा के रहने की आवश्यकता का न होना पंचम प्रतीप है।

दृष्टान्त—अलंकार के वर्णन के अन्तर्गत दास ने साधर्म्य में दृष्टान्त, वैधर्म्य में दृष्टान्त तथा माला दृष्टान्त के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। वैसे तो उनमें कोई नवीनता नहीं

---

१. तिहूँ लुप्त जहँ होत हैं, केवल ही उपमान।
रूपकातिशयउक्ति तहँ बरनत हैं मतिमान। का० नि०, पृ० ७४।
२. का० नि०, पृ० ७४।
३. देखिये कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० ६२।
४. जहँ एक की अनेक तहँ, भिन्न धर्म ते जोइ।
कहूँ एक ही धर्म ते, पूरनमाला होइ। का० नि०, पृ० ७२।
५. का० नि०, पृ० २३।

है, परन्तु इनका माला दृष्टान्त का निम्नलिखित उदाहरण सुन्दर बन पड़ा है—

अरबिंद प्रफुल्लित देखि कै भौंर अचानक जाइ अरैं पै अरैं।
बनमाल थली लखि कै मृगसावक दौरि बिहार करैं पै करैं।
सरसी ढिग पाइ कै व्याकुल मीन हुलास सों कूदि परैं पै परैं।
अवलोकि गुपाल को दास जू ये अँखियां तजि लाज ढरैं पै ढरैं।[1]

अर्थान्तरन्यास—का लक्षण देते हुए दास जी का कथन है कि जहां पर स्वभाव (या समता) आदि देखकर साधारण रूप से कोई बात कही जाय और फिर उसे किसी विशेष बात से दृढ़ किया जाय, अथवा साधारण बात से किसी विशेष का समर्थन किया जाय—चाहे वह साधर्म्य के आधार पर हो अथवा वैधर्म्य के आधार पर—वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। दास जी के इस लक्षण का आधार काव्य प्रकाश है[2] परन्तु दास जी का लक्षण संस्कृत के जयदेव तथा कुबलयानन्दकार जैसे श्रेष्ठ आचार्यों की अपेक्षा अधिक सुलझा हुआ लगता है।[3]

निदर्शना—अलंकार का लक्षण दास जी ने इस प्रकार किया है कि जहां एक क्रिया से दूसरी क्रिया दिखायी पड़े, चाहे वह सत्य पर आधारित हो अथवा असत्य पर, वहां निदर्शना होती है।[4] इस सम्बन्ध में मम्मट का मत है कि जहां वस्तुओं के असम्भव सम्बन्धों की कल्पना की जाय वहां निदर्शना होती है।[5] वे कहते हैं कि निदर्शना का अर्थ ही होता है

१. का० नि०, पृ० ८०।

२. मम्मट का कथन है कि "जहां सामान्य व विशेष वस्तु अपने से भिन्न वस्तु द्वारा समर्थित की जाय, चाहे साधर्म्य से अथवा साधर्म्य के अतिरिक्त, वहां अर्थान्तरन्यास होता है"।
सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्त सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्यणेतरेण वा। का० प्र०, पृ० ४०६।
इसी लक्षण को और स्पष्ट करते हुए मम्मट कहते हैं कि 'चाहे साधर्म्य द्वारा हो अथवा वैधर्म्य द्वारा जहाँ सामान्य का विशेष द्वारा अथवा विशेष का सामान्य द्वारा समर्थन हो वहां अर्थान्तरन्यास होता है'।
साधर्म्येण वा वैधर्म्येण सामान्यं विशेषेण
यत-समर्थ्यते विशेषो वा सामान्येन सोऽर्थान्तरन्यासः। का० प्र०, पृ० ४०६।

३. जयदेव का मत है कि जहाँ मुख्यार्थ के समर्थन के लिए दूसरे वाक्यार्थ की सत्ता हो वहाँ अर्थान्तरन्यास होता है—
भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा चं० लो०, पृ० १४६।
कुबलयानन्द के अनुसार सामान्य तथा विशेष द्वारा कही गई उक्ति अर्थान्तरन्यास होती है। उक्तिरर्थान्तरन्यासः स्यात्सामान्य विशेषयो:। कुब०, १३।

४. एक क्रिया तें देत जहँ, दूजी क्रिया लखाय।
सत असतहु से कहत हैं, निदर्शना कविराय। का० नि०, पृ० ८२।

५. अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमा परिकल्पकः। का० प्र०, पृ० ३६९।

दृष्टान्त बनाना ।[1] जयदेव का मत है कि दो विभिन्न वाक्यों में सादृश्य के कारण एकता के आरोप को निदर्शना कहते हैं[2] और आचार्य विश्वनाथ का मत है कि जहां वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध सम्भव (अबाधित) अथवा असम्भव (बाधित) होकर उनके बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का बोध करे वहां निदर्शना होती है ।[3] इन आचार्यों के लक्षणों को देखते हुए दास का लक्षण स्पष्ट नहीं प्रतीत होता ।

दास जी ने तुल्ययोगिता का भी विशद विवेचन किया है जिसके अन्तर्गत उन्होंने वर्ण्यों की धर्म एकता, हिताहित में एक धर्म तथा प्रस्तुत की उत्कृष्ट गुण वालों के साथ गणना के उदाहरण दिये हैं । इन्हें क्रमशः प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय तुल्ययोगिता कहा गया है । इस विवेचन में कोई नवीनता नहीं है ।

प्रतिवस्तूपमा—अलंकार के विषय में भी दास जी का मत भ्रामक है । उनके अनुसार यह अलंकार वहां होता है जहां उपमा तथा उपमेय का नाम एक ही हो । यहां पर 'नाम' का अर्थ यदि धर्म से लिया जाय तो बात कुछ समझ में भी आ सकती है । इसके पश्चात् दास जी ने प्रतिवस्तूपमा अलंकार के लक्षण में और संशोधन करते हुए कहा है कि जहां उपमा तथा उपमेय के नाम (साधारण धर्म) तथा अर्थ एक ही हों वहां प्रतिवस्तूपमा होती है ।[4] इस सम्बन्ध में मम्मट का कथन है कि जहां पर साधारण धर्म का दो भिन्न-भिन्न वाक्यों में दो बार कथन किया जाय वहां प्रतिवस्तूपमा होती है ।[5] अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए मम्मट आगे कहते हैं कि जहां साधारण धर्म उपमेय-वाक्य और उपमान-वाक्य इन दोनों में कथितपद नामक दोष के निवारणार्थ भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा कहा जाय वहां पर वस्तु के साथ वाक्यार्थ के उपमान होने से अलंकार का नाम प्रतिवस्तूपमा रखा गया है ।[6] साहित्य-दर्पणकार का मत है कि जहां दो वाक्यों में सादृश्य की प्रतीति हो उनमें यदि एक ही साधारण

१. निदर्शनं दृष्टान्तकरणं । का० प्र०, पृ० ३६६ ।
२. वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शना । चं० लो०, पृ० १३६ ।
३. सम्भवन्वस्तुसम्बन्धोऽसम्भवन्वापि कुत्रचित् ।
यत्र बिम्बानुबिम्बत्वं बोधयेत सा निदर्शना । सा० द०, पृ० १६६
४. नाम जु है उपमेय को, सोई उपमा नाम ।
ताहि प्रतीवस्तूपमा कहत सुकवि गुनधाम ।
जहँ उपमा उपमेय को, नाम अर्थ है एक ।
ताहू प्रतिवस्तूपमा, कहैं सुबुद्धि विवेक । का० नि०, पृ० ८६
५. प्रतिवस्तूपमा तु सा ।
सामान्यस्य द्विरेकस्न यत्र वाक्यद्वये स्थितिः । का० प्र०, पृ० ३८१ ।
६. साधारणोधर्मः उपमेयवाक्ये उपमानवाक्ये च कथितपदस्य दुष्टतयाऽभिहित्वा शब्दभेदेन यदुपादीयते सा वस्तुनो वाक्यार्थस्योपमानत्वात्प्रतिवस्तूपमा ।
का० प्र०, पृ० ३८२ ।

धर्म को पृथक पृथक शब्दों से कहा जाय वहां प्रतिवस्तूपमा होती है।[1] जयदेव का कथन है कि जहां उपमान और उपमेय वाक्यों का समान अर्थ हो वहां प्रतिवस्तूपमा होती है।[2] इस विवेचन से स्पष्ट है कि दास का लक्षण जयदेव के लक्षण से आंशिक रूप से मिलता हुआ भी अन्य आचार्यों की तुलना में अस्पष्ट प्रतीत होता है।

प्रतिवस्तूपमा अलंकार को दास ने उपमादि वर्ग का अन्तिम अलंकार रखा है, परन्तु पंडितराज का मत है कि (प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त में) अधिक भिन्नता न होने के कारण इनको एक ही अलंकार के दो भेद कहने चाहिए न कि भिन्न-भिन्न अलंकार।[3] परन्तु पंडितराज का यह मत आचार्यों को मान्य नहीं रहा है और उन्होंने इन्हें अलग अलग अलंकार मान कर ही इनका विवेचन किया है।

उपमादि वर्ग के अन्तर्गत दास जी ने जिन दस अलंकारों को स्थान दिया है उनका उन्होंने सलक्षण एवं सोदाहरण विशद विवेचन किया है। कहीं कहीं तो उनके लक्षण ठीक हैं तथा उदाहरण सुन्दर बन पड़े हैं परन्तु कतिपय स्थलों पर लक्षण एवं उदाहरण भ्रामक हो गये हैं। दास ने इस वर्ग में केवल उन्हीं अलंकारों को स्थान दिया है जिनमें उपमान उपमेय के आधार पर किसी न किसी प्रकार की समान विशेषता दृष्टिगत होती है।

उत्प्रेक्षादिवर्ग

इस वर्ग के अन्तर्गत दास जी ने उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, स्मरण, भ्रम, तथा सन्देह, अलंकार रखे हैं।[4] ये सभी रुद्रट के औपम्य वर्ग में, जिसका उल्लेख पिछले पृष्ठों में हो चुका है, आ गये हैं।

दास जी ने इनका विशद विवेचन किया है। उत्प्रेक्षा के वर्णन में उन्होंने वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा तथा लुप्तोत्प्रेक्षा का वर्णन किया है और साथ ही इनके भेदों—अर्थात् वस्तूत्प्रेक्षा के उक्त तथा अनुक्त विषया, हेतूत्प्रेक्षा तथा फलोत्प्रेक्षा के सिद्ध और असिद्ध विषया आदि का भी उल्लेख है।

दास जी ने सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

जौ कहो काहू के रूप सों रीझे तौ और को रूप रिझावनवारो।
जौ कहो काहू के प्रेम पगे हैं तो और को प्रेम पगावनवारो।
दास जू दूसरो बात न और इती बड़ी बेर बितावनवारो।
जानति हौं गई भूलि गोपाल गली यहि ओर को आवनवारो।[5]

---

१. प्रतिवस्तूपमा सा स्याद्वाक्योर्गम्यसाम्ययोः।
एकोऽपिधर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक। सा० द०, पृ० १६७।
२. वाक्योरर्थसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता। चं० लो०, पृ० १३४।
३. कन्हैयालाल पोद्दार : काव्यकल्पद्रुम (अलंकार मंजरी), पृ० १७५।
४. उत्प्रेक्षारु अपह्नुत्यो, सुमिरन भ्रम सन्देहु।
इनके भेद अनेक हैं ये पाँचो गनि लेहु। का० नि०, पृ० ८७।
५. का० नि०, पृ० ८९।

इस अलंकार में उत्प्रेक्षा अलंकार की प्रतीति नहीं होती क्योंकि यहां पर उपमेय उपमान भाव नहीं। 'जानति हौं' शब्द केवल सम्भावना वाचक है।

दास जी ने लुप्तोत्प्रेक्षा का लक्षण देते हुए कहा है कि लुप्तोत्प्रेक्षा उसे कहते हैं जो बिना वाचक हो और वह काव्यलिंग में मिल जाती है।[1] इस सम्बन्ध में हम पोद्दार जी का मत दे रहे हैं।

"भिखारीदास जी ने लिखा है कि गम्योत्प्रेक्षा (लुप्तोत्प्रेक्षा) काव्यलिंग में मिल जाती है—"याकी विधि मिल जात है काव्यलिंग में कोइ"--सम्भवतः गम्योत्प्रेक्षा का विषय दास जी नहीं समझ सके इसी से उन्होंने काव्यलिंग में गम्योत्प्रेक्षा का यह उदाहरण दिया है।

बिनहु सुमन गन बाग में, भरे देखियत भौंर।
दास आज मनभावती, खेल कियो येहि और।

किन्तु ऐसे वर्णनों में गम्योत्प्रेक्षा नहीं हो सकती है। इसमें न तो स्वरूप की उत्प्रेक्षा है और न हेतु या फल की ही। पुष्पों के बिना भौरों की भीड़ देखकर बाग में नायिका के आने की सम्भावनामात्र है। इस दोहे के पूर्वार्द्ध में पुष्पों के होने रूप कारण के अभाव में भौंरों के होने रूप कार्य का होना कहा जाने से उक्त निमित्ता प्रथम 'विभावना' है अथवा उत्तरार्द्ध के वाक्य का पूर्वार्द्ध में ज्ञापक कारण होने से अनुमान अलंकार भी माना जा सकता है"।[2]

सेठ जी ने दास जी का जो उपर्युक्त दोहा उद्धृत किया है उसमें उनके कथनानुसार गम्योत्प्रेक्षा नहीं है क्योंकि 'ऐसे वर्णनों में गम्योत्प्रेक्षा नहीं हो सकती'। दास जी का यह उदाहरण अशुद्ध है परन्तु इसी के साथ दास जी ने एक अन्य उदाहरण भी दिया है जो निम्नलिखित है—

बालम कलिकापत्र अरु, खोरि सज सब गात।
बाल चाहिये जोग यह, चित्रित चंपक पात।[3]

यहां पर बाल की इच्छानुरूप बालम का कलिकापत्र तथा खोरियुक्त गात चम्पक के तुल्य है। यहां स्वरूप की उत्प्रेक्षा है और वाचक शब्दों का भी अभाव है। अतः यह गम्योत्प्रेक्षा ही है क्योंकि इस सम्बन्ध में पंडितराज जगन्नाथ का मत है कि 'पूर्वोदाहृत पद्यों में ही 'इव' आदि उत्प्रेक्षावाचक शब्द छोड़ दिये जांय तो प्रतीयमाना (गम्या) उत्प्रेक्षाएं हो सकती हैं, क्योंकि वहां केवल अर्थ के बल पर अन्ततः उत्प्रेक्षा माननी पड़ती है। पर साथ ही इतना और समझ लीजिये कि यहां प्रतीयमाना अथवा गम्या का अर्थ व्यंग्य नहीं है। ऐसा भ्रम उचित नहीं। कारण प्रस्तुत में व्यंग्योत्प्रेक्षा का कोई प्रसंग नहीं। यहां तो सामग्री के प्रबल होने के कारण अर्थतः प्राप्त उत्प्रेक्षा का वर्णन है"।[4]

---

१. **लुप्तोत्प्रेक्षा तेहि कहैं वाचक बिन जो होइ।**
याकी विधि मिलि जात है, काव्यलिंग में कोइ। का० नि०, पृ० ९०।

२. सेठ कन्हैयालाल पोद्दार : काव्यकल्पद्रुम, अलंकार पीयूष, पृ० १४६।

३. का० नि०, पृ० ९१।

४. हिन्दी रस गंगाधर, पृ० ६९६-७१७।

अतः पोद्दार जी का यह कहना कि 'सम्भवतः 'गम्योत्प्रेक्षा' का विषय दास जी समझ नहीं सके हैं हमारे दृष्टिकोण से दास के प्रति अन्याय होगा।

अपह्नुति का लक्षण दास ने इस प्रकार दिया है कि जहां सच्चे धर्म का निषेध करके अन्य धर्म की स्थापना की जाय वहां अपह्नुति होती है।[1] मम्मट का कथन है कि अपह्नुति उसे कहते हैं जहां प्रकृति (उपमेय) को असत्य सिद्ध करके उससे भिन्न (उपमान) की सत्यता प्रतिपादित की जाय।[2] इसी बात को और भी स्पष्ट करते हुए मम्मट कहते हैं कि उपमेय को असत्य कह कर जहां उपमान की सत्यता सिद्ध की जाती है वहां अपह्नुति अलंकार होता है।[3] दास का लक्षण मम्मट से मिलता जुलता प्रतीत होता है। दास जी ने अपह्नुति के भेदों अर्थात् शुद्धापह्नुति, हेत्वापह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भ्रान्त्यापह्नुति, छेकापह्नुति तथा कैतवापह्नति के लक्षण संक्षेप में दे कर उनके उदाहरण दिये हैं। दास का भ्रांत्यापह्नुति का निम्नलिखित उदाहरण उनकी काव्यकला का सुन्दर नमूना है—

आनन है अरबिंद न फूले अलीगन भूले कहा मडरात हौ।
कीर तुम्हें कहा बाय लगी भ्रम बिम्ब के ओठन को ललचात हौ।
दास जू व्याली न बेनी बनाव है पापी कलापी कहा इतरात हौ।
बोलती बाल न बाजती बीन कहा सिगरे मृग घेरत जात हौ।[4]

डा० शुकदेवबिहारी मिश्र का इस उदाहरण के सम्बन्ध में कथन है—'केवल भ्रम के निवारण में भ्रांतिमान से पृथक कोई चमत्कार नहीं देख पड़ता, किन्तु यदि बनावटी भ्रम हो तो पते की बात युक्तिपूर्वक जानने या मूर्ख बनाने आदि का भाव व्यंजित होता है जिससे इतर चमत्कार की वृद्धि से पृथक अलंकारत्व मिल सकता है। इसलिए दास जी वाला उदाहरण वास्तव में भ्रांतिमान से इतर अन्य अलंकार नहीं'।[5]

कन्हैयालाल पोद्दार जी दास का समर्थन करते हुए इस उदाहरण को कविकल्पित भ्रांत्यपह्नुति मानते हैं।[6] हमारे विचार से पोद्दार जी का मत अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है। स्वयं डा० शुकदेवबिहारी जी ने 'अलंकार विमर्श' विषयक विवेचन के सम्बन्ध में इसी उदाहरण का पुनः विवेचन करते हुए कहा है "वर्णन में जिस विधि का व्यवहार किया गया है उसका शास्त्रीय नाम है 'भ्रांत्यापह्नुति' अलंकार। वह अपूर्व सुन्दरी है, सारांश इतना ही ह पर कवि ने अलंकार के माध्यम से अपने कथम में चार चांद लगा दिये हैं"।[7]

१. और धर्म जहँ थापिये सांचो धर्म दुराय। का० नि०, पृ० ६१।
२. प्रकृतंयन्निषिध्यान्यत्साध्यते सात्वपह्नुतिः। का० प्र०, पृ० ३६५।
३. उपमेयमसत्यं कृत्वा उपमानं सत्यतया यत्स्थाप्यते सात्वपह्नुतिः। का० प्र०, पृ० २६५।
४. का० नि०, पृ० ९२-९३।
५. डा० शुकदेवबिहारी मिश्र : साहित्यपारिजात, पृ० १९२।
६. कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० १३०।
७. डा० शुकदेव बिहारी मिश्र : साहित्य पारिजात, पृ० ५०६।

'स्मरण' अलंकार का लक्षण देते हुए दास जी का कथन है कि किसी वस्तु के देखने पर, कुछ सुनने पर तथा किसी की सुधि करने पर जहां कुछ स्मरण हो आता हो वहां स्मरण अलंकार होता है।[1] निश्चय ही यह लक्षण व्यापक है और स्पष्ट भी। भ्रम तथा संदेह के लक्षण दास जी ने नहीं दिये हैं, केवल यही कह दिया है कि इनके लक्षण तो इनके नाम मे ही प्रकट हैं।[2] दास जी ने संदेह का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

> लखे उहि टोल में नौल बधू मृदु हास में मेरो भयो मन डोल।
> कहों कटि खीन को डोलनो डौल कि पीन नितंब उरोज की तोल।
> सराहौं अलौकिक बोल अमोल कि आनन कोष में रंग तमोल।
> कपोल सराहौं कि नील निचोल किधों बिवि लोचन लोल कपोल।[3]

"इस उदाहरण में सन्देह अलंकार नहीं है क्योंकि 'नायिका के किस किस अंग के सौंदर्य की प्रशंसा करूं' इसमें सादृश्यमूलक सन्देह नहीं और न ऐसे वर्णन में सन्देह का कुछ चमत्कार ही होता है"।[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उत्प्रेक्षादि वर्ग के अन्तर्गत दास जी ने जिन पांच अलंकारों को रखा है उनका उन्होंने सांगोपांग विवेचन किया जो कतिपय स्थलों को छोड़कर अधिकांशतया स्पष्ट एवं सुबोध बन पड़ा है। इस वर्ग के अलंकारों में आरोपित समानता का ही आधार लिया गया है और इनमें उपमान और उपमेय की तुलना में उपमान का ही विशेष और अधिक महत्व है।

व्यतिरेक रूपक वर्ग

दास जी का कथन है कि व्यतिरेक अलंकार वहां होता है जहां उपमेय का पोषण किया जाय (अर्थात् उत्कर्ष दिखाया जाय) तथा उपमान का अपकर्ष बताया जाय परन्तु उपमेय और उपमान को समान न बताया जाय।[5]

मम्मट का कथन है कि जहां उपमान की अपेक्षा उपमेय का जो विशेष गुण रूप उत्कर्ष होता है वहां व्यतिरेक अलंकार होता है। तात्पर्य यह कि व्यतिरेक में उपमेय की अपेक्षा उपमान का गुणकथन अधिक होता है।[6] रुद्रट ने वहां भी व्यतिरेक माना है जहां

१. कछु लखि सुनि कछु सुधि किये, सो सुमिरन सुखकंद। का० नि०, पृ० ६४।
२. सुमिरन भ्रम संदेह को, लच्छन प्रगटै नाम। का० नि०, पृ० ६४।
३. काव्य निर्णय, पृ० ६६।
४. देखिये कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ १२४।
५. पोषन करि उपमेय को, दूषन दै उपमान।
नहिं समान कहिये तहाँ, है व्यतिरेक सुजान।
कहुं पोषन कहुं दूषनै, कहुं कहूँ नहिं दोउ।
चारि भाँति व्यतिरेक है, यह जानत सब कोउ। का० नि०, पृ ६७।
६. उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः। का० प्र०, पृ० ३८६।
अन्यस्योपमेयस्य व्यतिरेक आधिक्यम्। का० प्र०, पृ० ३८६।

उपमेय की अपेक्षा उपमान का उत्कर्ष-कथन हो।[1] अपने समर्थन में रुद्रट ने निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

क्षीण : क्षीणोऽपि शशी भूयो विवर्धते सत्यम् ।
विरम प्रसीद सुन्दरि यौवनमनिवर्ति यातं तु ।[2]

अर्थात् हे सुन्दरि यह सत्य है कि चन्द्रमा बारबार घट कर फिर बढ़ता है परन्तु युवावस्था जो एक बार व्यतीत हो चुकी हो फिर नहीं लौटती। अतः क्रोध को रोक कर मुझ पर प्रसन्न हो। इस उदाहरण का उद्धरण देते हुए मम्मट का कथन है कि "उदाहरण उपमान (चन्द्रमा) की अपेक्षा उपमेय (यौवन) का ही उत्कर्ष कहा गया है क्योंकि यौवन में अस्थिरता रूप आधिक्य का कथन है। अभिप्राय यह है कि "चन्द्रमा क्षीण हो हो कर भी पुनः बढ़ता रहता है (अतः चन्द्रमा सुलभ है) किन्तु यौवन क्षीण होकर पुनः प्राप्त नहीं होता (यौवन दुर्लभ है) और यहाँ दुर्लभता की ओर संकेत करना ही अभीष्ट है"।[3] पंडितराज जगन्नाथ ने भी व्यतिरेक में उपमान से उपमेय में अधिक गुण होना बताया है[4], जिसका खंडन आचार्य विश्वनाथ ने किया है।[5] विश्वनाथ ने व्यतिरेक का निम्नलिखित लक्षण दिया है—"उपमान से उपमेय का आधिक्य अथवा उपमान से उपमेय की न्यूनता के वर्णन में व्यतिरेक अलंकार होता है"।[6]

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यतिरेक के लक्षण के विषय में संस्कृत के अनेक आचार्य भी एकमत नहीं रहे हैं। परन्तु यह तथ्य है कि अनेक और अधिकांश आचार्यों ने उपमेय के उत्कर्ष में ही व्यतिरेक अलंकार माना है। यही बात दास जी ने भी कही है। दास ने व्यतिरेक के प्रकारों का उल्लेख करते हुए ऐसे उदाहरण दिये हैं जहां उपमेय का उत्कर्ष तथा उपमान का अपकर्ष एक साथ हो, (दास जी ने इसे पोषण दूषण के अन्तर्गत लिखा है। व्यतिरेक अलंकार के अन्तर्गत **पोषण** तथा **दूषण** की योजना दास को नवीन उद्भावना है) और केवल उपमेय का गुण कथन हो अथवा केवल उपमान में हीनता का उल्लेख किया गया हो। शब्द शक्ति से व्यतिरेक का भी उदाहरण दिया गया है। दास ने इसी विवेचन के साथ 'व्यतिरेक व्यंग्यार्थ' का भी एक उदाहरण दिया है—

कहा कंज केसर तिन्हें, कितिक केतकी बास।
दास बसे जे एक पल, वा पदुमिनि के पास।[7]

यहां 'कंज केसर' तथा 'केतकी वास' उपमानों से 'पदुमिनि' (नायिका) उपमेय का उत्कर्ष ध्वनित होता है। इसी को दास जी ने व्यतिरेक की ध्वनि कहा है। हमारे विचार से

१. यो गुण उपमाने वा तत्प्रतिपंथी च दोष उपमेये
भवतो यत्र समस्तौ स व्यतिरेकोऽयमन्यस्तु — काव्यालंकार, पृ० ९३।
२. काव्यालंकार, पृ० ९३।
३. इत्यादावुपमानस्योपमेयादाधिक्यमिति केनचिदुक्तं रथैर्याधिक्यं हि विवक्षितम्। — का० प्र०, पृ० ३८७।
४. उपमानादुपमेयस्य गुणविशेषवत्त्वेनोत्कर्षो व्यतिरेकः। रसगंगाधर, पृ० ५४७।
५. देखिये साहित्य दर्पण, पृ० १७२ से १७५ तक।
६. आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताथवा। व्यतिरेकः। सा० द०, पृ० १७२।
७. का० नि०, पृ० ९९।

'व्यंग्यार्थ व्यतिरेक' के नाम से इसका उल्लेख दास जी की नवीन उद्भावना है। परन्तु दास के 'व्यंग्यार्थ व्यतिरेक' का लक्षण पंचम प्रतीप से बहुत कुछ मिलता जुलता है। अतः व्यतिरेक वर्ग के अन्तर्गत इसका रखना उचित नहीं प्रतीत होता।

दास ने रूपक तथा रूपक के अनेक भेदों का उल्लेख किया है तथा उनके उदाहरण भी दिये हैं। उन्होंने अधिक, हीन तथा सम तद्रूपों, अधिक तथा हीन अभेदों के उदाहरण दिये हैं। दास जी ने अधिक अभेद का निम्नलिखित उदाहरण दिया है--

बन्धन डर नृप सों करै, सागर कहा बिचारि।
इन को पार न शत्रु है, अरु हरि गई न नारि।[1]

यहां पर व्यंग्यार्थ में रामचन्द्र जी को विष्णु रूप कहा गया है, परन्तु यहां पर उपमेय का निषेध होने के कारण यह शुद्धापह्नुति का उदाहरण है न कि अधिक अभेद का।

इसी प्रकार दास जी ने हीन अभेद रूपक का निम्नलिखित उदाहरण दिया है--

कंज के संपुट हैं ये खरे हिय में गड़ि जात ज्यों कुंत की कोर हैं।
मेरु हैं पै हरि हाथ न आवत चक्रवती पै बड़ेई कठोर हैं।
भावती तेरे उरोजनि में गुन दास लख्यौ सब औरई और हैं।
संभु हैं पै उपजावें मनोज सुवृत्त हैं पै परचित्त के चोर हैं।[2]

इस उदाहरण के सम्बन्ध में पोद्दार जी का मत है कि "स्तनों में जिन कमल के सम्पुट आदि का आरोप है उनके साथ स्तनों का विलक्षण वैधर्म्य दिखाकर विरोध बताया गया है। सभी आरोप प्रायः विरोध की पुष्टि करते हैं। अतः इसमें न्यूनताद्रूप्य रूपक नहीं है, विरोध अलंकार प्रधान है"।[3]

दास ने रूपक के भेद इस प्रकार किये हैं—निरंग, परम्परित, परिनाम तथा समस्तविषयक।[4] संस्कृत के आचार्यों ने भी इनके भेदों की संख्या भिन्न भिन्न बतलाई है।[5]

---

१. का० नि०, पृ० १०० ।   २. का० नि०, पृ० १०१ ।
३. कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० १०२ ।
४. रूपक होत निरंग पुनि, परंपरित परिनाम।
अरु समस्त विषयक कहैं, बिबिध भाँति अभिराम।   का० नि० पृ० १०१ ।
५. साहित्यदर्पण में रूपक के परंपरित, सांग तथा निरंग नामक भेद किये गये हैं।
तत्परंपरितं सांगं निरंगमिति च त्रिधा।
परंपरित के भेद श्लिष्ट शब्द निबन्ध, अश्लिष्ट शब्द निबन्ध, केवलरूप तथा मालारूप, सांग के समस्तवस्तुविषयक तथा एकदेशविवर्ति, और निरंग के केवलनिरंग तथा मालारूप निरंग होते हैं।   सा० द०, पृ० १२८ से १३१ तक।
यही ८ भेद काव्यप्रकाश में भी वर्णित हैं।
देखिये काव्य प्रकाश, पृ० ३५८ से ३६५ तक।
कुबलयानंद ने रूपक के आधिक्य, न्यून तथा अनुभय ये तीन भद माने हैं।
रूपकं तत्त्रिधाधिक्यन्यूनत्वानुभयोक्तिभिः।   कुब०, पृ० १५ ।
चंद्रालोक में सोपाधिरूपक, सादृश्यरूपक, आभासरूपक तथा रूपितरूपक भेद बताये गये हैं। देखिये चंद्रालोक, पृ० ११० से ११२ तक।
दंडी ने रूपक के असमस्त, समस्तव्यस्त, सकल, अवयवरूपक, अवयविरूपक, एकांग, युक्त, विषम, सविशेषण, विरुद्ध, हेतु, श्लिष्ट, उपमारूपक, व्यतिरेकरूपक, आक्षेपरूपक, समाधान रूपक, रूपक रूपक तथा तत्वापह्नवरूपक ये १८ भेद किये हैं।
काव्यादर्श पृ० १६० ।

दास ने परिणाम को रूपक के भेदों में कहा है जबकि संस्कृत के अनेक आचार्यों ने इसे एक पृथक अलंकार ही माना है। दास ने रूपक के अन्य अनेक भेद भी लिखे हैं जैसे उपमावाचक, उत्प्रेक्षावाचक, अपह्नुतिवाचक, रूपकवाचक, परिणामवाचक [१] परन्तु इनमें से किसी के उन्होंने लक्षण नहीं दिये। उन्होंने इन सबके उदाहरण अवश्य दिये हैं जो अनेक स्थलों पर भ्रामक प्रतीत होते हैं। ऐसा लगता है दास ने दंडी के अनुकरण पर ही इस प्रकार के भेदों की सृष्टि का प्रयास किया है जिसमें वे विशेष सफल नहीं हुए।

उल्लेख अलंकार का दास जी ने रूपक के अन्तर्गत वर्णन किया है। उनका कथन है कि एक वस्तु में जहाँ बहुतों का बोध हो अथवा जहां अनेक गुणों के साथ किसी एक वस्तु का उल्लेख किया जाय वहां उल्लेख अलंकार होता है तथा यह परम्परित माला से विशेष रूप से भिन्न होता है।[२] जयदेव ने इसका लक्षण इस प्रकार किया है कि जहाँ एक वस्तु का अनेक व्यक्ति भिन्न भिन्न रूप से वर्णन करें वहाँ उल्लेख अलंकार होता है।[३] दास ने रूपकादि वर्ग में जो इस अलंकार को स्थान दिया है वह हमारे दृष्टिकोण से तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता। इस सम्बन्ध में पोद्दार जी का मत विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है—

'निरवयव मालारूपक में ग्रहण करने वाले अनेक व्यक्ति नहीं होते। किन्तु उल्लेख में अनेक व्यक्ति होते हैं और एक वस्तु में दूसरी वस्तु के आरोप में रूपक होता है, शुद्ध उल्लेख में आरोप नहीं होता, किन्तु एक वस्तु का उसके वास्तविक धर्मों द्वारा अनेक प्रकार से ग्रहण किया जाता है'।[४]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उल्लेख अलंकार का रूपक से किसी प्रकार का सामञ्जस्य नहीं है। फलतः इसे इस वर्ग में स्थान न मिलना चाहिये।

उपर्युक्त अलंकारों को देखने से विदित होगा कि इनमें क्रम से उपमान की अपेक्षा उपमेय का महत्व बढ़ता जाता है जैसे रूपक की अपेक्षा व्यतिरेक में उपमान से उपमेय का महत्व बढ़ गया है। इस वर्ग के वर्णन में नवीन बात यह है कि समस्तविषयक रूपक के अन्तर्गत उपमावाचक, अपह्नुतिवाचक, और परिणामवाचक रूपकों का वर्णन है जिनका उल्लेख ऊपर किया ही जा चुका है।

१. कहुँ उपमा वाचक कहूँ उत्प्रेक्षाविक होय।
कहूँ लिये परिनाम कहुँ रूपक रूपक सोइ। — का० नि०, पृ० १०४।

२. एकै में बहु बोध कै, बहुगुन सो उल्लेख।
परम्परित मालान सों, लीन्हो भिन्न विसेख। — का० नि०, पृ० १०६

३. बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेखितामता। — चं० लो०, पृ० ११४।

४. कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० १०८।

अतिशयोक्ति आदि वर्ग

अतिशयोक्ति आदि के अन्तर्गत दास जी ने **अतिशयोक्ति, उदात्त, अधिक, अल्प तथा विशेष** अलंकारों को स्थान दिया है।[1] अतिशयोक्ति का लक्षण दास ने यह दिया है कि जहाँ अत्यन्त की सराहना की जाय वहां अतिशयोक्ति अलंकार होता है।[2] चंद्रालोककार के अनुसार लोकप्रसिद्धि से ऊपर की उक्ति को अतिशयोक्ति कहते हैं।[3] इस सम्बन्ध में पोद्दार जी का मत द्रष्टव्य है---

'अतिशयोक्ति अलंकार में लोकमर्यादा को उल्लंघन करने वाली उक्ति रहती है। अतिशयोक्ति का विषय बहुत व्यापक है। शब्द और अर्थ की जो विचित्रता (अलंकारता) है वह अतिशयोक्ति के ही आश्रित है। अतिशयोक्ति के भिन्न भिन्न चमत्कारों की विशेषता से अलंकारों के भिन्न भिन्न नाम निर्दिष्ट किये गये हैं। जहां किसी चमत्कारक उक्ति में किसी विशेष अलंकार का नाम निर्दिष्ट न किया गया हो, वहां अतिशयोक्ति अलंकार कहा जा सकता है'।[4] अतिशयोक्ति संबंधी इन मतों को देखते हुए दास जी के लक्षण में कोई विशेषता नहीं प्रतीत होती। वस्तुतः दास जी का लक्षण स्पष्ट नहीं हो पाया है। अतिशयोक्ति वर्णन के अन्तर्गत दास ने भेदकातिशयोक्ति, सम्बन्धातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति अक्रमातिशयोक्ति तथा अत्यंतातिशयोक्ति इन पांच भेदों का सलक्षण एवं सोदाहरण विवेचन किया है।[5] सम्बन्धातिशयोक्ति का दो प्रकार से वर्णन होता है---कहीं योग से अयोग और कहीं अयोग से योग।[6] इसके अतिरिक्त सम्भावना, उपमा, अपह्नुति, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अतिशयोक्तियों के भी उन्होंने लक्षण तथा उदाहरण दिये हैं।

अतिशयोक्ति अलंकार वर्णन के अन्तर्गत दास जी ने अत्युक्ति अलंकार का वर्णन किया है यद्यपि उसका उन्होंने अतिशयोक्ति आदि वर्ग में नामोल्लेख नहीं किया। दास जी के अनुसार **अत्युक्ति** अलंकार वहाँ होता है जहां योग्य को अधिक योग्य बना कर प्रदर्शित किया जाय।[7] कुवलयानन्द के अनुसार अत्युक्ति अलंकार वहां होता है जहां शौर्य, औदार्य आदिक अद्भुत एवं अतथ्यपूर्ण वर्णन हों।[8] अतिशयोक्ति को बहुधा कारण कार्य का अलंकार

१. अतिशयोक्ति बहु भाँति की, अरु उदात्त तहँ ल्याइ।
   अधिक अल्प सविशेषनो, पंच भेद ठहराइ। का० नि०, पृ० १०७।
२. जहँ अत्यन्त सराहिये, अतिशयोक्ति सुकहन्त। का० नि०, पृ० १०७।
३. अक्रमातिशयोक्तिश्चेद् युगपत्कार्यकारणे। चं० लो०, पृ १२६।
४. कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० १५२।
५. जहँ अत्यत सराहिये, अतिशयोक्ति सुकहन्त।
   भेदक सम्बन्धो चपल, अक्रमाति अत्यन्त। का० नि०, पृ० १०७
६. सम्बधातिशयोक्ति को, द्वै बिधि बरनत लोग।
   कहुँ जोग ते अजोग है, कहूँ अजोगै जोग। का० नि०, पृ० १०८।
७. जहाँ दीजिये जोग्य को, अधिक जोग्य ठहराइ।
   अलंकार अत्युक्ति तहँ, बरनेत हैं कविराइ। का० नि०, पृ० १११।
८. अत्युक्तिरद्भुतातथ्यशौर्यौदार्यादिवर्णनम्। कुवलयानंद, पृ० १६४।

माना है और अत्युक्ति को सादृश्य और कथन की अतिरंजना माना है। अतः दास ने अत्युक्ति का जो लक्षण दिया है वह स्पष्ट नहीं प्रतीत होता और साथ ही अत्युक्ति का विवेचन भी ठीक स्थान पर नहीं हुआ है क्योंकि यह विवेचन अक्रमातिशयोक्ति के पश्चात् हुआ है और अत्युक्ति के उपरान्त अतिशयोक्ति का विवेचन फिर आरम्भ कर दिया गया है।

कुछ लोगों ने उदात्त को अत्युक्ति के अन्तर्गत लिया है। इस सम्बन्ध में पोद्दार जी का मत है "वस्तुतः हमारे विचार से भी अत्युक्ति अलंकार अतिशयोक्ति अथवा उदात्त से पृथक होने योग्य नहीं"।[1] दास ने उदात्त अलंकार को अत्युक्ति के अन्तर्गत नहीं रखा है।

दास जी ने उदात्त अलंकार के अन्तर्गत उसके दोनों भेदों—(१) सम्पति की अत्युक्ति तथा (२) महत्पुरुषों के उपलक्षण—के उदाहरण दिये हैं।[2] इनमें कोई नवीनता नहीं। अधिक और अल्प अलंकारों के वर्णन भी परम्परा के पिष्टपोषण के रूप में यथातथ्य ही हुए हैं। विशेषालंकार के वर्णन में कोई विशेषता नहीं। इसका विवेचन भी संक्षिप्त है।

इस वर्ग में अतिशयोक्ति तथा अत्युक्ति अलंकारों के आधार-वर्णन की अतिशयता तथा उदात्त, अधिक, अल्प तथा विशेष अलंकारों का आधेय-आधार के वर्णन की अतिशयता है।

अन्योक्त्यादि वर्ग

अन्योक्त्यादि वर्ग के अन्तर्गत दास जी ने इन छः अलंकारों को स्थान दिया है—**अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रस्तुतांकुर, समासोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप तथा पर्यायोक्ति**।[3] **अप्रस्तुत प्रशंसा** के पांचों भेदों का दास जी ने सलक्षण एवं सोदाहरण वर्णन किया है। ये भेद काव्यप्रकाश के अनुसार हैं[4]—अर्थात् (१) कार्य के प्रस्तुत रहने पर कारण का वर्णन, (२) कारण के प्रस्तुत रहने पर कार्य का वर्णन, (३) सामान्य के प्रस्तुत रहने पर विशेष का वर्णन, (४) विशेष के प्रस्तुत रहने पर सामान्य का वर्णन तथा (५) किसी वस्तु के प्रस्तुत रहने पर उसी के समान किसी अप्रस्तुत वस्तु का वर्णन। परन्तु इन भेदों के विषय में कथन करने में दास जी ने जिन शब्दों तथा जिस वाक्य-रचना का प्रयोग किया है उससे इन भेदों का सरलता से बोध नहीं हो पाता।[5]

१. कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकारमंजरी, पृ० ३७४।
२. सम्पति की अत्युक्ति को, सब कवि कहैं उदात।
जहँ उपलच्छन बड़न को, ताहू की यह बात। का० नि०, पृ० ११५।
३. अप्रस्तुत परसंस अरु, प्रस्तुत अंकुर लेखि।
समासोक्ति व्याजस्तुत्यो, आक्षेपहि अवरेखि।
परजायोक्ति समेत किय, षटभूषन इक ठौर।
जानि सकल अन्योक्ति में, सुनहु सुकवि सिरमौर। का० नि० पृ० ११८।
४. कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति।
तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यस्येति च पञ्चधा। का० प्र०, पृ० ३७२।
५. कारज मुख कारन कथन, कारन के मुख काज।
कहुँ सामान्य विशेष हूँ, होत ऐस ही साज।
कहूँ सरिस सिर डारि कै, कहै सरिस सों बात।
अप्रस्तुत परसंस के, पाँच भेद अवदात। का० नि०, पृ० ११८।

दास जी ने इसी विवेचन के साथ **प्रस्तुतांकुर** नामक एक अन्य अलंकार का भी उल्लेख किया है और इसका लक्षण देते हुए कहा है कि जहां पर प्रस्तुत का प्रस्तुत से वर्णन हो वहां प्रस्तुतांकुर अलंकार होता है ।[1] दास जी के इस अलंकार को मानने का आधार कुबलयानन्द है क्योंकि कुबलयानन्द मे भी यही लक्षण दिया गया है ।[2] इस ग्रंथ के अतिरिक्त संस्कृत के अन्य अनेक ग्रंथों जैसे चन्द्रालोक, काव्यप्रकाश, रसगंगाधर, काव्यादर्श आदि में इस अलंकार का कोई विवेचन नहीं मिलता । हां इस अलंकार का पंडितराज ने खंडन[3] अवश्य किया है । पोद्दार जी ने पंडितराज का मत उद्धृत करते हुए कहा है कि "पंडितराज का कहना है कि... अप्रस्तुत प्रशंसा में मुख्य तात्पर्य के अतिरिक्त जो कुछ भी वर्णन होता है उसके लिए अप्रस्तुत शब्द का प्रयोग है । वह कहीं अत्यन्त अप्राकरणिक होता है और कहीं प्राकरणिक होता है । अतः प्रस्तुतांकुर पृथक अलंकार नहीं अपितु अप्रस्तुत प्रशंसा में ही गतार्थ है"।[4] फिर भी यदि संस्कृत के अनेक आचार्यों के प्रतिकूल दास जी ने प्रस्तुतांकुर पृथक अलंकार मानना उचित समझा है तो यह साहस एक आचार्य के ही अनुरूप हो सकता है । दास जी ने अप्रतुतांकुर का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

सिंहिनी औ मृगिनी की ता ढिग जिकिर कहा, बारहू मुरारहू तें खीन चित्त धरि तू ।
दूर ही तें नेसुक नजरि भार पावत हीं, लचकि लचकि जात जी में ग्यान करि तू ।
तेरो परमान परिमानु के प्रमान है पै, दास कहै गरुआई आपनी सँभरि तू ।
तू तो मन है री वह निपटहि तनु है री, लंक पर दौरत कलंक सो तौ डरि तू ।[5]

इस उदाहरण में दास ने कटिक्षीणता का अतिशयोक्ति के साथ वर्णन किया है और जो उपमान दिये हैं वे भी अप्रस्तुत हैं । अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुत का बोध भी नहीं है । अतः न तो यहां अप्रस्तुत प्रशंसा ही है और न प्रस्तुतांकुर । हां अतिशयोक्ति अलंकार अवश्य है । ऐसी दशा में यह उदाहरण युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता ।

समासोक्ति का वर्णन दास ने संक्षेप में किया है । उनका कथन है कि इस अलंकार की पहचान कहीं तो वाचक शब्दों द्वारा और कहीं श्लेष द्वारा होती है ।[6] समासोक्ति में कार्य और लिंग (पुल्लिग अथवा स्त्रीलिंग) की समानता होना भी आवश्यक है ।[7] वस्तुतः

---

१. दोऊ प्रस्तुत होत जहँ, प्रस्तुत अंकुर लेखि । का० नि०, पृ० ११८ ।
२. प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुतांकुरः । कुबलयानन्द पृ० ८४ ।
३. देखिये पंडितराज जगन्नाथ : रसगंगाधर, पृ० ६४६, ६४७ ।
४. कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० २२५ ।
५. का० नि०, पृ० १२१ ।
६. जहँ प्रस्तुत में पाइये, अप्रस्तुत को ज्ञान ।
कहुँ वाचक कहुँ श्लेष तें, समासोक्ति पहिचान । का० नि०, पृ० १२१ ।
७. साहित्यदर्पणकार ने कहा है "जिस वाक्य में सम अर्थात् प्रस्तुत और अप्रस्तुत में समान रूप से अन्वित होने वाले कार्य, लिंग और विशेषणों से प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप किया जाय वहाँ समासोक्ति होता है '।
समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिंग विशेषणैः ।
व्यवहार समारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः । सा० द०, पृ० १७७ ।

समासोक्ति में कवि का ध्यान प्रस्तुत पर होता है। दास ने इसके कुछ उदाहरण भी दिये हैं, जिनमें कोई विशेषता नहीं प्रतीत होती।

व्याजस्तुति—अलंकार का लक्षण देते हुए दास जी का कथन है कि जहां निन्दा के बहाने स्तुति और स्तुति के बहाने निन्दा की जाय वहां व्याजस्तुति अलंकार होता है।[1] कुवलयानन्द में व्याजस्तुति तथा व्याजनिन्दा दो अलग अलग अलंकार माने गये हैं,[2] परन्तु जयदेव, विश्वनाथ आदि ने व्याजस्तुति अलंकार का ही उल्लेख किया है व्याजनिन्दा का नहीं। दास ने भी व्याजनिन्दा अलंकार अलग से नहीं माना।[3] इसी प्रसंग में दास जी ने अप्रस्तुत प्रशंसा मिश्रित व्याजस्तुति के उदाहरण दिये हैं। एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

जाहि सराहत सुभट तुम, दसमुख बार अनेक।
सु तो हमारे कटक में, ओछो धावन एक।[4]

यहां रावण के सामने अप्रस्तुत हनुमान का उल्लेख यद्यपि प्रत्यक्षतः निन्दास्वरूप हुआ है पर इससे उनकी वीरता (प्रशंसा) ही की प्रतीति होती है।

दास जी ने **आक्षेप** अलंकार के तीन भेद कहे हैं—उक्त, अनुक्त तथा व्यक्त। परन्तु उन्होंने इनके लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही दिये हैं।[5] मम्मट तथा विश्वनाथ ने इसे दो प्रकार का बताया है (१) वक्ष्यमाण निषेधाभास तथा (२) उक्त विषय में स्वरूप का निषेधाभास।[6] दण्डी ने इसके वृत्त, वर्तमान, भविष्य, धर्म आदि २४ भेदों का उल्लेख किया है।[7] दास के पूर्ववर्ती आचार्य केशवदास में भी हमें ये नाम नहीं मिलते। उन्होंने वास्तविक निषेध को ही आक्षेप अलंकार माना है तथा इसके १२ भेद बताये हैं—भावी, भूत वर्तमान तथा निम्नलिखित ९ भेद—

प्रेम, अधीरज, धीरजहु, संशय, मरण प्रकास।
आशिख, धरम, उपाय कहि, शिक्षा केशवदास।[8]

---

१. स्तुति निंदा के व्याज कहुँ, निंदा स्तुति के व्याज।
अस्तुति अस्तुति व्याज कहुँ, निंदा निंदा साज। का० नि०, पृ० १२३

२. देखिये कुवलयानन्द, पृ० ९१-९४।

३. हमारे बहुत से आचार्यों ने (यथा मम्मट, विश्वनाथ, केशव, दास, देव, मतिराम' भूषण आदि दोनों (व्याजस्तुति और व्याजनिन्दा) को एक ही साथ रखा और केवल एक ही नाम 'व्याजस्तुति' से दोनों को प्रगट किया है। साथ ही कुछ आचार्यों ने (जैसे जसवन्तसिंह, अप्पय दीक्षित, लछिराम, गोविन्द, रामसिंह, दूलह, पद्माकर ने) व्याजस्तुति और व्याजनिन्दा को पृथक पृथक ही रखा। यह अवश्य है कि किसी भी आचार्य ने केवल निन्दा (बिना व्याज के भाव के) के लिए इन्हीं नामों के साथ पृथक पृथक दो अलंकार नहीं दिये।

रामशंकर शुक्ल रसाल : अलंकार पीयूष, पृ० ११७।

४. का० नि०, पृ० १२४। ५. देखिये का० नि०, पृ० १२५-१२६।

६. देखिये का० प्र०, पृ० ४०३ तथा सा० द०, पृ० १९७।

७. देखिये दंडी : काव्यादर्श, पृ० १८४ से १९९ तक।

८. केशवदास : कविप्रिया, अध्याय १०।

केशव ने आक्षेप का विवेचन दास की अपेक्षा अधिक विस्तारपूर्वक किया है। परन्तु इतना होते हुए भी न तो केशव ने और न संस्कृत के उक्त आचार्यों ने आक्षेप के उक्त, अनुक्त तथा व्यक्त नाम से भेद किये हैं। हमारे विचार से यह दास का नवीन नामकरण है। लक्षणों के अभाव में इन भेदों का ठीक ठीक ज्ञान नहीं हो पाता।

इस वर्ग के अन्त में दास ने **पर्यायोक्ति** अलंकार का वर्णन किया है, जो संक्षेप में है तथा जिसमें कोई नवीनता नहीं मालूम होती।

इस वर्गीकरण का आधार प्रस्तुत अप्रस्तुत विवेचन है तथा इसका नामकरण अन्योक्ति अलंकार के नाम पर हुआ है जो विशेष रूप से इसलिए और भी न्यायसंगत है कि इस वर्ग के सभी अलंकारों में किसी न किसी प्रकार की निहितोक्ति के दर्शन होते हैं।

विरुद्धादि वर्ग

विरुद्धादि वर्ग के अन्तर्गत दास जी ने ये छः अलंकार रखे हैं--**विरुद्ध, विभावना, व्याघात, विशेषोक्ति, असंगति तथा विषम**।[1] **विरुद्ध** (विरोध) अलंकार, दास के अनुसार, वहां होता है जहां कथन, श्रवण अथवा दर्शन में कुछ अनमेल बात मालूम पड़े।[2] अनेक आचार्यों जैसे अप्पय दीक्षित, भट्टदेवशंकर पुरोहित (अलंकार-मंजूषाकार) आदि ने इसका वर्णन विरोधाभास के अन्तर्गत किया है तथा दंडी, जयदेव आदि आचार्यों ने विरोध को अलग ही एक अलंकार माना है। दास ने विरोध अलंकार का जो लक्षण दिया है वह आचार्यों द्वारा दिए गयेलक्षणों से न्यूनाधिक भिन्न होने पर भी अधिक अर्थपूर्ण है।[3] मम्मट आदि आचार्यों के अनुसार[4] दास जी ने भी इस अलंकार के दस भेद गिनाये हैं—जाति से जाति, जाति

१. विविध विरुद्ध विभावना, व्याघातहि उर आनि।
बिसेषोक्तिरु असंगत्यो, विषम समेत छ जानि। का० नि०, पृ० १२७।

२. कहत सुनत देखत जहाँ, है कछु अनमिल बात।
चमत्कारजुत अर्थजुत, सो विरुद्ध अवदात। का० नि०, पृ० १२८।

३. जयदेव के अनुसार गुण, क्रिया और आदि (अर्थात् जाति) का आपस म विरोध होने को विरोधालंकार कहते हैं।
विरोधोऽनुपपत्तिश्चेद्गुणद्रव्यक्रियादिषु। चं० लो०, पृ० १५४।
मम्मट का कथन है कि जहाँ वस्तुओं में अविरोध होने पर भी विरुद्ध की भांति कथन किया जाय वहाँ विरोध अलंकार होता है--
विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेनयद्वचः। का० प्र०, पृ० ४०८।
इसे और भी स्पष्ट करते हुए मम्मट का कथन है कि जहाँ स्वाभाविक दशा के अनुसार वस्तुओं में विरोध न भी हो तथापि उनका कथन परस्पर विरोध की भांति किया जाय वहाँ विरोध होता है---
वस्तुवृत्तेनाविरोधेऽपि विरुद्धयोरिवयदभिधानं स विरोधः। का० प्र०, पृ० ४०८।

४. जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्विरुद्धा स्याद्गुणैस्त्रिभिः।
क्रिया द्वाभ्यामपि द्रव्यं द्रव्येणैवेति ते दश। का० प्र०, पृ० ४०८।

से गुण, जाति से क्रिया, जाति से द्रव्य, गुण से गुण, क्रिया से क्रिया, क्रिया से गुण, क्रिया से द्रव्य, गुणसे द्रव्य, तथा द्रव्य से द्रव्य [१] और जाति से गुण नामक विरोधालंकार को छोड़कर अन्य सबके उदाहरण भी दिए हैं, जिनका क्रम उन्होंने संस्कृत के अलंकार-शास्त्रियों के अनुसार न रख कर अपनी इच्छानुसार रखा है।

विभावना अलंकार का लक्षण दास जी ने इस प्रकार दिया है कि जहां बिना कारण के अथवा थोड़ा कारण होने पर कार्य हो जाय वहां विभावना अलंकार होता है।[२] यहां पर दास जी ने संस्कृत के आचार्यों द्वारा दिये गये विभावना के लक्षणों में अपनी ओर से इतनी वृद्धि कर दी है कि जहां कारण थोड़ा हो वहां भी विभावना होती है। मम्मट, जयदेव, अप्पय दीक्षित, उद्भट, पुरोहित, विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने कारण के अभाव में ही कार्य का होना विभावना अलंकार का लक्षण बताया है। दास जी ने विभावना के छहों भेदों का पूर्ण वर्णन किया है [३] और यह वर्णन हुआ भी अच्छा है। एक दो उदाहरण पर्याप्त होगें। तीसरी विभावना का दास जी ने निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

> तुव बेनी व्याली रहै, बाँधी गुनन्ह बनाइ।
> तऊ बाम ब्रज चन्द्र को, बदाबदी डसि जाइ।[४]

अर्थात् नायिका की सर्पिणी रूपी वेणी यद्यपि गुणों (धागों) से बंधी हुई है (अतः डसने में असमर्थ है) फिर भी वह डस लेती है। यहां पर प्रतिबन्ध होने पर भी कार्य की उत्पत्ति हुई है। अतः तीसरी विभावना है।

दास का चतुर्थ विभावना का निम्नलिखित उदाहरण दर्शनीय है—

> पाहने पाहन तें कढ़ै पावक केहूँ कहूँ यह बात फबै सी।
> काठहू काठ सों भूठो न पाठ प्रतीति परै जग जाहिर जैसी।
> मोहन पानिप के सरसे रसरंग की राधे तरंगिनि ऐसी।
> दास दुहूँ की लगालगी में उपजी यह दारुन आगि अनसी।[५]

यहां पर पानी से आग लगना (अंतिम पंक्तियां) अर्थात् विरुद्ध कारण द्वारा कार्य की उत्पत्ति होना पंचम विभावना होती है न कि चौथी। अतः यह उदाहरण अशुद्ध है।

---

१. जाति जाति गुन जाति अरु, क्रिया जाति अवरेखि।
जाति द्रव्य गुन गुन क्रिया, क्रिया क्रिया गुन लेखि।
क्रिया द्रव्य गुन द्रव्य अरु, द्रव्य द्रव्य पहिचानि।
ये दस भेद विरुद्ध के गनो सुमति उर आनि। का० नि०, पृ० १२८।

२. बिनु कै लघु कारनन्ह तें, कारज परगट होइ।
रोकतहू करि कारनो, वस्तुन्ह तें विधि सोइ। का० नि०, पृ० १३०।

३. कारन तें कारज कछू, कारज ही ते हेतु।
होती छ बिधि विभावना, उदाहरन कहि देतु। का० नि०, पृ० १३१।

४. का० नि० पृ० १३२। ५. का० नि०, पृ० १३२।

दास जी की छठी विभावना का यह उदाहरण अवलोकनीय है—

फेरि काढ़बी बारि तें, बारिजात दनुजारि।
चलि देखो दृग जेहि कढ़त, बारिजात तें बारि।[1]

यहां नेत्र रूपी वारिजात (कमल) से पानी निकलना कार्य से कारण की उत्पत्ति हुई (वस्तुतः जल से कमल की उत्पत्ति होती है न कि कमल से जल की)। अतः छठी विभावना का यह सुन्दर उदाहरण है।

दास जी ने छहों प्रकार की विभावना के उदाहरणमात्र दिये हैं लक्षण नहीं। विभावना के पश्चात् उन्होंने व्याघात अलंकार का वर्णन किया है और इसके शुद्ध और विरुद्ध ये दो भेद बताये हैं[2], परन्तु उन्होंने इनके लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही दिये हैं। विशेषोक्ति अलंकार का भी सीधा साधा वर्णन है और उसके भेदों का उल्लेख नहीं हुआ है। दास जी ने इसका एक निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

नाभि सरोवरी औ त्रिवली की तरंगन्ह पैरत ही दिन राति है।
बूड़ी रहै तन पानिप ही में नहीं बनमालहु ते बिलगाति है।
दास जू प्यासो नई अँखियाँ घनस्याम बिलोकत ही अकुलाति है।
पीबो करैं अधरामृतहूँ को तऊ इनकी सखि प्यास न जाति है।[3]

अधरामृत के पान से प्यास मिट जानी चाहिए। अतः प्यास मिटने का यह कारण है, परन्तु इस उदाहरण में कारण के रहने पर भी प्यास नहीं मिटती। अतः यह विशेषोक्ति का युक्तियुक्त उदाहरण है।

असंगति अलंकार के तीनों भेदों अर्थात् प्रथम असंगति, द्वितीय असंगति तथा तृतीय असंगति का दास जी ने यथातथ्य विवेचन किया है[4] और उनके उन्होंने उदाहरण भी दिये हैं। कुछ आचार्य इन भेदों को नहीं भी मानते हैं।[5]

विषम अलंकार का लक्षण देते हुए दास जी का कथन है कि जहां पर किसी कारण अनमेल बातों का उल्लेख हो तथा कारण एवं कार्यों में परस्पर वैभिन्य हो वहां विषम अलंकार

१. का० नि०, पृ० १३३।

२. जाहि तथाकारी गनै, करै अन्यथा सोउ।
काहू सुद्ध विरुद्ध सों, है व्याघातै दोउ। — का० नि०, पृ० १३३।

३. का० नि०, पृ० १३५।

४. जहँ कारन है और थल, कारज औरै ठाम।
अनत करन को चाहिये, करै अनत ही काम।
और काज करने लगै, करै जु औरै काज।
त्रिबिधि असंगति कहत हैं, सुकविन्ह के सिर ताज। — का० नि०, पृ० १३५।

५. "रस गंगाधर ने इन रूपों को असंगति के रूप नहीं माने और कहा है कि इनमें विरोधालंकार ही का प्राधान्य है न कि असंगति का। मम्मट ने तो इसे अलंकार ही नहीं माना है और इसीलिए इसे अपने ग्रन्थ में स्थान नहीं दिया। यही बात केशव और देव ने भी की है।" रामशंकर शुक्ल रसाल : अलंकार पीयूष, पृ० १५४।

होता है।[1] जयदेव के अनुसार अनुचित रूप से दो पदार्थों के सम्बन्ध की कल्पना को विषम अलंकार कहते हैं।[2] इस अलंकार के अन्तर्गत दास ने तीन भेद कहे हैं--प्रथम विषम, द्वितीय विषम तथा तृतीय विषम परन्तु उन्होंने इनके केवल उदाहरण ही दिये हैं लक्षण नहीं।[3] ये उदाहरण बहुत सुन्दर बन पड़े हैं और विषय का स्पष्टीकरण करने में बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं।

प्रथम विषम का दास जी ने निम्नलिखित उदाहरण दिया है---

किल कंचन सी वह अंग कहाँ औ कहाँ यह मेघन सों तनु कारो।
कहँ कौल कली विकसी वह होय कहाँ तुम सोइ रहो गहि डारो।
नित दास जू ल्यावहि ल्याउ कहौ कछु आपनो वाको न बीच बिचारो।
वह कोमल गोरी किसोरी कहाँ औ कहाँ गिरिधारन पानि तिहारो।[4]

यहां पर गोपिका के सौन्दर्ययुक्त तथा कोमल अंग और कृष्ण के श्याम तथा कठोर अंग परस्पर विरुद्ध धर्म वाले हैं। इसकी सूचना हमें उक्त पद में 'कहाँ कहाँ' शब्दों के प्रयोग से मिलती है। यह प्रथम विषम अलंकार का सुन्दर उदाहरण है।

उनका निम्नलिखित उदाहरण तो और भी अच्छा बन पड़ा है--

जेहि मोहिबे काज सिँगार सज्यो तेहि देखत मोह में आय गई।
न चितौनि चलाय सकी उनहीं को चितौनि के घाय अघाय गई।
वृषभान लली की दसा यह दास जू देत ठगौरी ठगाय गई।
बरसाने गई दधि बेचन को तहँ आपुही आपु बिकाय गई।[5]

यहां पर वृषभानलली का कृष्ण को मोहने के निमित्त अपना शृंगार करके भी स्वयं कृष्ण पर मोहित हो जाना तथा दधि बेचने के लिए बरसाने जाने पर स्वयं बिक जाना द्वितीय विषम है[6] न कि तृतीय विषम जैसा कि दास जी ने इसे तृतीय विषम के उदाहरण के रूप में लिखा है।

इस वर्ग के अलंकारों में समान रूप से पाई जाने वाली विरोध की उपस्थिति के दर्शन होते हैं। इसी कारण इस वर्ग का नाम विरुद्धालंकार वर्ग पड़ा है। इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले सभी अलंकारों में भिन्नता अथवा विरोध किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

---

१. अनमिल बातन्ह को जहाँ, परत कैसहूँ संग।
कारन को रँग औरई, कारज औरै रंग। का० नि०, पृ० १३७।
२. विषमं यद्यनौचित्यादनेकान्वयकल्पनम्। चं० लो०, पृ० १५६।
३. कर्ता को न क्रिया फलै, अनरथ ही फल होइ।
विषमालंकृत तीनि बिधि, बरनत हैं सब कोइ। का० नि० पृ० १३८।
४. का० नि०, पृ० १३८।
५. का० नि०, पृ० १३६।
६. देखिये कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० २६०।

उल्लासादि वर्ग

इस वर्ग के अन्तर्गत दास जी ने उल्लास, अवज्ञा, अनुज्ञा, लेश, विचित्र, तद्गुण, स्वगुण, अतद्गुण, पूर्वरूप, अनुगुण, मीलित, उन्मीलित, सामान्य तथा विशेष इन चौदह अलंकारों को स्थान दिया है तथा उल्लास और अवज्ञा अलंकारों के चार चार भेद प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ बताये हैं।[1]

दास जी ने उल्लास तथा अवज्ञा दोनों स्वतंत्र अलंकार माने हैं यद्यपि संस्कृत के अन्य आचार्यों ने इन्हें स्वतंत्र अलंकार नहीं माना है।[2] पोद्दार जी ने अवज्ञा अलंकार के केवल दो भेदों—गुण से गुण तथा दोष से दोष—का ही उल्लेख किया है।[3] दास जी ने गुण दोष के निषेध रूप में उसके चार भेद बताये हैं जो उनकी सूझ बूझ के कारण ही हुए हैं।[4] अनुज्ञा[5], लेश तथा तद्गुण अलंकारों के वर्णनों में कोई नवीनता नहीं है। वे आचार्यों

१. बिबिध भांति उल्लास अवग्या अनुग्रज्ञा गनि।
बहुरचो लेस विचित्र तदगुनो सगुन दास भनि।
और अतदगुन पूर्वरूप अनुगुन अवरेखहि।
मिलित और सामान्य जानि उन्मिलित विशेषहि।
ए होत चतुर्दश भाँति के, अलंकार सुनिये सुमति।
सब गुन दोषादि प्रकार गनि, किये एक ही ठौर थिति। का० नि०, पृ० १३९।

२. 'उल्लास को कुबलयानन्द ने स्वतंत्र अलंकार माना है। किन्तु उद्योतकार उल्लास के पिछले दोनों भेदों को विषम अलंकार के अन्तर्गत बताते हैं। कुछ आचार्य उल्लास को काव्यलिंग के अन्तर्गत मानते हैं (देखिये रसगंगाधर, उल्लास प्रकरण),
कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० ३३५।

"अवज्ञा अलंकार कुबलयानन्द में स्वतंत्र निरूपण किया गया है। कुछ आचार्य इसको पूर्वोक्त विशेषोक्ति के अन्तर्गत मानते हैं क्योंकि विशेषोक्ति की भांति अवज्ञा में भी कारण के होते हुए कार्य का अभाव वर्णन किया जाता है।"
कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० ३३६।

३. देखिये कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ ३३५–३३६।

४. प्रथम अवज्ञा—औरै के गुन और को, गुनन अवज्ञा पाइ।
द्वितीय अवज्ञा—औरहि दोष न और के, दोष अवज्ञा सोउ।
तृतीय अवज्ञा—जहाँ दोष तें गुन नहीं, यहौ अवज्ञा दास।
चतुर्थ अवज्ञा—जहँ गुन ते दोषौ नहीं, इहौ अवज्ञा बेस।
का० नि०, पृ० १४१–१४२।

५. नागो जी भट्ट का कथन है कि मम्मट ने विशेषालंकार के भेद पूर्ण रूप से नहीं कहे। अनुज्ञा को भी उसी का भेद मान लेना चाहिए। परन्तु इसमें एक विशेष चमत्कार देखकर, चंद्रालोक, कुबलयानन्द तथा रसगंगाधरकार ने इसे अलग अलंकार माना है। वस्तुतः विशेष के सुप्रसिद्ध तीनों भेदों में तो अनुज्ञा का अन्तर्भाव होता नहीं। तब पृथक अलंकार मानने में कोई आपत्ति नहीं।
डा० शुकदेव बिहारी मिश्र : साहित्य पारिजात, पृ० ३६८।

के मतानुसार ही हैं। विचित्र अलंकार का लक्षण देते हुए दास का कथन है कि जहां दोष की चाह या इच्छा की जाय और वहीं गुण के दर्शन हों वहां विचित्र अलंकार होता है।[१] चन्द्रालोककार के अनुसार विपरीत फल को देने वाले प्रयत्न को विचित्र अलंकार कहते हैं।[२] दास का विचित्र अलंकार का लक्षण स्पष्ट नहीं है। अतद्गुण तथा पूर्वरूप अलंकारों के लक्षण देते हुए दास का कथन है कि अतद्गुण वहां होता है जहां दूसरी वस्तु का गुण ग्रहण न किया जाय।[३] यह लक्षण पूर्णतया ठीक नहीं है। होना चाहिए था—दूसरे से सम्बद्ध होने पर भी जहां कोई पदार्थ उसके गुणों को न ग्रहण करे वहां अतद्गुण अलंकार होता है।[४] जहां नाश के कारण वर्तमान हों पर पदार्थ का पूर्व गुण न मिटे वहां पूर्वरूप अलंकार होता है।[५] दास का यह मत कुबलयानन्दकार से भिन्न है क्योंकि कुबलयानन्द के अनुसार जहां कोई वस्तु अपने गुण का त्याग करने के पश्चात् फिर अपने पूर्व रूप को प्राप्त हो जाय वहां पूर्वरूप अलंकार होता है।[६] दास ने इस प्रकार के (जैसा कि कुबलयानन्दकार ने पूर्वरूप अलंकार का लक्षण दिया है) अलंकार के लिए स्वगुणनामक एक अलंकार की योजना की है।[७] हमारा विचार है कि स्वगुण अलंकार दासकृत एक नया अलंकार है। इस अलंकार के आचार्यों द्वारा निर्मित पूर्वरूप अलंकार में आजाने के कारण इसका अलग निर्माण ठीक नहीं प्रतीत होता। स्वयं तद्गुण और पूर्वरूप अलंकारों के उदाहरण, जो संस्कृत के आचार्यों ने दिये हैं, एक दूसरे के साथ इतने घुलमिल गये हैं, कि पूर्वरूप के लिए तद्गुण अलंकार का माना जाना ही युक्ति युक्त प्रतीत होता है।[८]

१. करत दोष की चाह जहँ, ताही में गुन देखि।
तेहि विचित्र भूषन कह्यो, हिये चित्र अवरेखि। का० नि०, पृ० १४४।

२. विचित्रं चेत्प्रयत्नः स्याद्विपरीत फलप्रदः। चं० लो०, पृ० १६०।

३. सोइ अतद्गुन है, नहीं संगति को गुन लेत। का० नि०, पृ० १४४।

४. संगतान्यगुणानंगीकारमाहुरतद्गुणम्। कुबलयानन्द, पृ० १५०।
संगतः स्वसंबद्धो योऽन्यः पदार्थस्तद्गुणानंगीकारमतद्गुणालंकारमाहुः।
टीका, पृ० १५०।

५. पूर्वरूप गुन नहि मिटै भये मिटन के हेत। का० नि०, पृ० १४५।

६. पुनः स्वगुण संप्राप्तिः पूर्वरूपमुदाहृतम्।
स्वगुण त्यागानन्तरं पुनः स्वगुण प्राप्तिः पूर्वरूपमलंकारः। कुबलयानंद, पृ० १४६।

७. स्वगुण का लक्षण दास ने इस प्रकार दिया है:
तद्गुन तजि गुन आपनो, संगति को गुन लेत।
पायें पूरब रूप फिरि, स्वगुन सुमति कहि देत। का० नि०, पृ० १४४।

८. तद्गुण तथा पूर्वरूप अलंकारों का वर्णन करते हुए तथा तद्गुण के उदाहरण देने के पश्चात् पोद्दार जी ने कहा है "कुबलयानन्द ने पिछले दोनों उदाहरणों में पूर्वरूप अलंकार माना है। काव्यप्रकाश में इस प्रकार के उदाहरण तद्गुण के अन्तर्गत ही दिखाये गये हैं। वस्तुतः कुछ विशेषता भी नहीं है। अतः तद्गुण ही माना जाना युक्तियुक्त है।"
कन्हैयालाल पोद्दार: अलंकार मंजरी, पृ० ३४५।

अनुगुण अलंकार को दास जी ने एक स्वतंत्र अलंकार मानकर इसका विवेचन किया है। दास का इसे स्वतंत्र अलंकार मानना चंद्रालोक और कुबलयानन्द के ही आधार पर है। "उद्योतकार ने इसे तद्गुण के अन्तर्गत बताया है। किन्तु तद्गुण में गुण शब्द का प्रयोग वर्ण (रंग) के अर्थ मे है और अनुगुण में गुण का प्रयोग इस अर्थ में नहीं। अतः यह तद्गुण के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता"।[1]

मीलित, उन्मीलित, सामान्य तथा विशेषक के दास जी ने स्पष्ट लक्षण तो नहीं दिये परन्तु उदाहरण प्रत्येक के दिये हैं जो उपयुक्त लगते हैं। उनके अनुसार जहां नीर क्षीर के समान एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ मिल जाय वहां **मीलित** और जहां वस्तुओं का मिलन हीर स्फटिकवत् हो वहां **सामान्य** अलंकार होता है। जहां इनमें कुछ अन्तर की प्रतीति हो वहां क्रमशः **उन्मीलित** तथा **विशेषक** अलंकार होते हैं।[2] ये लक्षण अस्पष्ट हैं जैसा कि संस्कृत के आचार्यों से इनकी तुलना करने पर प्रतीत होता है।[3]

इस वर्ग में आये हुए अलंकारों के अन्तर्गत किसी न किसी रूप में गुण दोषों का विवेचन हुआ है। इसी कारण इन अलंकारों को एक पृथक वर्ग में स्थान दिया गया है।

समालंकारादि वर्ग

इस वर्ग के अन्तर्गत दास ने **सम, समाधि, परिवृत्त, भाविक, प्रहर्षण, विषादना, असम्भव, सम्भावना, समुच्चय, अन्योन्य, विकल्प, सहोक्ति, विनोक्ति, प्रतिषेध, विधि तथा काव्यार्थापत्ति** इन सोलह अलंकारों को रखा है।[4]

१. देखिये कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० ३४८।
२. मिलित जानिये जहँ मिलै, छीर नीर के न्याय।
   है सामान्य मिलै जहाँ, हीरा फटिक सुभाय। का० नि०, पृ० १४७।
   जहँ मीलित सामान्य में भेद कछू ठहराइ।
   तहँ उन्मिलित विशेषकहि बरनत सुकवि सुभाइ। का० नि०, पृ० १४८।
३. जयदेव ने मीलित तथा उन्मीलित के लक्षण इस प्रकार दिये हैं—
   मीलितं बहु सादृश्याद्भेदवच्चेन्न लक्ष्यते। चं० लो०, पृ० १२१।
   अर्थात् सदृश वस्तु की अधिकता के कारण जहां उपमान की प्रतीति भिन्न रूप से न हो वहां मीलित अलंकार होता है।
   उन्मीलित—हेतोः कुतोऽपि वैशिष्ट्यात्स्फूर्तिरुन्मीलितं मतम्। चं० लो०, पृ० १२३।
   अर्थात् अत्यन्त सदृश उपमान और उपमेय में जहां किसी कारणवश भेद की प्रतीति हो वहां उन्मीलित अलंकार होता है।
   सामान्य—सामान्यं यदि सादृश्याद्भेद एव न लक्ष्यते। चं० लो०, पृ० १२२।
   अर्थात् जहां सादृश्य आदि के कारण भेद की प्रतीति न हो वहां सामान्य अलंकार होता है।
   विशेषक—सामान्यरीत्या विशेषास्फुरणे प्राप्ते
   कुतश्चित्कारणाद्विशेषस्फूर्तौ तत्प्रतिद्वन्द्वी विशेषकः। कुबलयानन्द, पृ० १५३ (टीका)।
४. सम समाधि परिवृत्त गनि, भाविक हरष बिषाद।
   असम्भवो सम्भावना, समुच्चयो अविबाद।
   अन्योन्यरु विकल्प पुनि, सह विनोक्त प्रतिषेध।
   बिधि काव्यार्थापत्तिजुत, सोरह कहत सुमेध का० नि०, पृ० १४९।

इस वर्ग में अलंकारों का विवेचन करने के पूर्व दास जी ने स्पष्ट कह दिया है कि कभी कभी उचित तथा अनुचित बात में भी चमत्कार होता है अतः इस तथ्य पर आधारित अलंकारों का तो इस वर्ग में विवेचन किया ही गया है साथ ही इसमें कुछ विविध प्रकार के ऐसे अलंकारों का भी समावेश है जिनका किसी आधार पर वर्गीकरण नहीं किया जा सकता।[1]

समालंकार के वर्णन में दास जी ने कहा है कि यह विषय का प्रतिद्वन्द्वी है[2] और वहां होता है जहाँ यथायोग्य सम्बन्ध का वर्णन किया जाय और कार्य कारण के अनुकूल हो।[3] दास जी ने इसके प्रथम तथा द्वितीय दो भेदों का उल्लेख किया है जिनके उन्होंने केवल उदाहरण दिये हैं। **समाधि** अलंकार काकतालीय न्यायवत्[4] किसी प्रकार कार्य के सुगम हो जाने की दशा में होता है।[5] दंडी ने इसका नाम समाहितालंकार दिया है।[6]

समाधि अलंकार के संबंध में रसाल जी का मत है कि "इसे काकताल न्याय पर आधारित नहीं किया जा सकता क्योंकि उसमें कारणान्तर से कार्य की सिद्धि में संदेह रहता है और यह नहीं कहा जा सकता कि किस कारण की प्रधानता है। यहां ऐसा नहीं होता। यहां एक कारण या कर्ता प्रधान और अन्य सब कर्ता या साधन अप्रधान एवं सहायक रूप के ही रहते हैं। अतः हमारी समझ में कारणान्तर को प्रधान कारण का सहायक ही मानना ठीक है और यही बात काक ताल न्याय के साथ भी लागू होती है। फिर दास ने कार्य के यत्न में सुकरता का आ जाना भी कहा है, चाहे वह किसी प्रकार भी आये"।[7]

संस्कृत के आचार्यों के मतानुसार समाधि वहां होता है जहां कारणान्तर से कार्य सुगम हो जांय।[8] साहित्यदर्पण में तो इसका लक्षण यह दिया है कि यदि दैववश आई हुई

१. उचित अनुचितौ बात में, चमत्कार लखि दास।
अरु कछु मुक्तक रीति लखि, कहत एक उल्लास। — का० नि०, पृ० १४६।

२. है विषमालंकार को, प्रतिद्वन्दी सम मित्त। — का० नि०, पृ० १५०।

३. जाको जैसो चाहिये, ताको तैसो संग।
कारज में सब पाइये कारन ही को अंग। — का० नि०, पृ० १४६।

४. कौए के ताल वृक्ष पर बैठने से ताल के फल का अचानक पृथ्वी पर गिर जाने जैसी घटना को काकतालीय न्याय कहते हैं।

५. क्योंहूँ कारज को जतन निपट सुगम ह्वै जाय।
तासों कहत समाधि लखि काक ताल को न्याय। — का० नि०, पृ० १५१।

६. दंडी ने समाहित अलंकार का यह लक्षण दिया है—
किंचिदारंभमाणस्य कार्यं दैववशात् पुनः।
तत्साधन समापत्तिर्यातदाहुः समाहितम्। — काव्यादर्श, पृ० २७४-२७५।
अर्थात् जहां पर आरंभ किया हुआ कोई कार्य किसी अन्य कारण के आ जाने से सुगम हो कर संपादित हो जाय वहां समाहित अलंकार होता है।

७. रामशंकर शुक्ल: अलंकार पीयूष, पृ० २२८।

८. समाधिः कार्य सौकर्यं कारणान्तरसंनिधेः। — चं० लो०, पृ० १७१।
तथा कुव०, पृ० १२५।
समाधिः सुकरं कार्यं कारणान्तरयोगतः। — का० प्र०, पृ० ४४१।

किसी वस्तु के कारण प्रस्तुत कार्य सुकर हो जाय तो समाधि अलंकार होता है।[1] दास जी ने भी प्रायः यही लक्षण दूसरे शब्दों में दिया है और काकताल न्याय की तुलना से इसे समझाया है (प्रायः उसी प्रकार से जैसे चन्द्रालोक के टीकाकार ने समझाया है)।[2]

संस्कृत के आचार्यों तथा रसाल जी के मतों को साथ साथ रखते हुए यही स्पष्ट नहीं हो पाता कि रसाल जी कहना क्या चाहते हैं। उपर्युक्त उद्धरण में वे कहते हैं कि "इसे काकतालन्याय पर आधारित नहीं किया जा सकता" वे इसका कारण भी देते हैं और साथ ही कहते हैं कि "हमारी समझ में कारणान्तर को प्रधान कारण का सहायक ही मानना ठीक है और यही बात काकताल न्याय के साथ भी लागू होती है"। यह दोनों बातें एक दूसरे का खंडन करती हैं।

हमारे विचार से दास कृत समाधि का लक्षण शुद्ध तथा आचार्यसम्मत है और साथ ही उदाहरण भी युक्तियुक्त है।

परिवृत्ति अलंकार का दास जी ने बिना किसी भेदोपभेद के संक्षेप में विवेचन किया है तथा भाविक के अन्तर्गत भूत तथा भविष्य भाविक के उदाहरण दिये हैं। **प्रहर्षण** के दास जी ने तीनों भेदों—प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय—के उदाहरण तथा **विषादन** के अन्तर्गत एक उदाहरण दिया है जिनमें कोई विशेषता नहीं है। उदाहरण शुद्ध और ललित हैं।

असंभव अलंकार दास जी के अनुसार वहां होता है जहां कोई बात बिना जाने हो गई हो इस आशय का कथन किया गया हो।[3] इस सम्बन्ध में चन्द्रालोककार का मत है कि जहां किसी अर्थ की सिद्धि की असम्भवता वर्णन की जाय वहां असम्भव अलंकार होता है।[4] अतः असम्भव अलंकार का दास का लक्षण स्पष्ट नहीं है।

दास के **संभव** अलंकार वर्णन में कोई मौलिकता नहीं है। **समुच्चय** अलंकार दास के अनुसार वहां होता है जहां सिद्धि के लिए एक कर्ता के होते हुए अन्य कर्ता भी सहायक रूप में उपस्थित रहें[5], उदाहरणार्थ—

> धन जोबन बल अज्ञता, मोह मूल इक एक।
> दास मिलैं चार्‌यो जहाँ, पैये कहाँ विवेक।[6]

---

१. समाधिः सुकरे कार्ये दैवाद्वस्त्वन्तरागमात्। सा० द० पृ० २१६।

२. सम्यक् आधिराधानमुत्पादनं समाधिरित्यन्वर्थेयं संज्ञा कार्योत्पत्त्यनुकूल कारणसत्त्वेऽपि काकतालीय न्यायेन कारणान्तरसत्तया शीघ्रं कार्यसमुत्पादने समाधिरितिभावः। टीका० चं० लो०, पृ० १७१।

३. बिन जाने ऐसो भयो, असंभवै पहिचान। का० नि०, पृ० १५५।

४. असम्भवोऽर्थ निष्पत्तावसंभाव्यत्व वर्णनम्। चं० लो०, पृ० १५६।

५. एकै करता सिद्ध को, औरै होंहिं सहाइ।
बहुत होंहिं इक बार कै, द्वै अनमिल इक भाइ।
ऐसी भाँतिन जानिये, समुच्चयालंकार।
मुख्य एक लच्छन यही, बहुत भये इकबार। का० नि०, पृ० १५६-१५७।

६. का० नि०, पृ० १५७।

यहां धन, यौवन, बल तथा अज्ञान इनमें से एक ही विवेक खो देने के लिए पर्याप्त है। इन चारों का एक ही कार्य की सिद्धि के लिए एक साथ योग समुच्चय अलंकार का सुन्दर उदाहरण है। समुच्चय अलंकार के अन्तर्गत दास जी ने प्रथम तथा द्वितीय इन दो भेदों का वर्णन किया है। **अन्योन्य** तथा **विकल्प** अलंकार का वर्णन संक्षेप में है जिसमें कोई विशेषता नहीं प्रतीत होती।

सहोक्ति, विनोक्ति तथा **प्रतिषेध** के लक्षण दास जी ने निम्नलिखित एक ही दोहे में दिये हैं—

> **कछु कछु संग सहोक्ति कछु, बिन सुभ असुभ बिनोक्ति।**
> **यह नहिँ यह प्रत्यक्ष हो, कहिये प्रतिषेधोक्ति।**[1]

दास के ये लक्षण संस्कृत आचार्यों की तुलना में बिल्कुल अस्पष्ट प्रतीत होते हैं,[2] परन्तु दास जी ने इन सभी के उदाहरण प्रायः ठीक दिये हैं। **प्रतिषेध** अलंकार का दास जी ने निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

> **गैयन चरैबो नहीं गिरि को उठैबो नहीं, पावक अचैबो है न पाहन को तारिबो।**
> **धनुष चढ़ैबो नहीं बसन बढ़ैबो नहीं, नाग नथि लैबो है न गनिका उधारिबो।**
> **मधुसुर मारबो बकासुर बिदारबो न, वारन उधारबो न मन में बिचारिबो।**
> **ह्यांते तो न जैहो पेस सुनो राम भुवनेस, सब ते कठिन बेस मेरो क्लेस टारिबो।**[3]

यहां पर प्रसिद्ध वस्तुओं का निषेध दिखलाया गया है। अतः प्रतिषेध अलंकार का सुन्दर उदाहरण है।

विधि अलंकार वर्णन में भी दास की कोई विशेषता नहीं दिखलाई पड़ती है। दास जी ने **काव्यार्थापत्ति** अलंकार का लक्षण देते हुए कहा है कि 'यदि यह हो सकता है तो यह क्या कठिन है' जहां इस प्रकार का वर्णन हो वहां अर्थापत्ति अलंकार होता है।[4] पोद्दार जी का मत है कि "दंडपूपिका न्याय के अनुसार[5] किसी कार्य की सिद्धि के वर्णन को काव्यार्थापत्ति

१. का० नि० पृ० १५६।
२. मम्मट ने सहोक्ति तथा विनोक्ति के लक्षण देते हुए कहा है कि जहां एक ही पद सह आदि शब्दों के सहयोग से अनेक अर्थ का बोधक हो वहां सहोक्ति और जहां एक के बिना दूसरा अच्छा न लगे अथवा (एक के बिना दूसरा) अच्छा लगे वहीं विनोक्ति अलंकार होता है।
सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्। का० प्र०, पृ० ४१४।
विनोक्तिः सा विनान्येन यत्रान्यः सन्न नेतरः। का० प्र० पृ० ४१५।
अप्पयदीक्षित के मतानुसार प्रसिद्ध वस्तु का निषेध करना प्रतिषेध अलंकार है।
प्रतिषेधः प्रसिद्धस्य निषेधस्यानुकीर्तितम्। कुवलयानन्द, पृ० १६६।
३. का० नि०, पृ० १६१–१६२।
४. यहै भयो तौ यह कहा, एहि बिधि जहाँ बखान।
कहत काव्य पद सहित तेहि, अर्थापत्ति सुजान। का० नि०, पृ० १६२।
५. दंडपूपिका न्याय की व्याख्या यह है—यदि कहा जाय कि मूस दंड को खा गया तो इस कथन से मूसों द्वारा उन मालपुओं को हड़प कर जाना भी स्वतः सिद्ध है जो दंड से चिपके रहते हैं।

अलंकार कहते हैं"।[1] यही लक्षण कुवलयानन्दकार ने भी निश्चित किया है।[2] अतः स्पष्ट है कि दास का अर्थापत्ति का लक्षण ठीक नहीं है। दास ने काव्यार्थापत्ति के कुछ उदाहरण दिये हैं जो आचार्यों के लक्षणों के अनुरूप हैं। एक ऐसा ही उदाहरण अवलोकनीय है।

बन्धु जीव को दुखद है, अरुन अधर तुव बाल।
दास देत यह क्यों डरै, पर जीवन दुख जाल।[3]

बाला के अधर अपने ही बन्धु जीव (जिह्वा) के लिए दुखदायक हैं इस कथन की सामर्थ्य से वे दूसरों के जीवन को क्यों न दुखी करेंगे यह बात कही गई है। अतः यहां अर्थापत्ति अलंकार है।

इस वर्ग में अनेक ऐसे अलंकारों का विवेचन हुआ है जिनके मूल में किसी समान विशेषता का अस्तित्व नहीं मिलता और, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, दास ने इसका संकेत भी कर दिया है। हमारे विचार से इस वर्ग का नाम किसी अलंकार विशेष के नाम पर न होकर विविधतासूचक होना चाहिए था।

सूक्ष्मादि अलंकार वर्ग

इस वर्ग के अन्तर्गत दास ने **सूक्ष्म, पिहित, युक्ति, गूढ़ोत्तर, गूढ़ोक्ति, मिथ्याध्यवसित, ललित, विवृतोक्ति, व्याजोक्ति, परिकर** तथा **परिकरांकुर** इन ग्यारह अलंकारों को रखा है।[4] दास जी ने **सूक्ष्मालंकार** का लक्षण देते हुए कहा है कि इस अलंकार में चतुर बातें नहीं चातुर्यपूर्ण भावगर्भित संकेतों की अपेक्षा होती है।[5] इस सम्बन्ध में मम्मट का मत है कि जहां किसी ज्ञापक कारण (आकार अथवा संकेत) द्वारा कोई सूक्ष्म (केवल तीक्ष्ण बुद्धि वालों के योग्य) वस्तु किसी धर्म से अन्य के समक्ष प्रकट हो जाय वहां सूक्ष्म अलंकार होता है।[6] अतः दास का लक्षण युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। परन्तु सूक्ष्मालंकार का उनका निम्नलिखित

१. कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० ३०८।

२. कैमुत्येनार्थ संसिद्धिः काव्यार्थपत्तिरिष्यते। कुव०, पृ० १२६।

३. का० नि०, पृ० १६३।

४. सूछम पिहितौ युक्ति गनि गूढ़ोत्तर गूढोक्ति।
मिथ्याध्यवसित ललित अरु बिवृतोक्ति व्याजोक्ति।
परिकर परिकर-अंकुरो इग्यारह अवरेखि। का० नि०, पृ० १६३।

५. चतुर चतुर बातें करै, संज्ञा कछु ठहराइ।
तेहि सूछम भूषन कहैं, जे प्रवीन कविराइ। का० नि०, पृ० १६३।

६. कुतोऽपि लक्षितः सूक्ष्मोऽप्यर्थोऽन्यस्मै प्रकाश्यते।
धर्मेण केनचिद्यत्र तत्सूक्ष्मं परिचक्षते।

कुतोऽपि आकारादिङ्गिताद्वा सूक्ष्मस्तीक्ष्णमति संवेद्यः। का० प्र०, पृ० ४३८-४३९।

उदाहरण सुन्दर बन पड़ा है। यह उदाहरण शुद्ध तथा युक्तियुक्त है।

आज चन्द्रभागा वहि चन्द्रबदनी पै आली, निरति करत आये मोर के परन को।
वह धौं समुझि कहा बेनी गहि रही तब, वाहू दरसायो री बँधूक के दरन को।
दास वह परस्यो कहा धौं उरजात वहि, परस्यो कहा धौं दोऊ आपने करन को।
नागरी गुनागरी चलत भई ताही छन, गागरी लै तीर जमुना जल भरन को।[1]

यहां पर नायक नायिका ने संकेतों द्वारा (अर्थात् एक का मोर के परों को लाना, दूसरे का उसके उत्तर में वेणी पकड़ना, एक का बंधूक (दुपहरिया के फूल) का दलन तो दूसरे का उरोज रूपी कमल का स्पर्श करके उसे मूँदने का संकेत करना और फिर नायिका का गगरी उठा कर जल भरने जाना) यमुना के तीर पर रात्रि के समय, जब कमल मूँद जाते हैं, प्रेम करने के निमित्त सहेट स्थल का निश्चय किया। अतः यहाँ सूक्ष्मालंकार है।

पिहितालंकार का लक्षण दास जी ने इस प्रकार दिया है कि जहां दूसरे की गुप्त बात को समझ कर प्रकट कर दिया जाय वहां पिहितालंकार होता है।[2] इस लक्षण तथा जयदेव के लक्षण में इतना ही अन्तर है कि जयदेव के अनुसार यह प्रकाशन चेष्टा द्वारा होता है[3] और दास जी ने चेष्टा की बात स्पष्ट नहीं कही है। दास जी ने इसके उदाहरण शुद्ध दिये हैं।

युक्ति और व्याजोक्ति--दास जी ने ये दो अलंकार माने हैं जिनका आधार कुवलयानन्द है। उनके अनुसार क्रिया द्वारा किसी बात को छिपाना युक्ति तथा वचन द्वारा छिपाना व्याजोक्ति अलंकार होता है।[4] युक्ति का लक्षण दास जी ने निम्नलिखित दोहे में दिया है--

क्रिया चातुरी सों जहाँ, करै बात को गोप।
ताहि उक्ति भूषन कहैं, जिन्हैं काव्य की चोप।[5]

इस दोहे में उन्होंने 'उक्ति' लिखा है। हमारे विचार से यहां कुछ अशुद्धि हो गई है चाहे दास की हो, या संकलनकर्ता की, या टीकाकार अथवा मुद्रणालय की। वस्तुतः यहां पर युक्ति ही होना चाहिए था।[6]

इस सम्बन्ध में रसाल जी का मत इस प्रकार है--'भिखारीदास ने युक्ति नामक एक अलंकार (और इसी नाम से अन्य आचार्यों ने भी एक अलंकार लिखा है जिसे हम प्रथम ही दिखला चुके हैं) लिखा है, किन्तु जहां आपने इसका लक्षण दिया है वहां उक्ति शब्द का ही

१. का० नि०, पृ० १६४।
२. जहां छिपी पर बात को जानि जनावै कोइ।
   तहां पिहित भूषन कहैं छपी पहेली सोइ। — का० नि० पृ० १६४।
३. पिहितं परवृत्तान्तज्ञातुरन्यस्य चेष्टितम्। — चं० लो०, पृ० १७९।
४. वचन चातुरी सों जहां कीजै काज दुराय।
   सो भूषन व्याजोक्ति है सुनो सुमति समुदाय। — का० नि०, पृ० १६८।
५. का० नि०, पृ० १६५।
६. हमने काव्यनिर्णय की एक हस्तलिखित प्रति में, जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में सुरक्षित है, 'जुक्ति' पाठान्तर देखा है।

प्रयोग किया है, साथ ही युक्ति नाम देकर एक दूसरा अलंकार भी आपने इसके पृथक लिखा है जिसे हम अपने युक्ति अलंकार के वर्णन में लिख ही चुके हैं। भिखारीदास ने, ज्ञात होता है, इसे एक स्वतंत्र अलंकार मान कर यों लिखा है—

क्रिया चातुरी सों जहां करै बात को गोप।
ताहि उक्ति भूषन कहैं जिन्हैं काव्य की चोप'।[1]

रसाल जी का कथन है कि दास जी ने एक स्थान पर उक्ति का लक्षण दिया है और दूसरे स्थान पर युक्ति का, जिसका रसाल जी ने 'युक्ति' के अन्तर्गत वर्णन किया है। परन्तु जहां पर दास जी ने युक्ति अलंकार का विवेचन किया है वहां पर 'उक्ति' (अथवा जुक्ति) की परिभाषा (अथवा लक्षण) शब्दशः वैसी ही दी है जैसी ऊपर लिखी है।[2] वस्तुतः दोनों ही स्थान पर युक्ति शब्द है, दोनों ही लक्षण शब्दशः एक से हैं और दोनों का उल्लेख दो स्थान पर नहीं केवल एक का एक स्थान पर ही हुआ है। इस दृष्टि से 'रसाल' जी का मत भ्रामक प्रतीत होता है।

वस्तुतः दास जी के **युक्ति तथा व्याजोक्ति** के लक्षण बहुत स्पष्ट हैं और स्वयं कुवलयानन्द से भी अधिक स्पष्ट बन पड़े हैं।[3]

संस्कृत के आचार्यों ने उत्तर अलंकार का विवेचन किया है गूढोत्तर का नहीं परन्तु दास जी ने **गूढ़ोत्तर** का विवेचन करते हुए इस अलंकार को कुवलयानन्द के लक्षणानुसार[4] वहां माना है जहां कोई अभिप्रायसहित कुछ उत्तर दे।[5] गूढ़ोक्ति अलंकार और गूढ़ोत्तर अलंकार में भेद दिखाते हुए दास जी ने कहा है कि जहां अभिप्राययुक्त बात कही जाय (उत्तर

१. रामशंकर शुक्ल रसाल : अलंकार पीयूष, पृ० ३७३।

२. देखिये रामशंकर शुक्ल रसाल : अलंकार पीयूष, पृ० ५१।

३. कुवलयानन्दकार ने युक्ति तथा व्याजोक्ति के लक्षण इस प्रकार दिये हैं—

युक्ति—युक्तिः पराभिसन्धानं क्रिया मर्मगुप्तये। कुवलयानन्द, पृ० १६०।

अर्थात् जहां अपने रहस्य को छिपाने के लिए क्रिया द्वारा दूसरे को वंचन किया जाय वहां युक्ति अलंकार होता है।

व्याजोक्ति—व्याजोक्तिरन्यहेतूक्त्या यदाकारस्य गोपनम्। कुवलयानन्द, पृ० १५६।

अर्थात् जहां अन्य कारणों से कार्य का गोपन किया जाय वहां व्याजोक्ति अलंकार होता है।

लक्षणों को देखते हुए युक्ति अलंकार व्याजोक्ति के ही अन्तर्गत है। स्वयं कुवलयानन्दकार ने "आयान्तमालोक्य हरिं" (पृ० १५६) श्लोक युक्ति तथा व्याजोक्ति दोनों ही में दिया है। दास ने यह अन्तर स्पष्ट रखा है। देखिये कुवलयानन्द, पृ० २५६।

४ किंचिदाकूतसहितं स्याद्गूढ़ोत्तरमुत्तरम्। कुवलयानन्द, पृ० १५४।

५. अभिप्राय के सहित जो, उत्तर कोऊ देइ।
ताहि गूढ उत्तर कहत, जानि सुमति जन लेइ। का० नि०, पृ० १६५।

के रूप में नहीं) वहां गूढ़ोक्ति अलंकार होता है ।[1] कुवलयानन्दकार के लक्षणानुसार "जहां अन्योद्देश्यक वाक्य किसी अन्य के प्रति कहा जाय वहां गूढ़ोक्ति अलंकार होता है ।[2] अतः स्पष्ट है कि दास का लक्षण इससे कुछ भिन्न होते हुए भी अधिक युक्तियुक्त है । दास ने अपने लक्षण के अनुसार निम्नलिखित उदाहरण भी दिया है—

> **दास जू न्योते गईं घर की सब काल्हि तें ह्याँ न परोसिनौ आवति ।**
> **हौं ही अकेली कहाँ लौं रहौं इन अंधी अँधान को जी बहरावति ।**
> **प्रीतम छाइ रह्यो परदेश अँदेस इहै जु सँदेस न पावति ।**
> **पंडित हौ गुन मंडित हौ महिदेव तुम्हें सगुनौतिऔ आवति ।**[3]

नायिका की नायक से यह उक्ति "कि कल से घर के सभी लोग 'न्योते' को अन्यत्र गये हैं, परोसिन तक यहां नहीं आती, प्रीतम परदेश में हैं उनका संदेशा नहीं मिलता, यहां अकेले सास ससुर रहते हैं । वे भी अन्धे हैं, मैं अकेली कहां तक रहूँ, फिर तुम तो समझदार हो, पंडित हो, आकर सगुनौती ही मनाओ" नायिका की समागम इच्छा का द्योतन करने के कारण दास के अनुसार गूढ़ोक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करती है । यह उदाहरण कुवलयानन्द के लक्षणों के अनुसार न होते हुए भी गूढ़ोक्ति का सुन्दर उदाहरण है और दास जी की आचार्य बुद्धि का द्योतक भी है । **विवृतोक्ति** अलंकार के वर्णन में कोई विशेषता प्रतीत नहीं होती । पोद्दार जी के मत से यह अलंकार व्याजोक्ति से पृथक नहीं है ।[4] **मिथ्याध्यवसित** अलंकार वर्णन में कोई नवीनता नहीं है ।

ललित का लक्षण दास जी ने ठीक दिया है[5] तथा इसे स्वतंत्र अलंकार माना भी है, यद्यपि संस्कृत के आचार्यों का इस सम्बन्ध में मत भेद रहा है ।[6]

परिकर तथा **परिकरांकुर** अलंकारों के लक्षण ठीक हैं तथा इनके वर्णन में भी कोई नवीनता नहीं है ।

इस वर्ग के अन्तर्गत उन अलंकारों का विवेचन हुआ है जिनमें किसी न किसी प्रकार की चातुर्यपूर्ण उक्ति का कथन होता है ।

---

१. अभिप्राय-युत जहँ, कहिय काहू सों कछु बात ।
   तहँ गूढ़ोक्ति बखानहीं, कवि पंडित अवदात । का० नि०, पृ० १६६ ।

२. गूढोक्तिरन्योद्देश्यं चेद्यदन्यं प्रति कथ्यते । कुवलयानन्द, पृ० १५७ ।

३. का० नि०, पृ० १६६ ।

४. देखिये कन्हैयालाल पोद्दारः अलंकार मंजरी, पृ० ३६५ ।

५. ललित कह्यो जो चाहिये, कहिय तासु प्रतिबिम्ब । का० नि०, पृ० १६७ ।
   कुवलयानन्दकार के अनुसार वर्णनीय वृत्तान्त के प्रतिबिम्ब वर्णन किये जाने को ललित अलंकार कहते हैं ।
   वर्ण्ये स्याद्वर्ण्यवृत्तान्त प्रतिबिम्बस्य वर्णनम् । कुबलयानन्द, पृ० १३७ ।

६. ललित अलंकार को स्वतंत्र अलंकार स्वीकार करने में आचार्यो का मतभेद है ।
   कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० ३२६ ।

स्वभावोक्ति आदि वर्ग

इस वर्ग के अन्तर्गत दास ने **स्वभावोक्ति, हेतु, प्रमाण, काव्यलिंग, निरुक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, प्रत्यनीक, परिसंख्या तथा प्रश्नोत्तर** इन दस अलंकारों को रखा है ।[१]

स्वभावोक्ति तथा हेतु अलंकारों के वर्णन में कोई विशेष बात नहीं है । हेतु को अलंकार मानने के सम्बन्ध में संस्कृत के आचार्यों में भी मतभेद रहा है । दंडी, रुद्रट और कुवलयानन्दकार ने हेतु अलंकार माना है, परन्तु जयदेव, भामह और मम्मट ने हेतु अलंकार नहीं माना है ।

प्रमाणालंकार का वर्णन करते हुए दास का कथन है कि प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान-प्रदर्शन, बड़ों की बातों के उद्धरण, आत्मतुष्टि, अनुपलब्धि, संभव तथा अर्थापत्ति की सहायता से जहां कवि सत्य बात का वर्णन करते हैं वहां प्रमाण अलंकार होता है ।[२] उन्होंने इन सबके उदाहरण दिये हैं जिनमें कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती । हमारे विचार से दास जी ने कुबलयानन्दकार द्वारा वर्णित प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, आत्मतुष्टि, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव तथा ऐतिह्य अलंकारों को एक साथ लेकर प्रमाणालंकार का विवेचन किया है । इस सम्बन्ध में पोद्दार जी का मत ध्यान देने योग्य है—

"कुछ ग्रंथों में प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव और ऐतिह्य इन आठ प्रमाणों के अनुसार आठ प्रमाणालंकार माने हैं । किन्तु न्याय शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ये चार और वैशेषिक दर्शन में प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रधान प्रमाण माने गये हैं । अन्य सब प्रमाण इनके अन्तर्गत माने गये हैं । अनुमान के सिवा प्रत्यक्षादि प्रमाणालंकार काव्यप्रकाश आदि में नहीं हैं" ।[३]

काव्यलिंग का लक्षण दास जी ने इस प्रकार दिया है कि जहाँ स्वभाव के हेतु (कारण) अथवा प्रमाण का कवि युक्ति बल से समर्थन करे वहां काव्यलिंग होता है । यह समर्थन कहीं वाक्यार्थ से और कहीं शब्दार्थ से होता है ।[४] कुछ आचार्यों ने इस अलंकार को

१. **स्वभावोक्ति हेतुहि सहित, जे बहुभाँति प्रमान ।**
काव्यलिंग निरुक्ति गनि, अरु लोकोक्ति सुजान ।
पुनि छेकोक्ति बिचारि कै, प्रत्यनीक समतूल ।
परिसंख्या प्रश्नोत्तरो, दस बाचक पद मूल । का० नि०, पृ० १७१ ।

२. **कहुँ प्रतच्छ अनुमान कहुँ, कहुँ उपमान दिखाइ ।**
कहूँ बड़न को वाक्य लै, आत्मतुष्टि कहुँ पाइ ।
अनुपलब्धि संभव कहूँ, कहुँ लहि अर्थापत्य ।
कबि प्रमान भूषन कहैं, बात जु बरनै सत्य । का० नि०, पृ० १७३ ।

३. **कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० ३८२**

४. **जहँ सुभाव के हेतु को, कै प्रमान जो कोइ ।**
करै समर्थन जुक्ति बल, काव्यलिंग है सोइ ।
कहुँ वाक्यार्थ समर्थिये, कहुँ सब्दार्थ सुजान । का० नि०, पृ० १७५ ।

"हेतु" के अन्तर्गत भी माना है।[१] निरुक्ति, लोकोक्ति तथा छेकोक्ति[२] अलंकारों के वर्णन में कोई नवीनता नहीं है। छेकोक्ति का लक्षण भी स्पष्ट नहीं बन पाया है।[३]

दास जी ने प्रत्यनीक का जो लक्षण दिया है वह स्पष्ट नहीं है। उन्होंने इसके शत्रु-पक्षीय तथा मित्रपक्षीय ये दो भेद बताये हैं[४] तथा इनके उदाहरण दिये हैं। परिसंख्या अलंकार का विवेचन दास ने यथावत् तथा शुद्ध किया है परन्तु इसमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं।

दास जी ने इस वर्ग के अन्त में प्रश्नोत्तर अलंकार का वर्णन किया है किन्तु उसके लक्षण की शब्दावली का कोई अर्थ नहीं निकलता।[५] यह लक्षण पूर्णतया अस्पष्ट है।[६] उनका कथन है

१. "आचार्य मम्मट ने काव्यलिंग का नाम हेतु या काव्यहेतु भी लिखा है, (काव्यप्रकाश बालबोधिनी टीका पृ० ८२४)। आचार्य दंडी और महाराज भोज ने तो काव्यलिंग को हेतु अलंकार के अन्तर्गत ही कारक हेतु के नाम से लिखा है। और हेतु के भाव-साधन और अभाव-साधन आदि उपभेद लिखे हैं। कविप्रिया में भी हेतु अलंकार दंडी के मतानुसार लिखा है।"

कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० ३१३।

२. "भिखारीदास ने लोकोक्ति के अनुकूल कथन को, मतिराम ने किसी रसवत के अनु-करण को, भूषण ने लोक प्रचलित कहावत ही को, जसवन्तसिंह ने वाक्य में लोक-प्रवाद (क्या अर्थ ?) की झलक को और दूलह ने लोकाचार (क्या अर्थ ?) के कथन को लोकोक्ति अलंकार में रखा है। शेष और आचार्यों ने भूषण का ही मत माना है। हां लछिराम ने भिखारीदास का अनुकरण किया है। अप्पय जी ने लोक-प्रवाद की अनुकृति को ही लोकोक्ति कहा है। मम्मट और विश्वनाथ ने इसे अलंकार ही नहीं माना। वस्तुतः इसमें कोई विशेष चमत्कार ही नहीं होता। ..."

रामशंकर शुक्ल 'रसाल' : अलंकार पीयूष (उत्तरार्द्ध), पृ० ६२।

३. दास ने छेकोक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है—

ताहि कहत छेकोक्ति सो, लिये होइ उपमान। का० नि०, पृ० १७८।

कुवलयानन्दकार का कथन है कि अर्थान्तरगर्भित लोकोक्ति को छेकोक्ति कहते हैं।

छेकोक्तिर्यदि लोकोक्तेः स्यादर्थान्तरगर्भिता। कुवलयानन्द, पृ० १६१।

४. सत्रु मित्र के पक्ष तें, किये बैर औ हेत।

प्रत्यनीक भूषन कहैं, जे हैं सुमति सचेत। का० नि०, पृ० १७८।

५. दास के अनुसार प्रश्नोत्तर का लक्षण इस प्रकार है—

छोड़ि वा कह्यो वा कह्यो, प्रश्नोत्तर कहि जाइ।

प्रस्नोत्तर तासों कहैं, जे प्रवीन कबिराइ। का० नि०, पृ० १८०।

६. जयदेव का प्रश्नोत्तर अलंकार के सम्बंध में कहना है कि प्रश्नोत्तर रूप वाक्य में जहां गुप्त प्रश्न का उत्तर दिया जावे वहां प्रश्नोत्तर अलंकार होता है।

प्रश्नोत्तरं क्रमेणोक्तौ स्यूतमुत्तरमुत्तरम्। चं० लो०, पृ० १७८।

कि जहां उत्तर देने में प्रश्न दिखलाई पड़े वहां भी प्रश्नोत्तर अलंकार होता है।[1] काव्य-प्रकाश, कुबलयानन्द, साहित्यदर्पण आदि ग्रंथों में इसका नाम **उत्तर** दिया गया है। दास जी ने इसके भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि रस गंगाधर में (उन्नेय प्रश्न, निबद्ध प्रश्न, उन्नेय प्रश्नोत्तर, निबद्ध प्रश्नोत्तर जो साभिप्राय और निरभिप्राय दोनों में होने के कारण ८ होते हैं) आठ भेदों का विवेचन किया गया है।[2]

यथासंख्य तथा दीपकादि वर्ग

दास जी ने अन्य आचार्यों द्वारा प्रचलित शब्दालंकार तथा अर्थालंकारों को तो माना ही है साथ ही उन्होंने वाक्यालंकार के नाम से एक वर्ग और माना है। इस सम्बन्ध में उनका कथन है कि यद्यपि ये अलंकार वाक्य में अधिक रोचक लगते हैं परन्तु उनकी विशेषता अर्थ ही के कारण है।[3] इस वाक्यालंकार वर्ग के अन्तर्गत दास जी ने **यथासंख्य एकावली, कारणमाला, उत्तरोत्तर, रसनोपमा, रत्नावली, पर्याय तथा दीपक** ये आठ अलंकार रखे हैं।[4]

दास के **यथासंख्य** के लक्षण में तो कोई नवीनता नहीं प्रतीत होती, परन्तु उनका निम्नलिखित उदाहरण अवश्य उनके आचार्यत्व का द्योतक है जहां उन्होंने छः छः क्रम एक साथ निभाये हैं—

दास मन मति सों सरीरी सों सुरति सों गिरा सों गेहपति सों न बाँधबे की बारी जू।
मोहै मारि डारै साज सुबस उजारै करै, थंभित बनाइ धाइ देतो बैर भारी जू।
मोहन मरन बसीकरन उचाटन के, थंभन उदीपन के एई दिढ़कारी जू।
बाँसुरी बजैबो गैबो चलिबो चितैबो, मुसुकैबो अठिलैबो रावरे को गिरिधारी जू।[5]

यहां पर कृष्ण के वंशी वादन में मन और मति को मोह लेने का गुण है। इसी प्रकार उनके गायन, गति, चितवन, मुसकान और इठलाने के प्रभावों का भी क्रम से वर्णन हुआ है। अतः यह यथासंख्य का सुन्दर उदाहरण है। यथासंख्य अलंकार को क्रम अलंकार भी कहते हैं।

१. उत्तर दीबे में जहाँ, प्रश्नौ परत लखाइ।
प्रश्नोत्तर ताहू कहैं, सकल सुकबि समुदाइ। — का० नि०, पृ० १८१।

२. देखिये रस गंगाधर, पृ० ८२२।

३. क्रम दीपक द्वै रीति के, अलंकार मति चारु
अति सुखदायक वाक्य के, जदपि अर्थ सों प्यारु। — का० नि०, पृ० १८२।

४. यथासंख्य, एकावली, कारन माला ठाय।
उत्तरोत्तर रसनोपमा रत्नावलि पर्याय।
ए सातो क्रम भेद हैं, दीपक एकै पाँच।
आदि आवृतो देहली, कारन माला बाँच। — का० नि०, पृ० १८१।

५. का० नि०, पृ० १८२।

एकावली तथा कारणमाला के वर्णन में कोई विशेषता नहीं है।

दास ने उत्तरोत्तर नाम का एक नया अलंकार माना है। उसका लक्षण देते हुए वे कहते हैं कि जहां एक पद दूसरे से सरल दिखलाई पड़े वहां उत्तरोत्तर अलंकार होता है परन्तु यह लक्षण तो निरर्थक सा होगया है। दास जी ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

> होत मृगादिक तें बड़े बारन बारनबृंद पहारन हेरे।
> सिंधु में केते पहार परे धरती में बिलोकिये सिंधु घनेरे।
> लोकनि में धरती यों किती हरिवोदर में बहु लोक बसेरे।
> ते हरि दास बसैं इन नैनन एते बड़े दृग राधिका तेरे।[1]

इस उदाहरण में वस्तुओं का क्रमबद्ध वर्णन रहता है तथा परवर्ती वर्णन और उसके तत्काल पूर्ववर्ती वर्णन में एक सामंजस्य रहता है। हमारे विचार से यह अलंकार स्वयं दास द्वारा निर्मित अलंकार है और कारणमाला से भिन्न है। इस अलंकार का उल्लेख संस्कृत के आचार्यों ने नहीं किया है।

दास ने **रसनोपमा** को एक स्वतंत्र अलंकार माना है तथा कहा है कि जहां उपमा और एकावली का संकर हो वहां रसनोपमा होती है।[2] वस्तुतः यह उपमा का ही एक भेद है[3] और इसे उपमा के ही अन्तर्गत होना चाहिए।

रत्नावली अलंकार का लक्षण देते हुए दास ने कहा है कि विधाता द्वारा निर्मित क्रमिक वस्तु, अर्थात् जिन वस्तुओं का क्रमिक वर्णन किया जाना प्रसिद्ध हो, काव्य में उनके क्रमानुसार वर्णन करने से रत्नावलि अलंकार होता है।[4] इस अलंकार का उल्लेख केवल कुवलयानन्द में हुआ है।[5]

पर्याय अलंकार का लक्षण जो दास जी ने दिया है बिल्कुल अस्पष्ट होगया है।[6] दास जी ने इसके 'वढ़ती घटती' के अनुसार संकोच पर्याय तथा विकास पर्याय ये दो भेद

---

१. का० नि०, पृ० १८४।

२. उपमा अरु एकावली, को संकर जहँ होय।
ताही को रसनोपमा, कहँ सुमति सब कोय। का० नि०, पृ० १८४।

३. देखिये कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० ६७।

४. क्रमी वस्तुगनि विदित जो, रचि राख्यो करतार।
सो क्रम आने काव्य में, रत्नावली प्रकार। का० नि० पृ० १८५।

५. देखिये कुवलयानन्द, पृ० १४७।

६. तजि तजि आसय करन तें है पर्याय बिलास। का० नि०, पृ० १८६।
कुवलयानन्द में इसका लक्षण इस प्रकार दिया गया है :
पर्यायो यदि पर्यायेणैकस्यानेक संशयः
"एक वस्तु की क्रमशः अनेकों में स्वतः स्थिति हो अथवा दूसरे द्वारा की जाय उसे पर्याय अलंकार कहते हैं"। कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकारमंजरी, पृ० २८५।

किये हैं।[1] संकोच और विकास ये दोनों नाम स्वयं दास द्वारा ही रखे गये हैं। उन्होंने इन भेदों के उदाहरण भी दिये हैं। विकास पर्याय का निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है—

असुवन तें वहि नद किये, नद तें किये समुद्र।
अब सिगरो जल जलमई, करन चहत ह्वै रुद्र।[2]

यहां पर आंसू की बूंदों से नदी बनना, नदी से समुद्र और समुद्र से सारा संसार जलमय कर देने में उत्तरोत्तर विकास होने के कारण विकास पर्याय है।

दास जी ने **दीपक** अलंकार का जो लक्षण दिया है वह स्पष्ट नहीं है। उनके अनुसार जहाँ एक शब्द बहुत में लगे वहां दीपक अलंकार होता है।[3] जयदेव का कथन है कि जहाँ प्राकरणिक और अप्राकरणिक (प्रस्तुत तथा अप्रस्ततु) पदार्थों का साम्य दिखाया जाय वहाँ दीपक अलंकार होता है।[4] कुवलयानन्द में दीपक का लक्षण इस प्रकार दिया गया है 'जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक ही धर्म से वर्णन हो वहां दीपक अलंकार होता है'।[5] संस्कृत के आचार्यों की तुलना में दास का लक्षण अस्पष्ट प्रतीत होता है। दास जी ने दीपक के भेदों में आवृत्ति दीपक, जिसके अन्तर्गत उन्होंने पदावृत्ति तथा अर्थावृत्ति दोनों ही सम्मिलित किये हैं, देहरी दीपक, कारक दीपक तथा मालादीपक (अर्थात् दीपक के सभी भेदों) का सलक्षण एवं सोदाहरण विवेचन किया है जो शुद्ध एवं युक्तियुक्त हुआ है।[6]

दास का यह वर्ग विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इसके अन्तर्गत उन्होंने आठ ऐसे अलंकारों का वर्णन किया है जो (दास के अनुसार) वाक्यों को विशेष रूप से विभूषित करते हैं यद्यपि अर्थ की दृष्टि से भी इनका महत्व है। इस प्रकार यह वर्ग वाक्यालंकारों का वर्ग है। इस वर्ग में आये हुए अलंकार सभी पुराने हैं और सभी का संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों ने विवेचन किया है परन्तु इन सब को एक स्थान पर एकत्र करना और समान विशेषता के आधार पर उनका वर्गीकरण करना दास जी का निजी प्रयास है।

काव्यगुण विवेचन के अन्तर्गत वर्णित अलंकार वर्ग

दास जी ने **अनुप्रास** अलंकार का वर्णन गुण निर्णय वाले उल्लास में किया है और कारण यह दिया है कि अनुप्रास अलंकार गुण को विभूषित करता है।[7] इस अलंकार के अन्तर्गत दास जी ने **छेकानुप्रास** (जिस में आदि वर्ण तथा अन्त वर्ण की आवृत्ति के उदाहरण दिये गये हैं), **वृत्त्यनुप्रास** (जिस के अन्तर्गत अनेक आदि वर्ण तथा अन्त वर्ण की अनेक बार

१. घटती बढ़ती देखि कै कहि संकोच विकास। का० नि०, पृ० १८६।
२. का० नि०, पृ० १८७।
३. एक शब्द बहु में लगे दीपक जानै सोइ। का० नि०, पृ० १८८।
४. प्रस्तुताप्रस्तुतानां च तुल्यत्वे दीपकं मतम्। चं० लो०, पृ० १३२।
५. वदन्ति वर्ण्यावर्ण्यानां धर्मैक्यं दीपकं बुधा। कुवलयानन्द, पृ० ४९।
६. देखिये काव्यनिर्णय पृ० १८८ से पृ० १९१ तक।
७. गुन भूषन अनुमानि कै अनुप्रास उर आदि। का० नि०, पृ० १९७।

आवृत्ति तथा एक आदि वर्ण तथा अन्त वर्ण की अनेक बार आवृत्ति के उदाहरण दिये गये हैं।) और लाटानुप्रास इन तीन भेदों का वर्णन किया है।[1]

दास जी का अन्तवर्ण (एक की अनेक बार आवृत्ति) का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

बैठी मलीन अली अवली किधौं कंज कलीन सों ह्वै बिफली है।
संभु गली बिछुरीही चली किधौं नागलली अनुराग रली है।
तेरी अली यह रोमावली की सिँगारलता फल बेलि फली है।
नाभि थली पै जुरे फल लै कि भली रसराज नली उछली है।[2]

"यहां मलीन, अली, अवली और कलीन इत्यादि में प्रयोगों द्वारा अनुप्रास शब्दालंकार और रोमावली में भ्रमरावली आदि अनेक संदेह किये जाने के कारण सन्देह अर्थालंकार है। यह दोनों अलंकार यहां प्रधान हैं क्योंकि दोनों ही में समान चमत्कार है। अतः यहां शब्दार्थ उभय अलंकार है"।[3]

वस्तुतः अनुप्रास वर्णन में दास जी की अपनी कोई विशेषता नहीं है। इनके लक्षण और उदाहरण वही हैं जो अन्य संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों ने दिये हैं। इन्होंने अनुप्रास के दो अन्य प्रमुख भेदों श्रुत्यनुप्रास तथा अन्त्यनुप्रास का उल्लेख नहीं किया है। दास जी ने वृत्त्यनुप्रास के विवेचन के तत्काल पश्चात् उपनागरिका, परुषा और कोमला इन तीनों वृत्तियों का सोदाहरण विवेचन किया है। लाला भगवानदीन जी का भी मत है कि वृत्त्यनुप्रास को समझने के पहले इन तीन वृत्तियों को समझ लेना आवश्यक है।[4] अतः दास जी ने इन वृत्तियों का जिस स्थल पर वर्णन किया है वह प्रसंगानुकूल ही है।

वीप्सा तथा **यमक** अलंकारों का दास जी ने सलक्षण एवं सोदाहरण वर्णन किया है। लक्षण तथा उदाहरण भी शुद्ध हैं। विवेचन में और कोई नवीनता नहीं है।

डा० शुकदेवबिहारी मिश्र लाटानुप्रास, यमक और वीप्सा को पृथक अलंकार नहीं मानते। दास तथा अन्य आचार्यों ने इन्हें पृथक अलंकार माना है।[5]

अन्त में दास जी ने **सिंहावलोकन** अलंकार का वर्णन किया है। उनके अनुसार जहां आदि और अन्त के चरण यमक कुंडलाकार रूप में आयें वहां सिंहावलोकन अलंकार

१. देखिये काव्यनिर्णय, पृ० १९७ से २०० तक।

२. का० नि०, पृ० १९९।

३. देखिये कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, ३९८।

४. देखिये ला० भगवानदीन : अलंकार मंजूषा, पृ० ४।

५. लाटानुप्रास, यमक और वीप्सा पृथक अलंकार नहीं। हमारे मत से अभिन्न अर्थ, भिन्न अर्थ के या आदर आदि के लिए पुनः शब्द लाने से पृथक अलंकार नहीं माना जा सकता। डॉ शुकदेव बिहारी मिश्र : साहित्य पारिजात, पृ० ४८३।

होता है।[1] अतः सिंहावलोकन सब प्रकार से कुंडलित यमक ही होता । दास जी ने इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

सर सो बरसो करै नीर अली धनु लीन्हे अनंग पुरंदर सों।
दरसो चहुँ ओरन ते चपला करि जाती कृपान के ओझर सों।
झर सोर सुनाइ हरै हियरा जु किये घन अंबर डंबर सों।
बरसों ते बड़ी निसि बैरिन बीतति बासर भो बिधि बासर सों।[2]

यहां पर जो शब्द (दरसो) प्रथम पंक्ति के अन्त में है वही द्वितीय पंक्ति के आरंभ में है, जो शब्द (झरसो) द्वितीय पंक्ति के अन्त में है वही तृतीय पंक्ति के आदि में है, जो शब्द (बरसो) तृतीय पंक्ति के अन्त में है वही चतुर्थ पंक्ति के आदि में है। अतः इस प्रकार जो कुंडल बनता है उसे नीचे के चित्र में दिखाया गया है[3]—
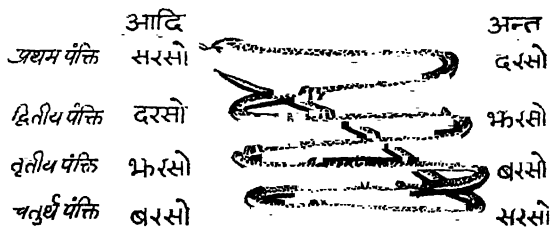
यह ठीक है कि सिंहावलोकन अलंकार नाम का कोई अलंकार न तो संस्कृत के आचार्यों ने लिखा है और न पोद्दार, मिश्रबन्धु, ला० भगवानदीन आदि प्रतिष्ठित विद्वानों ने ही इसका उल्लेख किया है। रसाल जी का कथन है कि सिंहावलोकन, वीप्सा तथा पुनरुक्ति प्रकाश (जिसका उल्लेख दास जी ने वाक्य गुण के अन्तर्गत किया है) भेद दास जी

१. चरन अन्त अरु आदि के, जमक कुंडलित होय।
सिंह बिलोकन है वहै, मुक्तक पद ग्रस सोय। का० नि०, पृ० २०३।
दास जी के उक्त लक्षण के ही आधार पर रसाल जी ने सिंहावलोकन का लक्षण इस प्रकार दिया है: "छन्द में जब अंतिम तुक के (चरणांतक के) वर्णों की यथाक्रम आवृत्ति दूसरे (आगे आने वाले) चरण के आदि में होती है तब जो वर्णावृत्तिमूलक अनुप्रास का कुंडलित रूप बनता है उसे सिंहावलोकन कहते हैं।"
रामशंकर शुक्ल 'रसाल': अलंकार पीयूष, पूर्वार्द्ध, पृ० २०८।

२. काव्य निर्णय, पृ० २०३।

३. छन्द शास्त्र के नियमानुसार सवैया पदों में चतुर्थ पंक्ति आदि तथा अन्त दोनों स्थानों पर पढ़ी जाती है।

द्वारा ही निर्मित हुए हैं[1]: परन्तु जहां तक उक्त सिंहावलोकन अलंकार का सम्बन्ध है, यह कहना असंगत न होगा कि संस्कृत के आचार्यों ने इसी अलंकार के लक्षणों से मिलता जुलता "मुक्तपदग्राह्य" नामक एक अलंकार का उल्लेख किया है। हमारी धारणा है कि दास ने मुक्तपदग्राह्य के लक्षण लेकर उसे एक नया नाम भर दे दिया है।[2]

इस वर्ग के अन्तर्गत आये हुए अलंकारों का सम्बन्ध काव्यगुणों से है। पुनरुक्ति प्रकाश वस्तुतः अलंकार है, जैसा रसाल जी भी मानते हैं, जिसमें एक शब्द के बहुत बार आ पड़ने पर अर्थ में रुचिरता आ जाती है, परन्तु दास जी ने इसका वर्णन "गुण" कह कर ही किया है, जैसा हम पीछे देख ही चुके हैं।

शब्दालंकार वर्ग

इस वर्ग में दास जी ने पांच अलंकार रखे हैं—**श्लेष, विरोधाभास, मुद्रा, वक्रोक्ति तथा पुनरुक्तवदाभास**।[3] उनका कथन है कि यद्यपि शब्दशक्ति द्वारा इनके अर्थ भी विभूषित होते हैं परन्तु इन्हें कोई अर्थालंकार नहीं मानता।[4]

जैसा कहा जा चुका है दास ने अनुप्रास, वीप्सा, यमक और सिंहावलोकन इन चार अलंकारों का गुण निर्णय प्रसंग के अन्तर्गत वर्णन किया है। वस्तुतः ये शब्दालंकार ही हैं परन्तु दास जी की सूक्ष्म दृष्टि ने इन्हें गुणों का भूषण माना है। अतः इनका वर्णन उन्होंने शब्दालंकारों के अन्तर्गत न करके गुणनिर्णय प्रसंग में ही किया है।

दास के **श्लेष** वर्णन में कोई नवीनता नहीं। उन्होंने श्लेष के ऐसे उदाहरण अवश्य दिये हैं जो दो दो, तीन तीन और चार चार अर्थों के प्रकाशक हैं। दास जी का श्लेष का एक निम्नलिखित उदाहरण अवलोकनीय है।

भयो अपत कै कोपजुत, कै बौरचो यहि काल।
मालिन आजु कहै न क्यों, वा रसाल को हाल।[5]

इस उदाहरण के सम्बन्ध में शुकदेव बिहारी जी का मत है "मालिनि श्रोत्री होने के कारण अपत शब्द का पत्ते रहित, कोपयुत का कोपलयुक्त, बौरचो का बौर युक्त और रसाल

१. देखिये रामशंकर शुक्ल 'रसाल': अलंकार पीयूष, (पूर्वार्द्ध), पृ० १०२, १२४ और २१७।

२. इस नाम की उपयुक्तता के सम्बन्ध में दास की नवीनता तथा सूक्ष्मबुद्धि के दर्शन हमें अवश्य होते हैं। जिस प्रकार सिंह चलते समय पहले एक बार अपनी बायीं ओर और फिर दाहिनी ओर देखकर चलता जाता है उसी प्रकार इस अलंकार के अन्तर्गत भी पंक्तियों की रचना उनके आरंभ और अन्त के शब्दों के मेल पर की जाती है।

३. स्लेष बिरोधाभास है, सब्दालंकृत दास।
मुद्रा अरु बक्रोक्ति पुनि पुनरुक्तवदाभास। का० नि०, पृ० २०५।

४. इन पाँचहु को अर्थ सों, भूषन कहै न कोइ।
जदपि अर्थ भूषन सकल, सब्द सक्ति में होइ। का० नि०, पृ० २०५।

५. का० नि०, पृ० १६।

का आम्र अर्थ आया। उसके पश्चात् मुख्य कारणों से दूसरा अर्थ नायक पक्ष में लगता है। वहां अपत (लापता), कोपयुत (क्रुद्ध), बौरचो (बावला), रसाल (नायक, रस का घर)। पहला अर्थ वाच्यार्थ है और दूसरा व्यंग्यार्थ। इसी कारण श्लेष के लक्षण में वाच्यार्थ जोड़ दिया गया है। तात्पर्य यह कि इस दोहे में व्यंग्यार्थ भी आ जाने से यह श्लेष में न रह कर ध्वनि भेद में चला गया है"।[1]

हमारे विचार से यह श्लेष का ही उदाहरण ठीक जंचता है क्योंकि पत्ते आदि के अतिरिक्त इसका दूसरा वाच्यार्थ यह है "मालिन, नायक का हाल तो बताओ, क्या वह अदृश्य हो गया, अथवा कुपित हो गया अथवा बौरा गया है (पागल हो गया है)"। प्रायः होता यह है कि नायिका नायक से अपने प्रेम को सफल बनाने के निमित्त दासी, सखी अथवा मालिनि को मिला लेती है। अतः इस दृष्टि से देखने पर उक्त उदाहरण में नायिका ने मालिनि को सम्बोधित करते हुए दयार्थक ढंग पर नायक का हालचाल पूछा है। अतः इन पंक्तियों को श्लेष के अन्तर्गत रखना ही उचित प्रतीत होता है।

दास जी ने श्लेष के अन्तर्गत तीन तीन, चार चार अर्थों के प्रकाशक जो उदाहरण दिये हैं वे सरलता से साध्य नहीं होते। दास जी इस प्रयास में बहुत कुछ सफल हुए हैं ऐसा हमारा विचार है। कुछ विद्वान श्लेष को शब्दालंकार मानने को तैयार नहीं है।[2]

विरोधाभास को दास जी ने शब्दालंकार के अन्तर्गत माना है और विरोध को अर्थालंकार के अन्तर्गत। जैसा पहले कहा जा चुका है अनेक आचार्यों ने विरोध या विरोधाभास को दो अलंकार न मान कर केवल एक ही अलंकार माना है। हमारे विचार से वे दो अलंकार न माने जाने चाहिए।

मुद्रालंकार को दास जी ने शब्दालंकार के अन्तर्गत लिखा है। हिन्दी के आचार्य इसे अर्थालंकार मानते हैं। उद्योतकार तो इसे अलंकार तक नहीं मानते।[3] वैसे दास जी ने

---

१. डॉ० शुकदेव बिहारी मिश्र : साहित्य पारिजात, पृ० २४३।

२. शब्द श्लेष को भी कई आचार्यों ने शब्दालंकार और अर्थालंकार माना है। हम इसे केवल अर्थालंकार में मानते है। डॉ० शुकदेव बिहारी मिश्र : साहित्यपारिजात पृ० ४८५।

इस संबंध में मिश्र जी ने अनेक आचार्यों—उद्भट, मम्मट, विश्वनाथ, मुरारिदास आदि—के मत दिये हैं और तब अपना उक्त मत स्थिर किया है।

देखिये साहित्य पारिजात, पृ० १४४ से २४८ तक।

३. उद्योतकार का मत है कि इसमें प्रस्तुत का पोषण न होने से कोई विशेष चमत्कार नहीं पैदा होता जिससे अलंकारता अप्राप्त है। हमारी समझ में भी कुछ ऐसा ही आता है, यद्यपि इतर आचार्यों में से कुछ की सम्मति के कारण इसे अलंकार में स्थान दे दिया गया है। यही मत कुबलयानन्दकार का है। यदि कोई अलंकारता है भी तो श्लेषभाव की।

डॉ० शुकदेव बिहारी मिश्र : साहित्य पारिजात, पृ० ३७१।

इसका जो वर्णन किया है उसमें कोई नवीनता नहीं प्रतीत होती ।

वक्रोक्ति अलंकार में भी दास की कोई नवीनता नहीं; न लक्षण में ही न उदाहरण में ही । डॉ० शुकदेव बिहारी मिश्र इस अलंकार का कुछ सम्बन्ध शब्दालंकारों से स्वीकार करते हुए भी इसे अर्थालंकार मानते हैं ।[1]

पुनरुक्तवदाभास में दास की किसी विशेषता के दर्शन नहीं होते । इसका वर्णन बहुत संक्षेप में हुआ है ।

इस वर्ग के अलंकार प्रायः वही हैं जिनसे शब्दों के चमत्कार की ही प्रतीति होती है। स्वयं हिन्दी और संस्कृत के आचार्यों ने इन सभी अलंकारों को शब्दालंकार माना है। अतः इनका एक स्थान पर, एक वर्ग में विवेचन दास जी की विशेषता है ।

चित्रकाव्य वर्णन

मम्मट ने अधम काव्य का लक्षण देते हुए कहा है--

शब्द चित्रम् वाच्यचित्रमव्यंग्य त्ववरं स्मृतम् । अवरमधमम् ।[2]

अर्थात् उस काव्य को जिसमें शब्द चित्र और वाच्यचित्र हों परन्तु व्यंग्यार्थ की प्रतीति न होती हो, अवर (अधम) काव्य कहते हैं।

दास जी ने भी **वाच्य-चित्र** तथा **अर्थचित्र** को अवर काव्य के अन्तर्गत रखा है ।[3] इस काव्य के सम्बन्ध में जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' का मत है 'वर्गों को पद्मादिक चित्र में भर देना इसमें न तो शब्दार्थ की विचित्रता है न रसोपकारिता ही है। इसलिए सुकविजन गोरखधंधा जान कर इसका त्याग करते हैं । इसी कारण इसका नाम अधम काव्य है '।[4] लाला भगवानदीन जी का कथन है "चित्र काव्य ··· इसमें अलंकारत्व नहीं है । केवल कवि की चतुराई और परिश्रम का परिचय मिलता है "।[5] डा० शुकदेवबिहारी मिश्र कहते हैं कि 'चित्र-काव्य में कोई अलंकारता नहीं । केवल छंद में वर्णों की विशेष स्थिति के कारण यहां देखने भर को विचित्रता मिलती है किन्तु कोई चमत्कार नहीं '।[6] स्वयं पंडितराज का मत है कि इसे काव्य में स्थान देना अनुचित है ।[7] अतः स्पष्ट है कि प्रतिष्ठित विद्वान चित्र काव्य में कोई विचित्रता नहीं मानते । हाँ, इसे मानसिक व्यायाम तथा विनोद का साधन अवश्य कहा जा सकता है। दास जी ने चित्र काव्य का संस्कृत के अनेक आचार्यों जैसे मम्मट, जयदेव, विश्वनाथ

१. देखिये डॉ० शुकदेव बिहारी मिश्र : साहित्य पारिजात, पृ० ४८५ ।

२. का० प्र०, पृ० ८ ।

३. अवर काव्य हू में करै, कवि सुघराई मित्र ।
मन रोचक करि देत है, बचन अर्थ को चित्र । का० नि०, पृ० ६८ ।

४. जगन्नाथ प्रसाद भानु : काव्यप्रभाकर, पृ० ४८६ ।

५. लाला भगवानदीन : अलंकार मंजूषा, पृ० १४ ।

६. डॉ० शुकदेव बिहारी मिश्र : साहित्य पारिजात, पृ० ४८६ ।

७. देखिये कन्हैयालाल पोद्दार : अलंकार मंजरी, पृ० ४७ ।

आदि की अपेक्षा कहीं अधिक विवेचन किया है। संस्कृत के आचार्यों में चित्रकाव्य का विशद विवेचन आचार्य रुद्रट ने किया है और उन्होंने चक्र, खंग, मुसल, धनु, शर, शूल, शक्ति, हल, रघुपद, तुरगपद, मुरजबंध, पद्म आदि चित्रों में श्लोकों को बांधा है।[1] हिंदी में चित्रकाव्य पर काशिराज कवि कृत एक चित्र चंद्रिका ग्रंथ का पता चला है जिसमें चित्रकाव्य का विशद एवं सांगोपांग वर्णन मिलता है।

दास जी के अनुसार चित्र काव्य के लिए अर्थहीनता दोष नहीं, ब व तथा ज और य एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग में लाये जा सकते हैं तथा अनुस्वार का ध्यान नहीं रखा जाता।[2] चित्र चंद्रिका के अनुसार अर्द्ध चंद्र, अनुस्वार तथा इनसे युक्त अथवा रहित अक्षर एक समान माने जाते हैं। र ल ड, स ष श, व ब, ज य इन वर्गों के शब्द समान गिने जाते हैं। लघु और दीर्घ के उच्चारण का भी दोष नहीं माना जाता।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि दास का मत चित्र चंद्रिका के आधार पर है।

दास जी ने चित्रकाव्य के निम्नलिखित भेद किये हैं--

(१) प्रश्नोत्तर, (२) पाठान्तर, (३) वाणी चित्र तथा (४) लेखनी चित्र[4]

प्रश्नोत्तर चित्रकाव्य के दास जी ने पहले तो दो भेद अर्थात् अन्तर्लापिका और वहिर्लापिका किये हैं[5] और फिर अन्तर्लापिका के अगणित भेदों में से दास के अनुसार ये नौ भेद मुख्य हैं—**गुप्तोत्तर, व्यस्त समस्त, एकेनोत्तर, नागपाश, क्रमव्यस्त समस्त, कमलबद्धोत्तर, गत शृंखलोत्तर, आगत शृंखलोत्तर और चित्र**।[6] दास ने इन सभी के मनोरंजक उदाहरण दिये हैं साथ ही वे इनके लक्षण भी देते गये हैं जिससे विषय को सरलता से समझा जा सकता है। हम कतिपय उदाहरणों द्वारा दास जी के इस मानसिक व्यायाम तथा उनकी प्रतिभा का अनुमान लगाने का प्रयास करेंगे। **शृंखलोत्तर** का एक निम्नलिखित उदाहरण दर्शनीय है--

> **छबि भूषन को जय को हर को सुर को घर को सुभ कौन रुती।**
> **केहि पाये गुमान बढ़ै केहि आये घटै जग में थिर कौन हुती।**
> **सुभ जन्म को दास कहा कहिये बृषभान की राधिका कौन हुती।**
> **घटिका निसि आज सुकेती अली केहि पूछहिगी "नगराजसुती"।**[7]

१. देखिये रुद्रट का काव्यालंकार, पृ० ४६ से लेकर ६० तक।

२. चमत्कार हीनार्थ को, इहाँ दोष कछु नाहिं।
   ब व ज य बरनन जानिये, चित्रकाव्य में एक।
   अर्द्धचंद्र को जनि करो, छूटे लगै विवेक। का० नि०, पृ० २१०।

३. देखिये काशिराज : चित्र चंद्रिका, पृ० ३।

४. प्रश्नोत्तरो पाठान्तरो, पुनि बानी को चित्र।
   चारि लेखनी चित्र को, चित्रकाव्य है मित्र। का० नि०, पृ० २१०।

५. प्रश्नोत्तर चित्रित करै, सज्जन सुमति उमंग।
   द्वै विधि अन्तरलापिका, बहिरलापिका संग। का० नि०, पृ० २१०।

६. देखिये काव्य निर्णय, पृ० २१०-२११। ७. का० नि०, पृ० २१६।

इस उदाहरण में केवल एक शब्द "नगराजसुती" से उपर्युक्त अनेक उत्तर मिल जाते हैं—

अलंकार की शोभा क्या है? नग अर्थात् रत्नादि। जय किससे होती है? गन अर्थात् सेना से। स्वर का हरनेवाला कौन है? गरा (गला), जिसके बिना स्वर का उच्चारण भी नहीं हो सकता। घर की शोभा क्या है? राग (अर्थात् पारस्परिक प्रेम व्यवहार)। क्या प्राप्त होने से गर्व बढ़ता है? राज। किसके आने से गर्व घटता है? जरा (वृद्धावस्था)। संसार में स्थिर रहने वाली कौन सी द्युति है? जस (यश)! सुन्दर जन्म को क्या कहते हैं? सुज। वृषभान की राधिका कौन थी? सुती (पुत्री)। आज कितने घड़ी रात्रि है? तीस। किस की पूजा करोगी? नगराजसुती अर्थात् पर्वतराज हिमालय की कन्या पार्वती की।

सुकाव्य और विशेषतया ध्वनि की दृष्टि से तो उक्त पद में किसी भी प्रकार का चमत्कार नहीं मिल सकता। साथ ही ऐसे पदों का ठीक ठीक अर्थ लगाने के लिए भी मस्तिष्क पर असाधारण ज़ोर देना पड़ता है, परन्तु एक बार अर्थ का भान हो जाने पर उसका जो आनन्द मिलता है उससे हम कवि की कारीगरी पर मोहित अवश्य हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं।

यह था अन्तर्लापिका प्रश्नोत्तर का एक उदाहरण। पाठान्तर चित्रकाव्य के भी दास जी ने कुछ उदाहरण दिये हैं जैसे प्रत्येक चरण के आदि का शब्द छोड़कर, किसी शब्द के मध्य वर्ण का लोप करके पढ़ने से, अथवा एक वर्ण के स्थान पर दूसरा वर्ण रख कर पढ़ने से पूरे पद का अर्थ बदल जाता है।

वाणी-चित्र के अन्तर्गत दास जी ने ऐसे अनेक उदाहरण दिये हैं जिसमें पूरे पद में एक भी ओष्ठ्य वर्ण न हो अथवा जिह्वा-संचालन की आवश्यकता भी न पड़े। इसके अतिरिक्त दास ने नियमित संख्या में वर्णों को लेकर भी कारीगरी दिखाई है। उन्होंने इस प्रकार के १ से लेकर ७ वर्णों तक के उदाहरण दिये हैं, यद्यपि उनका कथन है कि एक से लेकर छब्बीस छब्बीस वर्णों तक के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।[1]

लेखनी-चित्र के अन्तर्गत दास ने पदों को विभिन्न चित्रों—खंग, कमल, कंकण, डमरू, चन्द्र, धनुष, हार, मुरज, छत्र, पर्वत, वृक्ष तथा कपाट आदि—में बांधा है।[2]

चित्रों के अतिरिक्त दास जी ने चित्रकाव्य के अन्य अंगों, जैसे विविध प्रकार के **गतागत, त्रिपदी, मंत्रिगति, अश्वगति, सर्वतोमुख** तथा **कामधेनु**, के भी उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।[3]

दास जी का मत है कि लेखनी—चित्र का वर्णन अपार है जिसका कुछ उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है

१. इक इक ते छब्बीस लगि, होत बरन अधिकार।
तदपि कह्यौ हौं सात लौं, जानि ग्रंथ विस्तार। — का० नि०, पृ० २२३।

२. खड्ग कमल कंकन डमरु, चन्द्र चक्र धनु हार।
मुरज छत्र युत बंधवहु, पर्वत वृक्ष किवार। — का० नि०, पृ० २२४।

३. विविध गतागत मित्र गति, त्रिपद अश्वगति जानि।
विभुख सर्वतोमुख बहुरि, कामधेनु उर आनि। — का० नि०, पृ० २२४।

४. अक्षर गुप्त समेत हैं, लेखनि चित्र अपार।
बरनन पंथ बताइ मैं, दीन्हों मति अनुसार। — का० नि०, पृ० २२४।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है इस वर्ग में केवल चित्र काव्य अथवा चित्रालंकार का ही वर्णन है। इसके अन्तर्गत चित्रकाव्य के विभिन्न भेदोपभेदों का विशद विवेचन भी उन्होंने किया है।

अलंकार संख्या

यह निर्विवाद है कि हिन्दी में अलंकार शास्त्र की उत्पत्ति संस्कृत साहित्य से ही हुई। यह बात दूसरी है कि हिन्दी के आचार्यों ने अपनी बुद्धि तथा भाषा एवं काव्य की आवश्यकता को देखते हुए उसमें कुछ अलंकार घटा बढ़ा लिये और कुछ के लक्षणों में अपनी बुद्धि के अनुसार संशोधन अथवा परिवर्तन कर लिये। दास के पूर्व संस्कृत में अलंकारशास्त्र आचार्यों के सांगोपांग विवेचन तथा खंडन मंडन द्वारा पूर्ण प्रौढ़ता को प्राप्त हो चुका था और रीतिकालीन हिन्दी-कवि उस कोष में से यथाकांक्षा सब कुछ लेकर और अपना कर हिन्दी वाङ्मय की अभिवृद्धि के लिए अग्रसर भी हुए। फलतः संस्कृत के विद्वान हिन्दी कवियों ने इस अवसर का उपयोग किया और उन्होंने अपने अपने दृष्टिकोण तथा अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार अलंकारों का वर्गीकरण किया। हिन्दी के आचार्यों में केशव ने ३७ अलंकारों (जिनमें शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों ही सम्मिलित हैं), जसवन्तसिंह ने १०४, मतिराम ने ६७ (उपभेदों को छोड़ कर), भूषण ने ६५ (उपभेदों को छोड़कर) और देव ने ३६ का विवेचन किया है।[१] इनको देखते हुए दास ने १०८ [२] प्रमुख अलंकारों का वर्णन किया

१. संख्याओं का आधार "रसाल" का अलंकार पीयूष है।

२. दास ने निम्नलिखित दोहे में १०८ अलंकारों का वर्णन स्वीकार किया है :

"भूषन छयासी अर्थ के, आठ वाक्य के जोर।
त्रिगुन चारि पुनि कीजिये, अनुप्रास इक ठौर।
सब्दालंकार पांच गनि, चित्रकाव्य इक पाठ।
इकरस बातादिक सहित, ठीक सतोपरि आठ"। का० नि०, पृ० २४४।

उक्त दोहों की अंतिम पंक्ति ने साहित्य के क्षेत्र में बड़ा विवाद उपस्थित कर दिया है और उसका कारण यह है कि काव्य निर्णय के प्रायः सभी मुद्रित संस्करणों में उक्त अन्तिम पंक्ति में शब्द 'इकइस' आया है, परन्तु हमारे देखने में काव्य निर्णय की जो प्रति आयी है उसमें पाठान्तर है और अन्तिम पंक्ति इस प्रकार है 'इक रस बतादिके सहित ठीक सै ऊपर आठ' जिसके अनुसार वास्तविक अलंकार संख्या इस प्रकार है--

अर्थालंकार-- ८६, वाक्यालंकार ८, काव्य गुणों के अन्तर्गत वर्णित अलंकार ३, अनुप्रास अलंकार ४, शब्दालंकार ५। चित्रालंकार १, रसवतादि अलंकार--१, कुल योग=१०८, जो दास द्वारा दी गयी अलंकार संख्या के ही बराबर है।

उपर्युक्त पंक्ति 'इकइस बातादिक सहित ठीक सतोपरि आठ', जैसी कि मुद्रित प्रतियों में पायी जाती है, से तो १०८ की संख्या किसी प्रकार भी नहीं आती। इस संबंध में रसाल जी का मत है :

"अलंकारों की संख्या आपने १०८ बताई (८६ अर्थालंकार, ८ वाक्यालंकार, ५ शब्दालंकार, १२ प्रकार के अनुप्रास, चित्र २१ वातादि संबंधी) किन्तु यह ठीक नहीं बैठती"। रसाल : अलंकार पीयूष, पृ० १०२।

रसाल जी ने उपर्युक्त दोहे का जो अर्थ लगाया है उसके अनुसार तो अलंकारों की संख्या १३२ होती है।

और अपेक्षाकृत यह संख्या कहीं अधिक है। इस प्रकार दास जी ने अलंकार शास्त्र में अच्छा खासा विकास किया और अपने पूर्ववर्ती हिन्दी के सभी आचार्यों से अधिक विवेचन किया। इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली।

अलंकारों के वर्गीकरण पर मत

पिछले पृष्ठों में प्रत्येक वर्ग के विवेचन के साथ ही संक्षेप में इस बात पर भी प्रकाश डाला जा चुका है कि वर्ग विशेष में आने वाले अलंकारों में ऐसी कौन सी समान विशेषताएं हैं जिनके कारण उन्हें उस वर्ग में स्थान मिला है। सम्पूर्ण विवेचन के बाद हमारा तो निश्चित मत है कि दास जी ने अलंकारों का वर्गीकरण करते समय अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि से काम लिया। माना कि भिखारीदास के पूर्ववर्ती संस्कृत के आचार्यों जैसे दन्डी, वामन, रुद्रट, रुय्यक, कुन्तल आदि ने अपने अपने दृष्टिकोण से अलंकारों को वर्गों में रखने का पथ प्रशस्त कर दिया था परन्तु हिन्दी में एक वैज्ञानिक एवं नियमित ढंग पर सम्पूर्ण अलंकारों को विभिन्न वर्गों में विभाजित करके उनका केशव आदि से अधिक सांगोपांग विवेचन करना हिन्दी के क्षेत्र में एकमात्र भिखारीदास जी का ही प्रयास था। भले ही आज के कुछ विद्वान दास के वैज्ञानिक वर्गीकरण को मनमानेपन की संज्ञा दें[1] परन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि दास का अलंकारों का वर्गीकरण अत्यन्त व्यवस्थित, युक्तियुक्त तथा वैज्ञानिक हुआ है[2], और इसमें हमें उनकी मौलिकता के दर्शन होते हैं

१. पोद्दार जी का मत है कि "दास जी ने अलंकारों का क्रम न तो काव्यनिर्णय के आधारभूत काव्यप्रकाश या कुवलयानन्द के अनुसार ही रखा है और न अलंकारों के मूल तत्वों के आधार पर ही। यह क्रम-परिवर्तन एकमात्र दास जी की इच्छा पर निर्भर है"। अलंकारमंजरी, पृष्ठ स (भूमिका)।

२. रसाल जी का मत है "भिखारीदास ने अपने काव्य निर्णय में उद्भट के समान एक विचित्र प्रकार का वर्गीकरण दिया है! एक प्रधान अलंकार के नाम से एक वर्ग बना कर उसमें उस प्रधान अलंकार से संबंध रखने वाले अलंकारों की विवेचना की है। ऐसा करते हुए भी यह स्पष्ट है कि उन्होंने शब्द, अर्थ, भाव, रस, ध्वनि, व्यंग्य, न्याय (प्रमाण) पर आधारित होने वाले सभी अलंकारों का पूर्ण स्पष्टीकरण किया है और विषय को सर्वांगपूर्ण बनाया है।...भिखारीदास ने अपनी मौलिकता विशेषतया अपने वर्गीकरण में दिखाई है"।

अलंकार पीयूष (पूर्वार्द्ध) पृ० १३६, १२४।

डा० भगीरथ मिश्र का मत है "अनेक अलंकारों का सामान्य आधार ढूंढ कर उनका वर्ग बांधना दास की विशेषता है जैसा कि न किसी ने पहले और न किसी ने उनके पीछे किया"

डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० १४२।

अलंकार तालिका

वर्ग का नाम	अलंकारों के नाम	संख्या
	अर्थालंकार	
१. उपमादि	उपमा (पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा), अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, विकस्वर, निदर्शना, तुल्ययोगिता तथा प्रतिवस्तूपमा।	१०
२. उत्प्रेक्षादि	उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, स्मरण, भ्रम, सन्देह।	
३. व्यतिरेक रूपक	व्यतिरेक, रूपक (दास के अनुसार रूपक के भेद हैं—(१) अधिक, हीन तथा सम तद्रूपरूपक, (२) निरंग, परंपरित, परिणाम तथा समस्त विषयक और (३) उपमावाचक, उत्प्रेक्षावाचक, अपह्नुतिवाचक, रूपकवाचक और परिणामवाचक) तथा उल्लेख (रूपक के अन्तर्गत वर्णित)।	३
४. अतिशयोक्ति आदि	अतिशयोक्ति, उदात्त, अधिक, अल्प, विशेष।	५
५. अन्योक्त्यादि	अप्रस्तुत प्रशंसा, प्रस्तुतांकुर, समासोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप तथा पर्यायोक्ति।	
६. विरुद्धादि	विरुद्ध, विभावना, व्याघात, विशेषोक्ति, असंगति तथा विषम।	
७. उल्लासादि	उल्लास, अवज्ञा, अनुज्ञा, लेश, विचित्र, तद्गुण, अतद्गुण, स्वगुण, पूर्वरूप, अनुगुण, मीलित, उन्मीलित, सामान्य, विशेष।	१४
८. समालंकारादि	सम, समाधि, परिवृत्ति, भाविक, प्रहर्षण, विषादना, असम्भव, सम्भावना, समुच्चय, अन्योन्य, विकल्प, सहोक्ति, विनोक्ति, प्रतिषेध, विधि, काव्यार्थापत्ति।	१६
९. सूक्ष्मादि	सूक्ष्म, पिहित, युक्ति, गूढोत्तर, गूढोक्ति, मिथ्याध्यवसित, ललित, विकृतोक्ति, व्याजोक्ति, परिकर, परिकरांकुर।	११
१०. स्वभावोक्ति आदि	स्वभावोक्ति, हेतु, प्रमाण, काव्यलिंग, निरुक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, प्रत्यनीक, परिसंख्या, तथा प्रश्नोत्तर।	१०
	अर्थालंकारों की कुल संख्या	८६
	वाक्यालंकार	
यथासंख्य तथा दीपकादि	यथासंख्य, एकावली, कारणमाला, उत्तरोत्तर, रसनोपमा, रत्नावली, पर्याय, तथा दीपक	८
काव्यगुणों के अन्तर्गत वर्णित अलंकार वर्ग	वीप्सा, यमक, सिंहावलोकन	३
अनुप्रास, एक स्थान पर	अनुप्रास, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, लाटानुप्रास	४
	शब्दालंकार	
शब्दालकार वर्ग	श्लेष, विरोधाभास, मुद्रा, वक्रोक्ति, पुनरुक्ताभास	५
चित्रकाव्य	चित्रालंकार	१
रसवतादि अलंकार, जिसकी संख्या दास जी ने एक मानी है	रसवतादि के अन्तर्गत वस्तुतः अलंकार रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्वि, समाहित, भावोदयवत्, भावसंधिवत्, भावसबलवत् आते हैं।	१
	अलंकारों की कुल संख्या	१०८

उपसंहार

'दास' पर निराधार दोषारोपण

पिछले पृष्ठों में हम कवि एवं आचार्य रूप में दास की प्रतिभा की एक झलक पा चुके हैं। वास्तविकता यह है कि साहित्यिक क्षेत्र में दास के निरंतर प्रयास करते रहने के कारण तत्कालीन प्रसिद्ध कविगण भी उनका आदर और सम्मान करते थे जैसा दास जी ने अपने निम्नलिखित पद में स्वयं कहा है—

मो सम जे ह्वै हैं ते विसेष सुख पैहैं पुनि, हिन्दूपति साहेब के नीके मनमानो है।
एते पर तोष रसराज रसलीन वासुदेव से प्रवीन पूरे कविन्ह बखानो है।
तातें यह उद्यम अकारथ न जैहै सब, भांति ठहरैहै भलो हौंहूं अनुमानो है।
आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई न त, राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।[1]

स्वयं दास के अनुसार उनके काल के कवियों जैसे तोषनिधि, रसराज, रसलीन (सैयद गुलाम नबी) तथा बासुदेवलाल कायस्थ जैसे प्रतिष्ठित कवियों ने इनके काव्य की सराहना की थी। दास की इन कवियों द्वारा प्रशंसा स्वाभाविक भी है, और इसका स्पष्ट कारण यही है कि दास जी उच्चकोटि के आचार्य और एक अच्छे कवि थे जैसा हम पिछले पृष्ठों में अपने विवेचन में देख ही चुके हैं।

इस स्थल पर एक बात और भी विचारणीय है कि कविवर भिखारीदास ने अपने समय के एक प्रमुख कवि श्रीपति के नाम का उल्लेख अपनी उक्त सूची में क्यों नहीं किया? इसी एक बात के कारण हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वानत्रय "मिश्रबन्धुओं" ने दास जी पर श्रीपति के काव्य की चोरी का गंभीर दोषारोपण किया था जो पूर्णतः निराधार तथा असत्य था। हम निम्नलिखित पंक्तियों में इस गंभीर आरोप की विस्तारपूर्वक जांच करेंगे।

भिखारीदास के जीवन तथा ग्रन्थों के विषय में सबसे प्रथम विवरण मिश्रबन्धुओं ने अपने ग्रन्थ "विनोद" में दिया था। उन्होंने अपनी मौलिक खोजों के आधार पर हिन्दी संसार के समक्ष दास जी के विषय में जितनी सामग्री प्रस्तुत की उतनी अन्य किसी भी इतिहासकार ने प्रस्तुत नहीं की। अन्य प्रायः सभी इतिहासकारों ने 'विनोद' के आधार पर ही शब्दों के उलटफेर द्वारा दास के विषय में बहुत सी उन्हीं बातों को दुहराया है जिन्हें मिश्रबन्धु अपने विनोद में बहुत पहले लिख चुके थे। ऐसा भी अनुमान है कि अनेक इतिहासकारों ने दास के प्रसिद्ध ग्रन्थों "काव्य निर्णय", "शृंगार निर्णय" और "छंदोर्णव पिंगल" को छोड़कर उनके अन्य ग्रन्थों को देखा भी नहीं था अन्यथा ये लोग "नाम प्रकाश" और "अमरकोश" अथवा "अमरप्रकाश" को दो ग्रन्थ न बताते।[2]

दास की तथाकथित साहित्यिक चोरी का, जिसका श्री गणेश भी मिश्रबन्धु विनोद ही से निम्नलिखित शब्दों में हुआ है, कथन प्रायः सभी इतिहासकारों ने किया है—

१. का० नि०, पृ० ३। २. देखिये पृष्ठ संख्या, ७३।

"इनमें यह भी एक बड़ा दोष है कि ये अन्य कवियों की उक्तियों को अपनी कविता में बेधड़क रख लेते हैं। इस कथन के उदाहरणस्वरूप इनकी रचना में बहुत छंद मौजूद हैं, यहां तक कि श्रीपति कवि पर यह अपना हक विशेष रूप से समझते थे। यहां तक कि श्रीपति सरोज के अध्याय के अध्याय उठाकर आपने जैसे के तैसे अपने काव्य निर्णय में रख लिये लिये हैं और इस बात को स्वीकार करना तो दूर रहा अपनी कवियों की नामावली में श्रीपति जी का नाम तक नहीं लिखा मानो यह उनको जानते ही न थे"।[1]

इन पंक्तियों के पढ़ने से दोषारोपण की गम्भीरता का बहुत कुछ अनुमान हो सकता है और यदि बिना सोचे विचारे और खोज किये हुए इन्हें सत्य मान लिया जाय तो कोई भी साहित्यिक, कवि अथवा इतिहासकार दास जी को कवि मानने को तैयार नहीं होगा। उक्त दोषारोपण हिन्दी के प्रमुख स्तम्भ तथा प्रतिष्ठित विद्वानों (मिश्रबन्धुओं) द्वारा लगाये गये हैं। इतिहासकारों ने इसी पृष्ठभूमि में बिना किसी प्रकार की जांच-पड़ताल किये हुए इन आरोपों को अपने इतिहासों में दुहरा दिया है[2] और तिल का ताड़ बनाकर एक उच्च कोटि के आचार्य-कवि की प्रतिष्ठा में कलंक लगा दिया। परन्तु हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि किसी भी इतिहासकार ने, स्वयं मिश्रबन्धुओं ने भी, इतने गम्भीर आरोप को सिद्ध करने के लिए एक पंक्ति भी उद्धृत नहीं की। अतः सन्देह होना स्वाभाविक था और आवश्यक था कि इस बात की जांच की जाय कि ये आरोप कहां तक ठीक हैं ? अस्तु, हमने श्रीपति सरोज को देखा और काव्यनिर्णय की उससे तुलना की।[3]

श्रीपति सरोज के प्रथम अध्याय को देखने से ज्ञात हुआ कि उसके प्रथम अध्याय और दास के 'काव्यनिर्णय' के मंगलाचरण सम्बन्धी अध्याय में कुछ भावसाम्य का समावेश हो गया है। हम दोनों के कुछ उद्धरण नीचे दे रहे हैं।

(१) श्रीपति सरोज--शब्द अर्थ बिन दोष गुन अलंकार रस वान।
तासों काव्य बखानिये श्रीपत परम सुजान।[4]

१. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ६३६।
२. देखिये--
(१) अयोध्यासिंह उपाध्याय : हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास, पृ० ३९८।
(२) रामशंकर शुक्ल 'रसाल' : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४५३।
(३) रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३६ और २४१।
(४) सूर्यकान्त शास्त्री : हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ० २२२।
(५) डा० भगीरथ मिश्र : हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ११९।
३. इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति हमें पं० कृष्णबिहारी मिश्र की कृपा से प्राप्त हुई थी।
४. श्रीपति सरोज, पृ० १।

काव्यनिर्णय—जानै पदारथ भूषनमूल रसांग परांगन्हि में मति छाकी।
सो धुनि अर्थन्हि वाक्यन्हि लै गुन सब्द अलंकृत सों रति पाकी।
चित्र कवित्त करै तुक जानै न दोषन्हि पंथ कहूँ गति जाकी।
उत्तम ताको कवित्त बनै करै कीरति भारती यों अति ताकी।[1]

(२) श्रीपति सरोज—शक्ति निपुनता लोकमत वितपति अरु अभ्यास।
अरु प्रतिभा ते होति है ताको ललित प्रकास।[2]
शक्ति सुपुन्य विसेष है जा बिन कवित न होइ।
जो कोऊ हठ सो रचै रुसी करै कवि लोइ।
पद पदार्थ पावै तुरत ताहि निपुनता जानु।
जो जग को व्यवहार है वही लोकमत मानु।
परग्यान बहु शास्त्र में सो वितपत्ति बखान।
रचै कवित नित सुघर ढिग सो अभ्यास प्रमान।
नूतन तर्क प्रसन्न पद युक्ति बोध करतार।
प्रतिभा ताहि बखानिये शीपत सुमति अपार।[3]

काव्यनिर्णय—सक्ति कवित्त बनाइबे की जेहि जन्म नक्षत्र में दीन्हि बिधातैं।
काव्य की रीति सिखी सुकवीन्हि सों देखी सुनी बहु लोक की बातैं।
दास हैं जामें इकत्र ये तीनि बनै कवित्ता मन रोचक तातैं।
एक बिना न चलै रथ जैसे धुरन्धर सूत की चक्र निपातैं।[4]

परन्तु उक्त दोनों पद चंद्रालोक और काव्यप्रकाश के आधार पर हैं। दास अथवा श्रीपति किसी ने भी उसमें मौलिकता का प्रदर्शन नहीं किया है। इन्हीं भावों को संस्कृत के इन ग्रन्थों में देखिये—

(१) निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालंकार रसानेक वृत्तिर्वाक्काव्यनामभाक्।[5]

(२) शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।[6]

शक्तिः कवित्व बीजरूपः संस्कार विशेषः। यां विना काव्यं न प्रसरेत् प्रसृतं व उपहसनीयं स्यात्। लोकस्य स्थावर जंगमात्मकलोकवृत्तस्य। शास्त्राणां छंदोव्याकरणाभिधानकोशकला चतुर्वर्ग गजतुरगखंगादिलक्षणग्रंथानां। काव्यानां च महाकवि सम्बन्धिनाम्। आदि ग्रहणादिति हासादीनां च विमर्शनाद्व्युत्पत्तिः। काव्यंकर्तुं विचारयितुं च ये जानन्ति तदुपदेशेन करणे योजने च पौनःपुन्येन प्रवृत्तिरिति त्रयः समुदिताः न तु व्यस्ताव्यस्तस्य काव्यस्योद्भवे निर्माणे समुल्लासे च हेतुर्नतु हेतवः।[7]

१. का० नि०, पृ० ७। २. श्रीपति सरोज, पृ० १। ३. श्रीपति सरोज, पृ० १।
४. का० नि०, पृ० ५। ५. चंद्रालोक, पृ० ६। ६. काव्यप्रकाश, पृ० ३।
७. काव्यप्रकाश, पृ० ३-४।

अतः स्पष्ट है कि दोनों कवियों—श्रीपति तथा दास—ने इन्हीं संस्कृत ग्रंथों के श्लोकों का अपने अपने शब्दों में संक्षिप्त अनुवादमात्र प्रस्तुत किया है।

इसी के पश्चात् प्रथम अध्याय ही में श्रीपति ने उत्तम, मध्यम और अधम काव्य का वर्णन किया है। ठीक यही क्रम हमें काव्यप्रकाश में मिलता है और क्योंकि दास जी के काव्य निर्णय का आधार, जैसा उन्होंने ईमानदारी के साथ स्वीकार किया है, काव्य प्रकाश और चंद्रालोक हैं[1], अतः यदि दास में यही क्रम पाया जाय तो दास जी को इस बात का दोषी कौन ठहरा सकेगा कि इस अध्याय का क्रम उन्होंने श्रीपति सरोज से लिया है ? दोनों ने ही अपने भाव उपर्युक्त संस्कृत ग्रंथों के आधार पर रखे हैं।

प्रथम अध्याय ही नहीं दास के दूसरे अध्याय और श्रीपति के तीसरे अध्याय में भी इसी प्रकार का क्रम-साम्य मिलेगा। श्रीपति जी ने अपने तृतीय अध्याय में शब्द की परिभाषा, वाच्यार्थ, व्यंग्यार्थ, लक्षणा (लक्षण तथा उपादान), सारोपा, साध्यवसाना, प्रयोजन लक्षणा आदि का वर्णन किया है और यही विवेचन थोड़े बहुत अन्तर के साथ दास जी ने काव्यनिर्णय के दूसरे अध्याय में किया है, परन्तु फिर ठीक यही क्रम काव्यप्रकाश के द्वितीय उल्लास में मिलता है। अतः दोनों ही ने काव्यप्रकाश को यहाँ भी आधार माना है परन्तु जहाँ दास ने इस आधार को स्वीकार करके अपनी ईमानदारी का परिचय दिया है वहां श्रीपति जी ने इस आधार को स्वीकार तक नहीं किया।

हमने श्रीपति जी का काव्यसरोज ध्यानपूर्वक देखा है और काव्यनिर्णय से उसकी तुलना की है परन्तु हमें ऐसे स्थल नहीं मिले जिनसे इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके कि दास जी ने श्रीपति की नकल की है। हां दो एक स्थलों पर भावसाम्य रखने वाली कुछ पंक्तियां दोनों में मिलती हैं परन्तु वे ऐसी पंक्तियां हैं जिनमें दोनों ही कवियों ने संस्कृत ग्रंथों से भावों को अपनाया है। नीचे इसी प्रकार का एक एक पद दास तथा श्रीपति के ग्रंथों से केवल उदाहरणस्वरूप दिया जा रहा है।

श्रीपति सरोज

> **मोपर जो कर सासु रिसाइहै वै घर पै उत हौं ही निरालिये।**
> **मोढ़ बटोही करैगो कहा हित की वह सीष कथा उर धारिये।**
> **ह्वै है रतौंधी ते आंधरो राति को द्यौस ही आपनो पैठो निहारिये।**
> **सेज या मेरी अंधेरे महा मग ना बिलगाइ कहूँ सिर मारिये।**[2]

दास जी ने भी यही भाव इस प्रकार कहा है—

> **एहि सज्जा अज्जा रहै एहि हौं चाहत सैन।**
> **हे रतौंधिहे बात यह सैन समय भूलै न।**[3]

परन्तु यह तो **काव्य प्रकाश** के निम्नलिखित प्राकृत श्लोक का ही अनुवाद है—

> **अत्ता एत्थ णिमज्जइ अहं दिअहए पलोए।**
> **मा पहिअ रदिअंधअ सेज्जाए मह णिमज्जहिसि।**

१. देखिये का० नि०, पृ० २। २. श्रीपति सरोज। ३. का० नि०, पृ० २२।

छाया

श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसके प्रलोकय ।
मा पथिक रात्र्यन्धक शय्यायामावयोर्निमङ्क्ष्यसि ।[1]

इस प्रकार के भावसाम्य दास और श्रीपति में ही क्यों अनेकानेक कवियों में मिलते हैं जैसा हम आग देखेंगे ।

इस सम्बन्ध में हम किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के पूर्व दास तथा श्रीपति के रचना-कालों की भी तुलना करना आवश्यक समझते हैं ।

दास तथा श्रीपति का काल-निर्धारण एवं तत्सम्बन्धी अन्य विचार

हम पहले कह आये हैं कि भिखारी दास जी के प्रथम ग्रंथ की रचना अनुमानतः सं० १७८१ वि० तथा अन्तिम की सं० १८०७ वि० में हुई थी । यही उनका रचना-काल माना जा सकता है । श्रीपति ने अपने काव्य सरोज के आरंभ में काव्यसरोज की रचनाकाल के तथा स्वयं अपने विषय में निम्नलिखित विवरण दिया है—

संवत मुनि मुनि मुनि ससी सावन सुभ बुध वार ।
असित पंचमी को लियो ललित ग्रंथ अवतार ।
सुकवि कालपी नगर को द्विज मनि श्रीपति राइ ।
जस सम स्वाद जहान को बरनत सुष समुदाइ ।[2]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि श्रीपति जी ने अपने काव्य सरोज की रचना का आरंभ सं० १७७७ वि० में सावन कृष्ण पंचमी को किया था । श्रीपति जी कालपी नगर के सुकवि थे और ब्राह्मण थे । इस विवरण से स्पष्ट है कि सरोज का आरंभ भिखारीदास के जीवन-काल में हो चुका था जब वे लगभग २०, २५ वर्ष के रहे होंगे । यदि मान लिया जाय कि इसकी रचना में दो अथवा तीन वर्ष लग गये होंगे तो भी उस समय तक भिखारीदास का कोई काव्य ग्रंथ पूरा न हो सका था । अतः सरोज की रचना भिखारीदास के रचनाकाल से पहले की ठहरती है इसमें संदेह नहीं । यह तथ्य कि "सरोज" की रचना भिखारी दास की रचना काल से पहले हो चुकी थी इस बात का प्रमाण नहीं हो सकता कि दास ने अपनी रचनाओं में श्रीपति के काव्यांशों का अपहरण किया ही है । हमने इस बात को अपने विवेचन में असंदिग्ध रूप से स्पष्ट कर दिया है कि दास जी ने "काव्य सरोज" की न तो एक पंक्ति का अपहरण किया और न उसके किसी भाव की चोरी की । दास पर किया गया यह दोषारोपण सर्वथा निर्मूल और निराधार है । हमें तो इस बात के भी प्रमाण नहीं मिलते कि उन्होंने काव्यसरोज को देखा भी था । अतः पुष्ट प्रमाण के अभाव में मिश्रबन्धुओं द्वारा दास पर किये गये आक्षेपों ने दास जी के साथ बड़ा अन्याय किया है । हमारा तो मत है कि दास जी ने काव्य सरोज देखा ही नहीं था अन्यथा जब उन्होंने अपनी नामावली में इतने कवियों का नाम दिया है तो बेचारे श्रीपति ने ही उनका क्या बिगाड़ा था जिसके कारण वे उन्हें अपनी सूची में स्थान न देते । हम तो यहां तक कह सकते हैं

१. का० प्र०, पृ० ४६ । २. श्रीपति सरोज, पृ० १ ।

कि दास ने श्रीपति के 'सरोज' का नाम भी कदाचित् न सुना था। हमारे ऐसा कहने के निम्नलिखित कारण हैं—

(१) श्रीपति का काव्यसरोज प्रकाशित रूप में हमारे देखने में नहीं आया। आज उसकी हस्तलिखित प्रतियाँ यत्रतत्र कुछ गिने चुने विद्वानों के पास ही हैं। दास के समय में तो मुद्रण कला का प्रायः अभाव था। इतनी अलभ्य पुस्तक का हस्तलिखित रूप में दास जी के हाथ लग जाना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य था।

(२) दास के काल तक काव्य सरोज को कोई उल्लेखनीय स्थान मिल चुका था इसके भी पुष्ट प्रमाण नहीं मिलते, अन्यथा दास जी ने उसकी छानबीन अवश्य की होती और यदि वह उन्हें प्राप्त हुआ होता और वे उसे एक उच्चकोटि का ग्रंथ समझते तो अपनी नामावली में श्रीपति का नाम अवश्य रखते।

(३) श्रीपति जी कालपी के रहने वाले थे और दास जी ट्योंगा के और इन दोनों स्थानों के बीच सैकड़ों मील का अन्तर है। फिर दोनों का समय भी ऐसा है जब कि भारत में शीघ्र गमनागमन के रेल, मोटर जैसे कोई साधन उपलब्ध न थे। इस कारण इन दो कवियों का एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आना भी आसान न था।

तर्क के लिए यदि यह भी मान लिया जाय कि दास जी ने श्रीपति की ख्याति सुन कर उनका काव्य सरोज देखा होगा तो सम्भव है कि उनकी आचार्यबुद्धि ने श्रीपति जी को इतनी महत्ता न दी हो कि वे अपनी नामावली में उनका नाम रखना ठीक समझते। यह स्वाभाविक भी है। किसी को किसी के साहित्यिक रूप की आलोचना करने तथा उस रूप को मान्यता देने न देने का पूर्ण अधिकार है। हो सकता है कि दास जी ने अपने इसी अधिकार का उपभोग करते हुए श्रीपति का नाम अपनी नामावली में न दिया हो। इन परिस्थितियों में दास की सूची में श्रीपति का नाम न होने के कारण हम दास को किसी भी प्रकार दोषी नहीं ठहरा सकते।

अन्त में हम एक बात मिश्रबन्धुओं की ओर से भी कहना चाहेंगे। मिश्रबन्धुओं ने अपने 'विनोद' द्वारा हिन्दी साहित्यकारों का इतिहास लिखने तथा उनका मूल्यांकन करने का जो स्तुत्य प्रयास किया है उसके लिए हिन्दी संसार उनका चिरऋणी रहेगा। इतिहास निर्माण का यह कार्य सरल नहीं और उसके लिए तो यह और भी कठिन हो जाता है जिसके समक्ष एक ही ग्रंथ में सैकड़ों नहीं सहस्त्रों कवियों का जीवनचरित्र लिखने और उनकी कृतियों का मूल्यांकन करने का प्रश्न हो। ऐसी परिस्थिति में वह व्यक्ति कहीं पर दो कवियों में भावसाम्य दिखाई देने पर प्रत्येक के लिए संस्कृत के ग्रंथों को लेकर नहीं बैठेगा। उसके लिए यह कार्य दुस्साध्य ही नहीं सर्वथा असम्भव है। अतः यदि काव्य निर्णय और काव्य सरोज के प्रथम कुछ पृष्ठों के उलटपलट कर देखने पर मिश्रबन्धुओं ने अपना उक्त मत निर्धारित किया हो तो उनकी स्थिति में कोई भी उसी निष्कर्ष पर पहुंचता। यह भ्रम सर्वप्रथम हमें भी हुआ था। परन्तु अधिक गहराई में पैठने पर यह भ्रम ही रहा सत्य न हो सका।

अब हम इतनी बात निस्संकोच एवं पूर्ण दृढ़ता और विश्वास के साथ कह सकते हैं कि दास जी ने श्रीपति के काव्य सरोज की न तो नकल की, न उसमें से एक भी पंक्ति अपनी रचनाओं में रखी और न उसके भावों का अपहरण किया।

दास तथा उनके पूर्ववर्ती कवियों में भावसाम्य

दास की रचनाओं में हमें यत्रतत्र उनके पूर्ववर्ती कवियों के भावों की छाप मिलती है। यह भावसाम्य तो बड़े से बड़े कवियों की रचनाओं में भी मिलता है और साहित्य में दोष नहीं माना जाता। हम इस सम्बन्ध में विद्वान समालोचक पं० कृष्णबिहारी जी मिश्र का मत उद्धृत कर रहे हैं—

"यदि किसी कवि की कविता में भाव सादृश्य आ जाय तो समालोचना करते समय एकाएक उसे 'तुक्कड़' या चोर न कह बैठना चाहिए वरन् उस प्रसंग पर इमर्सन और ध्वन्यालोककार की सम्मति देख कर कुछ लिखना अधिक उपयुक्त होगा।

इमर्सन की राय भी सुनिये—'साहित्य में यह एक नियम सा हो गया है कि यदि एक कवि यह दिखला सके कि उसमें मौलिक रचना करने की प्रतिभा है तो उसे अधिकार है कि वह औरों की रचनाओं को इच्छानुसार अपने व्यवहार में लावे। विचार उसी की सम्पत्ति है जो उसका आदर कर सके, ठीक तौर से उसकी स्थापना कर सके। अन्य के लिये हुए विचारों का व्यवहार कुछ भद्दा सा होता है परन्तु यदि हम यह भद्दापन दूर कर दें तो फिर वे विचार हमारे हो जाते हैं।'

ध्वन्यालोककार कहते हैं कि जिस कविता में सहृदय भावुक को यह सूझ पड़े कि इसमें कुछ नूतन चमत्कार है—फिर चाहे उसमें पूर्वकवियों की छाया ही क्यों न दिखलाई पड़े—भाव अपनाने में कोई हानि नहीं है। उस कविता का निर्माता सुकवि, अपनी बन्धछाया से पुराने भाव को नूतन रूप देने के कारण निन्दनीय नहीं समझा जा सकता—

> यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किंचित्
>
> स्फुरितमिदमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीयते,
>
> अनुगतिमति पूर्वच्छायया वस्तु तादृक
>
> सुकविरुपनिबध्नन् निबन्धतां नोपयाति।

संसार के बड़े से बड़े कवियों ने भी अपने पूर्ववर्ती कवियों के भावों को निस्संकोच अपनाया है। कविकुलमुकुट कालिदास ने संस्कृत में, महामति शेक्सपियर ने अंग्रेजी में तथा भक्त शिरोमणि गो० तुलसीदास जी ने हिन्दी भाषा में जो अनोखा काव्य रचा है उसमें अपने पूर्ववर्ती कवियों के भाव अवश्य लिये हैं। अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक, प्रसन्न राघव नाटक, वाल्मीकीय रामायण, श्री मद्भागवत तथा ऐसे ही अन्य और कई ग्रंथों के साथ श्री तुलसीदास की रामायण पढ़िये तो शंका होने लगती है कि इन सुकवि शिरोमणि ने कुछ अपने दिमाग से भी लिखा है या नहीं"।[1]

१. पं० कृष्ण बिहारी मिश्र : देव और बिहारी, पृ० ८४, ८५, ८६, ८७

उक्त मत की पृष्ठभूमि में हम दास जी द्वारा अन्य कवियों के ग्रन्थों से लिये गये भावों को उनकी प्रतिभा के लिए अनिष्टकर नहीं मान सकते। दास ने देव तथा बिहारी के भावों को अनेक स्थानों पर अपनाया है। इसके उदाहरण पं० कृष्ण बिहारी जी मिश्र ने अपने "देव और बिहारी ग्रंथ" में दिये हैं। इसके अतिरिक्त हमें दास में अन्य अनेक कवियों जैसे रसखान, केशव, रहीम, सेनापति और मतिराम के भावों का चित्रण भी मिलता है। हम भाव-सादृश्य के कुछ अंशों को नीचे दे रहे हैं--

रसखान और दास

(१) इसमें सन्देह नहीं कि ब्रज भूमि के प्रेम से ओतप्रोत रहने के कारण ही रसखान जी ने अपने निम्नलिखित सवैये की रचना की है--

रसखान—मानुष हों तो वही रसखान बसौं संग गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हों तो कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन।
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हों तो बसेरो करौं मिलि कालिंदि कूल कदंब की डारन।[1]

रसखान जी के भावों की छाया दास जी के नीचे के सवैये में स्पष्ट दिखलाई पड़ रही है—

दास—ये बिधि जो बिरहागि के बान सों मारत हौ तो इहै बर मांगौं।
जो पसु होउं तऊ मरि कै सहूं पांवरी ह्वै हरि के पग लागौं।
दास पखेरुन में करौ मोर जु नन्द किशोर प्रभा अनुरागौं।
भूषन कीजिये तौ बनमालहिं जातें गोपालहि के हिय लागौं।[2]

परन्तु दास का यह छन्द अपनी अलग सत्ता दिखा रहा है। इसके तर्क बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। वे कहते हैं कि यदि इस जीवन में भगवान का दर्शन न हुआ और उन्हें भगवान के विरह में ही प्राणोत्सर्ग करना पड़ा तो वे पशु योनि, पक्षि योनि अथवा वनस्पति (पुष्प आदि जिससे वनमाला बन सके) योनि में जन्म लेकर भगवद्प्राप्ति के अपने लक्ष्य की प्राप्ति करेंगे। जो ध्येय मनुष्य योनि में न पूरा हो सका उसे वे इस प्रकार पूरा करना चाहते हैं, यही दास की मौलिकता है।

(२) कृष्ण और गोपियों के प्रेम का वर्णन अनेकानेक रीतिकालीन कवियों ने किया है। भक्त कवि रसखान भी इसमें पीछे नहीं रहे हैं। रसखान द्वारा चित्रित राधाकृष्ण की युगुल मूर्ति का भाव द्रष्टव्य है। इसमें दोनों ही एक दूसरे को तिरछी चितवन से देख रहे हैं—

रसखान—मोहन की मुरली सुनि कै वह बौरी ह्वै आनि अटा चढ़ि झांकी।
गोप बड़ेन की दीठि बचाय कै दीठि सों दीठि जुरी दोहुन की।
देखत मोल भयो अँखियान में को करै लाज औ कानि कहां की।
कैसे छुटाइ छुटै अटकी रसखानि दुहूं की बिलोकनि बांकी।[3]

१. रसखान पदावली, पृ० १। २. शृं० नि०, पृ० १०१। ३. रसखान पदावली, पृ० ३२।

राधा अथवा गोपिका का अटा पर चढ़ कर कृष्ण के रूप को ललचाई हुई दृष्टि से देखना भी दास की आंखों से छिपा न रहा। दास में यह भाव अधिक सुन्दर ढंग से और उत्कृष्टता के साथ प्रदर्शित किया गया है—

दास—आली दौरि दरस दरस लेहि ले री इन्दुबदनी अटा में नँदनन्द भूमिथल में।
देखा देखी होत ही सकुच छूटी दुहुन की दोऊ दुहूं हाथनि बिकाने एक पल में।
दुहूं हिय दास खरी अरी मैन सर गाँसी परी दिढ़ प्रेम फांसी दुहुन के गल में।
राधे नैन पैरत गोबिंद तन पानिप मैं पैरत गोबिन्द नैन राधे रूप जल में।[१]

उक्त छन्द की अन्तिम पंक्ति में हमें न केवल दास जी की मौलिकता के दर्शन होते हैं अपितु उनमें भावोत्कृष्टता भी कमाल की है। राधा तथा कृष्ण एक दूसरे को निर्निमेष दृष्टि से देख रहे हैं। रूप-पान के इस क्षेत्र में किसी को भी तृप्ति नहीं हो रही है। राधा के नेत्र कृष्ण के सौंदर्य रूपी जल में और कृष्ण के राधा के सौंदर्य रूपी जल में तैर रहे हैं। रूप की इस जलराशि के मध्य होते हुए भी तृप्ति का न होना भावुक प्रेमियों के लिए बड़ा स्वाभाविक है।

रसखान के उपर्युक्त पद में आंखों के निर्लज्ज हो जाने तथा प्रेम जल में इस प्रकार निमग्न हो जाने कि उनका विलग होना कठिन हो जाय का भाव दास जी की निम्नलिखित पंक्तियों में भी सुन्दरता के साथ दर्शाया गया है जहां प्रेमियों के नेत्र लाज, धर्म अथवा किसी प्रकार के प्रतिबन्धों को नहीं मानते—

प्रेम पगि रहीं महामोह में उमगि रहीं, ठीक ठगि रहीं लगि रही बनमाल में।
लाज को अँचै के कुल धरम पचै के बिथा बंधन सँचै के भईं मगन गोपाल में।[२]

(३) कलंक ही लगना है तो फिर अंक क्यों न लगाया जाय इस भाव को रसखान ने निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया है—

रसखान—तेरी गलीनि मैं जा दिन तें निबस्यो नँद नंदन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग सों कौन सी बात चलाय के जो नहिं नैन चलावत।
वे रसखान जो रीझिहैं नेक तो रीझि के क्यों न बनाय रिझावत।
बावरी जो पै कलंक लग्यौ तो निसंक ह्वै काहे न अंक लगावत।[३]

इसी भाव को दास जी ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—

दास—वा अधरा अनुरागी हिये जिय पागी वहै मुसक्यानि सुचाली।
नैनन सूझि परै वहै सूरति बैनन बूझि परै वहै आली।
लोग कलंक लगावत लाख लुगाई कियौं करैं कोटि कुचाली।
क्यौं अपवाद वृथा हो सहै री गहै न भुजा भरि क्यों वनमाली।[४]

१. शृं० नि०, पृ० ९५–९६। २. का० नि०, पृ० १२।
३. रसखान पदावली, पृ० ७६। ४. शृं० नि०, पृ० २८।

केशव और दास

शरीर के स्वाभाविक सौंदय के आगे वस्त्राभूषणों का क्या महत्व है ? नायिका की सुगंध से आकृष्ट होकर भ्रमरों की भीड़ नायिका के मुखमंडल को किस प्रकार घेर लेती है इसका वर्णन केशव ने इस प्रकार किया है—

केशव—दुरिहै क्यों भूखन बसन दुति जोबन की देहहूँ की जोति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाहक सुबास लागे ह्वै है कैसी केशव सुभावती की बास भौंर भीर फारे खाति है।[1]

दास जी ने भी इन्हीं भावों को निम्नलिखित पंक्तियों में चित्रित किया है—

दास—मूँदि जात है आभरन सजल गात छबि चारु।
मो रुचि राख्यौ दूरि करि भामिनि भूषन भारु।[2]
दुरे अँध्यारी कोठरी तन दुति देति लखाइ।
बचों अलिन की भीर सों आली कौन उपाइ।[3]

परन्तु दास की इस रूपवती नायिका का सौंदर्य इतना प्रखर है कि अँधेरी कोठरी में छिपने पर भी वह दिखायी दे जाती है और उसकी स्वाभाविक सुबास से आकृष्ट होकर एक दो भ्रमर नहीं उनका दल का दल नायिका पर आक्रमण कर देता है।

रहीम और दास

रहीम ने अपने निम्नलिखित दोहे में ऐसी प्रेमाग्नि का वर्णन किया है जो साधारण अग्नि की तरह बुझती नहीं अपितु और भी अधिक प्रज्वलित हो उठती है—

रहीम—गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि भभकि बरि बरि उठै।[4]

इसी भाव को मतिराम ने इन शब्दों में अपनाया है—

मतिराम—नैन जोरि मुख मोरि हँसि नैसुक नेह जनाय।
आगि लेन आई हिये मेरे गई लगाय।[5]

दास जी ने इसी भाव को अपने शब्दों में इस प्रकार ग्रहण किया है

दास—आगि लिए चली जाति सु मेरे
हिये बिच आगि दिये चली जाति है।[6]

सेनापति और दास

(१) नायिका की छवि के लिए अलौकिक उपमानों जैसे तिलोत्तमा, मंजुघोषा, उर्वशी, मेनका, रम्भा, शची, रति आदि का प्रयोग सेनापति ने अपने नीचे के पद में किया है—

१. रसिकप्रिया, पृ० ६१–६२। २. र० सा०, पृ० ४१–४२।
३. र० सा०, पृ० २६। ४. रहीम रत्नावली, पृ० ८०।
५. मतिराम ग्रन्थावली, पृ० १६७। ६. का० नि०, पृ० ४१।

सेनापति—जीतत कपोल को तिलोत्तमैं अनूप रूप बात बात ही में मंजुघोषैं बरसति है।
देखी उर बसी मैनका हू में सरस द्युति जंघ जुग सोभा रंभा हूं कौं निदरति है।
सची बिधि ऐसी और कहौं धौं सु कैसी नारि सदा हरि भावते की रति को करति है।
जाके है अधर सुधा सेनापति बसुधा में प्यारी सुरपुर हूं के सुख बरसति है।[1]

यही प्रयोग दास जी ने भी अपनाये हैं

दास—सोभा सुकेसी की केसन में है तिलोत्तमा की तिल बीच निसानी।
उर्बसी ही में बसी मुख की अनुहारि सो इन्दिरा में पहिचानी।
जानु को रंभा सुजान सुजान है दास जू बानी में बानी समानीं।
एती छबीलिन सों छबि छीनि कै एक रची बिधि राधिका रानी।[2]

(२) प्रतीप अलंकार के सहारे नायिका के मुख की चन्द्रमा से उपमा देने का निम्नलिखित एक उदाहरण हमें सेनापति में मिलता है—

सेनापति—तेरो मुख देखे चंद देखौ न सुहाइ अरु चंद के अछत जाकौं मन तरसत है।
ऐसे तेरे मुख सों कहत बस कवि ऐसे देखौ मुख चंद के समान दरसत हैं।
वे तौ समुझें न कछू सेनापति मेरे जान चंद ते मुखारबिंद तेरौ सरसत है।
हँसि हँसि मीठी मीठी बातें कहि कहि ऐसे तिरछे कटाछ कब चंद बरसत है।[3]

दास जी की निम्नलिखित पंक्तियां रसिकों के मध्य बड़ी प्रसिद्ध हैं क्योंकि उनमें भावों की उत्कृष्टता के साथ ही साथ एक साथ पांचों प्रतीपों के उदाहरण भी आगये हैं जो दास जी के आचार्यत्व के परिचायक हैं। इन पंक्तियों में यद्यपि सेनापति की पंक्तियों का भावसाम्य विद्यमान है फिर भी दास जी द्वारा व्यक्त भाव अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्ट हैं—

दास—चंद कहैं तिय आनन सों जिनकी मति बाँके बखान सों है रली।
आनन एकता चंद लखै मुख के लखे चंद गुमान घटै अली।
दास न आनन सों कहैं चंद दई सों भई यह बात न है भली।
ऐसो अनूप बनाइ कै आनन राखिबे को ससिहू की कहा चली।[4]

इसी प्रकार का एक और भी कवित्त दास जी ने लिखा है जो यद्यपि भावोत्कृष्टता में तो इतना प्रसिद्ध नहीं परन्तु सेनापति के भावों का चित्रण करने में अवश्य सफल है—

तेरे ही नीके लख्यौ मृग नैननि तोहि को सत्य सुधाधर मानैं।
तोहीं सो होत निशा हरि को हम तोहि कलानिधि काम की जानैं।
तेरे अनूपम आनन की पदवी उहि को सब देत सयानै।
तू ही है बाम गोबिन्द को लोचन चन्दहि तौ मतिमंद बखानै।[5]

१. कवित्त रत्नाकर पृ० १९-२० । २. का० नि०, पृ० १७६-१७७ ।
३. कवित्त रत्नाकर, पृ० ५० । ४. का० नि०, पृ० २३, ।
५. र० सा०, पृ० ६०-६१ ।

दास और बिहारी--ऐसा प्रतीत होता है कि भाव-सादृश्य के क्षेत्र में दास जी बिहारी के सबसे अधिक ऋणी हैं क्योंकि उन्होंने बिहारी के भावों को सर्वाधिक ग्रहण किया है। बिहारी के भावों को लेकर उनके बाद के अन्य कवियों ने भी अपनी अपनी शैली में रचनाएं की हैं—

(१) बिहारी के निम्नलिखित पद के

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झांई परे स्याम हरित दुत होइ।[1]

"तन की झांई परे" वाक्यांश का दास जी ने अपने निम्नलिखित दोहे में प्रयोग किया है—

दास— **लगि लगि बिहरिन साँवरो विमल हमारो गात।**
तुव तन की झांई परे लगि कलंक सो जात।[2]

(२) जिस प्रकार लाल अधरों पर रखी हुई कृष्ण की हरी वंशी पर उनकी श्वेत, श्याम तथा रक्त वर्ण की दृष्टि और पीताम्बर के पीले वर्ण का प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण इन्द्रधनुष के सभी वर्ण भासित होने लगते हैं—

बिहारी— **अधर धरत हरि कैं परत ओठ डीठि पट जोति।**
हरित बांस की बांसुरी इन्द्र धनुष रंग होति।[3]

उसी प्रकार दास के निम्नलिखित दोहे में कृष्ण का नीला शरीर गोपिका की पीली छटा के योग से हरा हो जाता है। स्पष्ट है कि नीला और पीला रंग मिल कर हरा हो जाता ह। दास का अभिप्राय यह है कि कृष्ण प्रसन्न और आनंदित हो उठते हैं। यह भाव दास के निम्नलिखित दोहे में स्पष्ट है—

दास— **तिय तन दुति विपरीत लखि प्रतिबिंबित ह्वै जाइ।**
परत साँवरे अंग को हरित रंग दरसाइ।[4]

रंगों की इस कलाबाजी के लिए दास जी बिहारी से ही प्रभावित प्रतीत होते हैं।

(३) **बिहारी—डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।**
कंप किसोरी दरसि कै खरैं लजाने लाल।[5]

बिहारी के उक्त दोहे का भाव दास के निम्नलिखित पद में स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा है—

दास— **दुरे दुरे तकि दूरि तें, राधे आधे नैन।**
कान्ह कँपित तुअ दरस तें, गिर डिगलात गिरै न।[6]

गोवर्धन धारण से भी विचलित न होने वाला हाथ राधा के दर्शनमात्र से हिल गया यही भाव दोनों कवियों का है।

१. बिहारी सतसई, पृ० १। २. र० सा०, पृ० ७१।
३. बिहारी सतसई, पृ० १२। ४. र० सा०, पृ० ६५।
५. बिहारी सतसई, पृ० ७। ६. का० नि०, पृ० ४५।

(४) सूर्य के बहाने नायक को नमस्कार करने का जो भाव बिहारी के निम्नलिखित पद में है—

बिहारी— **रबि बंदौं कर जोरि ए सुनत स्याम के बैन।**
भए हँसौहैं सबनु के अति अनखौहैं नैन।[1]

प्रायः वही भाव दास के भी निम्नलिखित पद में मिलता है—

दास— **बाहिर कढ़ि कर जोरि कै, रबि को करो प्रनाम।**
मन इच्छित फल पाइकै, तब जइयो निज धाम।[2]

यही भाव मतिराम ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

चढ़ी अटारी बाम वह किया प्रनाम निखोट।
तरनि किरन ते दृगन की कर सरोज करि ओट।[3]

(५) बिहारी के अनुसार नेत्र पाषाण के समान हैं तभी तो इनके टकराने से विरहाग्नि पैदा होती है—

बिहारी— **कहत सबै कवि कमल से मो मति नैन पखानु।**
नत रुक कत हन बिय लगत उपजतु बिरह कृसानु।[4]

दास ने इसी भाव को कुछ और उत्कृष्ट बना दिया है। उनके अनुसार नायक का हृदय पाषाण के समान है और नायिका के नेत्र तीक्ष्ण वाण के समान। इसी कारण जब नायिका के नैनवाण नायक के हृदय को बेधते हैं तो विरहाग्नि प्रज्वलित हो उठती है।

दास— **मेरो हियो पखान है तिय दृग तीछन बान।**
फिरि फिरि लागत ही रहैं उठै वियोग कृसान।[5]

(६) नायक की उंगलियों में परस्त्री के महावर की लाली देख कर नायिका के कुपित होने का भाव बिहारी ने अपने निम्नलिखित दोहे में व्यक्त किया है—

बिहारी— **सुरंग महावरु सौति पग निरखि रही अनखाइ।**
पिय अँगुरिन लाली लखैं खरी उठी लगि लाइ।[6]

प्रायः यही भाव दास जी के निम्नलिखित दोहे में भी है—

दास— **स्याम पिछौरी छोर मैं पेखि स्यामता लागि।**
लगे महाउर आँगुरिन लगी महा उर आगि।[7]

(७) मोक्ष की आकांक्षा करने वाले बिहारी भगवान के "गुन" (सगुणत्व) से बँधने के इच्छुक हैं—

बिहारी— **ज्यों अनेक अधमन दयौ मोहू दीजै मोषु।**
तौ बांधौ अपने गुनन जौ बांधे ही तोषु।[8]

---

१. बिहारी सतसई, पृ० २९३। २. का० नि०, पृ ६१।
३. मतिराम ग्रन्थावली, पृ० १७५। ४. बिहारी सतसई, पृ० ११४।
५. का० नि०, पृ० ५६। ६. बिहारी सतसई, पृ० १९१।
७. र० सा०, पृ० ८२। ८. बिहारी सतसई, पृ० ११८।

दास जी की भी यही कामना है--

दास--जो गुन ही बकसीस के जो गुन ही गुन हीन।
तौ निज गुन ही बाँधिये दीनबंधु जन दीन।[1]

(८) बिहारी तथा दास दोनों ही युगुल मूर्ति के दर्शनार्थ अनेक नेत्रों की कामना करते हैं। बिहारी की यह कामना निम्नलिखित दोहे में व्यक्त हुई है--

बिहारी--नित प्रति एकत ही रहत बैस बरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक।[2]

दास ने यही भाव अपने निम्नलिखित दोहे में प्रकट किया है--

दास--शोभा शोभा सिंधु की द्वै दृग लखत बनै न।
अहह दई किन करि दई रोम रोम प्रति नैन।[3]

अन्तर केवल इतना ही है कि जब बिहारी 'अनेक' नेत्रों की कामना करते हैं, तब दास रोम रोम में नेत्रों के अभिलाषी हैं।

(९) नायक सुघड़ सपत्नी के वश में होगया है यह समाचार सुनकर नायिका द्विगुणित आनन्द के साथ भेदपूर्ण दृष्टि से देखती है जिसमें गर्व है, लज्जा है और हँसी है। यह भाव बिहारी ने अपने निम्नलिखित दोहे में व्यक्त किया है--

बिहारी--सुघर सौति बस पिउ सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास।
लखी सखी तन दीठि करि सगरब सलज सहास।[4]

दास ने यद्यपि इसी भाव की छाया ग्रहण की है परन्तु उनका नायक परदेश से आकर सपत्नी के घर जाता है। अतः नायिका हर्ष, गर्व, अमर्ष, ईर्ष्या और रस में निमग्न हो रही है। नायिका के अन्तस् में उठने वाले इन मिले जुले भावों को दास जी ने निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया है।

दास--पिय आगम परदेस ते, सौति सदन मो जाइ।
हर्ष गर्व अमरखमई, इरखा सरस समाइ।[5]

(१०) कृष्ण के नेत्र सावधानों तक के चित्त रूपी वित्त को बरबस हर लेते हैं। बिहारी का यह भाव निम्नलिखित दोहे में व्यक्त हुआ है--

बिहारी--चितु वितु बचतु न हरत हठि लालन दृग बरजोर।
सावधान के बटपरा ए जागत के चोर।[6]

प्रायः यही भाव दास में भी मिलता है--

दास--लाल तिहारे दृगन को, हाल न बरनो जाइ।
सावधान रहिये तऊ, चित वित लेत चुराइ।[7]

१. र० सा०, पृ० ११५-११६। २. बिहारी सतसई, पृ० ५।
३. र० सा०, पृ० ११७। ४. बिहारी सतसई, पृ० २२१।
५. र० सा०, पृ० १०२। ६. बिहारी सतसई, पृ० १०८।
७. का० नि०, पृ० ६०।

(११) बिहारी ने निम्नलिखित कुछ पदों में विरहाधिक्य तथा तज्जनित प्रभाव का वर्णन किया है जो बहुत ही उच्चकोटि का माना जाता है—

बिहारी—सीर जतनंनु सिसिरि रितु सहि बिरहिनि तनु तापु।
बसिबे कौं ग्रीषम दिननु परयो परोसिनि पापु।[१]
ग्राड़े दै ग्राले बसन जाड़े हूँ की राति।
साहसु करै सनेह बस सखी सबै ढिग जाति।[२]
ग्रौंधाई सीसी सुलखि बिरह बरनि बिललात।
बिच ही सूखि गुलाब गौ छींटौ छुई न गात।[३]
जिहि निदाध दुपहर रहै भई माह की राति।
तिहि उसीर की रावटी खरी ग्रावटी जाति।[४]

प्रायः इन्हीं भावों को न्यूनाधिक दास ने भी अपनी निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया है—

दास—एरे निरदई दई दरस तो देरे वह ऐसी भई तेरे या बिरहज्वाल जागि कै।
दास ग्रासपास पुर नगर के बासी उत माहहू को जानति निदाहै रह्यो लागि कै।
लैलै सीर जतन भिगाए तन ईठि कोउ नीठि ढिग जावै तऊ ग्रावै फिरि भागि कै।
दीसी मैं गुलाब जल सीसी में मगहि सूखै सीसो यों पघिलि परै ग्रंचल सों दागि कै।[५]

यहां दास जी का विरहाधिक्य का प्रभाव बिहारी से कहीं सुन्दर है। बिहारी की विरह से जलती हुई नायिका के ऊपर उसे शीतलता प्रदान करने के लिए छोड़ा जाने वाला गुलाबजल शरीर का स्पर्श करने के पूर्व ही सूख जाता है परन्तु दास की नायिका में कितनी जलन होगी इसका अनुमान हमें इसी बात से हो जाता है कि न केवल गुलाबजल ही बीच में सूख जाता है अपितु शीशी तक पिघल जाती है।

सेनापति ने भी बिहारी के इसी भाव को लेकर विरहाधिक्य का चित्रण किया है—

सेनापति—नारी नेह भरी कर हियें है तपति खरी जाकौं ग्राध घरी बीतैं बरस हजार से।
उठत भभूके उर डारत गुलाब हू के नवल बधू के ग्रंग तचत ग्रँगार से।
सीरी जाति छाती धरी बाल के कमल भाल सेनापति जाके दल सीतल तुषार से।
लागत न बार बिन हरि के बिहार ताही हार के सरोज सूखि होत हैं सुहार से।[६]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि दास ने बिहारी के उक्त भावों को सबसे अधिक उत्कृष्ट बना कर व्यक्त किया है।

(१२) विरह संतप्त नायिका की प्राण रक्षा का कारण बिहारी ने यही दिया है

१. बिहारी सतसई, पृ० २३४।
२. बिहारी सतसई, पृ० २३५।
३. बिहारी सतसई, पृ० २४५।
४. बिहारी सतसई, पृ० २४५।
५. शृं० नि०, पृ० १०७-१०८।
६. सेनापति : कवित्त रत्नाकर, पृ० १७।

कि मृत्यु रूपी बाज विरहाग्नि से जलते हुए जीव रूपी प्राणों पर स्वभावतया आक्रमण नहीं कर सकता।

बिहारी—नित संसौ हंसौ बचतु मनौ सु इहिं अनुमान।
बिरह अगिनि लपटनु सकतु झपटि न मीचु सचानु।[1]

और दास की विरहग्रस्त नायिका इसलिए सुरक्षित है कि उसे बचाने के लिए चारों और आंसुओं का सागर, अंग की ज्वाला तथा विरहोच्छ्वास के बादल हैं—

दास—ऊँचे अवास बिलास करै अँसुवान को सागर कै चहुँ फेरे।
ताहू पै दूरि लों अंग की ज्वाल कराल रहै निसि बासर घेरे।
वास लहै वह क्यों अवकास उसास रहै नभ ओर अभेरे।
है कुशलात इती एहि बीच जु मीचु न आवन पावत नेरे।[2]

(१४) बिहारी ने निम्नलिखित दोहे में अपनी दृष्टि का उतार चढ़ाव आँकने का प्रयास किया है। दृष्टि कुच रूपी गिरि पर चढ़ने से श्रमित होकर भी मुख की चढ़ाई चढ़ गई परन्तु ठोढ़ी के गड्ढे में ऐसी गिरी कि फिर उससे निकल न सकी—

बिहारी—कुच गिरि चढ़ि अति थकित ह्वै चली डीठि मुह चाड़।
फिरि न टरी परियै रही परी चिबुक की गाड़।[3]

यद्यपि यही भाव दास ने भी अपनाया है परन्तु उनकी "दीठि यात्रा" काले केशों, आनन पानिप नीर तथा अधरामृत सरोवर से होती हुई ठोढ़ी के गड्ढे में समाप्त होती है—

दास—बार अँध्यारनि में भटक्यो सु निकार्यो मैं नीठि सु बुद्धिनि सों घिरि।
बूड़त आंनन पानिप नीर पटीर की आड़ सों तीर लग्यो तिरि।
मो मन बावरो त्योंही हुत्यो अधरामधु पान कै मूढ़ छक्यो फिरि।
दास भनै अब कैसे कढ़ै निज चाह सों ठोड़ी की गाड़ पर्यो गिरि।[4]

मतिराम और दास

(१) मतिराम की नायिका अंगराग, पुष्प आदि से सज्जित होकर जब प्रिय मिलन के लिए निकलती है तो न ज्योत्सना ही दिखाई पड़ती है और न आनन प्रभा की अधिकता के कारण शरीर की परछाँई ही—

मतिराम—अंगन में चंदन चढ़ाय घनसार सेत सारी छीर फेन कैसी आभा उफनाति है।
राजत रुचिर रुचि मोतिन के आभरन कुसुम कलित केस सोभा सरसाति है।
कवि मतिराम प्रान प्यारे को मिलन चली करिकै मनोरथनि मृदु मुसुकाति है।
होति न लखाई निसिचंद की उज्यारी मुखचंद की उज्यारी तनछाहैं छपि जाति है।[5]

प्रायः यही भाव दास में भी मिलता है। उनकी भी सुसज्जित नायिका अपने मुख की आभा से अपने शरीर तक के प्रतिबिम्ब को छिपाती चलती है—

---

१. बिहारी सतसई, पृ० २४३।
२. का० नि०, पृ० ५७।
३. बिहारी सतसई, पृ० ४४।
४. का० नि०, पृ० ६२–६३।
५. मतिराम ग्रंथावली, पृ० १८५।

दास—सिखनख फूलन तें भूषन विभूषित कै, बाँधि लीन्ही बलया बिगत कीन्हीं बजनी।
तापर सँवारे सेत अम्बर को डंबर सिधारी स्याम सन्निधि निहारी काहू न जनी।
छीर के तरंग की प्रभा को गहि लीन्ही तिय, कीन्ही छीरसिंधु छिति कातिक की रजनी।
आनन प्रभा सों तन छाँहहू छपाये जात, भौंरन की भीर संग ल्याये जात सजनी।[1]

(२) अंग प्रत्यंगों के अत्यंत सुकुमार होने के कारण मतिराम की नायिका बाहर नहीं निकलती स्यात् 'बिजनि की बयारि' से उसकी कमर न लचक जाय।

मतिराम—चरन धरै न भूमि बिहरै तहाँई जहाँ फूले फूले फूलन बिछायो परजंक है।
भार के डरन सुकुमारि चारु अंगन में करत न अंगराग कुंकुम को पंक है।
कवि मतिराम देखि बातायन बीच आयो आतप मलीन होत बदन मयंक है।
कैसे वह बाल लाल बाहेर बिजन आवै ? बिजनि बयारि लागे लचकत लंक है।[2]

दास की नीचे की पंक्तियों में मुख्य भाव तो यही है परन्तु उनकी नायिका अपेक्षाकृत अधिक सुकुमार प्रतीत होती है—

दास—घाघरो झीन सो सारी महीन सो, पीन नितम्बन भार उठै खचि।
दास सुवास सिँगार सिँगारत, बोझनि ऊपर बोझ उठै मचि।
स्वेद चलै मुखचन्द ते च्वै, डग द्वैक धरै मग फूलन सों सचि।
जात है पंकज-पात बयारि सों वा सुकुमारि को लंक लला लचि।[3]

देव और दास

(१) देव और दास के निम्नलिखित पदों में प्रायः एक से ही भाव आये हैं।

देव—लेहु लला उठि, ल्याई हौं बालहि लोक की लाजहि सों लरि राखौ।
फेरि इन्हें सपनेहु न पैयत, लै अपने उर में धरि राखौ।
'देव' लला, अबला नबला यह, चंदकला कठुला करि राखौ।
आठहु सिद्धि नवौ निधि लै, घर बाहर भीतर हू भरि राखौ।[4]

दास—लेहु जू ल्याई सुगेह तिहारे परे जिहि नेह सँदेह खरे में।
भेंटो भुजा भरि मेटो व्यथा निसि मेटो जु तौ सब साध भरै में।
सम्भु ज्यों आधे ही अंग लगावो बसायो कि श्रीपति ज्यों हियरे में।
दास भरी रस केलि सकेलिये आनँदबेलि सी मेलि गरे में।[5]

(२) राधा और कृष्ण परस्पर एक दूसरे की सराहना करते हुए एक दूसरे पर न्योछावर हो रहे हैं। देव के ये भाव निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त हैं।

देव—आपुस मै रस में रहसैं, बहसैं बनि राधिका कुंज बिहारी।
स्यामा सराहत स्याम की पागहि, स्याम सराहत स्यामा की सारी।
एकहि आरसी देखि कहै तिय, नीके लगौ पिय, जो कहै प्यारी।
'देव' सु बालम बाल को बाद बिलोकि भई बलि हौं, बलिहारी।[6]

१. का० नि०, पृ० १४८। २. मतिराम ग्रंथावली प० १८७–१८८।
३. का० नि०, पृ० १०८–१०९। ४. कृष्ण बिहारी मिश्र : देव और बिहारी, पृ० २०१।
५. शृं० नि०, पृ० ७५। ६. कृष्ण बिहारी मिश्र : देव और बिहारी, पृ० २०२।

प्रायः यही भाव दास ने भी व्यक्त किये हैं--

दास--प्रीतम पाग सँवारी सखी सुघराई जनायो प्रिया अपनी है।
प्यारी कपोल को चित्र बनावत प्यारे बिचित्रता चारु सनी है।
दास दुहूँ को दुहू को सँवारिबो देखि लह्यो सुख लूटि घनी है।
वै कहैं भावतो कैसो बनो वै कहैं मनभावती कैसी बनी है।[1]

(३) संचारियों का बहुत सा वर्णन हमें देव और दास में प्रायः एक सा ही मिलता है--

देव --बैरागिन किधौं अनुरागिन सोहागिन तू,
देव बड़भागिनि लजाति औ लरति क्यों ?
सोवति जगति अरसाति, हरषाति अनखाति,
बिलखाति, दुख मानति डरति क्यों ?
चौंकति, चकति, उचकति, औ बकति, बिथकति
औ थकति, ध्यान धीरज धरति क्यों ?
मोहति मुरति, सतराति, इतराति साह-
चरज सराहै, आहचरज मरति क्यों ?[2]

दास--सुमिरि सकुचि न थिराति शंक त्रसित,
तरकि उग्रवानि सगलानि हरषाति है।
उनिदति अलसाति सोअति सधीर चौंकि,
चाहि चिन्त श्रमित सगर्व इरखाति है।
दास पिय नेह छिन छिन भाव बदलति,
स्यामा सविराग दीन मति के मखाति है।
जल्पति जकति कहँरति, कठिनाति मति,
मोहति मरति बिललाति बिलखाति है।[3]

(४) देव और दास की निम्नलिखित पंक्तियों के भाव भी प्रायः एक से ही हैं।

देव--नीचे को निहारत नीचे नैन अधर,
दुबीचे पर्यो स्यामीरने आभा अटकन को।
नीलमनिभाग ह्वै, पदुमराग ह्वै कै, पुख
राग ह्वै, रहत बिध्यो छ्वै निकटन को।
देव बिहँसत दुति दंतन जुड़ात जोति,
बिमल मुकुत हीरा लाल गटकेन को।
थिरकि थिरकि थिर थाने पर थाने तोरि,
बाने बदलत नट मोती लटकन को।[4]

१. शृं० नि०, पृ० ७३–७४। २. कृष्णबिहारी मिश्र : देव और बिहारी, पृ २०२।
३. का० नि०, पृ० ४६। ४. कृष्णबिहारी मिश्र : देव और बिहारी, पृ० २०३।

दास—पन्ना संग पन्ना ह्वै प्रकासित छनक लै,
कनक रंग पुनि पै कुरंगन पलत है।
अधर ललाई लावै लाल की ललक पाये,
अलक झलक मरकत सों हलत है।
ऊदो अरुनौहैं पीत पाटल हरौहैं ह्वै कै,
दुति लै दुहूंधा दास नैनन छलत हैं।
समरथ नीके बहुरूपिया लौं थान ही में,
मोती नथुनी के बर बानो बदलत हैं।[१]

(५) देव की गोपी का 'हियरा' कृष्ण के हाथ बिक जाता है। यह भाव निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया गया है।

देव—पुकारि कही मैं, दही कोउ लेहु, इतो सुनि आइ गए इत धाय।
चितै कवि देव चितै ही चले मनमोहन मोहनी तान सी गाय।
न जानति और कछू तब ते, मन माहि वहीयै रही छबि छाय।
गई तौ हुती दधि बेचन काज, गयो हियरा हरि हाथ बिकाय।[२]

परन्तु दास की वृषभानलली इस सौदे में 'आप ही आप' बिक गई हैं—

दास—जेहि मोहिबे काज सिँगार सज्यो तेहि देखत मोह में आय गई।
न चितौनि चलाय सकी उनहीं की चितौनि के घाय अघाय गई।
वृषभान लली की दसा यह दास जू देत ठगौरी ठगाय गई।
बरसाने गई दधि बेचन को तहं आपुही आपु बिकाय गई।[३]

(६) देव और दास के निम्नलिखित पदों में भी प्रायः एक सा ही दृश्य देखने को मिलता है—

देव—फटिक सिलानि सों सुधारयो सुधामंदिर
उदधि दधि को सो, अधिकाई उमगै अमंद।
बाहर ते भीतर लौं भीति न दिखैये 'देव'
दूध कैसो फेन फैल्यो आंगन फरस बंद।
तारा सी तरुनि तामैं ठाढ़ी झिलमिल होति,
मोतिन की ज्योति मिल्यो मल्लिका को मकरंद,
आरसी से अम्बर में आभा सी उज्यारी लागै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिंब सो लगत चंद।[४]

दास—आरसी को आंगन सोहायो छबि छायो नहरनि में भरायो जल उज्जल सुमन-माल।
चांदनी बिचित्र लखि चांदनी बिछौना पर, दूरि कै चँदोअन को बिलसै अकेली बाल।
दास आसपास बहु भाँतिन बिराजैं घरे, पन्ना पोखराज मोती मानिक पदिक लाल।
चंद प्रतिबिंब ते न न्यारो होत मुख औ न, तारे प्रतिबिम्ब ते न न्यारो होत नखजाल।[५]

१. का० नि०, पृ० १४४–१४५। २. कृष्णबिहारी मिश्र : देव और बिहारी पृ० २०४।
३. का० नि०, पृ० १३६। ४. कृष्णबिहारी मिश्र : देव और बिहारी, पृ० २०४।
१. शृं० नि० पृ० १०।

हमने पिछले कुछ पृष्ठों में यह देखने का प्रयास किया है कि दास जी ने अनेक कवियों के भावों को ग्रहण किया है और वे भावसाम्य के क्षेत्र में अनेक कवियों से आगे भी निकल गये हैं। इस सम्बन्ध में पं० कृष्णबिहारी मिश्र के दास सम्बन्धी ये विचार देखने योग्य हैं—

"ऊपर जो कवितायें दी गई हैं उनको पढ़कर पाठक निर्णय करें कि दास ने बिहारी लाल के भावों की चोरी की है या उनको यह सिखलाया है कि आइये, देखिए, भाव इस प्रकार लिए जाते हैं"।[1]

इसमें सन्देह नहीं कि अन्य कवियों और महाकवियों की भांति दास जी अपने पूर्ववर्ती कवियों के भावों को ग्रहण करना अनुचित न समझते थे। उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि भाव उत्कृष्ट बना कर प्रस्तुत किये जांय। वे इसमें बहुत अधिक सफल रहे। अतः भाव-प्रकाशन के क्षेत्र में वे, हमारे विचार से, अच्छे कवियों की कोटि में रखे जा सकते हैं। उन्होंने भावचित्रण में अनेक मौलिक उद्भावनाएं की हैं और जो भाव अपने पूर्ववर्ती कवि अथवा आचार्यों से लिया है उसको उन्होंने अधिक पल्लवित और मुग्धकारी बना दिया है। वे सुकवि हैं इसमें कोई सन्देह नहीं क्योंकि—

सुकविर्हरतिच्छायां कुकविर्वाक्यानि चार्थांश्च ।
सकल प्रबन्ध हर्त्रे साहसकर्त्रे नमस्तुभ्यं ।

दास की मौलिकता

पिछले पृष्ठों में विभिन्न प्रसंगों के अन्तर्गत हम दास जी की मौलिकता का संकेत करते आये हैं। दास की मौलिकता उनकी रचनाओं में पायी जाने वाली निम्नलिखित विशेषताओं में अभिव्यक्त हुई है—

१. **मान्य आचार्यों के मतों के प्रतिकूल स्वतन्त्र मत की स्थापना।**
२. **वर्गीकरण द्वारा वैज्ञानिक विवेचन।**
३. **मान्य नामों के स्थान पर नये नामों का प्रयोग।**
४. **नवीन उद्भावनाएं।**

हम इन्हीं शीर्षकों के अन्तर्गत दास की मौलिकता के सम्बन्ध में संक्षेप में कुछ विचार करेंगे—

१. मान्य आचार्यों के मतों के प्रतिकूल स्वतंत्र मत की स्थापना

आचार्यत्व के क्षेत्र में दास जी ने अनेकानेक काव्य विषयों का विवेचन किया यह हम पिछले पृष्ठों में दिखला चुके हैं। हमारे विवेचन से स्पष्ट है कि दास जी ने संस्कृत अथवा हिन्दी के आचार्यों का अन्धानुकरण करने का प्रयत्न कभी नहीं किया। उन्होंने अपेक्षित विषयों पर स्वयं मनन और विचार किया और जहां कहीं उनका मत आचार्यों के मत के प्रतिकूल हुआ वहां उन्होंने अपने ही मत को प्रधानता दी। यह बात दूसरी है कि परवर्ती

१. **कृष्णबिहारी मिश्र : देव और बिहारी, पृ० २००।**

आचार्यों ने भिखारीदास द्वारा स्थापित मत को, जिसे दास जी अन्य आचार्यों की अपेक्षा अधिक संगत समझते थे, मान्यता दी हो या न दी हो, परन्तु अपनी निर्भीकता के कारण उन्होंने आचार्यों के मतों के प्रतिकूल अपने मत को स्थापित करने में जिस साहस तथा जिस निष्ठा का परिचय दिया है वह निश्चय ही दास की मौलिकता का द्योतक है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दास की रचनाओं में मिलते हैं—

(क) गुणों में रसों के वर्णन के अन्तर्गत दास ने मम्मट द्वारा निर्दिष्ट किये गये माधुर्य गुण में शान्त रस के स्थान पर हास्य को तथा ओज गुण के अन्तर्गत भयानक को, जिसकी मम्मट ने कल्पना भी नहीं की थी, स्थान दिया है।

(ख) मुद्रालंकार को उद्योतकार ने अलंकार नहीं माना। अनेक आचार्यों ने इसे अर्थालंकार माना है। इन मतों के प्रतिकूल भी दास जी ने मुद्रालंकार को शब्दालंकार के अन्तर्गत रखा है।

(ग) पंडितराज जगन्नाथ जैसे धुरन्धर आचार्य जिस प्रस्तुतांकुर को एक स्वतंत्र अलंकार तक नहीं मानते उसी प्रस्तुतांकुर अलंकार को दास जी ने एक अलग अलंकार मान कर उसका विवेचन किया है।

जहां कहीं परम्परा से चली आती हुई कोई बात दास जी को खटकी है वहां उन्होंने उसे सुधार कर एक नया रूप देने का प्रयास किया है। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि स्त्रियों को आलंबन रूप में चित्रित करना लक्षण ग्रंथों में दोष है, इसी कारण उन्होंने विभिन्न जाति की स्त्रियों को दूती बना कर उन्हें एक सम्मानित रूप देकर इस दोष का परिमार्जन करने का प्रयास किया है।[1] इस प्रकार एक परिपाटी के प्रतिकूल अपनी नयी परिपाटी स्थापित करना दास की मौलिकता का एक अंग है।

२. वर्गीकरण द्वारा वैज्ञानिक विवेचन

दास जी के काव्यशास्त्र विषयक ग्रंथ, जैसे काव्यनिर्णय, शृंगार निर्णय तथा रस सारांश, इस बात के साक्षी हैं कि जिन विषयों को उन्होंने उठाया उनका समुचित विवेचन करने के लिए अधिकतर उन्होंने प्रमुख विषय के अन्तर्गत आने वाले कुल उपविषयों को विशिष्ट वर्गों में स्थान देकर ही उनका विवेचन किया है, उदाहरणार्थ—

(क) गुणों का विवेचन उन्होंने अक्षर, अर्थ तथा वाक्य शीर्षक तीन वर्गों में किया है।

(ख) अलंकारों का विवेचन दास जी ने वर्गीकरण की सहायता से ही किया है। वर्गीकरण में निर्दिष्ट अलंकारों अथवा अन्य विषयों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हो सकता है जो स्वाभाविक भी है। परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी के जिन जिन आचार्यों ने अलंकारों के वर्गीकरण का प्रयत्न किया उनमें सर्वश्रेष्ठ वर्गीकरण दास जी का ही है क्योंकि यह अधिक वैज्ञानिक है।

१. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : वाङ्मय विमर्श, पृ० २६८।

हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि दास जी ने अलंकारों का वर्गीकरण करके उनका विवेचन यथातथ्य ही किया है। वस्तुतः कहीं कहीं तो वर्गीकरण करके भी वे अपने विवेचन को युक्तियुक्त नहीं बना सके हैं, उदाहरणार्थ, उनका व्यतिरेक रूपक वर्ग लिया जा सकता है। इस वर्ग में उल्लेख अलंकार का विवेचन युक्तियुक्त नहीं है फिर भी दास जी ने वहां उसे स्थान दिया है। इसी प्रकार अतिशयोक्ति के कुछ भेदों का वर्णन कर लेने के पश्चात् उन्होंने अत्युक्ति का विवेचन आरंभ कर दिया है और इस विवेचन के पश्चात् पुनः अतिशयोक्ति अलंकार का वर्णन उठाया है जो उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। परन्तु ऐसे स्थल अपेक्षाकृत कम हैं।

(ग) नायिका भेद का विवेचन भी दास जी ने वर्गीकरण की सहायता से ही किया है और उनका यह विवेचन निश्चय ही उच्च कोटि का हुआ है। इस सम्बन्ध में दास जी की एक और विशेषता उल्लेखनीय है। यदि दास जी को अपना पूर्वस्थापित मत असंगत प्रतीत होता था तो वे उस पर अड़े रहना उचित न समझते थे। उनकी इस प्रवृत्ति के दर्शन हमें उनके द्वारा प्रस्तुत नायिका-भेद में होते हैं। उन्होंने रस सारांश में निश्चित किया हुआ मत शृंगारनिर्णय में बिल्कुल बदल दिया और इस प्रकार शृंगार निर्णय में जिस क्रम से नायिकाभेद का विवेचन हुआ है वह निश्चय ही अधिक संगत है, यह हम यथास्थान दिखला ही चुके हैं।

(घ) छन्द विवेचन में भी दास जी ने वर्गीकरण का आश्रय लिया है जैसे सुगीतिका, रूपमाला, गीता, शुभगीता, लीलावती आदि गणात्मक छन्दों से विकसित होनेवाले मात्रिक छन्दों का दास ने मात्रा मुक्तक के रूप में एक अलग वर्ग मानकर ही विवेचन किया है। इससे विषय के विश्लेषण में जान आ गयी है। दास ने प्राकृत के छन्दों का वर्णन एक पृथक् तरंग में ही किया है जिसका कारण कदाचित् यही था कि ये छन्द अन्य छन्दों से अलग अपनी विशिष्ट सत्ता रखते थे और हिन्दी में इनका व्यवहार बहुत कम था।

३. मान्य नामों के स्थान पर नये नामों का प्रयोग

दास जी ने अपने काव्यविषयक विवेचन के अन्तर्गत कुछ ऐसे नामों का समावेश किया है जो न तो उनके पूर्ववर्ती संस्कृत आचार्यों ने ही दिये थे और न हिन्दी के आचार्यों ने ही। ऐसा दास जी ने क्यों किया इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर देना कठिन है? हमारा मत है कि जहां कहीं उन्होंने संस्कृत के नामों में अत्यधिक क्लिष्टता पायी अथवा उनमें उन्हें प्रत्यक्षतः कोई दोष दिखलाई पड़ा, वहां ही उन्होंने नामों में परिवर्तन किये हैं। इस परिवर्तन के मूल में दास जी की कदाचित् यही मनोवृत्ति रही होगी कि नये नाम हिन्दी भाषा की परम्परा के अधिक निकट तथा उसके प्रवाह के अनुकूल हों।

(क) वाक्यदोषों के वर्णन में आये हुए "चरणान्तर्गत पद" तथा "अकथित कथनीय" नामक दोषों के नाम दासकृत ही हैं। अर्थदोष के अन्तर्गत काव्यप्रकाश के "अविशेष प्रवृत्त" का नाम बदल कर दास जी ने 'सामान्य प्रवृत्त' कर दिया है।

(ख) अलंकारों में भी सिंहावलोकन अलंकार का नाम स्वयं दास जी द्वारा दिया गया ही प्रतीत होता है।[1]

(ग) छन्द वर्णन में भी दास द्वारा दिये गये कुछ नये नाम आ गये हैं जैसे "अहिर छन्द"।

४. नवीन उद्भावनाएं

दास जी की वास्तविक मौलिकता इस बात में प्रस्फुटित हुई है कि उन्होंने अनेक विषयों को नवीन दृष्टिकोण से देखा और उनके विषय में नवीन उद्भावनाएं कीं। इन उद्भावनाओं की संख्या दास जी के ग्रन्थों में बहुत अधिक है। इन सभी उद्भावनाओं का हम यथास्थान उल्लेख करते आये हैं।

(क) व्यतिरेक अलंकार के अन्तर्गत पोषण, दूषण की उद्भावना, वीप्सा तथा पुनरुक्तिप्रकाश नाम की नवीन उद्भावनाएं (पुनरुक्ति प्रकाश को दास जी ने एक नया गुण माना है। यही उनकी नवीन उद्भावना है), आक्षेप के तीन भेदों—उक्त, अनुक्त तथा व्यक्त—की उद्भावनाएं आदि।

(ख) छन्द विवेचन के अन्तर्गत उन्होंने सवैयों के १४ भेदों का वर्णन किया है। इतने भेद अन्य किसी भी कवि ने नहीं किये। दास ने छन्द के भेदों में छन्द और मोटन नामक दो भेदों की उद्भावनाएं कीं। इनके विषय में प्राचीन ग्रन्थों में भी कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार मुक्तक छन्दों में वर्णभूतना छन्द भी इनकी अपनी उद्भावना जान पड़ती है। इसका उदाहरण भी अन्य छन्द-ग्रन्थों में नहीं प्राप्त होता।

(ग) मौलिकता की दृष्टि से दास जी के चित्रालंकार का वर्णन उल्लेखनीय है। इसमें सन्देह नहीं कि चित्रालंकार का वर्णन हमें संस्कृत आचार्यों के काव्यों में मिलता है परन्तु दास ने अपनी बुद्धि से इस वर्णन के अन्तर्गत अनेक चित्रों तथा प्रभावशाली उदाहरणों में जो कारीगरी दिखायी है वह न केवल दास जी की मौलिकता की परिचायक है अपितु उससे उनकी प्रखर आचार्य-बुद्धि का भी पता चलता है।

दास की विशिष्ट साहित्यिक स्थिति

पिछले पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि दास जी ने काव्यशास्त्र के प्राय: सभी विषयों—जैसे पदार्थ निर्णय, गुण, ध्वनि, दोष, तुक, रस, नायिकाभेद, अलंकार आदि का—विशद विवेचन किया है और अनेक स्थलों पर इन विषयों का विवेचन करते समय उन्होंने नवीन उद्भावनाएं भी की हैं। अत: इतना तो हम निष्पक्ष रूप से कह सकते हैं कि दास जी आचार्य पद के योग्य हैं। उनके आचार्यत्व का लोहा आधुनिक काल के हिन्दी साहित्यकार भी मानते हैं। यदि दास जी के समक्ष पद्य के साथ साथ गद्य भी विकसित अवस्था में होता और उन्होंने उसका आश्रय लिया होता तो उन्हें कहीं अधिक सफलता मिली होती, क्योंकि पद्य में विवेचन तथा तर्क वितर्क के लिए अपेक्षाकृत संकुचित क्षेत्र रहता है।

१. देखिये, पृष्ठ संख्या ३२५।

हम मानते हैं कि (जैसा हम पिछले पृष्ठों में विस्तार से कह आये हैं) कहीं कहीं दास जी का विषय विवेचन अशुद्ध, अस्पष्ट तथा भ्रमोत्पादक और विवेचित विषय का क्रम असम्बद्ध हो गया है, परन्तु इन दोषों के होते हुए भी दास जी ने अपनी विलक्षण बुद्धि, प्रौढ़ विषय-प्रतिपादन-शैली तथा सबल विचार एवं कल्पना शक्ति की सहायता से हिन्दी साहित्य को जो देन दी है वह अमूल्य है।

हिन्दी साहित्य में केशवदास वास्तव में एक उच्च कोटि के आचार्य थे इसमें सन्देह नहीं, परन्तु भिखारीदास उनसे भी आगे बढ़ गये थे। स्वयं डा० हीरालाल ने केशव सम्बन्धी अपने प्रबन्ध (थीसिस) में स्वीकार किया है कि "आचार्य भिखारीदास का स्थान अवश्य केशव से ऊंचा हैं। इन्होंने, जैसा कि आरम्भ में कहा जा चुका है, आचार्य उद्भट के समान प्रधान अलंकार के नाम से एक वर्ग बना कर उससे सम्बन्ध रखने वाले अलंकारों को उस वर्ग में रखा है और इस प्रकार हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अलंकारों का नवीन ढ़ंग से वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। अलंकारों की संख्या में भी इन्होंने पर्याप्त वृद्धि की है। इन्होंनें शब्दालंकार तथा अर्थालंकारों के अतिरिक्त रस, भाव, ध्वनि तथा व्यंग्य सम्बन्धी अलंकारों का भी विवेचन किया है। केशव ने भाव, ध्वनि तथा व्यंग्य सम्बन्धी अलंकारों का कोई उल्लेख नहीं किया। दास जी के रसालंकारों के नाम केशव की 'कविप्रिया' में भी मिलते हैं किन्तु उनके लक्षण भ्रामक हैं और उन्हें रसालंकार नहीं सिद्ध करते। शब्दालंकारों के क्षेत्र में भी दास जी ने पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा, सिंहावलोकन तथा तुक आदि नये भेदों का सृजन किया है। यह प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने तुक का वैज्ञानिक तथा सुव्यवस्थित विवेचन किया है। इनका अर्थालंकारों का विवेचन भी अधिकांश केशव की अपेक्षा सूक्ष्म है। उपमा, आक्षेप, यमक तथा श्लेष आदि अलंकारों का वर्णन अवश्य केशव ने दास जी से अधिक विस्तार के साथ किया है फिर भी काव्य के विभिन्न अंगों का विस्तृत विवेचन हमें केशव में न मिल कर दास जी के ग्रन्थों में ही मिलता है।[1]

डा० भगीरथ मिश्र ने अपने "हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास" ग्रन्थ में जिन छः श्रेष्ठ कवियों को आचार्य माना है[2] उनमें भिखारीदास भी एक हैं। इस सम्बन्ध में मिश्र जी का यह मत ध्यान देने योग्य है—

"यह पुस्तक (दासकृत 'काव्य निर्णय') हिन्दी में काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में सबसे अधिक पूर्ण और वैज्ञानिक ढंग पर है, यद्यपि अधिकांश आधार 'काव्यप्रकाश' तथा हिन्दी के ग्रन्थ हैं फिर भी कई स्थानों पर जैसे भाषा, अलंकारों के वर्गीकरण, तुक निर्णय आदि के

१. डा० हीरालाल दीक्षित : आचार्य केशवदास (अप्रकाशित थीसिस), पृ० ३९३।

२. इन छः आचार्यों के नाम हैं—केशवदास, चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, देव, श्रीपति तथा भिखारीदास।

देखिये डा० भगीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास,

पृ० ५३, ७३, ८०, ८६, ११९, १३५।

वर्णन में दास जी की मौलिकता है। विषयक्रम का वैज्ञानिक ढंग, उदाहरणों की स्पष्टता और काव्य सौंदर्य तथा विषय विवेचन की पूर्णता के कारण 'काव्यनिर्णय' ग्रन्थ का अपना निजी स्थान है और भिखारीदास हिन्दी काव्यशास्त्र के सर्वश्रेष्ठ आचार्यों में प्रतिष्ठा के साथ परिगणित हैं"।[१]

हमारा अपना मत है कि निश्चय ही भिखारीदास हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ आचार्यों में से एक हैं और अनेक विषयों में तो वे केशवदास, चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, देव तथा श्रीपति आदि से भी बढ़ गये हैं।

१. डा० भगीरथ मिश्र : 'हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास', पृ० १४५।

सहायक-ग्रन्थ-सूची

(१) हिन्दी के प्रकाशित ग्रन्थ

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम	संस्करण
१. अलंकार पीयूष (पूर्वार्द्ध)	रामशंकर शुक्ल, 'रसाल'	सन् १९२९ ई०
२. अलंकार पीयूष (उत्तरार्द्ध)	रामशंकर शुक्ल, 'रसाल'	सन् १९३० ई०
३. अलंकार मंजूषा	ला० भगवानदीन	सं० २००४ वि०
४. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय	डॉ० दीनदयालु गुप्त	सं० २००४ वि०
५. कवि प्रिया	केशव	
६. कवित्त रत्नाकर (सेनापति)	सं० उमाशंकर शुक्ल	सन् १९४३ ई०
७. काव्यकल्पद्रुम (अलंकार मंजरी)	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	सं० १९९३ वि०
८. काव्यकल्पद्रुम (रस मंजरी)	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	सं० १९९३ वि०
९. काव्य दर्पण	रामदहिन मिश्र	सन् १९४३ ई०
१० काव्य निर्णय (भिखारीदास)	टी० पं० महावीर प्रसाद मालवीय	सन् १९३७ ई०
११. काव्य प्रभाकर	जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'	सं० १९६६ वि०
१२. केशवदास	डॉ० हीरालाल दीक्षित	सं० २०११ वि०
१३. चिंतामणि (प्रथम भाग)	रामचन्द्र शुक्ल	सन् १९४५ ई०
१४. चित्र चन्द्रिका	काशिराज	सं० १८८९ वि०
१५. छंद प्रभाकर	जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'	सन् १९३६ ई०
१६. छंदोमंजरी	गंगादास	सं० २००५ वि०
१७. छंदोर्णव पिंगल	भिखारीदास	सन् १९३६ ई०
१८. देव और उनकी कविता	डॉ० नगेन्द्र	सन् १९४९ ई०
१९. देव और बिहारी	पं० कृष्ण बिहारी मिश्र	सं० २००६ वि०
२०. द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ		
२१. नाम प्रकाश	भिखारीदास	सन् १८९९ ई०
२२. प्रताप सोमवंशावली	द्विज बलदेव	सन् १९१५ ई०
२३. बिहारी सतसई	टी० रामवृक्ष बेनीपुरी	
२४. ब्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद	प्रभुदयाल मीतल	सं० २००५ वि०
२५. ब्रज भाषा व्याकरण	धीरेन्द्र वर्मा	सन् १९३७ ई०
२६. ब्रज भाषा का व्याकरण	पं० किशोरीदास बाजपेयी	सं० २००० वि०
२७. भारतीय नीतिशास्त्र	यादवेन्दु	सन् १९४९ ई०
२८. भारतीय साहित्य शास्त्र, प्रथम भाग	बलदेव जी उपाध्याय	सं० २००५ वि०
२९. भारतीय साहित्य शास्त्र, द्वितीय भाग	बलदेव जी उपाध्याय	सं० २००५ वि०

३०. मतिराम ग्रन्थावली	पं० कृष्णबिहारी मिश्र	सन् १९५१ ई०
३१. मिश्रबन्धु विनोद (भाग २)	मिश्रबन्धु	सं० १९८४ वि०
३२. रस कलस	हरिऔध	सं० २००८ वि०
३३. रस सारांश	भिखारीदास	सं० १८९१ वि०
३४. रसखान पदावली (रसखान कृत)	सं० प्रभुदत्त ब्रह्मचारी	
३५. रसिकप्रिया	केशव	सं० १९११ वि०
३६. रहीम रत्नावली	सं० मायाशङ्कर याज्ञिक	सं० १९९५ वि०
३७. रीतिकाव्य की भूमिका	डॉ० नगेन्द्र	सन् १९४९ ई०
३८. वाङ्मय विमर्श	पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	सं० २००५ वि०
४९. विष्णुपुराण	गीताप्रेस से मुद्रित	सं० २००९ वि०
४०. विष्णुपुराण भाषा	भिखारीदास	सन् १८९४ ई०
४१. शिवसिंह सरोज	शिवसिंह सेंगर	
४२. श्री मद्भगवद्गीता	नवल किशोर प्रेस लखनऊ (प्र०)	सन् १९४२ ई०
४३. शृंगार निर्णय	भिखारीदास	
४४. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर	रामचंद्र वर्मा	सं० २००८ वि०
४५. संस्कृत साहित्य का इतिहास	सेठ कन्हैयालाल पोद्दार	सन् १९३८ ई०
४६. साहित्य पारिजात	डॉ० शुकदेव बिहारी मिश्र तथा पं० प्रतापनारायण मिश्र	सन् १९५१ ई०
४७. साहित्यालोचन	श्यामसुंदर दास	सं० १९९९ वि०
४८. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण	श्यामसुंदर दास	सं० १९८० वि०
४९. हिन्दी काव्य धारा	राहुल सांकृत्यायन	
५०. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास	डॉ० भगीरथ मिश्र	सं० २००५ वि०
५१. हिन्दी पुस्तक साहित्य	डॉ० माताप्रसाद गुप्त	सन् १९४५ ई०
५२. हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास	आचार्य चतुरसेन	सन् १९४८ ई०
५३. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास	'हरिऔध'	सन् १९२७ ई०
५४. हिन्दी साहित्य	श्यामसुन्दर दास	सन् १९४४ ई०
५५. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा	सन् १९४८ ई०
५६. हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामशंकर शुक्ल 'रसाल'	सन् १९३१ ई०
५७. हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचंद्र शुक्ल	सं० २००२ वि०
५८. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास	सूर्यकान्त शास्त्री	सन् १९३१ ई०
५९. हिन्दी रस गंगाधर, भाग १	पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी	सं० १९८६ वि०
६०. हिन्दी रस गंगाधर, भाग २		सं० १९९५ वि०

(२) संस्कृत के ग्रन्थ

६१. अलंकार मंजूषा	देव शंकर पुरोहित भट्ट	सन् १९४० ई०
६२. अलंकार शेखर	केशव मिश्र	
६३. काव्यादर्श (दंडी)	रंगाचार्य शास्त्री	सन् १९३८ ई०
६४. काव्यानुशासन	हेमचन्द्र	
६५. काव्यालंकार (रुद्रट)	टीकाकार साधु	सन् १९०९ ई०
६६. काव्यालंकार सारसंग्रह (उद्भट)	श्रीन्दुराज कृत संस्कृत लघुवृत्ति सहित	सन् १९२५ ई०
६७. काव्यालंकार सूत्र (वामन)	आलोचक श्री गोपेन्द्रत्रिपुरहर	सन् १९०८ ई०
६८. काव्यप्रकाश (मम्मट)	अनु० हरिमंगल मिश्र	सं० २००० वि०
६९. कुवलयानन्द (अप्पय दीक्षित)	टी० वैद्यनाथ सूरि	सन् १९१७ ई०
७०. चंद्रालोक (जयदेव)	कथाभट्टीया टीका सहित	सन् १९५० ई०
७१. चित्र मीमांसा	अप्पय दीक्षित	सन् १९०७ ई०
७२. ध्वन्यालोक (आनन्दवर्द्धन)	सं० महामहो० पं० दुर्गाप्रसाद	सन् १९२८ ई०
७३. नाट्यशास्त्र (भरत)	गायकवाड़ संस्करण	सन् १९३४ ई०
७४. नामलिंगानुशासन (अमरकोष)	टी० क्षीर स्वामी	सन् १९१३ ई०
७५. नामलिंगानुशासन (अमरकोष)	टी० वन्द्यघटीय सर्वदानन्द	सन् १९४१ ई०
७६. प्रताप रुद्रीय	विद्यानाथ	
७७. रसमंजरी	भानुदत्त	सन् १९०४ ई०
७८. रसगंगाधर	पंडितराज जगन्नाथ	सन् १९०३ ई०
७९. रसचंद्रिका	श्री विश्वेश्वर पांडे	सं० १९८३ वि०
८०. रसार्णव सुधाकर	श्री शृंगभूपाल	सन् १९१६ ई०
८१. वक्रोक्ति जीवितम्	कुन्तल	सन् १९२३ ई०
८२. विष्णुपुराण	श्रीधरीय व्याख्या सहित	
८३. वृत्त रत्नाकर	भट्ट केदार	सन् १९४८ ई०
८४. साहित्य दर्पण	बालबोधिनी टीका	
८५. साहित्य दर्पण	टीकाकार शालग्राम शास्त्री	सं० १९७८ वि०

(३) हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची

हिन्दी

८६. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना (थीसिस) — डॉ० पुत्तू लाल शुक्ल

८७. काव्य निर्णय

८८. केशव—उनका जीवन और साहित्य — डॉ० हीरालाल दीक्षित

८९. खोज रिपोर्टें—नागरी प्रचारिणी सभा (अप्रकाशित सन् १९२९ से १९४९ तक)

९०. छंद प्रकाश	लेखक अज्ञात
९१. छन्दोर्णव पिंगल	भिखारीदास
९२. तेरिज काव्य निर्णय	भिखारीदास
९३. तेरिज रस सारांश	भिखारीदास
९४. नाम प्रकाश	भिखारीदास
९५. रस सारांश	भिखारीदास
९६. शतरंज शतिका	भिखारीदास
९७. श्रीपति सरोज	श्रीपति
९८. विष्णुपुराण	भिखारीदास

अंग्रेजी

99. Thesis 'Hindi Literature' (1757-1857) by Dr. L.S. Varshneya.
100. Thesis on Poetics by Dr. Janki Nath Singh 'Manoj'.

(४) अंग्रेजी के ग्रन्थों की सूची

Name of book	Author	Edition
101. Fall of Moghal Empire	Sir J. N. Sarkar	1932
102. The Fall of the Moghal Empire	Owen	1912
103. History of Aurangzeb	J. N. Sarkar	1912
104. History of India	Elphinstone	1889
105. History of the Province. of Banaras		1882
106. History of Sanskrit Literature.	A. Berridale Keith	1941
107. History of the Sombanshi Raj and Estate of Pratapgarh in Oudh.	Pt. Bishambhar Dayal Tholal,	1900
108. Introduction to Sahitya Darpan	P. V. Kane	1929
109. Making of India	Abdulla Yusuf Ali	1925
110. The Mogul Empire.	S. M. Jaffar	1936
111. Mogul Rule in India.	Edwardes & Garrett	1930
112. Sanskrit Poetics, Pt. 2.	S. K. De	
113. Studies in the Sanskrit Poetics.	S. K. De	

(५) पत्रिका

११४. सरस्वती पत्रिका सन् १९११ ई०.

अंग्रेजी

115. U.P. Gazette, 1915.
116. Reports of Nagri Pracharini Sabha from 1901 to 1929.

ग्रन्थ-निर्देश

(अ)

अग्नि पुराण—५४।
अध्यात्म रामायण—३४०।
अभिधावृत्ति मातृका—१७७।
अमरकोष—१०, ११, १२, २२, ३४, ३८, ७३, ७४, ७६, ८०, ८५, ६०, १००, १०२, ३३४।
अमर तिलक—८, ७४, ८०, ८५, ८६, १००।
अमर प्रकाश—२२, ७२, ७३, ६०, ३३४।
अलंकार पंचाशिका—६४।
अलंकार पीयूष—२३५, ३०४, ३०७, ३१७, ३२०, ३२५, ३२६, ३३१, ३३२।
अलंकार मंजूषा—२६१, ३२४, ३२८।
अलंकार शेखर—१६१।
अलक शतक—६८।
अष्टछाप और बल्लभ सम्प्रदाय—१२५।

(आ)

आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना—२०६।
आरिजिन ऐंड ग्रोथ आफ दि अलंकार शास्त्र—५४, ५६, ५८।

(इ)

इन्ट्रोडक्शन टु साहित्य दर्पण—५६, ६०।

(उ)

उपमालङ्कार—६४।

(क)

कविकुल कल्पतरु—४३, ६३।
कविप्रिया—४३, ६२, ६३, ३०४, ३५७।
कवित्त रत्नाकर—२६२, ३४४, ३४८।
कर्णाभरण—४३, ६२।
कायस्थ वर्ण निर्णय—७४, ७५, ६६, १००।
काव्य कल्पद्रुम (रसमञ्जरी)—२२३, २२४, २२५
काव्यकल्पद्रुम (अलंकार मञ्जरी)—२६०, २६४, २६६, २६७, २६६, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०८, ३०६, ३१०, ३११, ३१५, ३१८, ३१६, ३२०, ३२२, ३२३, ३२८।
काव्य कल्पलतावृत्ति—१६१।
काव्य दर्पण—५७, १०४, १०५।

काव्य निर्णय–३, ४, ५, ६, ९, १०, ११, १५, १९, २३, २५, २८, २९, ३०, ३१, ३३, ३४, ४१, ७०, ७२, ७३, ७४, ७६, ८०, ८१, ८२, ८८, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, १००, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२३, १२४, १२५, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४५. १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५६, १५७, १५८, १६२, १६३, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २४२, २८२; २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५८ ।

काव्य प्रकाश–४, २८, २९, ३०, ३१, ३३, ३४, ४३, ६४, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८४, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, २०१, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३६, २८४, २८५, २९२, २९३, २९६, २९७, २९८, २९९, ३०२, ३०५, ३१२, ३१४, ३१५, ३२१, ३२८, ३३६, ३३७, ३३८, ३५७ ।

काव्य प्रभाकर–३२८ ।

काव्य रसायन–६४ ।

काव्य विवेक–४३ ।

काव्यादर्श–५७, १६१, १६३, १६४, १६५, १९९, २९९, ३०४, ३१२ ।

काव्यानुशासन–१६४ ।

काव्यालंकार–५७, १६१, १६३, २९०, २९८ ।

काव्यालंकार सूत्र–५८, १६३, १६५ ।

काव्यालंकार सार संग्रह–१६१ ।

कुबलयानन्द–१५, १६१, २९२, २९८, ३०१, ३०३, ३०४, ३१०, ३११, ३१२, ३१४, ३१५, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२३ ।

कुशल बिलास–६४ ।

(ख)

खटमल बाईसी–५२ ।

(च)

चन्द्रालोक–४, २८, २६, ३०, ५६, १६१, १६२, १६४, १६६, १६७, १६८, १६६, १७०, १७१, १७६, १७७, १८२, १८३, १८८, १६१, १६७, १६८, १६६, २००, २०६, २१०, २१२, २१३, २१४, २१६, २१७, २१८, २१६, २२२, २२३, २२५, २३२, २८४, २६२, २६३, २६४, २६८, ३००, ३०१, ३०५, ३०८, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१६, ३२०, ३२३, ३३६, ३३७ ।
चित्र चन्द्रिका–३२६ ।
चित्र मीमांसा–२६० ।
चिन्तामणि–१ ।

(छ)

छत्रप्रकाश–५१ ।
छन्द प्रकाश–६, ७, ७२, ७३, ८०, ६०, ६५, ६६, १०० ।
छन्द प्रभाकर–२०८ ।
छन्द विचार पिंगल–६४ ।
छन्दोनुशासन–६२ ।
छन्दोमंजरी–२०८ ।
छन्दो रत्नाकर–६२ ।
छन्दोर्णव पिंगल–३, ४, ७, ८, १०, १२, १५, १६, १७, २०, २५, ७२, ७३, ७४, ७६, ८८, ८१, ८३, ८४, ६०, ६१, ६३, ६४, १००, १०६, १०७ १०८, १४८, १५२, १५३, २०६, २०७, २०८, २०६, ३३४ ।

(त)

तिल शतक–६८ ।
तेरिज काव्य निर्णय–८०, ८७, ८८, ६०, ६४, १००, १०१, १०२ ।
तेरिज रस सारांश–८०, ८८, ६०, ६४, १००, १०२ ।

(द)

दंपति विलास–६४ ।
देव और बिहारी–१४४, ३४०, ३४१, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३ ।
देव और उनकी कविता–१२६, १४५ ।
देशी नाममाला–६२ ।
द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ–५५

(ध)

ध्वन्यालोक–६०, ६१, १६१, १६३, १८७, १६०, १६७, २०१, ३४०

(न)

नखशिख–६२, ६३।
नाट्यशास्त्र–५४, ५६, ११०, १६१, १६४, २३१।
नमिप्रकाश–३, ६, ८, १५, २२, २५, ३८, ३६, ७२, ७३, ७४, ८०, ८५, ६०, ६४, १००, १०१, ३३४।
नामलिंगानुशासन–३४, ३८, ३६।
नायिका भेद–६४।
न्याय दर्शन–१७७।

(प)

पंथ पारख्या–२१, ७६, ६८, ६६, १००।
पिंगल–६३।
प्रताप रुद्रीय–५७।
प्रताप सोमवंशावली–१०, ११, १२, १३ १४, १७, ७६।
प्रसन्न राघव नाटक–३४०।
प्राकृत व्याकरण–६२।

(फ)

फ़ाल आफ मुगल एम्पायर–४५, ४६।

(ब)

बागबहार–१५, ७३, ७४।
बाल्मीकीय रामायण–३४०।
बिहारी सतसई–३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४६।
ब्रजभाषा व्याकरण–१२४, १२६, १२७।
ब्रजभाषा का व्याकरण–१२४, १२६, १२७।
ब्रज माहात्म चन्द्रिका–२१, ७८, ७६, ६८, १००।
ब्रज साहित्य का नायिका भेद–६७, ६८, २३८, २७१, २७४।

(भ)

भवानी विलास–६४।
भारतीय साहित्य शास्त्र (प्रथम भाग)–५८, ५६।
भारतीय साहित्य शास्त्र (द्वितीय भाग)–२३२।
भाव विलास–६४।
भाषा भूषण–६४।
भाषा योग वाशिष्ठ–५२।
भूप भूषण–४३, ६२।
भूषण विलास–६४।

(म)

मतिराम ग्रन्थावली–३४३, ३४६, ३४६, ३५०।
महाभाष्य–१७७।
मिश्र बन्धु विनोद (भाग २)–१५, १६, १७, २०, ७३, ३३४, ३३६।
मुगल एम्पायर–४७, ५०, ५१।
मुगल रूल इन इण्डिया–४६, ५०।
मेंकिंग आफ इंडिया–४३, ४४, ४५

उपसंहार

(य)

योग वाशिष्ठ–१५४।

(र)

रस कलस–११०, २३१।

रसखान पदावली–३४१, ३४२।

रसगंगाधर–१६३, २९५, २९८, ३०३, ३२१।

रस चन्द्र–६४।

रसचन्द्रिका–२४१, २४२।

रस तरंगिणी–१६१।

रस मंजरी–१६१, २३९, २४१, २४२, २४३, २४८, २४९, २५४, २५५, २५६, २५७, २५९, २६६।

रस रहस्य–६४।

रस विवेक–६४।

रस विलास–६४।

रस राज–६४।

रस सागर–६४।

रस सारंग–७६।

रस सारांश–३, ५, ७, ८, १०, ११, १२, १५, १९, २५, ७२, ७३, ७४, ७६, ८०, ८१, ८५, ९०, ९१, ९४, ९५, १००, १०४, १०५, १०९ १११, ११२, ११३, ११६, ११९, १२१, १२२, १३६, १३८, १३९, १४०, १४२, १४६, १४७, १४८, १४९, १५२, १५३, १५५, १५६, १५७, १५८। २३९, २४०, २४२, २४३, २४४, २४५, २५१, २५४, २५६, २५७, २५९, २६०, २७५, २७१, २७८, २७९, २८०, २८१, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३५५।

रसार्णव–६४।

रसार्णव सुधाकर–२३९, २६८, २६९, २७०।

रसिक प्रिया–६२, ३४३।

रहीम रत्नावली–३४३।

राग निर्णय–२१, ७७, ९८, १००।

राग रत्न–७७।

रीतिकाव्य की भूमिका–४४, ७०।

(ल)

लक्षण शृंगार–६४।

ललित ललाम–६४।

लोचन (अभिनव गुप्त)–५९, १७३।

(व)

वक्रोक्ति जीवितम्–५९, ६०, १६३।

वाङ्मय विमर्श–२०१, २०२, २८०, ३५४।

विष्णुपुराण (गीताप्रेस)–३४, ३५, ३६, ३७।

विष्णु पुराण भाषा–३, ८, ९, १०, ११, १२, १५, १७, २०, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ७२, ७५, ७६, ८०, ८६, ८७, ९०, ९४, १००, १०२, १२३।

विष्णुपुराण (श्रीधरीय व्याख्या सहित)–३६ ३७।

वृत्त विचार–६४।

(श)

शकुन्तला नाटक–५२।

शतरंज शतिका–३, १०, १२, २०, ७२, ७६, ८०, ८९, ९०, ९४, १००, १०२

शिवराज भूषण–६४।

शिवसिंह सरोज–१५, ७३ ।
शृंगार निर्णय–३, ४, ५, ६, ६, १०, ११, १५, १६, २५, ३३, ७२ ७३, ७६, ८०, ८१, ८४, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, १००, १०५, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११८, १२१, १३०, १३१, १३२, १३४, १३५, १३७, १३८, १३६, १४०, १४१, १४२, १४३, १४८, २३५, २३६, २३७, २४०, २४१, २४२, २४३, २४६, २४७, २४८, २४६, २५०, २५१, २५२, २५४, २५५, २५६, २५७, २५६, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६६, २७०, २७५, २७६, २७७, २७६, २८०, २८१, २८२, ३३४, ३४१, ३४२, ३४८, ३५०, ३५१, ३५२, ३५५ ।
शृंगार मंजरी–६३
शृंगार सागर–४३, ६२ ।
श्रुति भूषण–४३, ६२ ।
शृंगार लता–६४ ।
श्रीपति सरोज (काव्य सरोज)–३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३६ ।
श्रीमद्भगवद्गीता–१५४, ३४० ।

(स)

संस्कृत पोएटिक्स–६१ ।
संस्कृत साहित्य का इतिहास–५६, ५७, ६०, ६६ ।
सरस्वती कंठाभरण–१६४ ।
साहित्य दर्पण–१, ११०, १६१, १६३, १६४, १६६, १८४, १८७, १८८, १८६, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, २१०, २१६, २२२, २२८, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३६, २४०, २४१, २६१, २६२, २६३, २२४, २६७, २६८, २७५, २७६, २७७, २७८, २७६, २८१, १८२, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २६३, २६४, २६८, २६६, ३०३, ३१३, ३२१, ३२२ ।
साहित्य पारिजात–२६६, ३०६, ३२४, ३२७, ३२८ ।
साहित्य सागर–६४ ।
साहित्यालोचन–५५ ।
सुख सागर तरंग–६४ ।
सुजान विनोद–६४ ।
सुन्दर शृंगार–६३ ।
स्टडीज इन दि संस्कृत पोएटिक्स–५५, ६१ ।
सुधानिधि–६४ ।

(ह)

हनुमन्नाटक–३४० ।
हम्मीर रासो–५१ ।
हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण–१८, ७६ ।
हिन्दी काव्य धारा–६२ ।
हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास–५३, ६१, ६३, ६४, १६१, २०२, ३३२, ३३५, ३५७ ।
हिन्दी पुस्तक साहित्य–७४ ।
हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास–२२ ।
हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास–६६, ७३, ३३५ ।
हिन्दी शब्द सागर–२६५ ।
हिन्दी साहित्य–२२, ६६, ७०, ७६ ।
हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल)–२१, ४३, ६२, १६१, २७६, ३३५ ।
हिन्दी साहित्य का इतिहास 'रसाल'–२२, ७०, ३३५ ।
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास–६२ ।
हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास–२२, ७३, ३३५ ।
हिन्दी रस गंगाधर–२६५, २६८, ३०३, ३०६ ।
हिस्ट्री आफ अलंकार लिटरेचर–५४ ।
हिस्ट्री आफ औरंगजेब–५०
हिस्ट्री आफ इंडिया–४६ ।
हिस्ट्री आफ दि प्राविन्स आफ बनारस–६७ ।
हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर–५३, ५५, ६१ ।
हिस्ट्री आफ दि सोमवंशी राज्य ऐंड स्टेट आफ प्रतापगढ़–१३, १८ ।